श्री देववाचकगणि संकलित

सचित्र

श्री नन्दीसूत्र

(हिन्दी-अंग्रेजी भाषानुवाद सहित)

प्रधान सम्पादक

उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि

सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक

पद्म प्रकाशन

पद्मधाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

सचित्र आगम माला का सातवाँ पुष्प

- श्री देववाचकगणि संकलित
- सचित्र श्री नन्दीसूत्र
- प्रधान सम्पादक
  उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि
- सम्पादक
  श्रीचन्द सुराना 'सरस'
- अंग्रेजी अनुवाद
  सुरेन्द्र बोथरा
- चित्रकार
  सरदार पुरुषोत्तमसिंह
  सरदार हरविंदरसिंह

- प्रकाशक
  पद्म प्रकाशन
  पद्मधाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०
- मुद्रक एवं प्रकाशक
  दिवाकर प्रकाशन
  ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२
  दूरभाष (०५६२) ३५११६५, ३५२७५३
- प्रथम आवृत्ति
  वि. सं. २०५५ आषाढ़
  ईस्वी सन् १९९८ जुलाई
- मूल्य : पाँच सौ रुपया मात्र

Compiled by Shri Dev-vachak Gani

ILLUSTRATED
SHRI NANDI SUTRA

(WITH HINDI AND ENGLISH TRANSLATIONS)

Editor-in-chief

Up-pravartak Shri Amar Muni

Editor

Srichand Surana 'Saras'

Publisher

Padma Prakashan

PADMA DHAM, NARELA MANDI, DELHI-110 040

The Seventh Number of the Illustrated Agam Series

- **Compiled by Shri Dev-vachak Gani**
- Illustrated Shri Nandi Sutra
- Editor-in-chief
  Up-pravartak Shri Amar Muni
- Editor
  Srichand Surana 'Saras'
- English Translation
  Surendra Bothara
- Illustrations
  Sardar Purushottam Singh
  Sardar Harvinder Singh
- Publisher
  Padma Prakashan
  Padma Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040
- Printed and Published
  Diwakar Prakashan
  A-7, Awagarh House, M.G. Road, Agra-282 002
  Phone (0562) 351165, 352753
- First Edition
  Asharh, 2055 V.
  July, 1998 A.D.
- Price
  Rupees Five Hundred only
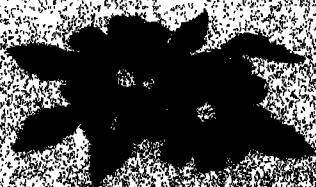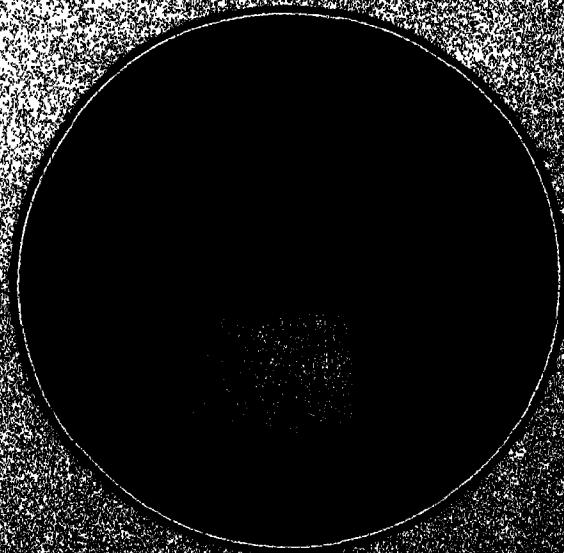
उदारता, गुरुभक्ति और धर्मप्रेम जिनकी विशेषता है

श्रुत-सेवा में सहयोग प्रदाता महानुभाव

श्री जय भगवान जी जैन
(सिरसली वाले)
योजना विहार, दिल्ली
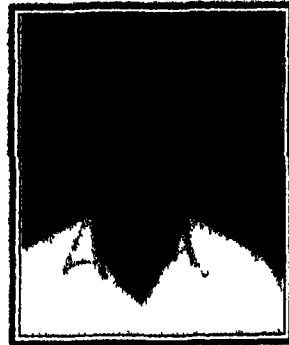
श्री सुशील कुमार जी जैन
सुपुत्र, श्री जय भगवान जी जैन
योजना विहार, दिल्ली

श्री वीरेन्द्र कुमार जी जैन
सुपुत्र, श्री हुक्मचन्द जी जैन
(झिझारागढ़ी वाले)
प्रशान्त विहार, दिल्ली

श्री रमेशचन्द जी जैन
सुपुत्र, श्री रामेश्वरदास जी जैन
(मुआना वाले) पीतमपुरा, दिल्ली
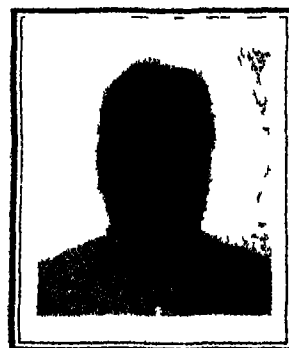
श्री विनोद कुमार जैन
सुपुत्र, श्री जयभगवान जी जैन
योजना विहार, दिल्ली

श्रुत-सेवा में विशिष्ट सहयोग

तपाचार्या श्री मोहन माला जी म.
के १५३ दिवसीय दीर्घतप तथा तपसूर्या श्री आरती जी म के ४१ दिवसीय दीर्घतप आराधना के शुभ अवसर पर महासती प्रवेश कुमारी जैन, चेरिटेबल हॉस्पीटल, बी-११, गली ९ मानसरोवर पार्क, दिल्ली द्वारा ५१ हजार का सहयोग किया गया।

श्रमणी सूर्या उपप्रवर्तिनी विदुषी
डॉ. सरिता जी महाराज
की सुशिष्या डॉ. श्री शुभा (पिंकी) जी महाराज के पारणे के शुभ अवसर पर श्री पद्म प्रकाशन की ओर से हार्दिक वर्धापन।

श्री सुभाष जी जैन एवं श्रीमती शशि जैन
विवेक विहार, दिल्ली
आप दोनों की उदारता और गुरु भक्ति सराहनीय है। धर्म एवं समाज सेवा के शुभ कार्यों में अपनी संपत्ति का सदुपयोग करते रहते हैं। शास्त्र प्रकाशन में आपका सहयोग सदा ही मिलता रहा है।
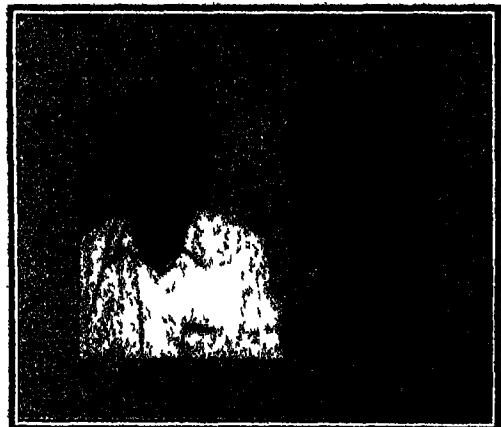
श्री सतपाल जी एवं श्रीमती प्रेमलता जी
पेहवा (कुरुक्षेत्र)
आप दोनों ही पूज्य गुरुदेव के प्रति अत्यन्त भक्ति व समर्पण भाव रखते हैं। धर्म तथा समाज सेवा के कार्यों में उदार मन से सहयोग प्रदान करते रहते हैं।

उदारता, गुरुभक्ति और धर्मप्रेम जिनकी विशेषता है

श्रुत-सेवा में सहयोग प्रदाता महानुभाव

श्री सुभाषचन्द जैन
सुपुत्र, श्री हरिचन्द जी जैन
हुड्डा कालोनी, पानीपत

श्री यशपाल जी जैन
सुपुत्र, स्व श्री रोशनलाल जी जैन
(काछवा वाले)
यमुना विहार, दिल्ली

श्री अशोक कुमार जी गोयल
सुपुत्र, श्री रामकरण जी गोयल
कुरुक्षेत्र
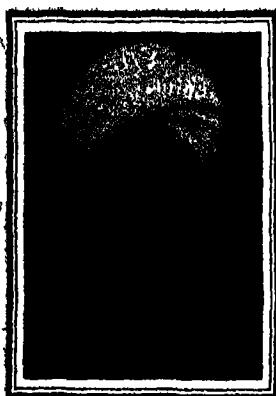
स्व. श्री आत्माराम जी जैन
कुरुक्षेत्र
की पुण्य स्मृति में
सुपुत्र, स्व. पवन कुमार जैन
[illegible] कुमार जैन, दमन कुमार जैन
सुनीत कुमार जैन
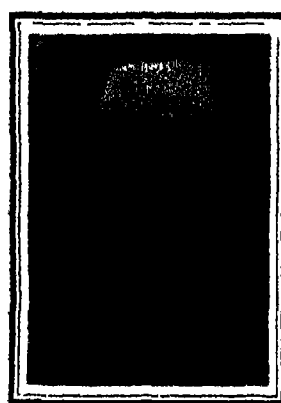
स्व. श्री मेलीराम जी जैन
कुरुक्षेत्र
की पुण्य स्मृति में
सुपुत्र, श्री सतपाल जैन,
यशपाल जैन, श्रीपाल जैन,
सुरेन्द्रपाल जैन

प्रकाशकीय

मानव-जीवन के लिए जो महत्त्वपूर्ण पुण्य कार्य बताये गये हैं उनमें एक महान् पुण्य कार्य है शास्त्र-सेवा अर्थात् ज्ञान का प्रचार करना। ज्ञान मनुष्य के लिए वरदान है। अन्तःकरण की आँख है। इसी के आधार पर मनुष्य अपने कृत्य-अकृत्य का, पुण्य-पाप का, भले-बुरे का बोध करता है और धर्ममार्ग में प्रवृत्त होता है। बड़े भाग्यशाली हैं वे लोग, जिन्होंने श्रुत-सेवा में सत्शास्त्र के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन लगाया है। अपनी शक्ति और धन का सदुपयोग किया है और कर रहे हैं।

शास्त्र का अर्थ ही है, जो हमारे अन्तःकरण को शिक्षित करे और जो हमारी भावनाओं तथा अन्तरवृत्तियों पर अनुशासन करे। इस प्रकार शास्त्र भी गुरु हैं। भगवान और गुरु के मध्य का सेतु है शास्त्र, ऐसे महान् शास्त्र का प्रचार-प्रसार करना भी महान् पुण्यशाली बनने का लक्षण है।

हम सौभाग्यशाली हैं कि उत्तर भारतीय प्रवर्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज की कृपा से उनके विद्वान् शिष्य, प्रवचन भूषण उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि जी महाराज ने हमें सचित्र आगम प्रकाशन की ऐतिहासिक योजना में सहयोगी बनाया। आपश्री की प्रेरणा से अब तक छह शास्त्रों का सचित्र हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशन हो चुका है। प्रसन्नता की बात है कि जो लोग पहले शास्त्र स्वाध्याय नहीं करते थे, या शास्त्र के नाम से ही डरते थे कि शस्त्र और शास्त्र को छूना नहीं, अब वे लोग सचित्र आगम देखकर शास्त्रों का स्वाध्याय करने लगे हैं। बड़े चाव से पढ़ने लगे हैं। अनेक अहिन्दीभाषी विदेशों में रहने वाले विद्वान् व सामान्य जिज्ञासु भी भारत से शास्त्र मँगाकर इनका स्वाध्याय कर रहे हैं। यही हमारे लिए उत्साह का विषय है। यही हमारी योजना की सफलता की सूचना है।

यद्यपि सचित्र आगम प्रकाशन का यह कार्य बहुत ही महँगा पड़ता है। चित्र, छपाई, अनुवाद आदि सभी कार्य काफी व्यय-साध्य हैं, इस कारण इनकी लागत भी काफी आती है। फिर भी हम लागत मात्र कीमत रखते हैं और साधु-साध्वियों तथा श्रीसंघ व समाज के पुस्तकालयों को तो भेंट स्वरूप ही भेज देते हैं। इसलिए इस कार्य में उदारमना सज्जनों के सहयोग की सदा अपेक्षा रहती है। हमें प्रसन्नता है कि पूज्य गुरुदेव

के आशीर्वाद से अनेक उदार सद्गृहस्थों ने अपनी स्वतः की प्रेरणा से इस श्रुत-सेवा कार्य में उदारतापूर्वक सहयोग दिया है, दे रहे हैं। हम उन सभी के प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रगट करते हैं।

आगमों के चित्र बनाने में सरदार पुरुषोत्तमसिंह जी व सरदार हरविंदरसिंह जी बड़ी श्रद्धा भावना के साथ जुटे हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी अनुवाद में हमारे विशेष सहयोगी हैं श्री सुरेन्द्र जी बोथरा। वे जैन दर्शन के भी विद्वान् हैं और सुयोग्य लेखक भी। नन्दीसूत्र के कठिन विषय का अंग्रेजी अनुवाद बड़ी निपुणता के साथ किया है। साथ ही हमारे सहयोगी सम्पादक भाई श्रीचन्द जी सुराना को धन्यवाद देते हैं, जो तन-मन से इस श्रुत-सेवा में जुटे हुए हैं। श्री राजकुमार जी जैन, मधुवन, दिल्ली का मार्गदर्शन एवं परिश्रम भी सराहनीय रहा है।

—*महेन्द्रकुमार जैन*
अध्यक्ष
पद्म प्रकाशन

Publisher's Note

One of the great meritorious works done for the benefit of mankind is the service of the scriptures or to help spread knowledge. Knowledge is a blessing for humans. It is the inner eye. With the help of this only man knows about his good and bad deeds, his merits and demerits, what is good or bad for him, and accordingly heads towards the right path. Blessed are those who have devoted their life to the task of serving knowledge or spread of the right knowledge contained in scriptures; who have made and continue to make proper use of their power and wealth in this direction.

The true meaning of the term 'Shastra' (scripture) is this only—that which educates our inner self and exercises control and discipline over our feelings and attitudes. Thus scriptures are also teachers. The link between Bhagavan and Guru is scripture. To indulge in popularising and propagating scriptures is a sign of becoming meritorious to the highest degree.

We are lucky that with the blessings of Uttar Bharatiya Pravartak Gurudev Bandari Shri Padmachandra ji Maharaj, his scholarly disciple Pravachan Bhushan Up-pravartak Shri Amar Muni ji Maharaj has chosen us as associates in the historic plan to publish Illustrated Agams. With his revered inspiration six scriptures have been published with illustrations and Hindi and English translations. It is matter of great joy that those who earlier did not study scriptures, who were even afraid of the name scripture thinking that weapons and scriptures are not to be touched, have now, after seeing the illustrated Agams, started studying scriptures. Numerous non-Hindi scholars as well as general readers living in foreign countries are also getting these scriptures from India and studying. This gives us a lot of encouragement. These are the signs of success of our plan.

The work of publishing illustrated Agams is cost intensive. Multicolour illustrations, printing, translation, all require sizeable

expenditure. That is the reason that the production cost is considerably high. In spite of all this we just sell a our cost. Moreover, to sadhus and sadhvis, Shri Sangh, and the libraries run by various social organisation these publications are sent free as gift. Therefore assistance from charitable persons is always welcome. We are pleased that with the blessings of revered Gurudev many magnanimous and self inspired individuals have been liberally contributing and continue to do so. We express our sincere gratitude to them.

Sardar Purushottam Singh ji and Sardar Harvinder Singh ji are doing an excellent job of making illustrations with great devotion. In the task of translating the Agams into English our special associate is Shri Surendra ji Bothara. He is a scholar of Jain philosophy and an accomplished author in Hindi and English languages. He has done justice to the translation of the complex subject dealt in Nandi Sutra. We are thankful to these and, of course, to our editor Shri Srichand ji Surana who joined the mission of serving the SHRUT with full devotion of the mind and the body. A special word of appreciation for Shri Rajkumar ji Jain of Madhuvan, Delhi for the guidance offered by him.

—Mahendra Kumar Jain
President
PADMA PRAKASHAN

सचित्र आगम योजना के सूत्रधार

उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म.

श्री अमर मुनि जी म. उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के विद्वान् शिष्य हैं। भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. जैन आगमों के महान् विद्वान् श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य श्री आत्माराम जी म. के शिष्य श्री हेमचन्द जी म. के शिष्य हैं। आचार्य श्री आत्माराम जी म. प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश आदि भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने अनेक वर्षों तक परिश्रम करके लगभग १५-१६ आगमों पर विस्तृत हिन्दी टीकाएँ लिखीं तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रणयन किया।

भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. आचार्य श्री आत्माराम जी म. के अत्यन्त कृपापात्र विश्वस्त शिष्य रहे। आपने जीवनभर आचार्यश्री जी व अपने गुरुदेव श्री हेमचन्द्र जी म. आदि की बहुत सेवा की।

भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. का जन्म वि. सं. १९७४ (हरियाणा) में हुआ। वि. सं. १९९१ में दीक्षा ली।

श्री अमर मुनि जी म. का जन्म सन् १९३६ में क्वेटा (बिलोचिस्तान) के मल्होत्रा परिवार में हुआ। भारत विभाजन के पश्चात् आपके माता-पिता लुधियाना आ गये। वहाँ पर जैन मुनियों के सम्पर्क से आपके हृदय में मुनि बनने की भावना जगी। १५ वर्ष की अवस्था में आप भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के शिष्य बने। वि. सं. २००८ भादवा सुदि ५ को सोनीपत में आपकी दीक्षा हुई।

श्री अमर मुनि जी म. ने संस्कृत-प्राकृत जैन आगम आदि का गहन अध्ययन किया। आपका स्वर मधुर तथा आपमें जन्मजात कवि-प्रतिभा है। आप कुछ ही समय में एक सुयोग्य विद्वान्, ओजस्वी कवि, प्रभावशाली वक्ता और मधुर गायक के रूप में समाज में चमकने लगे।

अपने गुरुदेव की सेवा में रहते हुए प्रारम्भ में आपने पंजाब-हरियाणा आदि में जैन स्थानक, धर्मशालाएँ, विद्यालय, अस्पताल आदि के निर्माण में समाज को प्रेरित किया और गाँव-गाँव में अनेक रचनात्मक कार्य करवाये। फिर आपकी रुचि साहित्य-सर्जना की ओर झुकी। आपने प्रारंभ में आचार्य श्री आत्माराम जी म. द्वारा व्याख्यायित सूत्रकृतांगसूत्र (दो भाग), प्रश्नव्याकरणसूत्र (दो भाग), भगवतीसूत्र (पाँच भाग) का नवीन संपादन कर प्रकाशित करवाया। आचार्यश्री के अन्य ग्रंथों, जैसे--अष्टांग योग पर 'जैन योग : एक अनुशीलन', 'जैन तत्त्व कलिका' जैसे विशाल विवेचन ग्रंथों का संपादन किया तथा आपके प्रवचनों की दो पुस्तकें अमर दीप (भाग १-२) नाम से प्रकाशित हुईं।

लगभग ८-१० वर्ष से आपकी रुचि जैन आगमों के सचित्र प्रकाशन की ओर बढ़ी। यद्यपि यह कार्य बहुत व्यय-साध्य था फिर भी आपके व्यापक सामाजिक सम्पर्क, प्रभाव और श्रुत-भक्ति के कारण श्रद्धालु वर्ग ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इस योजना के अन्तर्गत जैन सूत्रों का मूल, हिन्दी अनुवाद, अंग्रेजी भाषान्तर और उनके मुख्य प्रसंगों के रंगीन चित्रों के साथ प्रकाशन प्रारंभ हुआ।

अब तक उत्तराध्ययनसूत्र, अन्तकृद्दशासूत्र, कल्पसूत्र, ज्ञातासूत्र (भाग १-२), दशवैकालिकसूत्र तथा नन्दीसूत्र का सचित्र अंग्रेजी भाषान्तर के साथ प्रकाशन हो चुका है। इन प्रकाशनों की देश-विदेश में अच्छी माँग है। आगमों के गूढ़ विषयों से डरने वाले लोग भी इन आगमों का अध्ययन करने में रुचि ले रहे हैं। आपश्री की भावना है धीरे-धीरे सभी जैन आगमों को सचित्र अंग्रेजी भाषान्तर के साथ प्रकाशित किया जाय। जिनशासन देव आपकी श्रुत-भक्ति और श्रुत-आराधना को सफल बनाये, यही मंगल कामना है।

तरुण मुनि (गुरुदेव का शिष्य)

पद्म प्रकाशन, दिल्ली

UP-PRAVARTAK SHRI AMAR MUNI JI M.

THE PIONEER OF THE ILLUSTRATED AGAM SERIES

Scholarly Shri Amar Muni ji M. is a disciple of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra ji M., who in turn is a disciple of Shri Hemchand ji M. who was a disciple of the renowned scholar of Jain Agams and the first Acharya of Shri Vardhaman Sthanakvasi Jain Shraman Sangh, Acharya Shri Atmaram ji M. A great linguist having command over Prakrit, Sanskrit, Apabhramsh, and many other Indian languages, Acharya Shri Atmaram ji M. was a walking compendium of Jain canons. He wrote detailed commentaries in Hindi on about fifteen Agams besides many other important books.

Bhandari Shri Padmachandra ji M. has been a confidante as well as a favourite grand disciple of Acharya Shri Atmaram ji M. Bhandari Shri Padmachandra ji M. served and attended to all needs of his guru, Shri Hemchand ji M., and grand-guru Acharya Shri Atmaram ji M. as long as they lived.

Bhandari Shri Padmachandra ji M. was born in Haryana in 1974 V. He got initiated as an ascetic in 1991 V.

Shri Amar Muni ji M. was born in the year 1936 A.D. in a Malhotra family of Queta (Baluchistan). After the partition of India his parents migrated to Ludhiana. Here he came in close contact with Jain ascetics and got inspired to become an ascetic. At the age of 15 years he became a disciple of Bhandari Shri Padmachandra ji M. He took diksha (initiation as Jain ascetic) at Sonipat on the 5th day of the bright half of the month of Bhadrapad (Bhadava) in the year 2008 V.

Shri Amar Muni ji M. acquired profound knowledge of Jain Agams and other related subjects besides mastering languages like Sanskrit and Prakrit. He is a born poet with a melodious and resonant voice. He soon became famous in the Jain society as a great scholar, eloquent poet, spell-binding orator, and a melodious singer.

Moving around with his guru, he initially devoted himself to the task of inspiring people to create various socio-religious facilities like Sthanaks (places of stay or Jain ascetics), Dharmashalas (places of stay for the laity), schools, hospitals, etc. in the states of Punjab and Haryana. Later he changed his direction towards the field of literary creativity. First of all he re-edited the commentaries on *Sutrakritang Sutra* (two volumes), *Prashnavyakaran Sutra* (two volumes), and *Bhagavati Sutra* (Five volumes) and got them published. Later he also successfully concluded the task of editing voluminous works of critical commentary by Acharya Shri Atmaram ji M. like *Jain Yoga : A study*, and *Jain Tatva Kalika*. His own lectures have also been compiled and published under the title *Amar-deep* (Parts 1 and 2).

For almost ten years now he has been taking keen interest in publication of illustrated editions of Jain Agams. Although this is a highly capital intensive work, his wide social influence and contact and great devotion for canons has inspired the devotees to offer liberal contribution and assistance. Under this scheme the publication of original text with Hindi and English translations along with multicolour illustrations of important incidents or topics was started.

The Agams published till date are *Uttaradhyayan Sutra, Antakriddasha Sutra, Kalpa Sutra, Jnata Sutra* (in two parts), *Dashavaikalik Sutra*, and *Nandi Sutra* have been published. These illustrated Agams are in great demand in India as well as abroad. Even those who were afraid of studying the same. Shri Amar Muni ji M. earnestly wishes to gradually publish all the Agams with Hindi-English translations and illustrations. I sincerely hope and wish that may the protective gods of the Jain order make his devotion for and pursuit of canonical knowledge (Shrut) successful.

Tarun Muni (a devout disciple)

PADAM PRAKASHAN, DELHI

अपनी बात

आज से लगभग अर्ध-शताब्दी पूर्व मेरे पूज्य गुरुदेव प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के दादा गुरुदेव जैनागम रत्नाकर श्रुतज्ञान के परम आराधक पूज्य आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज ने नन्दीसूत्र की हिन्दी भाषा में सुन्दर विस्तृत टीका लिखी थी। यह टीका समर्थ टीकाकार आचार्य श्री मलयगिरिकृत संस्कृत टीका तथा नन्दीसूत्र की चूर्णि के आधार पर बड़ी ही सुगम-सुबोध शैली में किन्तु आगम ज्ञान की गम्भीरता लिए हुए है। इस हिन्दी टीका का सम्पादन आगम मर्मज्ञ पं. श्री फूलचन्द्र जी महाराज 'श्रमण' द्वारा हुआ। आज भी हिन्दी भाषा में ऐसी सुन्दर और मौलिक टीका दूसरी उपलब्ध नहीं है।

प्रश्न हो सकता है जब धरती पर प्रकाश करने वाला सूर्य विद्यमान है तो फिर दीपक या मोमबत्तियाँ जलाने की क्या आवश्यकता है? इतनी विशाल और प्रामाणिक हिन्दी टीका प्रस्तुत हो तो फिर मुझे नन्दीसूत्र का नया सम्पादन करने और प्रकाशन करने की क्या आवश्यकता हुई? इसकी क्या उपयोगिता है?

यह सत्य है कि सूर्य के प्रकाश में दीपक के प्रकाश की कोई खास आवश्यकता नहीं रहती परन्तु जिन भूगृहों में, गुफा जैसे घरों में, बन्द कोठरियों में दिन में भी सूर्य की किरणें नहीं पहुँचतीं वहाँ तो दिन में कृत्रिम प्रकाश करना पड़ता है। आजकल तो दिन में भी जगह-जगह घरों में, कार्यालयों में, गोदामों में, कारखानों में भी लाइटें जलानी पड़ती हैं। क्योंकि बहुत से स्थान ऐसे हैं जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता, वहाँ लाईट की भी अपनी उपयोगिता है, आवश्यकता है। सूर्य की विद्यमानता में भी अन्य छोटे-मोटे साधन उपयोगी होते ही हैं।

आज हिन्दी राष्ट्रभाषा है और अंग्रेजी विश्वभाषा है। हमने कुछ वर्ष पूर्व जैन आगमों का हिन्दी-अंग्रेजी भाषा में सचित्र प्रकाशन प्रारम्भ किया था। यद्यपि इस सचित्र प्रकाशन में भी हमारे आधारभूत आगम पूज्य आचार्यसम्राट् द्वारा सम्पादित आगम ही रहे। उन्होंने जो ज्ञान की दिव्य किरणें फैलाई हैं हमने उन्हीं में से कुछ ज्ञान-कण बटोरने का प्रयास किया है। परन्तु उन आगमों को एक तो–कुछ संक्षिप्त रूप में सरल सुबोध भाषा में; दूसरे हिन्दी के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी में तथा उनमें आये हुए विषयों का भाव चित्रों में प्रकाशित करने से ये आगम अधिक रुचिकर और अधिक लोगों के लिए पठनीय बन गये हैं। मैंने अनुभव किया है कि चित्र सहित और अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित होने वाले आगम भारत में भी जहाँ अनेक जिज्ञासु मँगाकर पढ़ने लगे हैं वहाँ विदेशों में बसने वाले प्रवासी भारतीय तथा प्राच्य विद्या के जिज्ञासु विदेशी विद्वान् भी इन आगमों से लाभान्वित हो रहे हैं। अंग्रेजी माध्यम के कारण उनको इन आगमों का अर्थ-बोध सरल हो गया तथा चित्रों के कारण रुचिकर तथा ज्ञानवर्द्धक भी बना है।

विषय-बोधक चित्र और अंग्रेजी भाषानुवाद के कारण इन शास्त्रों की उपयोगिता दुगुनी बढ़ गई है। इस प्रकार एक तरह से पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रवाहित ज्ञान-धारा का क्षेत्र विस्तृत ही बना है। और यह हमारे लिए आनन्द एवं प्रमोद का विषय है। श्रुत-सेवा की भावना से जितने अधिक जिज्ञासु आगम स्वाध्याय करें उतना ही लाभ है यह मेरी धारणा है तथा मेरे पूज्य गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज को भी इसमें प्रसन्नता होती है। वे आगम सेवा-कार्य से बहुत आनन्दित हैं।

नन्दीसूत्र

नन्दीसूत्र का सचित्र संस्करण पाठकों के हाथों में है। नन्दी का अर्थ है--मंगलकारी, आनन्दकारी। ज्ञान का आलोक सबसे अधिक मंगलकारी और आनन्ददायी माना गया है। क्योंकि "नाणेण नज्जए चरणं।"--ज्ञान से ही चारित्र धर्म का बोध प्राप्त होता है। चारित्र रूप संयम-तप की आराधना तभी हो सकती है जब हमें उस विषय का सम्यग्ज्ञान होगा। इसलिए ज्ञान से जीवन में धर्म का आलोक एवं संयम-तप का मंगलमय मार्ग मिलता है। इसलिए ज्ञान ही सबसे बड़ा मंगल है। "ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः।"--ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं। मुक्ति के बिना शाश्वत आनन्द, अनन्त सुख कैसे, कहाँ मिलेगा।

नन्दीसूत्र का विषय

नन्दीसूत्र में मुख्य रूप में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव एवं केवलज्ञान रूप पाँच ज्ञान का वर्णन है। इन पाँच ज्ञानों के विस्तृत भेद-प्रभेद और स्वरूप का कथन इस सूत्र में संग्रहीत है। ३२ आगमों में नन्दीसूत्र की गणना चार मूल आगमों में है। मूल का अर्थ है, आधारभूत तत्व। धर्म का मूल है--सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप। प्रथम मूल आगम, उत्तराध्ययन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का विविध प्रकार से वर्णन किया गया है। दूसरे मूल आगम दशवैकालिकसूत्र में मुख्य रूप में सम्यक् चारित्र और तप का वर्णन है। तृतीय मूल आगम नन्दीसूत्र में सम्यग्ज्ञान के भेद-प्रभेदों का विस्तृत वर्णन है और जिनवाणी के मूल आधारभूत द्वादशांग का भी परिचय है। चतुर्थ मूल आगम अनुयोगद्वार में सम्यग्ज्ञान का नय, निक्षेप, प्रमाण आदि दृष्टियों से वर्णन है।

प्राचीन धारणा के अनुसार नन्दीसूत्र सीधे रूप में भगवान के श्रीमुख से निःसृत वाणी नहीं है। यह जिनवाणी का संकलन है, जो स्थानांग, समवायांग, प्रज्ञापना और भगवतीसूत्र में बिखरे फूलों की तरह विद्यमान है। उक्त आगमों में अनेक प्रसंगों में अनेक प्रकार से ज्ञान-सम्बन्धी जो प्ररूपणा की गई है उन सब पाठों को एक स्थान पर संकलित कर देने से एक ही स्थान पर पाँच ज्ञान-सम्बन्धी सभी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

बत्तीस सूत्रों में रचना की दृष्टि से और संकलन-समय की दृष्टि से इसका अन्तिम स्थान है। जैन-परम्परा के इतिहास अनुसार भगवान श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के १७० वर्ष पश्चात्

पाटलिपुत्र में श्री भद्रबाहु स्वामी की अध्यक्षता में प्रथम आगम वाचना हुई। दूसरी वाचना मथुरा में आर्य स्कन्दिल के नेतृत्व में तथा वल्लभी में आचार्य नागार्जुन के नेतृत्व में वीर निर्वाण सं ८३० के पश्चात् हुई और भगवान के निर्वाण से एक हजार वर्ष (९८०) वर्ष पश्चात् वल्लभी (सौराष्ट्र) में पुनः आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में तीसरी वाचना सम्पन्न हुई। आचार्य श्री देवर्द्धिगणि का ही देववाचक नाम प्रसिद्ध है। इस प्रकार भगवान महावीर के एक हजार वर्ष पश्चात् अर्थात् ईस्वी चौथी शताब्दी में इस नन्दीसूत्र को सूत्र रूप में मान्यता प्राप्त हुई ऐसा जैन इतिहासकार मानते हैं।

ज्ञान आत्मा का मूल गुण है। आत्मा स्वभाव से अनन्त ज्ञानमय है, किन्तु ज्ञानावरण कर्म के आवरणों से उसकी ज्ञान-शक्ति दबी हुई है। जैसे-जैसे ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होता है ज्ञान का प्रकाश प्रगट होता जाता है। सामान्यतः मतिज्ञान और श्रुतज्ञान आंशिक रूप में सभी प्राणियों में विद्यमान रहता है। अवधिज्ञान विशेष क्षयोपशम से तथा कुछ क्षेत्र-विशेष के प्रभाव से होता है। मनःपर्यवज्ञान विशेष साधना की उपलब्धि है और केवलज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय का परिणाम है। आगमों में इन पाँच ज्ञानों का पृथक्-पृथक् वर्णन मिलता है। यह पाँच ज्ञान की वर्णन-शैली सबसे प्राचीन है।

इसके पश्चात् ज्ञान का वर्णन दो प्रकार से किया गया है—प्रत्यक्ष ज्ञान और परोक्ष ज्ञान। मति व श्रुत परोक्ष माने गये हैं तथा अन्तिम तीन ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाते हैं।

नन्दीसूत्र में इन दोनों शैलियों में ज्ञान का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् न्याय-युग में ज्ञान का वर्णन अन्य शैलियों से भी किया गया है। जिसमें इन्द्रिय ज्ञान को भी प्रत्यक्ष मान लिया गया था। परन्तु यह शैली नन्दीसूत्र की रचना के पश्चात्वर्ती काल की है।

नन्दीसूत्र में एक महत्त्वपूर्ण विभाजन भी है—सम्यक् श्रुत और मिथ्या श्रुत के रूप में। इसमें एक बड़ी ही समन्वयवादी और व्यापक विचारधारा का दर्शन होता है। कहा गया है—ज्ञान तो वास्तव में सम्यक् ही होता है और उसका स्वभाव प्रकाश करना है। किन्तु पात्र की दृष्टि, धारणा, उद्देश्य और मनोवृत्ति के अनुसार वह सम्यक् भी हो जाता है और मिथ्या भी। जिसकी दृष्टि सम्यक् है उसके लिए संसार के सभी शास्त्र, सम्यक् श्रुत हैं, उपकारक हैं। जिसकी दृष्टि मिथ्या है उसके लिए सभी शास्त्र मिथ्याश्रुत हैं। जैन-परम्परा की यह मौलिक धारणा है और इसमें अनेकान्त मूलक अनाग्रह बुद्धि का प्रत्यक्ष प्रभाव है। जो वस्तु सज्जन के पास रहने से उपकारक बन जाती है वही दुर्जन के पास जाने से अपकारक। इसलिए हमें ज्ञान का अभ्यास करते समय सर्वप्रथम अपनी दृष्टि को सम्यक्, विशुद्ध और आत्मलक्षी बनाना चाहिए। यदि आपकी दृष्टि सत्यलक्षी है, अनेकान्त-प्रधान है, तो आपके लिए संसार के सभी शास्त्र ज्ञान के स्रोत हैं। आनन्दकारी—मंगलकारी हैं।

नन्दीसूत्र का स्वाध्याय करते समय यही आत्मलक्षी दृष्टि रखें। अपनी धारणा शुद्ध रखें और गुणग्राही बनकर शास्त्र का स्वाध्याय करें तो अवश्य ही नन्दी—आनन्ददायी होगा।

मुझे श्रुत-सेवा के इस महान् कार्य की प्रेरणा मेरे पूज्य गुरुदेव उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज से प्राप्त हुई। पूज्य गुरुदेव आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज की श्रुत-सेवा से अत्यन्त प्रभावित हैं और उनके प्रति असीम श्रद्धाभाव रखते हैं। आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा सम्पादित आगमों के प्रचार-प्रसार में आपकी विशेष अभिरुचि है। मैंने आचार्यसम्राट् द्वारा सम्पादित आगमों का स्वाध्याय किया है और मैं उनकी असीम ज्ञान-राशि का ऋणी हूँ। मेरा सौभाग्य है कि उन्हीं द्वारा पुरस्कृत श्रुत-सेवा के कार्यों को आगे बढ़ाने का सुअवसर मुझे मिल रहा है। मेरे सम्पादन का मूल आधार आचार्यश्री द्वारा सम्पादित शास्त्र ही है। एक प्रकार से यह उन्हीं की दिव्य प्रेरणाओं का अमृत फल है।

सचित्र आगम प्रकाशन के सातवें पुष्प रूप में यह नन्दीसूत्र प्रस्तुत करते हुए मुझे परम प्रसन्नता है। इस कार्य में पूज्य महासती तपाचार्या श्री मोहनमाला जी महाराज, श्रमणीसूर्या उपप्रवर्तिनी डॉ. श्री सरिता जी महाराज तथा भगवद् वाणी के परम उपासक गुरुभक्त सज्जनों द्वारा जो सहयोग मिला है तथा साहित्यकार श्रीचन्द जी सुराना ने सम्पादन-सहयोग किया है उसके लिए मैं सभी का हार्दिक कृतज्ञ हूँ।

अन्य सूत्रों की अपेक्षा इसके अंग्रेजी अनुवाद में समय भी काफी लगा और कठिनाई भी आई। अनेक शास्त्रीय शब्दों का अनुवाद सीधा अंग्रेजी में हो नहीं सकता। इसलिए मूल शब्द ज्यों की त्यों रखकर उसकी परिभाषा दी गई है। जिससे अंग्रेजी भाषी पाठक जैन आगमों के मूल शब्द ग्रहण कर उसका अर्थ समझ सकें। आशा है इससे अंग्रेजी अनुवाद की अपनी उपयोगिता भी बढ़ी है। मुझे विश्वास है, अन्य आगमों की तरह यह आगम सबके लिए रुचिकर एवं उपयोगी होगा।

—उपप्रवर्तक अमर मुनि

From the Editor-in-chief's pen

Almost half a century earlier the Dada-Gurudev (teacher of the teacher) of my revered Gurudev, Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra ji Maharaj, Jainagam Ratnakar, the great devotee of scriptural knowledge, revered Acharya Samrat Shri Atmaram ji Maharaj had written a detailed and eloquent commentary (Teeka) of Nandi Sutra. Based on the Sanskrit commentary (Teeka) by the accomplished commentator Acharya Shri Malayagiri and the Nandi Sutra Churni (another style of commentary), this Hindi commentary was written in very simple and eloquent style but without betraying the profoundness of the Agam-knowledge. The editing of this commentary was done by the known scholar of Agams Pundit Shri Phool Chandra ji Maharaj 'Shraman'. There is no other such vivid and authentic commentary in Hindi available till date.

A question can arise—When the sun is available to spread light on the earth where is the need light a lamp or a candle. When such a comprehensive and authentic commentary is available what was the need for me to edit and publish a fresh edition of Nandi Sutra. What is the usefulness of this effort ?

It is true that there is hardly any need of a lamp when daylight is available. But in the cellars, cave like corridors and closed rooms that are beyond the reach of the sun rays, artificial light is needed even during the day. These days it is common to have artificial illumination at places like residential houses, offices, warehouses and factories. The reason being that there are many places where sunlight does not reach; at such places artificial light is necessary as well as useful. Even in the presence of the sun other large and small sources of light have their own utility.

Today Hindi is the national language and English is international. Some years back we had started the publication of Illustrated Agams in Hindi-English. Even in this illustrated series our basic reference works were the Agams edited by the revered Acharya Samrat. We have tried to collect some specs of knowledge from the divine light of knowledge spread by him. But by presenting those Agams in a concise form in simple and easily understandable idiom in Hindi as well as English languages and with vivid illustrations of various themes discussed therein, these editions have turned out to be more interesting and readable for a much larger readership. I have experienced that these Agams with illustrations and English translation, besides being procured and read by a larger number of Indian readers, are also benefiting the Indians residing abroad as well as foreign scholars interested in Indology. Because of the English medium it has become easier

to understand the meaning of the Agam text and the illustrations have made it all the more interesting and enlightening. The thematic illustrations and the English translation has multiplied the usefulness of these scriptures. Thus our effort has in some way enhanced the scope and field of the stream of knowledge started by the revered Gurudev. And this is a matter of joy and happiness for us all. The more is the number of the interested readers indulging in the study of the Agams with the feeling of serving the SHRUT, the more is the benefit. This is my view and my revered Gurudev Bhandari Shri Padmachandra ji Maharaj also derives pleasure in this. He is extremely happy with this work of Agam-seva (serving the Agams).

Nandi Sutra

The illustrated edition of Nandi Sutra is now in the hands of the readers. The word Nandi means benefic, pleasure giving. The glow of knowledge is believed to be the most benefic and pleasure giving. This is because only jnana (knowledge) reveals the religion of conduct. The practice of conduct in the form of discipline and austerities is possible only with the help of the right knowledge of the subject. That is why jnana provides the spiritual light in life and shows the beneficent path of discipline and austerities. Therefore jnana is the most auspicious among the auspicious things. Without jnana there is no liberation. How and where one will get eternal bliss and unending happiness without liberation ?

The Theme of Nandi Sutra

Nandi Sutra mainly describes five types of jnanas—mati, shrut, avadhi, manah-paryav and Kewal-jnana. In this Sutra are compiled the description, categories and sub-categories of these five types of jnanas. In the list of 32 Agams, Nandi Sutra is included in the four Mool Agams. Mool means the basic fundamentals. The basic fundamentals of dharma (religion) are samyak jnana (right knowledge), samyak darshan (right perception and belief), samyak charitra (right conduct) and samyak tap (right austerities). Jnana, darshan, charitra and tap have been described in various ways in the first Mool Agam, Uttaradhyayan. The second Mool Agam, Dashvaikalik mainly describes Samyak charitra and tap. The third Mool Agam, Nandi Sutra describes in details categories and sub-categories of samyak jnana and gives an introduction of twelve Angas, the original source books of the preaching of the Jina. The fourth Mool Agam describes Samyak jnana from the view point of naya, nikshep and praman (parameters of Jain logic).

According to the ancient tradition the source of Nandi Sutra is not the words uttered by the Tirthankar. It is a compilation from the original sources popularly known as Jinavani (The words of the Jina). What is compiled here is available in Sthanang, Samvayang, Prajnapana and Bhagavati Sutra like

scattered flowers. The texts of the concepts regarding jnana, propagated in the said Agams in various contexts and ways, have been compiled at one place, thereby providing one single source of all information about five types of jnana.

On the basis of writing style and period of compilation Nandi Sutra comes last in the list of thirty two Agams. According to the history of the Jain tradition, after 170 years of the nirvana of Bhagavan Shri Mahavir, the first critical reading (vachana) of the Agams headed by Shri Bhadrabahu Swami took place in Patliputra. The second vachana was held at two places sometime after 830 A.N.M. (After the nirvana of Mahavir); one under the leadership of Arya Skandil in Mathura and the other under the leadership of Acharya Nagarjun. The third vachana took place in Vallabhi after about a thousand years of Mahavir's nirvana (980 A.N.M.) under the leadership of Acharya Shri Devardhigani Kshamashraman. Dev-vachak is just another popular name of Devardhigani. This means that after one thousand years of Mahavir or the fourth century A.D. Nandi Sutra was recognised as Agam Sutra. This is what the Jain historians believe.

Jnana is the basic attribute of soul. By its nature soul possesses infinite knowledge but veiled by the knowledge veiling karmas its cognitive power remains hidden. With the Kshayopasham (the process of extinction-cum-suppression of karmas) of the knowledge veiling karma the light of knowledge starts appearing. Generally speaking, to some extant mati-jnana and shrut-jnana exists in all beings. Avadhi-jnana appears due to a higher degree of Kshayopasham and also due to the local influence of some specific areas. Manah-paryav jnana is the result of a very high degree of spiritual practices. And Kewal-jnana is acquired only when the knowledge veiling karmas are completely destroyed. In the Agams the details about these five types of jnana are scattered at different places. This is the most ancient style of describing the five types of jnana.

Later, jnana was divided into two broad categories—Pratyaksh (direct) jnana and Paroksha (indirect) jnana. Mati and Shrut are said to be indirect and the last three are called direct.

Nandi Sutra details jnana in both these styles. Much later, during the nyaya-yug (the era of logic) jnana has been described in many other styles where even the knowledge acquired through sense organs was also accepted as direct. But that is the post Nandi Sutra style.

Another important division in Nandi Sutra is in the form of Samyak (right or true) Shrut and Mithya (wrong or false) Shrut. In this an assimilative and wider perspective is evident. It is said—jnana is in fact only samyak and its inherent property is to spread light. But according to the viewpoint, belief,

purpose and attitude of the subject it becomes samyak as well as mithya. For him whose attitude is samyak, all the scriptures in this world are samyak and beneficent. And for him whose attitude is mithya, all the scriptures in this world are false. This is an original Jain concept and it reflects the direct influence of the non-dogmatic approach inherent to Anekant (non-absolutism or relativity of truth). A thing which is helpful in the hands of a good person becomes harmful in the hands of a bad person. Therefore before commencing the pursuit of knowledge we should first of all make our attitude right, pure and spiritual or directed at soul. If your viewpoint is directed towards truth and is guided by relativity of truth, all the scriptures in this world are the sources of knowledge for you. They are sources of bliss and beneficence.

While indulging in the study of Nandi Sutra, have this spiritual attitude, a purity of perception and sagacious receptivity and you will certainly find the study of Nandi Sutra a blissful experience.

I got the inspiration of this lofty mission of Shrut-seva (working for the spread of the scriptural knowledge) from my revered Gurudev Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra ji Maharaj. Revered Gurudev is highly impressed by the Shrut-seva done by Acharya Samrat Shri Atmaram ji Maharaj and has a great admiration and reverence for him. He takes a special interest in publicising and propagation of the Agams edited by Acharya Samrat. I have studied these editions and I am indebted to the great storehouse of knowledge compiled by him. It is my good fortune that I am getting an opportunity to further the heritage of accomplishments in the field of Shrut-seva endowed by him. The scriptures edited by him are the fundamental guides to my editing. In a way this is the fruit of his divine inspiration only.

I take great pleasure in presenting this Nandi Sutra as the seventh book in the series of Illustrated Agams. In this work I got assistance from Tapacharya Shri Mohanlal ji Maharaj, Shramani Surya Up-pravartini Dr. Shri Sarita ji Maharaj and many devotees of the Divine word and the Guru. Renowned scholar Srichand ji Surana has assisted in editing. I am indebted to them all.

As compared to other Sutras, the English translation of this one entailed more time and efforts. It is not possible to translate many classical and technical terms unique to Jain tradition. That is why the original terms have been given as they are with definitions and explanations so that the English reader becomes conversant with the original term as well as its meaning. I hope this adds to the usefulness of the English translation. I am confident that like the other Agams of this series, this will also prove to be interesting and useful for all.

—Up-pravartak Amar Muni

अनुक्रमणिका

CONTENTS

सचित्र

श्री नन्दी सूत्र

ILLUSTRATED

ŚRĪ NANDĪ SŪTRA

स्तुतियां
PANEGYRICS

अर्हत्-स्तुति
THE PANEGYRIC OF THE ARHAT

१ : *जयइ जग-जीव-जोणी-वियाणओ जगगुरू जगाणंदो।*
जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं॥

अर्थ—जगत् एवं जीव योनियों के ज्ञाता, जगद्गुरु, जगत् को आनन्द प्रदान करने वाले, जगत् के नाथ, जगत् के बंधु, जगत्-पितामह भगवान की सदा जय हो।

Victory to the knower of all the species of beings, the ultimate teacher, the source of bliss, the lord of the universe, the kin of all beings, the ancestor of all ancestors.

विवेचन—जो सतत गतिशील या परिवर्तनशील हो उसे जगत् कहते हैं। जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय आदि पाँच अस्तिकाय जहाँ नित्य विद्यमान हों वह जगत् है। चेतनावान प्राणी जीव कहलाता है। जीव के पृथ्वीकाय, अप्काय से त्रसकाय तक छह प्रकार हैं। इन जीवों का उत्पत्ति स्थान योनि कहा जाता है, जैसे—देव योनि, मनुष्य योनि, तिर्यंच योनि आदि। जगत् के समस्त पदार्थ एवं जीवों के उत्पत्ति स्थान के ज्ञाता, यह अरिहंत भगवान का विशेषण है। यहाँ गुरु का अर्थ जीव-अजीव का सम्यग्ज्ञान प्रदान करने वाले तथा धर्म के मार्गदर्शक या उपदेष्टा हैं। अहिंसा और शान्ति का उपदेश देने के कारण भगवान जगत् को आनन्द देने वाले हैं।

योग-क्षेमकर्त्ता को नाथ कहते हैं। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति को 'योग' तथा प्राप्त की सुरक्षा को 'क्षेम' कहते हैं। अरिहन्तदेव अपूर्व सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कराने एवं उसकी सुरक्षा करने का उपाय बताने वाले हैं, इसलिए योग-क्षेमकर्त्ता अर्थात् नाथ कहे जाते हैं। समस्त जीवों को आत्म-समान मानने के कारण तथा सबके निःस्वार्थ हितचिंतक होने के कारण वे जगद् बंधु हैं। कुल का सबसे वृद्ध पुरुष पितामह (दादा) कहा जाता है, जो समस्त कुल के कुशल-मंगल का विचार करता है। अरिहंत सम्पूर्ण लोक के सर्वोत्तम कुशल-मंगल-हितकारक होने से पितामह तुल्य हैं। ज्ञान आदि अनेक आत्मिक ऐश्वर्य-सम्पन्न होने के कारण वे भगवान कहलाते हैं। (देखें चित्र १)

Elaboration—That which is ever changing and dynamic is called *jagat* (world). That where five types of *astikaya* (fundamental entities

like matter, space, life etc.) including *jiva* (living being) and *dharmastikaya* (motion or physical dynamism) always exist is called *jagat*. That which has *chetana* (senses) is called *jiva*. There are six classes of living beings—earth-bodied, water-bodied, mobile-bodied etc. The genus into which these beings are born is called *yoni* such as—*deva* (god) *yoni*, *manushya* (human) *yoni*, *tiryanch* (animal) *yoni* etc. One of the adjectives for *Arihant Bhagavan* is the knower of the place of origin of all matter and life. Here the meaning of the term guru is—one who imparts right knowledge of matter and life and the propagator and guide of *dharma* (religion, righteousness). Because of propagating the message of ahimsa and peace he is the source of bliss. The perpetuator of *yoga-kshema* is called *naath* (lord, protector). To obtain what is absent is called yoga and to secure what is obtained is called *kshema*. As the Arihant shows the method of acquiring and securing the unique *samyagdarshan* (right-perception), he is called naath. As he considers all beings just like him and wishes well being of all selflessly he is called *jagat-bandhu* (brother of all). The eldest and the oldest individual in a family is called *pitamah* (grandfather); he always worries about the well being of the family. As *Arihant* is the supreme benefactor of the whole universe, he is like a grandfather. As he is endowed with numerous grand spiritual attributes like *jnana* (knowledge) he is called *Bhagavan*. *(See Illustration 1)*

महावीर स्तुति

PANEGYRIC OF MAHAVIR

२ : *जयइ सुयाणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।*
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो॥

अर्थ—समस्त श्रुतज्ञान के आदि स्रोत, चौबीस तीर्थंकरों में अंतिम तीर्थंकर और समस्त लोक के गुरु (मार्गदर्शक) महात्मा महावीर की सदा जय हो।

May sage Mahavir, the original source of all *Shrut-jnana* (the scriptures belonging to the oral tradition of Jains), the last of the twenty four *Tirthankars* and the guru (guide) of all universe, be ever victorious.
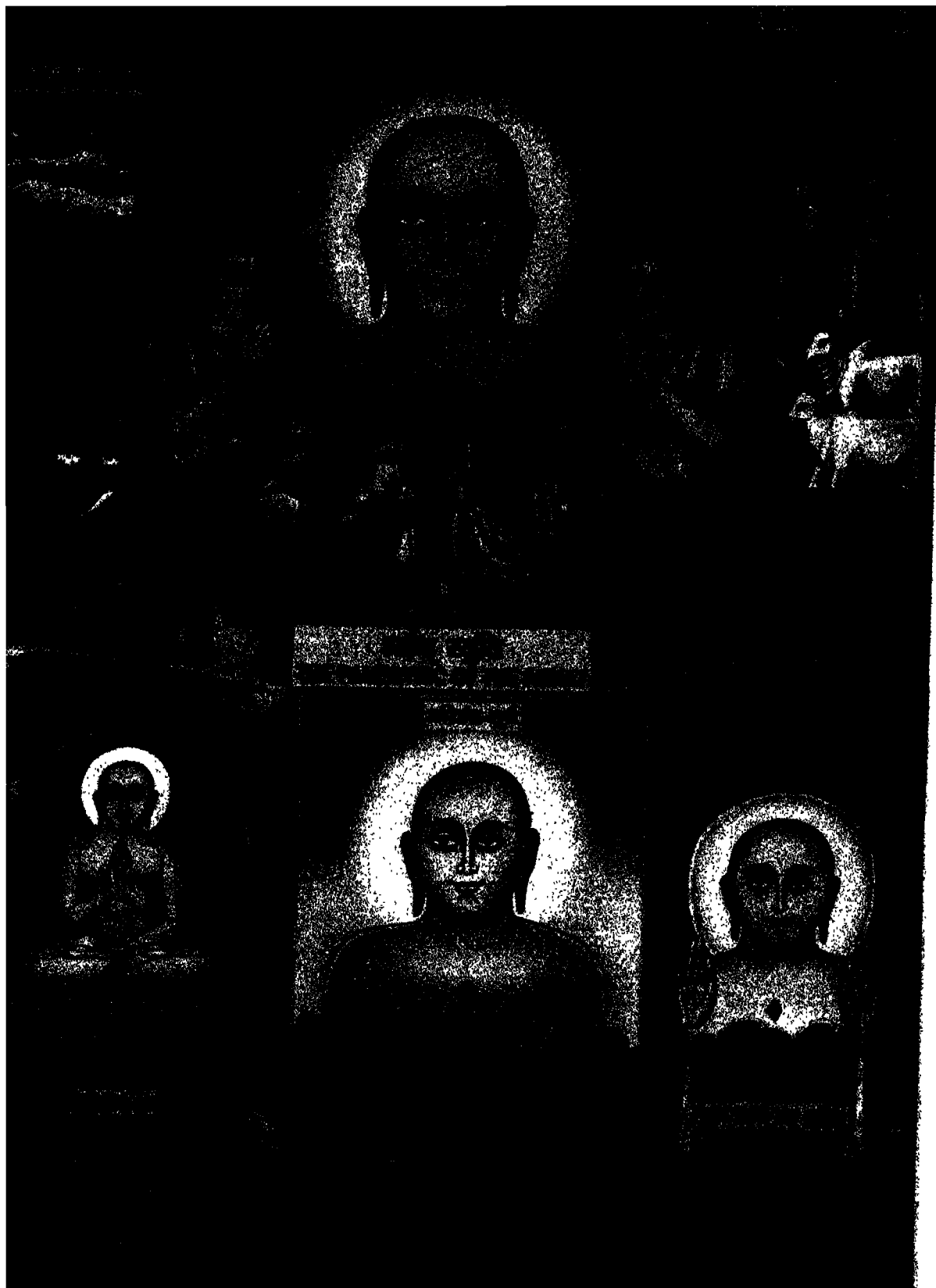
अर्हत् स्तुति

जयइ जग जीव जोणी-वियाणओ जगगुरु जगाणंदो।
जगणाहो जगबंधू जयइ जगप्पियामहो भयवं॥१॥

जगत् के सभी जीवों की योनि अर्थात् उत्पत्ति-स्थान जैसे-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पति, देव, मानव, तिर्यंच और नारक; इन सबके जन्म-मरण आदि भावों को जानने वाले अरिहंत भगवान को इन्द्र, देव, मानव आदि सभी वन्दना करते हैं।

वे अरिहंत भगवान जगत् के नाथ हैं। जिस प्रकार सूर्योदय होने पर सरोवर में कमल खिल जाते हैं वैसे ही अरिहंतरूपी सूर्य का दर्शन करके देव-मानव-तिर्यंचों के हृदय-कमल विकसित हो रहे हैं।

जयइ सुयाणं पभवो–अरिहंत भगवान के प्रवचनरूपी हिमालय से श्रुतज्ञानरूपी गंगा-सिंधु का महाप्रवाह प्रवाहित हुआ है जो द्वादशांगी रूप श्रुतसागर बन गया है। वे भगवान जयवंत हों।

ARHAT STUTI—THE PANEGYRIC OF THE ARHAT

Indra, gods, human beings, all pay homage to *Arihant Bhagavan* who knows the genus into which beings are born or the places of origin of beings, like earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied, plant-bodied, gods, human beings, animals and hell beings. Who also knows all their modes including life and death.

That *Arihant Bhagavan* - is the *naath* (lord, protector) of the world. Lotuses bloom in the pond with the dawning of the sun, in the same way the lotus-like hearts of gods, animals and human beings bloom when they behold the sun like *Arihant*.

The Ganges-Indus-like flow of scriptural knowledge springs forth from the Himalaya-like discourse of *Arihant Bhagavan* and turns into the ocean-like twelve **Angas** (and explanatory literature). May that *Bhagavan* be ever victorious.

विवेचन—तीर्थंकरों की वाणी के आधार पर गणधर जिस वाङ्मय की रचना करते हैं वह श्रुतज्ञान कहलाता है। धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहलाते हैं। भगवान महावीर इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम अथवा चौबीसवें तीर्थंकर थे।

Elaboration—The literature created by the *Ganadhars*, on the basis of the words uttered by *Tirthankars*, is called *Shrut-jnana* (the knowledge acquired by listening). The founders of the religious ford are called *Tirthankars*. *Bhagavan* Mahavir was the last or the twenty fourth *Tirthankar* of this descending or regressive cycle of time.

३ : *भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स।*
भद्दं सुराऽसुरणमंसियस्स, भद्दं धुयरयस्स॥

अर्थ—दिव्य केवलज्ञान के प्रकाश से सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाले, रागादि शत्रुओं के विजेता (जिन) परम वीर (आत्मजयी), देव-दानव आदि द्वारा वन्दित और समस्त कर्ममल से मुक्त भगवान महावीर सबका भद्र (कल्याण) करें।

May Bhagavan Mahavir, the illuminator of the universe with the divine light of *Kewal-jnana* (omniscience), the *Jina* (the conqueror of foes like attachment), the valorous (who is master of the self), who is worshipped by gods and demons alike and who is free of all dirt of karmas, ameliorate all.

विवेचन—'भद्दं' का सामान्य अर्थ 'कल्याण हो' होता है। तीर्थंकर कल्याण की चरम स्थिति में पहुँच चुके होते हैं—स्वयं कल्याण रूप होते हैं। अतः यहाँ उनको इंगित कर की गई कल्याण की कामना वस्तुतः अपने, सबके या जगत् के कल्याण की कामना है।

Elaboration—The normal meaning of the term *'bhaddam'* is 'may you be benefitted' or to wish well of someone. However, a *Tirthankar* reaches the ultimate state of bliss or acquisition, he is the embodiment of well being. Therefore, in the name of the *Tirthankars* this is the wish about our own amelioration or universal well being.

संघनगर स्तुति

PANEGYRIC OF THE SANGH-CITY

४ : *गुण-भवणगहण ! सुय-रयणभरिय ! दंसण-विसुद्धरत्थागा।*
संघनगर ! भद्दं ते, अखंड-चारित्त-पागारा॥

अर्थ—जहाँ क्षमा आदि उत्तम गुणरूप भव्य भवनों की पंक्तियाँ हैं, श्रुतज्ञानरूपी बहुमूल्य रत्न जहाँ भरे हुए हैं, जहाँ सम्यक्त्वरूपी विशुद्ध वीथियाँ (मार्ग) बने हुए हैं और जो निर्मल चारित्र (पंच महाव्रतरूप परकोटे) से सुरक्षित है ऐसा संघनगर आपका कल्याण करे। (देखें चित्र २)

May the city-like *sangh* (religious organization) which has forgiveness and other virtues as its rows of gorgeous houses, which is abundant with scriptural knowledge as its valuable gems, which is crisscrossed by *samyaktva* (a specific state of righteousness where right perception and right knowledge start translating into right conduct) as its clean streets and which is protected by purity of conduct (observation of five great vows) as its rampart, ameliorate you. *(See Illustration 2)*

संघचक्र की स्तुति

PANEGYRIC OF THE SANGH-WHEEL

५ : *संजम-तव-तुंबारयस्स, नमो सम्मत्त-पारियल्लस्स।*
अप्पडिचक्कस्स जओ, होउ सया संघ-चक्कस्स॥

अर्थ—संयम जिसकी नाभि (केन्द्र) है; तप के बारह प्रकार जिसके बारह आरे (आरक) हैं, सम्यक्त्व जिसकी आभामय परिधि (घेरा) है, ऐसे संघचक्र को नमस्कार हो। विरोधियों द्वारा जो सदा अपराजेय है, वह अद्वितीय संघरूपी चक्र सदा जयवंत रहे। यह संघचक्र जन्म-मरणरूपी बंधनों को काटने वाला है।

Obeisance to the wheel like *sangh* which has discipline as its hub, which has twelve austerities as its spokes and which has *samyaktva* as its radiant rim. May the unique wheel like sangh that is invincible to any opposition always be victorious. This disc-weapon-like *sangh* cuts the bonds of rebirth.

विवेचन—चक्र अथवा वृत्त के आकार का गति से आदि सम्बन्ध है। वाहन की गति भी उसके पहिए (चक्र) पर निर्भर करती है। अतः वाहक की उपमा भी चक्र से दी जाती है। संघ, धर्म के द्रव्य तथा भाव घटकों का वाहक है। अवरोध का नाशक होने से चक्र आयुधरूप भी है। चक्र धारण करने से षट्खण्ड विजयी सम्राट् चक्री तथा त्रिखण्डजयी वासुदेव अर्धचक्री कहलाते हैं। चक्ररत्न जहाँ विद्यमान रहता है वहाँ किसी भी प्रकार के उपद्रव नहीं होते। संघ को चक्र की महिमा प्रदान करने में संघ की सर्वकल्याणकारिता ही मुख्य हेतु है। संघचक्र का मूल केन्द्र संयम है। संयम के
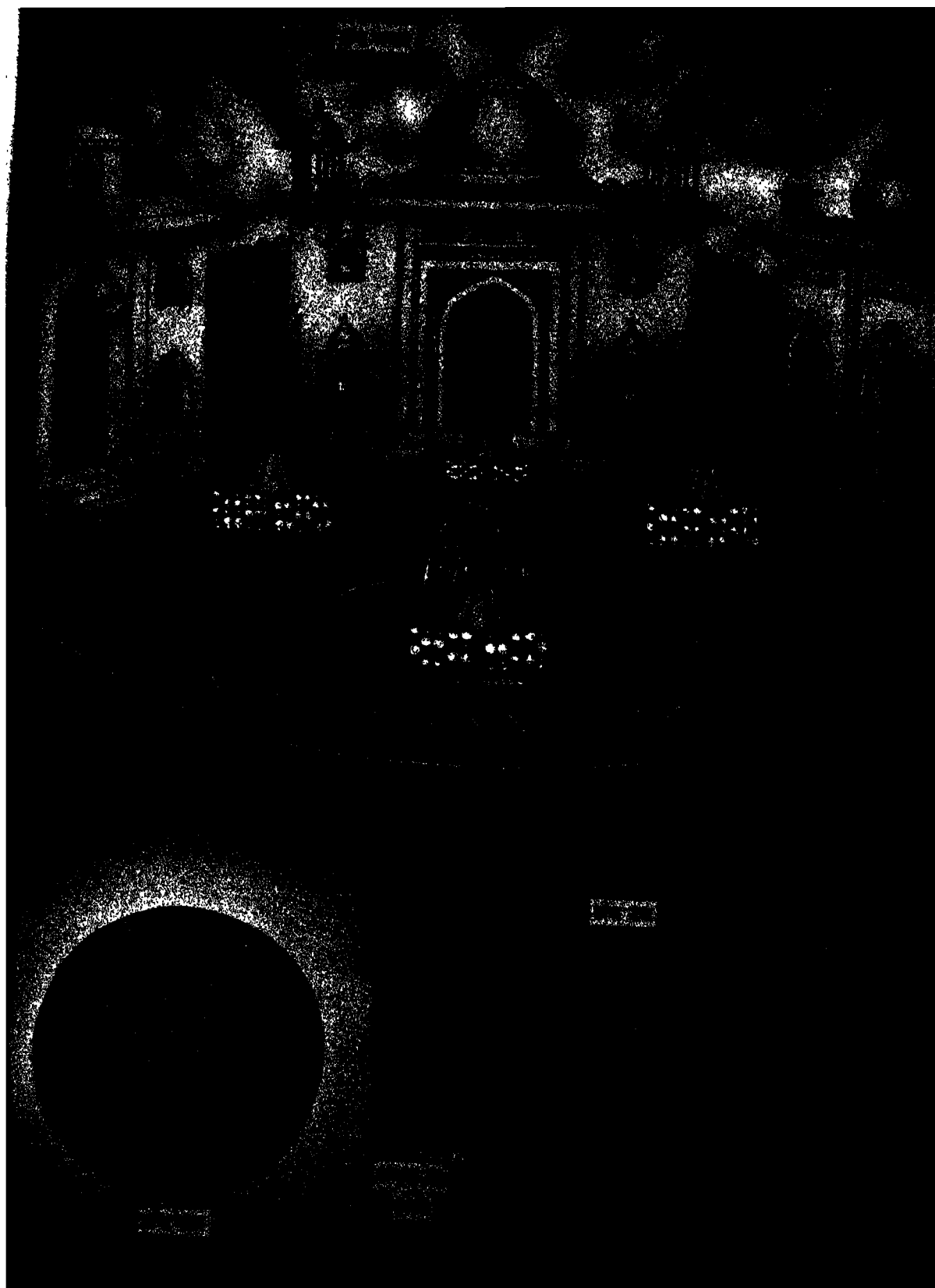
संघ स्तुति

संघ नगर–यह संघरूपी नगर उत्तम क्षमा आदि गुणरूपी भव्य भवनों से सुसज्जित है। यहाँ श्रुतरूपी रत्न भरे हुए हैं। सम्यक्त्वरूपी शुद्ध वीथियाँ–मार्ग हैं। इसके मूलगुण चारित्ररूपी विशाल परकोटा है ऐसा संघ नगर सदा जयवंत हो॥४॥

संघ चक्र–यह संघरूपी चक्र जयवंत हो। संयम इसका नाभि-केन्द्र है। इसमें तपरूपी बारह चक्र हैं। यह सम्यक्त्व की परिधि से चारों ओर से बँधा है। यह कर्मों का नाश करने वाला है॥५॥

संघ रथ–संघरूपी रथ पर अठारह हजार शीलांगरूपी पताकाएँ फहरा रही हैं। इसमें संयम और तपरूपी अश्व जुते हैं। जिनके गले में पाँच प्रकार के स्वाध्याय की प्रतीक नन्दी घोष करने वाली घण्टाएँ बंधी हैं। ऐसा संघ रथ जयवंत हो॥६॥

PANEGYRIC OF THE SANGH

The *Sangh-city*—This city-like *sangh* (religious organization) has forgiveness and other virtues as its rows of gorgeous houses, is abundant with scriptural knowledge as its valuable gems, is crisscrossed by *samyaktva* as its clean streets and is protected by purity of conduct (observation of five great vows) as its rampart. May it be ever victorious. (4)

The *Sangh-chakra*—This wheel-like sangh has discipline as its hub, has twelve austerities as its spokes, and has samyaktva as its radiant rim. This disc-weapon-like sangh cuts the bonds of rebirth. May it always be victorious. (5)

The *Sangh-chariot*—The chariot-like sangh has virtues like celibacy and self denial as its high furling flags, and austerity and discipline as its two fast horses with symbols of five types of svadhyaya on their necks. It reverberates with the sound of bells hanging in it. May it always be victorious. (6)

१७ भेद इस प्रकार हैं-(५) पाँच आस्रव-विरमण, (५) पाँच इन्द्रियों का निग्रह, (४) चार कषाय-विजय और (३) मन-वचन-काय के दुष्प्रयोग से विरति। तप के अनशन आदि बारह भेद रूप—संघचक्र के बारह आरे बताये गये हैं। केन्द्र में रहे संयम और तप के बारह आरकों से जो परिधि परिभाषित होती है वह सम्यक्त्व है। यहाँ संघरूपी चक्र के संयम, तप व सम्यक्त्व तीन आवश्यक अंग परिभाषित किये गये हैं।

Elaboration—A wheel or a circular form is eternally associated with motion. The motion of a vehicle also depends on its wheel (circular shape or a disc). As such a carrier is also allegorically called wheel or disc or *chakra*. *Sangh* or the religious organization is the carrier of the abstract and applied components of religion. It also overpowers obstacles and so it is called a weapon as well. As he owns the divine *chakra* (disc-weapon), an emperor who conquers the six continents is called a *Chakri*. In the same way Vasudev, the conqueror of three continents, is called *Ardhachakri* (half of the former). There are no disturbances in the proximity of the divine *chakra*. The ideal of beneficence of all that is inherent to the *Sangh* is the main reason for attributing the glory of *Chakra* to it. The hub of the disc like *Sangh* is discipline or *samyam*. There are seventeen types of *samyam*—five *ashrav-viraman* (avoidance of inflow of karmas), disciplining of five senses, subduing the four passions and refraining from indulgence in evil through mind, speech and body. This *sangh-chakra* has twelve-type austerity, such as observing fasts, as its spokes. The rim or circumference defined by the twelve spokes of austerity with discipline as the center is known as *samyaktva*. Here the three vital essential constituents of the wheel-like *sangh* have been defined.

संघरथ स्तुति

PANEGYRIC OF THE SANGH-CHARIOT

६ : *भद्दं सीलपडागूसियस्स, तव-नियम-तुरगजुत्तस्स।*
संघ-रहस्स भगवओ, सज्झाय-सुनंदिघोसस्स॥

अर्थ—संघ एक भव्य रथ के समान है जिस पर शील (ब्रह्मचर्य अथवा संयम) की ऊँची पताकाएँ फहरा रही हैं, जिसमें तप एवं संयमरूपी दो चपल अश्व जुते हुए हैं। स्वाध्याय (पाँच अंगों वाला) के नंदीघोष (घंटा) से जो प्रतिपल गुंजित है, ऐसा भगवद्स्वरूप संघरथ सबका कल्याण करे।

The *Sangh* is like a gorgeous chariot that has celibacy and self-denial as its high furling flags, and austerity and discipline as its two fast horses. May the god-like *sangh*-chariot that reverberates with the sound of gong of self-study (five pronged) ameliorate all.

संघपद्म स्तुति

PANEGYRIC OF THE SANGH-LOTUS

७-८ : *कम्मरय-जलोह-विणिग्गयस्स, सुय-रयण-दीहनालस्स।*
पंचमहव्वय-थिरकन्नियस्स, गुण-केसरालस्स॥
सावय-जण-महुअरि-परिवुडस्स, जिणसूरतेयबुद्धस्स।
संघ-पउमस्स भद्दं, समणगण-सहस्सपत्तस्स॥

अर्थ—यह संघरूपी पद्म (कमल) कितना भव्य है ! यह कर्मरूपी कीचड़ (कर्म-रज) तथा कर्मजल से ऊपर उठा हुआ है, श्रुतज्ञानरूपी दीर्घ नाल से जुड़ा हुआ है, जो पाँच महाव्रतरूपी पाँच स्थिर कर्णिका (डंठल-वृन्त) से युक्त है, गुणरूपी पराग से जो भरपूर है, विज्ञ श्रावकजनरूपी मधुकर जिसके चारों तरफ गुंजन कर रहे हैं। अरिहंत भगवानरूपी सूर्य के प्रकाश से जो सदा खिला रहता है, श्रमणगणरूप हजार पंखुड़ियों से जो शोभायमान है—ऐसा अत्यन्त भव्य संघपद्म सबका कल्याण करे। (देखें चित्र ३)

How beautiful is this *sangh*-lotus ! It rises above the slime and water that is *karma*, which is joined with the long tubular stalk that is scriptural knowledge, which has five stable stamens that are great-vows filled with pollen that are virtues and over which hum bumble-bees that are learned *shravaks*. May the enchanting *sangh*-lotus, which is in bloom always due to the rays of the sun that is *Arihant Bhagavan* and has a thousand petals that are *shramans* (ascetics), ameliorate all. *(See Illustration 3)*

संघचन्द्र स्तुति

PANEGYRIC OF THE SANGH-MOON

९ : *तव-संजम-मय-लंछण ! अकिरिय-राहुमुह दुद्धरिस ! निच्चं।*
जय संघचन्द ! निम्मलसम्मत्त-विसुद्धजोण्हागा !॥
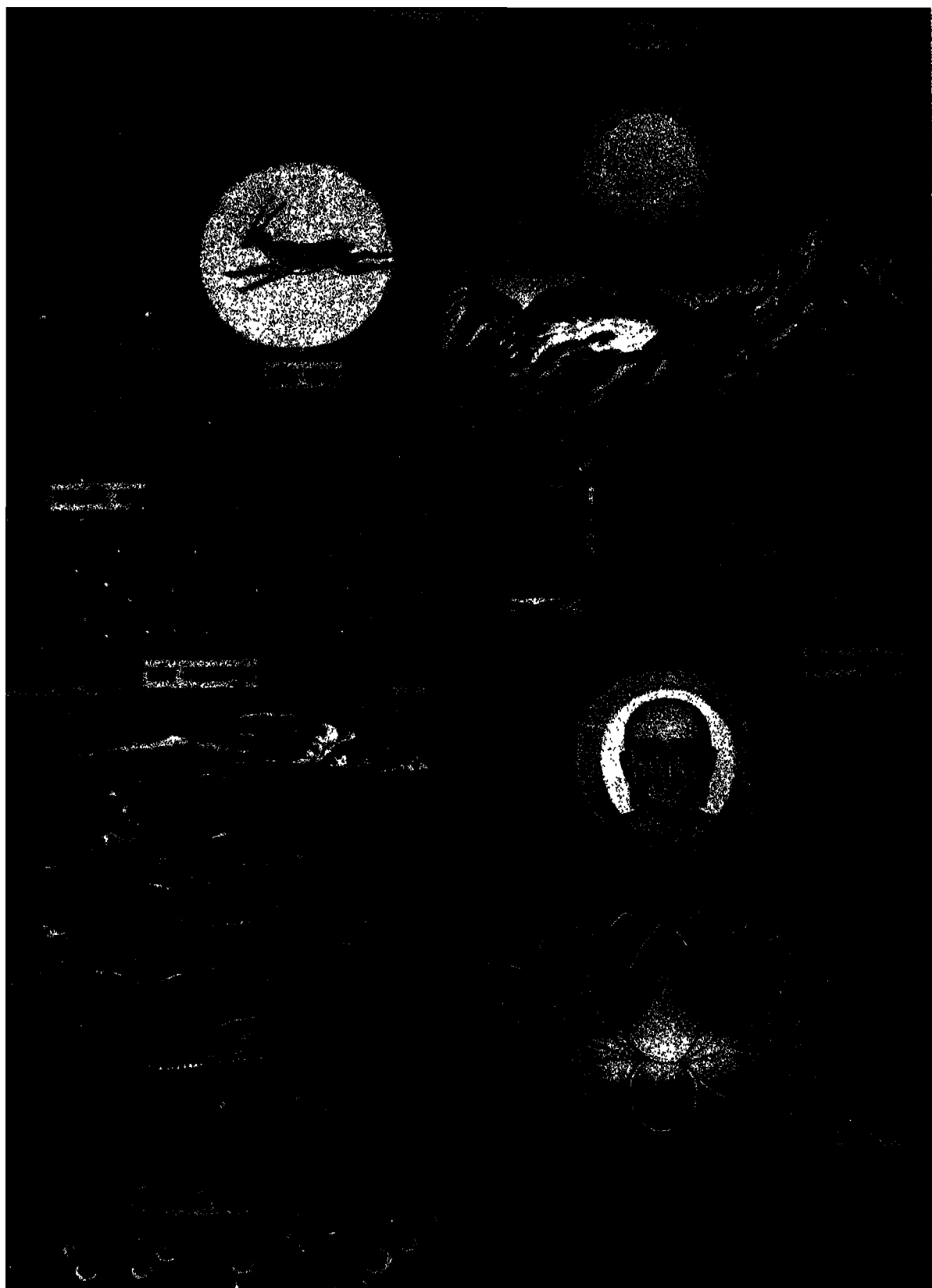
संघ स्तुति

संघ चन्द्र–संघरूपी चन्द्रमा में तप एवं संयमरूपी मृग का चिह्न है। परवादी (अन्य मतावलम्वी) रूप राहु इसको कभी ग्रस नहीं सकता। ऐसा संघ चन्द्र सदा जयवंत हो॥९॥

संघ सूर्य-यह संघरूपी सूर्य आकाश में उदित होने पर मिथ्यात्वरूप ग्रहों की प्रभा क्षीण हो गई है। तप के तेज से यह सदा देदीप्यमान है। यह अपने सम्यक्ज्ञान के आलोक से समस्त जगत् को आलोकित कर रहा है।॥१०॥

संघ समुद्र–इस संघ समुद्र में मूलगुण (पाँच महाव्रत) उत्तरगुण (क्षमा आदि) रूप जल की लहरें उछल रही हैं। स्वाध्याय एवं शुभ योगरूपी मगरमच्छ अशुभ भावरूप जल जंतुओं को नष्ट कर रहे हैं तथा चारित्ररूप रत्नों से जो भरा है ऐसा संघ समुद्र जयवंत हो॥११॥

संघ पद्म स्तुति–संघरूपी पद्म कमल कर्मरूपी कीचड़ से अलिप्त है। श्रुतरूपी लम्बी नाल जिसका आधार है। पंच महाव्रत रूप दृढ़ कर्णिकाएँ हैं। उत्तरगुणरूपी पराग (मकरन्द) जिसमें भरा है। श्रावकजन रूप भ्रमरों से सेवित है। श्रमण-गणरूपी हजारों पंखुड़ियाँ हैं तथा तीर्थंकररूपी सूर्य की प्रभा से जो सदा विकसित बना रहता है॥८॥

PANEGYRIC OF THE SANGH

The *Sangh-moon*—This sangh-moon has antelope like signs of austerity and discipline. The eclipse of falsehood can never shadow it. May this sangh-moon bring victory to all. (9)

The *Sangh-sun*—The sun-like sangh has dimmed the twinkling of stars and planets that are the groups of dogmatic followers of falsehood. It is ever brilliant with the radiant fire of austerity. It is removing the darkness of the world by spreading the light of right knowledge. (10)

The *Sangh-sea*—This sangh-sea has jumping waves of basic virtues (five great vows) and secondary virtues (clemency etc.). Self-study and pursuit of virtues in the form of crocodiles are destroying pursuit of vices in the form of smaller marine animals. It is rich with the gems of conduct. May this sangh-sea bring victory to all. (11)

The *Sangh-lotus*—This sangh-lotus is unspoiled by slime that is karma. It blooms on the long tubular stalk that is scriptural knowledge. It has five stamens that are great-vows. It is filled with pollen that are virtues and over which hum bumble-bees that are shravaks. It has thousands of petals that are shramans and it is in bloom always due to the rays of the sun that is Arihant Bhagavan. (8)

अर्थ—संघ निर्मल चन्द्रमा के समान है। यह संघचन्द्र तप एवं संयमरूपी मृग के लांछन (चिह्न) से युक्त है। अक्रियावादी (मिथ्यात्वी) रूप राहु इसको कभी ग्रस नहीं सकते। निर्मल सम्यक्त्वरूपी चाँदनी से जिसकी शोभा बढ़ रही है ऐसा संघचन्द्र सदा सबके लिए जयकारी हो।

The *sangh* is like the pure white moon. This *sangh*-moon has antelope like signs of austerity and discipline. The eclipse of falsehood can never shadow it. May this *sangh*-moon, which is radiant with the light of *samyaktva*, bring victory to all.

संघसूर्य स्तुति

PANEGYRIC OF THE SANGH-SUN

१० : *परतित्थिय-गहपहनासगस्स, तवतेय-दित्तलेसस्स।*
नाणुज्जोयस्स जए, भद्दं दमसंघ-सूरस्स॥

अर्थ—संघ सूर्य के समान है। संघरूपी सूर्य ने पर-तीर्थि (एकान्त मिथ्यावादी) रूप ग्रह तारों को प्रभाहीन कर दिया है। यह तपरूप प्रखर तेज से सदा देदीप्यमान है। सम्यग्ज्ञान का प्रकाश फैलाकर जगत् का अंधकार दूर कर रहा है। ऐसा इन्द्रिय-दमन व उपशमभाव रूप संघसूर्य सदा कल्याणकारी हो।

The *sangh* is like the sun. The sun-like *sangh* has dimmed the twinkling of stars and planets that are the groups of dogmatic followers of falsehood. It is ever brilliant with the radiant fire of austerity. It is removing the darkness of the world by spreading the light of right knowledge. May this *sangh*-sun, which is the embodiment of discipline of senses and control of desires, ameliorate all.

संघसमुद्र स्तुति

PANEGYRIC OF THE SANGH-SEA

११ : *भद्दं धिई-वेला-परिगयस्स, सज्झाय-जोग-मगरस्स।*
अक्खोहस्स भगवओ, संघ-समुद्दस्स रुंदस्स॥

अर्थ—संघ एक समुद्र के समान है। संयम में धृति (धैर्य) रूपी जिसकी विशाल सुदृढ़ वेला (तट-किनारा) है। जो स्वाध्याय (शुभ योग) रूप मगरमच्छ आदि से व्याप्त है, जो

कर्मरूप लघु जीवों का विदारण करने में समर्थ हैं। शुभ ध्यानरूप मणियों के वैभव से जो सम्पन्न है और परीषह-उपसर्गरूपी जल जीवों से जो अक्षोभ्य है, ऐसा संघसमुद्र आपके लिए कल्याणकारी हो।

The sangh is like a sea. It has perseverance in discipline as its expansive shore, it is infested with self-study (pursuit of virtues) as its marine animals like crocodiles that consume smaller beings that are *karmas*. It is rich with pious thoughts or meditation that are its pearls and it is undisturbed by afflictions that are its marine beings. May such *sangh*-sea ameliorate all.

संघमहामन्दर स्तुति

PANEGYRIC OF THE SANGH-MOUNTAIN

१२ : *सम्मद्दंसण-वरवइर, दढ-रूढ-गाढावगाढपेढस्स।*
धम्म-वर-रयणमंडिय-चामीयर-मेहलागस्स॥

१३ : *नियमूसियकणय-सिलायलुज्जलजलंत-चित्त-कूडस्स।*
नंदणवण-मणहरसुरभि-सीलगंधुद्धुमायस्स॥

१४ : *जीवदया-सुन्दर कंदरुद्दरिय, मुणिवर-मइंदइन्नस्स।*
हेउसयधाउपगलंत-रयणदित्तोसहिगुहस्स॥

१५ : *संवरवर-जलपगलिय-उज्झरपविरायमाणहारस्स।*
सावगजण-पउररवंत-मोर नच्चंत कुहरस्स॥

१६ : *विणयनयप्पवर मुणिवर, फुरंत-विज्जुज्जलंतसिहरस्स।*
विविह-गुण-कप्परुक्खगा, फलभरकुसुमाउलवणस्स॥

१७ : *नाणवर-रयण-दिप्पंत, कंतवेरुलिय-विमलचूलस्स।*
वंदामि विणयपणओ, संघ-महामन्दरगिरिस्स॥

अर्थ–संघ महामन्दर गिरि के समान है। इस मन्दर गिरि की भूपीठिका (आधारशिला) सम्यग्दर्शनरूपी वज्ररत्नों (हीरा) से बनी है, जो शंकादि छिद्रों से रहित होने से ठोस है। उसकी तत्वरुचिरूप गहरी जड़ें हैं। जो धर्मरूपी रत्नों (चारित्रिक गुणों) से मंडित है, क्षमा आदि गुणों की स्वर्ण-मेखला से युक्त है।

इन्द्रिय एवं मन का दमनरूप नियम जिसका स्वर्णमय शिलातल है। शुभ अध्यवसाय युक्त उदात्त चित्त जिसके ऊँचे कूट (शिखर) हैं। जहाँ सन्तोषरूपी नन्दनवन है, जिसमें शीलरूपी सुगन्ध महक रही है।

जिसमें जीवदयारूपी सुन्दर कन्दराएँ (गुफाएँ) हैं, जहाँ परवादीरूप मृगों पर विजय प्राप्त करने वाले मुनिगणरूपी सिंहों का निवास है। हेतु एवं युक्तिरूप धातुओं से जिसकी प्रभा बढ़ रही है। जो अट्ठाईस प्रकार की लब्धिरूप औषधियों से युक्त है तथा जहाँ धर्म प्रवचनशालारूप कन्दराएँ हैं।

संवररूप जल के निर्मल झरने जहाँ प्रवाहित हो रहे हैं। जहाँ श्रावकजनरूपी मयूर आनन्द विभोर होकर नृत्य करते हुए प्रतिपल पंचपरमेष्ठी का स्तुति गान कर रहे हैं, जिनकी मधुर ध्वनियों से वह प्रवचन स्थलरूप गुफा मुखरित हो रही है।

विनय गुण से युक्त विनम्र (झुके हुए) मुनिजनों की कीर्तिरूपी विद्युत् की चमक से संघमेरु के शिखर चमक रहे हैं। अनेक प्रकार के मूलगुण-उत्तरगुणों से युक्त मुनिजन जहाँ कल्पवृक्ष के समान शोभित होते हैं। जिन पर धर्मरूपी (विनय, क्षमादि विविध गुण वाले) फूल और फल लगे हुए हैं। मुनियों के समूह विविध वनों की तरह जन-जन हेतु आश्रय-स्थल बने हुए हैं।

सम्यग्ज्ञानरूपी श्रेष्ठ रत्न उस गिरि की वैडूर्यमयी (लसनिया) चूला जैसे प्रतीत होते हैं। ऐसे संघरूपी महामन्दर गिरि को मैं विनयपूर्वक वन्दन करता हूँ।

The *sangh* is like the Maha-mandar mountain. The base of this great mountain is made up of diamonds of right perception and which is free of cleavages like doubt. It has deep foundation of interest in fundamentals. It is embellished with the gems of *dharma* (virtues of character) and it has a golden girdle of virtues like magnanimity.

It has outcrops of rocks of the vows of subduing senses and mind. The lofty attitude of pursuit of virtues form its cliffs. It has the Nandan forest of contentment which is filled with the fragrance of chaste disposition.

It has beautiful caves of clemency *(jiva-daya)* where dwell the lion-like ascetics who overpower the deer-like antagonists. The metals of reason and theme add to its splendor. It abounds in herbs of twenty eight types of *labdhis* (special skills,

attainments or powers). There are caverns of discourse halls scattered around it.

Pure streams of *samvar* (to stop the inflow of karmas by controlling the desires) flow here. Pea-cock like *shravaks* dance here in ecstasy and sing hymns of five ultimate benefactors every moment. Echo of these musical sounds emanate from the caverns of discourse halls.

The cliffs of the *sangh*-mountain are resplendent with the sparks of glory of the self-effacing ascetics who effuse with the virtue of humbleness. It is beautified by the wish-fulfilling trees that are the ascetics having basic and auxiliary attributes of asceticism. These trees are loaded with flowers and fruits of religious conduct (humbleness, forgiveness etc.). Jungle like clusters of these trees that are ascetics have become places of shelter for masses.

The best of the gems, the right knowledge, appears like its highest peak made up of cat's-eye. I offer my humble obeisance to such Maha-mandar mountain like *sangh*.

विवेचन–श्रीसंघ को मेरु गिरि की उपमा देकर उसकी वन्दना की गई है। मेरु पर्वत जम्बूद्वीप के मध्य भाग में स्थित है तथा पृथ्वी में एक हजार योजन गहरा तथा निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है। मूल में उसका व्यास दस हजार योजन है। उस पर चार विशाल सुन्दर रमणीय वन हैं–(१) भद्रशालवन (पृथ्वीतल पर चारों ओर फैला हुआ), (२) नन्दनवन (पाँच सौ योजन ऊपर), (३) सोमनसवन (उससे ६२,५०० योजन ऊँचा), (४) पाण्डुकवन (उससे ३५,००० योजन ऊँचा)। उसके तीन कण्डक हैं–रजतमय, स्वर्णमय और विविध रत्नमय। इसकी चोटी (चूला) चालीस योजन की है। यह पर्वत विश्व में सबसे ऊँचे पर्वतों में है। (चित्र सं. ४ देखें)

संघ को मेरु पर्वत की उपमा इस प्रकार दी गई है–सम्यग्दर्शन इसकी आधारशिला है। शम, दम, नियम, उपशम आदि स्वर्णशिलाएँ हैं। उच्च शुभ अध्यवसायरूप ऊँचे कूट (शिखर) हैं। स्वाध्याय, शील, सन्तोष आदि इसके नन्दनवन हैं जहाँ आकर देव एवं मनुष्यगण आनन्द का अनुभव करते हैं। आमर्ष आदि २८ लब्धियाँ इस पर्वत की दिव्य औषधियाँ हैं। मुनिजन कल्पवृक्ष के समान हैं। यहाँ संवर चारित्ररूप धर्म के विशुद्ध जल-प्रपात (झरने) प्रवाहित हो रहे हैं। जिस प्रकार मेरु पर्वत प्रलयकालीन तूफानों से भी निष्प्रकम्प रहता है उसी प्रकार यह जिनशासन मिथ्यावादियों के कुतर्क प्रहारों से कभी प्रकम्पित नहीं होता।
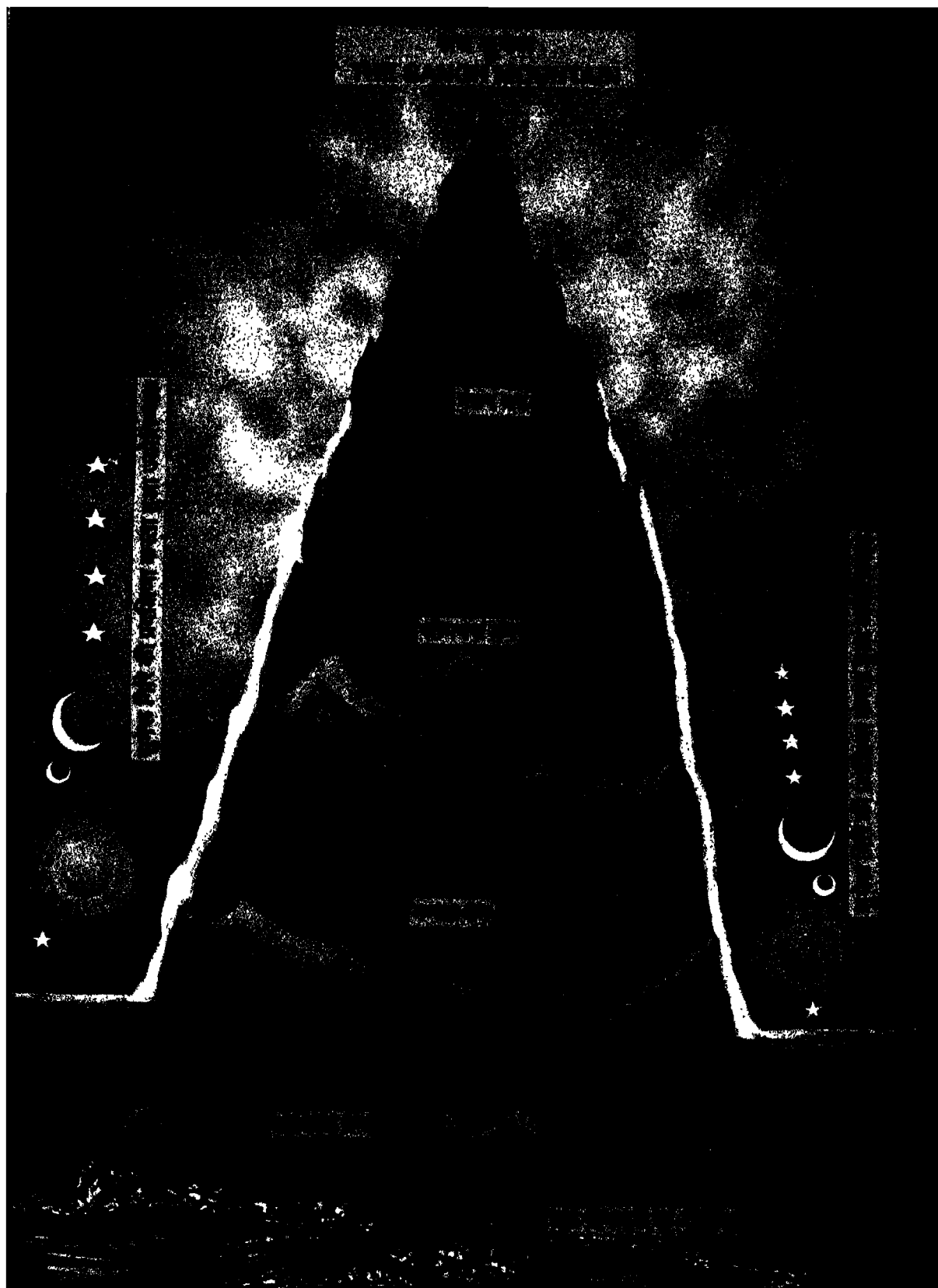
संघ सुमेरु

यह संघरूपी सुमेरु चारित्ररूपी स्वर्णगिरि के समान दीप्तिमान है। इसकी भूपीठिका (तलहटी) सम्यग्दर्शनरूप वज्ररत्नों से निर्मित है। इसकी मूलगुण रूप स्वर्ण मेखला है। संयमरूप स्वर्ण जैसे शिलातल है। उस पर सन्तोषरूपी नन्दनवन है।

इस संघरूपी मेरुगिरि की कन्दराओं (गुफाओं) में कुबुद्धि कुतर्कों का नाश करने वाले संयमी श्रमणरूपी सिंह विचर रहे हैं। इस मेरुगिरि के दोनों ओर संवररूपी स्वच्छ जल के झरने झर रहे हैं। श्रावकजनरूपी मयूर मस्ती में झूम रहे हैं। इस पर्वत पर विनय, संयम, तप आदि गुणों से युक्त मुनिजनरूपी कल्पवृक्ष हैं। इस प्रकार का संघरूपी सुमेरु सदा जयवंत हो॥१४-१६॥

THE SANGH SUMERU

This sangh-sumeru has a golden glow like the golden peak that is right conduct. Its base is made up of diamonds of right perception. It has a golden girdle of basic virtues. It has golden outcrop of rocks of discipline where there are jungles of contentment.

In its caves dwell the lion-like disciplined ascetics who destroy the baseless logic of antagonists. On its two sides flow pure streams of samvar. Pea-cock like shravaks dance here in ecstasy. It is resplendent with the wish-fulfilling trees that are the ascetics having virtues like modesty, discipline and austerity. May this sangh-mountain bring victory to all. (14-16)

Elaboration—This is a panegyric of the *Shrisangh* or the religious organization giving it the metaphor of the great Meru mountain (mythical). The details about this mountain as given in the scriptures are—It is located at the center of the Jambudveep. It is one thousand *yojans* (a linear measure) deep in the earth and ninety nine thousand *yojans* high. Its girth has a diameter of ten thousand *yojans*. It has four large and beautiful forests—(1) Bhadrashal forest (it is at the ground level all around the mountain), (2) Nandan forest (at a height of five hundred *yojans* from the ground level), (3) Somanas forest (at a height of 62,500 *yojans* from Nandan forest, (4) Panduk forest (at a height of 35,000 *yojans* from Somanas forest). It has a three sections filled with gold, silver and gems respectively. It has a peak forty *yojans* high. This is one of the highest mountains in the world. *(See Illustration 4)*

The metaphor of Meru mountain given to *sangh* is like this—Right perception is its base. Discipline, self-control, codes and subduing of passions are its golden rocks. Sublime, pious pursuits are its high cliffs. Self-study, chaste disposition, contentment etc. are its forests that provide bliss to gods and human beings. Twenty eight types of *labdhis* (special skills, attainments or powers) including *Amarsh* (the healing touch) are the divine herbs found on this mountain. The ascetics are like wish-fulfilling trees. Pure streams of *samvar* (the level of purity of attitude where the inflow of karmas is blocked) flow here. As the Meru mountain remains unmoved and stable even in the midst of terrible hellish storms and deluge, so remains this religious organization of the *Jina* amidst the verbal tirade of the antagonists.

अन्य प्रकार से संघमेरु की स्तुति

OTHER PANEGYRIC OF THE SANGH-MOUNTAIN

१८ : *गुण-रयणुज्जलकडयं, सील-सुगंधि-तव-मंडिउद्देसं।*
सुय-बारसंग-सिहरं, संघमहामन्दरं वंदे॥

अर्थ–संघरूप मेरु गिरि का मध्य भाग-सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्ररूप विविध रत्नों से देदीप्यमान है। शील की सुगंधि से तथा तप की शोभा से यह मंडित है। द्वादशांग श्रुतरूप उत्तुंग (ऊँचे) इसके शिखर हैं। ऐसे संघरूपी महामन्दर गिरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

The central part of this sangh-mountain is resplendent with a variety of gems like right knowledge, right perception and right conduct. It is filled with the fragrance of chaste disposition and the beauty of austerity. It has lofty peaks of twelve *Angas* (the primary canons). I offer my obeisance to such Maha-mandar mountain like *sangh*.

संघ-स्तुति विषयक उपसंहार

CONCLUSION OF THE SANGH PANEGYRIC

१९ : *नगर-रह-चक्क-पउमे, चन्दे सूरे समुद्द-मेरुम्मि।*
जो उवमिज्जइ सययं, तं संघगुणायरं वंदे॥

अर्थ–जैसे १. नगर, २. रथ, ३. चक्र, ४. पद्म, ५. चन्द्र, ६. सूर्य, ७. समुद्र और ८. मेरु गिरि ये अपने-अपने विशिष्ट गुणों से युक्त हैं। श्रीसंघ भी अपने दिव्य गुणों से उसी प्रकार विशिष्ट है। उस गुणों के समूह श्रीसंघ को मैं वन्दना करता हूँ।

A city, a chariot, a wheel, a lotus, the moon, the sun, a sea and the Meru mountain, all have their own special attributes. The *Shrisangh* also has its divine attributes that make it unique. I offer my obeisance to the *Shrisangh* that is the abode of such attributes.

विवेचन–इन सभी उपमाओं द्वारा संघ की भिन्न-भिन्न विशेषताएँ प्रकट की गई हैं। जैसे–नगर-सुरक्षा का साधन है, उसीप्रकार साधकों के लिए संघ सुरक्षा प्रदान करता है। रथ–मार्ग का अनुगमन करता है साधक भी जिन-प्रणीत मार्ग के अनुसार चलता है। चक्र–विजय रूपी लक्ष्य का प्रतीक है। संघ साधक को अपने लक्ष्य में विजयश्री प्रदान कराता है। पद्म–निर्लेपता का प्रतीक है, चन्द्र–सौम्यता और शीतलता का, सूर्य–प्रकाश और तेजस्विता का, समुद्र–विशालता और अक्षुब्धता का तथा सुमेरु पर्वत स्थिरता और अप्रकम्पता का। संघ में उक्त सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं।

Elaboration—Various special qualities of sangh have been expresed by using these metaphors—

As a city is a means of protection for citizens, so is *sangh* for the practicers or ascetics and *shravaks*. As a chariot moves on a path so does a practicer on the path shown by the *Jina*. As *chakra* (disc-seapon) is a means of victory or attainment of a goal, so is *sangh* that

helps the ascetic in attaining his goal. Lotus is the symbol of non-adhesion or detachmet. The moon is the symbol of serenity and cool. The sun is the symbol of light and radiance. The sea is the symbol of expanse and tranquility. And the Sumeru mountain is the symbol of stability and stillness. *Sangh* has all these qualities.

चतुर्विंशति जिन-स्तुति

PANEGYRIC OF THE TWENTY FOUR JINAS

२०-२१ : *(वंदे) उसभं अजियं संभवमभिनंदण-सुमइं सुप्पभं सुपासं।*
ससिपुप्फदंतसीयल-सिज्जंसं वासुपुज्जं च॥
विमलमणंतं य धम्मं संतिं कुंथुं अरं च मल्लिं च।
मुणिसुव्वयं नमिं नेमिं पासं तह वद्धमाणं च॥

अर्थ–१. ऋषभ, २. अजित, ३. संभव, ४. अभिनन्दन, ५. सुमति, ६. पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्व, ८. चन्द्रप्रभ, ९. सुविधि, १०. शीतल, ११. श्रेयांस, १२. वासुपूज्य, १३. विमल, १४. अनन्त, १५. धर्म, १६. शांति, १७. कुंथु, १८. अर, १९. मल्लि, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमि, २२. नेमि (अरिष्टनेमि), २३. पार्श्व, एवं २४. वर्द्धमान। वर्तमान अवसर्पिणी काल में हुए इन चौबीस तीर्थंकरों को मैं भक्तिपूर्वक वन्दना करता हूँ।

I offer obeisance with reverence to these twenty four *Tirthankars* of this regressive cycle of time—1. Rishabh, 2. Ajit, 3. Sambhav, 4. Abhinandan, 5. Sumati, 6. Padmaprabh, 7. Suparshva, 8. Chandraprabh, 9. Suvidhi, 10. Sheetal, 11. Shreyans, 12. Vasupujya, 13. Vimal, 14. Anant, 15. Dharma, 16. Shanti, 17. Kunthu, 18. Ar, 19. Malli, 20. Munisuvrat, 21. Nami, 22. Nemi (Arishtanemi), 23. Parshva, and 24. Vardhaman.

●●

गणधरावलि

THE LIST OF GANADHARS

२२-२३ : *पढमित्थ इंदभूई, बीए पुण होइ अग्गिभूइ त्ति।*
तइए य वाउभूई, तओ वियत्ते सुहम्मे य॥
मंडिय-मोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलभाया य।
मेयज्जे य पहासे, गणहरा हुन्ति वीरस्स॥

अर्थ—अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के गण की व्यवस्था करने वाले क्रमशः ग्यारह गणधर हुए-१. इन्द्रभूति, २. अग्निभूति, ३. वायुभूति (तीनों सहोदर), ४. व्यक्त, ५. सुधर्मा, ६. मण्डितपुत्र, ७. मौर्य पुत्र, ८. अकम्पित, ९. अचल भ्राता, १०. मेतार्य, और ११. प्रभास।

There were eleven *Ganadhars* (principal disciples) who managed the organization established by *Bhagavan* Mahavir—1. Indrabhuti, 2. Agnibhuti, 3. Vayubhuti (these three were brothers), 4. Vyakt, 5. Sudharma, 6. Manditputra, 7. Mauryaputra, 8. Akampit, 9. Achal Bhrata, 10. Metarya, and 11. Prabhas.

विवेचन—धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर होते हैं। तीर्थ स्थापना के समय सबसे पहले गणधरों को मुनि दीक्षा प्रदान की जाती है। ये अपने युग के विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व होते हैं। दीक्षा लेते ही गणधर लब्धि के प्रभाव से इनका श्रुतज्ञान विस्तृत हो जाता है और वे तीर्थंकरदेव के श्रीमुख से त्रिपदी का प्रथम प्रवचन सुनकर उसे अपनी प्रखर प्रज्ञा द्वारा विस्तार देकर श्रुत-सम्पदा प्रवाहित करते हैं। तीर्थंकरदेव के वचनों को आगमरूप माला में गूँथने का कार्य गणधर करते हैं। भगवान महावीर के शासनकाल में ग्यारह गणधर तथा नौ गण हुए। इनमें सबसे ज्येष्ठ प्रथम गणधर थे इन्द्रभूति गौतम। पंचम गणधर थे सुधर्मा जो भगवान के निर्वाण पश्चात् प्रथम पट्ट पर विराजमान हुए। वर्तमान में सभी श्रमण गणधर सुधर्मा की शिष्य परम्परा के हैं।

Elaboration—The *Teerth* (ford of religion) is established by the *Tirthankars* who are absolutely detached and omniscient. The first step taken at the time of establishing the *Teerth* is to formally initiate the *Gandhars*. These are exceptionally talented individuals of their period. As soon as they are initiated they acquire the *Ganadhar labdhi* (a special power) which instantaneously expands their

scriptural knowledge. They absorb the first utterance of the *Tripadi* (all knowledge compressed into three words) by the *Tirthankars* and, with the help of their sharp intelligence, expand it into the stream of much coveted scriptural knowledge. The work of translating the words into the chain of *Agams* is accomplished by the *Ganadhars*. In *Bhagavan* Mahavir's order there were eleven *Ganadhars* and nine *Ganas* (groups within the organization). The senior most or the first *Ganadhar* was Indrabhuti Gautam. The fifth *Ganadhar* was Sudharma who became the first head of the order after the *nirvana* of *Bhagavan* Mahavir. All the extant *shramans* (Jain ascetics) belong to the lineage of disciples of *Ganadhar* Sudharma.

वीर-शासन की महिमा

THE GLORY OF THE ORDER OF MAHAVIR

२४ : *निव्वुइ-पह-सासणयं, जयइ सया सव्व-भाव-देसणयं।*
कुसमय-मय नासणयं, जिणिंदवर-वीर-सासणयं॥

अर्थ–जिनेन्द्र भगवान महावीर का सर्वोत्कृष्ट तथा सर्व हितकारी शासन सदा जयवन्त हो। वह शासन जो निर्वाण के निवृत्ति पथ का शाश्वत प्रतिपादक है, सभी तत्त्वों (जीव-अजीव) का, सभी भावों का प्ररूपक/प्रकाशक है तथा कुमार्ग व कुत्सित मान्यताओं की विकृतियों का नाशक है।

May the best and the universally beneficent religious order of *Bhagavan* Mahavir be victorious. The order that ever propagates the pious path of renunciation and leads to *nirvana*; reveals all the fundamentals (matter and life); reveals all forms and attitudes, and destroys evil path and the perversions of vile beliefs.

●●

युग-प्रधान स्थविर वन्दना
OBEISANCE TO THE ERA-LEADERS

२५ : *सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबू नामं च कासवं।*
पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तहा॥

अर्थ—अग्निवैश्यायन गोत्र के सुधर्मा स्वामी को, काश्यप गोत्र के जम्बू स्वामी को, कात्यायन गोत्र के प्रभव स्वामी को एवं वत्स गोत्र के शय्यम्भव स्वामी को मैं वन्दना करता हूँ।

I pay homage to Sudharma Swami of the Agnivaishyayan *gotra* (clan), Jambu Swami of the Kashyap *gotra*, Prabhav Swami of the Katyayan *gotra* and Shayyambhav Swami of the Vatsa *gotra*.

विवेचन—पट्टधर परम्परा–तीर्थंकर भगवान द्वारा धर्मतीर्थ की स्थापना के पश्चात् धर्म-शासन व संघ की व्यवस्था का भार उनके प्रमुख शिष्यों–गणधरों पर रहता है। तीर्थंकर के निर्वाण के पश्चात् यह भार जिस महापुरुष द्वारा वहन किया जाता है वह पट्टधर कहलाता है। भगवान महावीर के निर्वाण से पूर्व उनके नौ गणधर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जा चुके थे। पावापुरी में भगवान के निर्वाण के तत्काल बाद गौतम स्वामी को भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया। सर्वज्ञ कभी परम्परा का वाहक नहीं होता, अतः गौतम स्वामी विद्यमान होने पर भी भगवान के पट्टधर नहीं बने। इस उत्तरदायित्व का वहन सुधर्मा स्वामी ने किया। अतः भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर सुधर्मा स्वामी बने। इस पद में भगवान महावीर की महान् पट्टधर परम्परा के आचार्यों की वन्दना की गई है।

आर्य सुधर्मा स्वामी—आर्य सुधर्मा स्वामी अग्निवैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे। उनकी माता का नाम भद्दिला तथा पिता का नाम धम्मिल था तथा वे विदेह प्रदेश के निवासी थे। उनका जन्म समय अनुमानतः वीर निर्वाण के ८० वर्ष पूर्व अर्थात् ६०७ ई. पू. के आसपास रहा होगा। विद्वान् पिता के निकट अभूतपूर्व मेधावान सुधर्मा ने वैदिक-परम्परा की प्रचलित चौदह विद्याओं (वेद, वेदांग, मीमांसा आदि) का ज्ञान प्राप्त किया और अपने समय के मूर्धन्य विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। भगवान महावीर के केवलज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् प्रथम प्रवचन में ५०० वि. पू. वैशाख शुक्ला ११ को सुधर्मा ने अपने पाँच सौ शिष्यों सहित दीक्षा ग्रहण की। उस समय उनकी आयु पचास वर्ष थी। उन्हें भगवान का सान्निध्य तीस वर्ष तक प्राप्त हुआ और इस काल में उन्होंने भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित त्रिपदी के आधार पर द्वादशांगी की रचना की जो जैन-परम्परा के आधारभूत आगम ग्रन्थ बने। भगवान महावीर के निर्वाण तक

अन्य सभी गणधरों की शिष्य-परम्परा का भार भी आर्य सुधर्मा ग्रहण कर चुके थे। बारह वर्ष तक पट्टधर रहने के पश्चात् उन्हें वी. नि. १२वें वर्ष (४५७ वि. पू., ५१४ ई. पू.) में केवलज्ञान प्राप्त हुआ। लगभग सौ वर्ष की आयु में आपका निर्वाण वी. नि. २० (४४९ वि. पू., ५०६ ई. पू.) में राजगृह के वैभारगिरि पर एक मास के अनशनपूर्वक हुआ।

आर्य जम्बू स्वामी–सुधर्मा स्वामी के पट्टधर शिष्य जम्बू स्वामी थे। भगवान महावीर के निर्वाण से सोलह वर्ष पूर्व (५४३ ई. पू.) राजगृह के एक समृद्ध वैश्य परिवार में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता सेठ ऋषभदत्त थे और माता थी धारिणी देवी। गर्भ धारण के समय माता धारिणी ने पाँच दिव्य स्वप्न देखे थे–(१) अनशनपूर्वक निर्धूम अग्नि, (२) कमल सरोवर, (३) पके धान के खेत, (४) चार दाँतों से युक्त श्वेत गजराज, और (५) श्रेष्ठ जम्बू फल। यथासमय पुत्र-जन्म होने के पश्चात् उसका नाम जम्बूकुमार रखा गया। सोलह वर्ष की आयु में सुधर्मा स्वामी का प्रवचन सुन उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया था। दीक्षा लेने हेतु जब माता-पिता से आज्ञा लेने गये तो उन्होंने अनेक प्रकार से जम्बू को समझाने की चेष्टा की पर वे अपने निश्चय पर अटल रहे। अन्ततः माता ने अनुनय किया कि "जम्बू, यदि उनकी एक अभिलाषा पूरी कर दें तो वे स्वयं भी जम्बूकुमार के साथ ही दीक्षा ले लेंगी।" जम्बू ने इस वचन के साथ आज्ञा मान ली कि अभिलाषा पूरी होने पर वे पुनः उनके मार्ग की बाधाएँ उत्पन्न नहीं करेंगी।

माता-पिता ने अपनी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए सुन्दर गुणवती कन्याओं से जम्बू का विवाह कर दिया। माता-पिता के आग्रह से उन्होंने विवाह तो कर लिया किन्तु उसी रात्रि अपनी आठों पत्नियों को इतना हृदयस्पर्शी धर्मोपदेश दिया कि आठों ही नवविवाहिताओं का मन संसार से विरक्त हो गया। जम्बू के इस उपदेश को उनके यहाँ चोरी करने आया दस्यु प्रभव भी सुन रहा था, उसे भी उपदेश सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो गया। प्रातःकाल जम्बू ने प्रभव तथा उनके साथियों सहित कुल ५२७ व्यक्तियों के साथ ४६९ वि. पू. में राजगृह में विराजित सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। इस दीक्षा समारोह में मगधपति कूणिक भी अपनी विशाल राज-परिषद् के साथ उपस्थित था। बारह वर्ष तक उन्होंने सुधर्मा स्वामी के पास समस्त आगमों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया और उनके केवलज्ञान के पश्चात् सुधर्मा स्वामी के पट्ट पर आसीन हुए। वी. नि. २० (वि. पू. ४४९ या ४५०) में केवलज्ञान प्राप्त हुआ और वी. नि. ६४ (४०५ वि. पू., ४६२ ई. पू.) में उनका निर्वाण हुआ। जम्बू स्वामी इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम केवलज्ञानी माने जाते हैं।

आर्य प्रभव स्वामी–जम्बू स्वामी के पट्ट पर आये आर्य प्रभव स्वामी। आपकी दीक्षा भी आर्य सुधर्मा के पास हुई थी। यद्यपि ये विन्ध्यप्रदेश के एक राजा के ज्येष्ठ पुत्र थे, किन्तु पिता के द्वारा छोटे भाई को उत्तराधिकारी बना देने के कारण क्षुब्ध होकर दस्यु बन गये और पाँच सौ चोरों के अधिनायक भी। जम्बू कुमार के घर में चोरी करते समय उन्हीं के उपदेश से प्रभव का हृदय परिवर्तन हुआ और जम्बूकुमार के साथ दीक्षा ले ली। वी. नि. ६४वें वर्ष में उन्होंने आचार्य

पद ग्रहण किया। उन्हें सभी अंग शास्त्रों का ज्ञान था। भगवान महावीर की परम्परा के वे प्रथम श्रुतकेवली थे। इनका निर्वाण वी. नि. ७५ (३९४ वि. पू., ४५१ ई. पू.) में लगभग १०५ वर्ष की आयु में हुआ।

आर्य शय्यम्भव स्वामी–इनका जन्म राजगृह के एक वत्सगोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये वेदों के गहन ज्ञाता थे पर उतने ही अभिमानी भी। आर्य प्रभव स्वामी को जब अपने उत्तराधिकारी पद के उपयुक्त कोई विद्वान् शिष्य नहीं मिला तो उन्होंने श्रमणेतर विद्वानों की खोज की। एक बार यज्ञ करते समय आर्य शय्यम्भव भट्ट ने श्रमणों से सुना कि तत्त्व को कोई नहीं जानता। इस पर वे यह निश्चित करने के लिए कि श्रमण-परम्परा के शीर्षस्थ आचार्य भी तत्त्व को जानते हैं या नहीं, आर्य प्रभव के पास आये। आर्य प्रभव ने उन्हें तत्त्व-बोध दिया और वे शिष्य बन गये। शय्यम्भव मेधावी तो थे ही, आर्य प्रभव ने उन्हें द्वादशांगी का सम्पूर्ण ज्ञान दिया और अपना उत्तराधिकारी बनाया। अट्ठाईस वर्षीय शय्यम्भव के गृहस्थ जीवन-त्याग के समय उनकी पत्नी गर्भवती थी। अतः पिता-पुत्र परस्पर अपरिचित ही थे। बढ़ती आयु के साथ पुत्र के मन में अपने पिता का स्नेह पाने की ललक भी बढ़ती गई। बालक मनक जब प्रथम बार पिता से मिलने गया तो आर्य शय्यम्भव ने उसे अपना परिचय नहीं दिया अपितु उसकी अध्यात्म-साधना के प्रति रुचि देखकर उसे प्रतिबोध दिया। बालक मनक आठ वर्ष की अवस्था में ही दीक्षित हो गया। आर्य शय्यम्भव को ज्योतिष ज्ञान के आधार पर यह आभास हुआ कि बालक अल्पायु है। यह जानकर उन्होंने अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर दशवैकालिकसूत्र की रचना की। जैन-परम्परा में आज भी यह ग्रन्थ बहुत समादृत व प्रचलित है। तेईस वर्ष तक युग-प्रधान रहे आर्य शय्यम्भव ने वी. नि. ९८ (३७१ वि. पू., ४२८ ई. पू.) में बासठ वर्ष की आयु में देह त्याग किया। आपके समय में मगध पर नन्दवंश का राज्य था।

Elaboration—After the founding of the religious ford by the *Tirthankar* the responsibility of the management of the religious order and organization rests with his principal disciples, the ***Ganadharas***. The man who shoulders this responsibility after the *nirvana* of the *Tirthankar* is known as *Pattadhar* (Head of the Order). Nine of his chief disciples had attained omniscience and were liberated before the *nirvana* of *Bhagavan* Mahavir. In Pavapuri, Gautam Swami also became omniscient immediately after the *nirvana* of *Bhagavan* Mahavir. An omniscient, as a rule, is never a carrier of any tradition; as such, although alive, Gautam Swami did not become the head of the order. The responsibility of carrying on the religious tradition established by *Bhagavan* Mahavir came to Sudharma Swami making him the first Head of the Order. This is the panegyric of the *Acharyas* belonging to the glorious lineage of heads of the order of *Bhagavan* Mahavir.

Arya Sudharma Swami—Arya Sudharma Swami was born into a Brahman family of Agnivaishyayan *gotra*. The names of his mother and father were Bhaddila and Dhammil respectively and they lived in the Videh area. The period of his birth is estimated to be around 80 B.V.N. (Before Vir Nirvana) (607 B.C.). Extremely talented Sudharma received the traditional *Vedic* knowledge of fourteen subjects (*Veda*, *Vedanga*, *Mimamsa* etc.) from his scholarly father and established himself as a front line *Vedic* scholar of his time. Sudharma got initiated with his five hundred disciples during the first post *Kewal-jnana* discourse of *Bhagavan* Mahavir on *Vaishakh Shukla* 11, 500 B.V. (Before the beginning of the Vikram era) At that time his age was fifty years. He got to spend three years with *Bhagavan* Mahavir and during this period, based on the *Tripadi* (tripod; the popular name given to the essence of *Bhagavan* Mahavir's discourse), he authored the twelve *Angas* which became the principal canons of the Jain tradition. Arya Sudharma had also taken over the control of the lineage of disciples of all the other *Ganadhars* by the time of *Bhagavan* Mahavir's *nirvana*. After remaining the Head of the Order for twelve years he attained omniscience in 12 A.N.M. (After the Nirvana of Mahavir) (457 B.V., 514 B.C.). He got *nirvana* at the age of approximately one hundred years on Vaibharagiri hills near Rajagriha after observing a month long fast in 20 A.N.M. (449 B.V., 506 B.C.).

Arya Jambu Swami—The successor of Sudharma Swami as the Head of the Order was Jambu Swami. He was born in a wealthy merchant family of Rajagriha in 16 B.V.N. (543 B.C.). The names of his father and mother were merchant Rishabhdatt and Dharini Devi respectively. When she conceived, mother Dharini had seen five divine dreams —1. smokeless fire, 2. a lotus-pond, 3. farms with ripe harvest, 4. a white elephant with four tusks, and 5. a *jambu* fruit of best quality. In due course, when she gave birth to a son he was named Jambu Kumar. He became detached after listening to a discourse of Sudharma Swami when he was sixteen years old. When he approached his parents to seek permission for getting initiated they tried to dissuade him but he remained firm on his resolve. As a last resort his mother requested him that if he fulfilled just one of her wishes, she will also get initiated with him. Jambu agreed with a condition that once her wish was fulfilled she would not create hurdles in his path.

According to their wish the parents arranged for Jambu's marriage with eight beautiful and virtuous girls. Although he married—due to intense pressure from his parents—during his first night he gave such a touching spiritual discourse to his eight wives that they became detached from all mundane activities. A notorious thief, Prabhav, who had entered Jambu's house, also happened to listen to this discourse. This thief also got detached. Next morning Jambu took *diksha* (the process of getting initiated) from Sudharma Swami, who was in Rajagriha at that time, along with 527 persons including Prabhav and his fellow thieves (469 B.C.). This initiation ceremony was attended by the Magadh king Kunik and his large council of ministers besides the prominent citizens of Rajagriha. For twelve years Jambu remained under tutelage of Sudharma Swami and acquired profound knowledge of all the canons. After Sudharma Swami became omniscient Jambu succeeded him as the Head of the Order. Jambu became omniscient in 20 A.N.M. (449 or 450 B.V.) and got *nirvana* in 64 A.N.M. (405 B.V., 462 B.C.). Jambu Swami is believed to be the last omniscient of this cycle of time.

Arya Prabhav Swami—Arya Prabhav Swami succeeded Jambu Swami as Head of the Order. He also was initiated by Sudharma Swami. He was a prince from the Vindhya area in western India, but as his father made the younger son the heir apparent, Prabhav left his kingdom and became a bandit. When he went to the house of Jambu with an intention to steal, he listened to the discourse of Jambu and had a change of heart. He then became an ascetic along with Jambu. He became the Head of the Order, *Acharya*, in the year 64 A.N.M. He had absorbed all the knowledge of the canons. He was the first *Shrut Kevali* in Mahavir's tradition. (*Shrut Kevali* is the person who has complete literal knowledge of all the *Angas* including the fourteen sublime ones.) He left his mundane body in the year 75 A.N.M. (395 B.V., 451 B.C.).

Arya Shayyambhav Swami—He was born in a Brahman family of Rajagriha belonging to Vatsa *gotra*. He was a profound scholar of the *Vedas*, but a conceited person. When among his disciples, Arya Prabhav did not find a capable and scholarly person suitable to take charge of the order, he looked around for someone from other schools. One day while he was busy in *Yajna* rituals Shayyambhav heard a comment from some *shramans* that no one present there had the

knowledge of the fundamentals. This inspired the irked Shayyambhav to go to Arya Prabhav, the then head of the *shramans*, and find out if the *shramans* had the true knowledge of the fundamentals. Arya Prabhav gave him the knowledge of the fundamentals and made him a disciple. As Shayyambhav was already a brilliant scholar, Arya Prabhav imparted all the knowledge of the twelve *Angas* to him and made him the successor.

At the time of his renunciation, Shayyambhav was twenty eight years old and his wife was pregnant. Therefore the father and the son were not acquainted with each other. The desire to experience the love of his father grew with age within the son's mind. However, at last when child Manak came to Shayyambhav in search of his father, Shayyambhav did not reveal his identity but gave an impressive religious discourse. Child Manak became an ascetic at the age of eight years. Through his knowledge of astrology, it was revealed on Shayyambhav that the child had a very short life span. This inspired him to create the *Dashavaikalika Sutra* based on his knowledge of the canons. This work became very popular in the later Jain tradition. After remaining head of the order for twenty three years, Shayyambhav expired in the year 98 A.N.M. (371 B.V., 428 B.C.) when he was sixty two years old. During his times the state of Magadh was ruled by the Nand family.

२६ : *जसभद्दं तुंगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं।*
भद्दबाहुं च पाइन्नं, थूलभद्दं च गोयमं॥

अर्थ–तुंगिक गोत्र के आर्य यशोभद्र माढर गोत्र के आर्य सम्भूत विजय, प्राचीन गोत्र के आचार्य भद्रबाहु और गौतम गोत्र के आचार्य स्थूलभद्र को मैं वन्दन करता हूँ।

I pay homage to Arya Yashobhadra of the Tungik *gotra*, Arya Sambhoot Vijay of the Madhar *gotra*, Acharya Bhadrabahu of the Prachin *gotra* and Acharya Sthoolbhadra of the Gautam *gotra*.

श्रुतकेवली अथवा चतुर्दश पूर्वधर परम्परा

विवेचन–भगवान महावीर की पट्टधर परम्परा में आर्य सुधर्मा व आर्य जम्बू दो केवलज्ञानी हुए। समय के साथ-साथ तथा तीर्थंकरों से बढ़ती दूरी के साथ-साथ ज्ञान का ह्रास आरम्भ हो गया और केवलज्ञान प्राप्त होने की संभावना समाप्त हो गई। जम्बू स्वामी के पश्चात्वर्ती पट्टधर आचार्य केवलज्ञानी तो नहीं हुए किन्तु उन्हें तीर्थंकर की वाणी अर्थात् चौदह पूर्व सहित द्वादशांगी

का सम्पूर्ण ज्ञान था। इस कारण वे श्रुतकेवली अथवा चतुर्दश पूर्वधर कहलाए। यह परम्परा आचार्य भद्रबाहु तक चलती रही।

आर्य यशोभद्र–आर्य यशोभद्र का जन्म तुंगिक गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में वी. नि. ३६ (४३३ वि. पू., ४९० ई. पू.) में हुआ था। वे कर्मकाण्डी वैदिक-परम्परा के अपने समय के मूर्धन्य विद्वान् थे। आर्य शय्यम्भव के प्रवचन से प्रभावित हो उन्होंने बाईस वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण की। चौदह वर्ष तक अपने गुरु के निर्देशन में उन्होंने सम्पूर्ण अंगशास्त्रों का पारायण किया। आर्य शय्यम्भव के देहावसान के पश्चात् ये छत्तीस वर्ष की आयु में आचार्य वने। पचास वर्ष तक सफलतापूर्वक संघ का संचालन कर वी. नि. १४८ (वि. पू. ३२१, ई. पू. ३७८) में इनका स्वर्गवास हुआ। आर्य यशोभद्र के समय में मगध में आठवें नन्द का राज्य था और ऐसी मान्यता है कि उन्होंने नन्द राजाओं को प्रतिबोध दिया था। आर्य यशोभद्र ने जैन-परम्परा में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया–परम्परा में प्रथम बार उन्होंने दो शिष्यों को आचार्य पद प्रदान किया।

आर्य संभूतविजय–आर्य यशोभद्र के ज्येष्ठ शिष्य संभूतविजय माढर गोत्रीय ब्राह्मण परिवार से थे। आर्य यशोभद्र के निकट सम्पूर्ण श्रुतज्ञान प्राप्त कर आप चतुर्दश पूर्वधर बने। इतिहास प्रसिद्ध मगध के अमात्य शकटार का परिवार इन्हीं का अनुयायी था। इनका देहावसान वी. नि. १५६ (३१३ वि. पू., ३७० ई. पू.) में हुआ।

आचार्य भद्रबाहु–आर्य यशोभद्र के दूसरे शिष्य थे आचार्य भद्रबाहु। इनका जन्म प्रतिष्ठानपुर (पैठन) के प्राचीन गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में वी. नि. ९४ (३७५ वि. पू., ४३२ ई. पू.) में हुआ था। अपनी कुल परम्परा अनुसार उन्होंने अनेक विद्याओं का अध्ययन किया, किन्तु वीतराग वाणी के प्रति उनका आकर्षण यथेष्ट होने से उन्होंने वी. नि. १३९ (३३० वि. पू., ३८७ ई. पू.) में आर्य यशोभद्र के पास श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली। सत्रह वर्ष की दीर्घ समयावधि तक अपने गुरु के सान्निध्य में उन्होंने सम्पूर्ण श्रुतज्ञान प्राप्त किया।

आर्य संभूतविजय के महाप्रयाण के पश्चात् वी. नि. १५६ में ये आचार्य बने और पट्टधर पद प्राप्त किया। यद्यपि इस विषय में कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है किन्तु अनेक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वानों तथा इतिहासकारों का मत है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य आचार्य भद्रबाहु के शिष्य थे। किन्तु काल-गणना के अनुसार वे इसी नाम के कोई अन्य आचार्य हो सकते हैं।

आर्य भद्रबाहु के समय में बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा। भिक्षोपजीवी श्रमणों को भी भिक्षा मिलने में कठिनाई होने लगी। साधु-संघ धीरे-धीरे छिन्न-भिन्न हो गया और समुद्र तट की ओर प्रयाण कर गया। अध्ययन और आगम आवृत्ति की चर्या बाधित हो गई और इस दीर्घ दुष्काल के प्रभाव से श्रुतज्ञान भी छिन्न-भिन्न हो गया। अकाल जब समाप्त हुआ तब समस्त साधु-संघ पाटलिपुत्र में एकत्र हुआ और जिस-जिस को जो कुछ याद था वह सब संकलित किया गया। बारहवें अंग, दृष्टिवाद का संकलन नहीं हो सका। भद्रबाहु को छोड़ सम्पूर्ण श्रुतज्ञान-सम्पन्न

कोई श्रमण बचा नहीं था। वे स्वयं नेपाल की पर्वतीय कन्दराओं में जाकर महाप्राण ध्यान में साधनारत थे। संघ के आग्रह पर वे कुछ योग्य पात्रों को अपना श्रुतज्ञान देने को सहमत हो गये। संघ ने पाँच सौ श्रमणों का चयन कर उनके पास भेजा। इस कठोर ज्ञान-साधना में केवल आर्य स्थूलभद्र पूर्णकाल तक संलग्न रह सके, अन्य सभी लौट आये। स्थूलभद्र भी चौदह पूर्वों में से केवल दस पूर्वों (दो वस्तु कम) का अर्थ ही प्राप्त कर सके शेष चार पूर्वों का मात्र पाठ ही उन्हें प्राप्त हुआ।

आचार्य भद्रबाहु ने द्वादशांगों की वाचना के अतिरिक्त छेदसूत्रों की रचना भी की। ये ग्रन्थ हैं–दशाश्रुतस्कन्ध। (कल्पसूत्र इस ग्रन्थ के आठवें अध्ययन का विस्तार है), बृहत्कल्प, व्यवहारसूत्र और निशीथ। अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु का देहावसान कलिंग प्रदेश के कुमार पर्वत पर ध्यानावस्था में वी. नि. १७० (२९९ वि. पू., ३५६ ई. पू.) में हुआ। आपके साथ ही अर्थ-वाचना की दृष्टि से श्रुतकेवली परम्परा का विच्छेद हो गया।

आचार्य स्थूलभद्र–गौतम गोत्रीय स्थूलभद्र का जन्म मगध के प्रसिद्ध ब्राह्मण अमात्य शकटाल (शकडाल, शकटार) के घर में हुआ था जो मगध राजनीति की धुरी थे। इनके सात बहनें थीं जो कालान्तर में आचार्य सम्भूतविजय के पास ही दीक्षित हो श्रमणियाँ बनीं। इनका छोटा भाई श्रीयक भी मगध राज्य-सेवा में था। युवावस्था में सांसारिक व्यवहार-कुशलता की शिक्षा हेतु अमात्य शकटाल ने स्थूलभद्र को परम सुन्दरी गणिका (नर्तकी) कोशा के पास भेजा और वे उस पर आसक्त हो वहीं रह गये। बारह वर्ष पश्चात् शकटाल की किसी षड्यन्त्र में मृत्यु के उपरान्त राजा ने उन्हें मन्त्री पद देने के लिए बुलाया। राजनैतिक कुचक्र में पिता की मृत्यु के समाचार से स्थूलभद्र की विचारधारा ही बदल गई। उन्होंने संसार त्याग कर श्रमण बनने का निश्चय कर लिया। वी. नि. १४६ (३२३ वि. पू., ३८० ई. पू.) में उन्होंने आचार्य संभूतविजय के पास दीक्षा ग्रहण की। अपने संयम की आत्म-परीक्षा हेतु गणिका कोशा के आवास पर पावस व्यतीत करने की घटना जैन इतिहास की प्रसिद्ध घटना है।

बारह वर्षीय अकाल के पश्चात् बिखरे श्रुतज्ञान के संकलन हेतु पाटलिपुत्र में श्रमण-सम्मेलन के आयोजक स्थूलभद्र ही थे। ग्यारह अंगों के संकलन के बाद 'दृष्टिवाद' का ज्ञान प्राप्त करने गये पाँच सौ श्रमणों में स्थूलभद्र में ही वह शक्ति और लगन थी कि वे भद्रबाहु से चौदह पूर्वों की वाचना पा सके। जब दस पूर्वों का सूत्रात्मक और अर्थात्मक ज्ञान वे प्राप्त कर चुके थे तभी एक घटना घट गई।

उनकी सात बहनें, जो स्वयं भी श्रमणियाँ थीं, उनकी श्रुत-आराधना देखने को उत्सुक हो उनके पास गईं। स्थूलभद्र यह बात अपने ज्ञान-बल से जान गये थे। अपनी बहनों के समक्ष अपनी साधना का चमत्कार दिखाने के लिए सिंह का रूप धर कर बैठ गये। बहनें भय से ठिठक गईं तो वे अपने स्वाभाविक रूप में लौट आये। बहनें अपने भाई की शक्ति से चमत्कृत व गर्वित हुईं।

आचार्य भद्रबाहु ने सब कुछ जान लिया। निष्प्रयोजन चमत्कार दिखाना संयम का स्खलन है। अतः वे स्थूलभद्र से रुष्ट हो गये और आगे आगम वाचना बन्द कर दी। स्थूलभद्र के क्षमा माँगने व अनुनय-विनय करने पर शेष चार पूर्वों का पाठ तो उन्हें बता दिया किन्तु अर्थ नहीं बताया। चतुर्दश पूर्वधरों की परम्परा यहीं समाप्त हो गई। स्थूलभद्र प्रथम दश पूर्वधर थे। सफलतापूर्वक संघ संचालन और श्रुतज्ञान संकलन के कार्यों को समर्पित आचार्य स्थूलभद्र का देहावसान वी. नि. २१५ (२५४ वि. पू., ३११ ई. पू.) में हुआ।

Shrut Kevali or Chaturdash Purvadhar Lineage

Elaboration—In the lineage of the heads of the order after *Bhagavan* Mahavir there were two omniscients—Arya Sudharma and Arya Jambu. With passage of time and increasing distance from the *Tirthankar* there was a constant depletion of knowledge and the possibilities of attaining omniscience ended. The post Jambu Swami *pattadhars* did not become omniscients but they absorbed the complete knowledge contained in the words of the *Tirthankar*; in other words the tweleve *Angas* including the fourteen *Purvas*. That is why they were popularly known as *Shrut-kewalis* or *Chaturdash-purvadhars*. This tradition continued upto Acharya Bhadrabehu.

Arya Yashobhadra—He was born in a Brahman family belonging to Tungik *gotra* in the year 36 A.N.M. (433 B.V., 390 B.C.). He was among the top scholars of his time in the ritualistic *Vedic* tradition. Deeply influenced by the discourses of Arya Shayyambhav, he took *Diksha* when he was twenty two years old. Under the direction of his guru he absorbed all the knowledge of the canons for fourteen years. He succeeded Arya Shayyambhav as Head of the Order at the age of thirty six years. After successfully managing the organization for fifty years he died in the year 148 A.N.M. (321 B.V., 378 B.C.). During his times the eighth Nand ruled over the state of Magadh. It is believed that he influenced the Nand rulers with his discourses. He brought about a revolutionary change in the Jain religious organization—for the first time Yashobhadra promoted two of his disciples to the position of *Acharya*.

Arya Sambhoot Vijay—The senior disciple of Arya Yashobhadra, Arya Sambhoot Vijay belonged to a Brahman family of Madhar *gotra*. He became a *Chaturdash Purvadhar* (the knower of the fourteen *Purvas* or sublime canons) after learning all the scriptural knowledge from Arya Yashobhadra. The members of the

family of famous historical figure Shaktar, the prime minister of Magadh state, were his followers. He died in the year 156 A.N.M. (313 B.V., 370 B.C.)

Acharya Bhadrabahu—The second disciple of Acharya Yashobhadra was Acharya Bhadrabahu. He was born in a Brahman family of Prachin *gotra* in Pratishthanpur (Paithan) in the year 94 A.N.M. (375 B.V., 432 B.C.). Following his family tradition he studied numerous subjects but due to his profound liking for the tenets of *Vitaraga* (the Detached or the *Tirthankar*) he became an ascetic disciple of Acharya Yashobhadra in the year 139 A.N.M. He studied under his guru for seventeen long years to acquire all scriptural knowledge.

After the death of Arya Sambhoot Vijaya in the year 156 A.N.M. *Acharya* Bhadrabahu became the Head of the Order. Although there is no concrete evidence, many scholars and historians of international fame opine that emperor Chandragupta Maurya was a disciple of *Acharya* Bhadrabahu. When we consider the periods of these two individuals it is evident that it must be some other *Acharya* of the same name.

During Bhadrabahu's time there was a devastating twelve-year-drought. Collecting alms became difficult for *shramans* whose only means of living was alms. The ascetic order disintegrated and strayed towards the sea shore. The system of studying and memorizing the scriptures was disrupted. This long period of hardships caused the diffusion of scriptural knowledge. When the conditions improved the ascetic order assembled at Patliputra and made the Herculean effort of compiling all that remained in the memory of the then extant ascetics. The twelfth *Anga* titled *Drishtivad* could not be compiled. Besides Bhadrabahu there was no ascetic scholar left, who had complete knowledge of the canons. Bhadrabahu was spending his time in seclusion in Nepal, busy with his higher spiritual practices. On the request of the *Sangh* he agreed to impart all his knowledge to some able students. The *Sangh* selected five hundred brilliant ascetics for this task and sent them to Nepal. Only Sthulibhadra could complete this tough course, all the others returned much earlier. Even Sthulibhadra could not reach the prescribed level of discipline and as such he could absorb only ten (two chapters less) of

the fourteen *Purvas*, complete with their text and meaning. Of the remaining four he could only memorize the text.

Besides imparting the education of the twelve canons, Bhadrabahu also wrote the *Chheda Sutras—Dashashrutaskandha* (The *Kalpasutra* is an elaboration of the eighth chapter of this work), *Vrihatkalpa, Vyavahar Sutra* and *Nisheeth*. He died in the year 170 A.N.M. (299 B.V., 356 B.C.). With him the *Shrutkevali* lineage (those who knew both the text and the meaning of all the fourteen *Purvas*) became extinct.

Acharya Sthoolibhadra—He was born in a famous Brahman family of Gautam *gotra* living in Magadh. He was the son of the illustrious minister Shakatar (Shakatal/Shakadal) who was the back bone of Magadh politics. He had seven sisters, who later became ascetics under *Acharya* Sambhoot Vijay. His younger brother, Shriyak, was in the state services. When he was young, Sthulibhadra's father sent him to the divinely beautiful courtesan Kosha to learn various facets of social behaviour. Infatuated with the beauty of Kosha, Sthulibhadra stayed with her. It was only after twelve years that he came out of her house, when the king invited him to accept the post of prime minister, vacated due to the death of Shakatar. The news of the death of his father caused by some political conspiracy brought about a marked change in Sthulibhadra's attitude. He resolved to renounce the social life to become an ascetic. In the year 146 A.N.M. (323 B.V., 380 B.C.) he took *diksha* from *Acharya* Sambhoot Vijay. The story of his spending a monsoon-stay at Kosha's residence in order to test his determination and discipline is a popular saga in Jain history.

Sthulibhadra was the organizer of the conference of ascetics called for the compilation of the canonical knowledge scattered due to the twelve year drought. After compiling the eleven *Angas*, five hundred ascetics were sent to Bhadrabahu for learning the twelfth, *Drishtivad*. Only Sthulibhadra had the capability and determination to learn *Drishtivad*. When he had acquired the complete knowledge of the text and the meaning of its ten chapters an incident occurred that put an abrupt stop to his learning.

His seven sisters, who had become ascetic, became curious about his endeavour and planned a visit to see it for themselves. With the

help of his knowledge, Sthulibhadra came to know about their planned visit. In order to display his powers and to give his sisters a surprise Sthulibhadra transformed himself into a lion and waited for them. When his sisters came and stood rooted at the spot with fear he regained his natural form. The sisters were astonished and filled with pride at this display of divine power by their brother.

Acharya Bhadrabahu came to know of all these happenings. The display of miracles without some dire need is considered laxness in the ascetic conduct. The guru got annoyed with Sthulibhadra and stopped any further teaching of the *Agams*. After Sthulibhadra sincerely sought his forgiveness and beseeched him to continue the lessons Sthulibhadra was given just the text of the remaining four *Purvas* and not the meaning. The *Chaturdash Purvadhar* lineage ended here. Sthulibhadra was the first *Dash Purvadhar* (knower of the ten *Purvas*). He was completely devoted to the tasks of organizing the religious order and compiling the canonical knowledge. Sthulibhadra died in the year 215 A.N.M. (254 B.V., 311 B.C.).

२७ : *एलावच्चसगोत्तं, वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च।*
तत्तो कोसिअ-गोत्तं, बहुलस्स सरिव्वयं वंदे॥

अर्थ–एलापत्य गोत्रीय महागिरि और सुहस्ती को वन्दन करता हूँ और फिर कौशिक गोत्रीय बहुल और उनके समान आयु वाले बलिस्सह को वन्दना करता हूँ।

I pay homage to Mahagiri of the Elapatya *gotra* and Suhasti, and then to Ballissaha of the Kaushik *gotra* who was equal in age to Bahul.

विवेचन–आचार्य स्थूलभद्र से आरम्भ हुई दश पूर्वधर परम्परा लगभग २५० वर्षों तक चली और उसमें एक से एक प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य हुए। अपने प्रभावक और तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण ये युग-प्रधान के रूप में प्रसिद्ध हुए।

आर्य महागिरि–एलापत्य गोत्रीय आर्य महागिरि का जन्म वी. नि. १४५ (३२४ वि. पू., ३८१ ई. पू.) में होने का अनुमान है। इनके माता-पिता के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है, केवल यही उल्लेख मिलता है कि इनकी शैशव अवस्था आर्या यक्षा के निकट बीती थी। इन्होंने आचार्य स्थूलभद्र के निकट ३० वर्ष की आयु में वी. नि. १७५ (२८४ वि. पू., ३४१ ई. पू.) में दीक्षा ग्रहण की। लगभग चालीस वर्ष तक अपने गुरु के निकट इन्होंने सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का अभ्यास किया और दश पूर्वधर बने। आर्य स्थूलभद्र के देहावसान के पश्चात् वी. नि. २१५ में ये पट्टधर बने। मान्यता यह है कि आर्य स्थूलभद्र ने इन्हें तथा आर्य सुहस्ति दोनों को ही आचार्य पद दे दिया

था किन्तु पट्टधर आर्य महागिरि ही थे। अपने गुरुभाई आर्य सुहस्ति तथा अन्य शिष्यों को श्रुतज्ञान दे विद्वान् बनाने के पश्चात् आर्य महागिरि विशेष साधनाओं में संलग्न हो गये किन्तु संघ के साथ ही विहार करते रहे। वे विशुद्ध आचार के सबल समर्थक व पोषक थे तथा इसमें किसी भी प्रकार की शिथिलता दिखाई पड़ने पर आर्य सुहस्ति को टोकने में भी संकोच नहीं करते थे। इनका स्वर्गारोहण वी. नि. २४५ (२२४ वि. पू., २८१ ई. पू.) हुआ। ऐतिहासिक काल गणना के अनुसार आर्य महागिरि का काल सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उनके पुत्र बिन्दुसार का राज्य काल था।

आर्य सुहस्ती—वाशिष्ट गोत्रीय आर्य सुहस्ती का जन्म वी. नि. १९१ (२७८ वि. पू., ३३५ ई. पू.) में होने का अनुमान है। आर्य महागिरि के समान ही इनके माता-पिता का नामोल्लेख भी कहीं नहीं मिलता और इनकी शैशव अवस्था भी आर्या यक्षा की देखरेख में बीती थी। इनके दीक्षा समय के विषय में मतभेद है किन्तु अनुमानतः वह वी. नि. २१४-२१५ (२५५-२५४ वि. पू.,) में हुई होगी। अतः इन्होंने श्रुतज्ञान का अभ्यास आर्य स्थूलभद्र तथा आर्य महागिरि दोनों से प्राप्त किया होगा ऐसा प्रतीत होता है। आर्य महागिरि के साथ ही आचार्य पद दिये जाने के कारण तथा उनके विशिष्ट साधनाओं में संलग्न रहने के कारण ऐसा लगता है कि संघ व्यवस्था का कार्य आर्य सुहस्ती ही संचालित करते होंगे। वी. नि. २४५ (२२४ वि. पू.,) में आर्य महागिरि के देहावसान के बाद उनका स्वतन्त्र शासनकाल का आरम्भ हुआ। उन्हीं के शासनकाल में सम्राट् बिन्दुसार के परलोक गमन के पश्चात् सम्राट् अशोक का शासनकाल आरम्भ हुआ। अशोक के दीर्घ शासनकाल के पश्चात् उनका पौत्र सम्प्रति सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। आर्य सुहस्ती ने सम्प्रति को प्रतिबोध दिया। सम्राट् सम्प्रति की जैनधर्म के प्रति आस्था बहुत गहरी थी। उनका राज्यकाल जैनधर्म का स्वर्णकाल माना जाता है। सम्राट सम्प्रति ने अपने सम्पूर्ण अधिकार क्षेत्र में जैन धर्म का प्रचुर प्रचार-प्रसार करवाया।

अपना ४६ वर्षीय आचार्य काल पूर्ण कर एक विशाल सुगठित शिष्य परिवार को छोड़ वी. नि. २९१ (१७८ वि. पू., २३५ ई. पू.) में आपने महाप्रयाण किया।

आचार्य सुहस्ती ने संगठनात्मक व्यवस्था के उद्देश्य से आचार्य पद के आवश्यक कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के तीन विभाजन किये—गणधरवंश, वाचकवंश तथा युग-प्रधान परम्परा। जैनधर्म-संघ के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। काल प्रभाव से उत्पन्न तथा संभावित परिवर्तनों को पहचान कर संघ के बिखरने की संभावनाओं के प्रतिकार के लिये यह पहली संगठनात्मक परिकल्पना थी।

आचार्य बलिस्सह—कौशिक गोत्रीय आर्य बलिस्सह के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। ये आर्य महागिरि के शिष्य थे तथा उन्हीं के समान आचार-साधना पर विशेष निष्ठा रखते थे। आर्य महागिरि के देहावसान के पश्चात् ये उनके गण के प्रमुख गणाचार्य माने गये।

आर्य सुहस्ती ने इन्हें श्रुतज्ञान के प्रौढ़ विद्वान् होने के कारण सम्पूर्ण संघ का वाचनाचार्य नियुक्त किया। इन्होंने आगम ज्ञान के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया तथा श्रुतज्ञान को

व्यवस्थित करने में भी अग्रणी भूमिका निभाई। अनुमानतः इनका देहावसान वी. नि. ३२९ में हुआ। आचार्य बलिस्सह का २४ वर्ष का दीर्घ वाचनाचार्य काल भारतीय इतिहास में बड़ी उथल-पुथल का काल रहा है। मौर्य सम्राटों, बिन्दुसार, अशोक व सम्प्रति के सुवर्ण काल और फिर क्रमशः पतन के पश्चात् पुष्यमित्र शुंग का क्रूर राज्यकाल आदि सभी आर्य बलिस्सह ने देखे। जैन संस्कृति के दो सर्वश्रेष्ठ काल व क्षेत्र सम्राट् सम्प्रति तथा कलिंगपति महामेघवाहन खारवेल-भी आर्य बलिस्सह के समय की घटनाएँ हैं।

Elaboration—The lineage of *Dash Purvadhar* starting with *Acharya* Sthulibhadra continued for about two hundred fifty years. It comprised of a galaxy of exemplary and great scholars each of whom became famous as *Yuga-pradhan* (leader of the era) because of his towering personality and telling influence.

Arya Mahagiri—The estimated period of the birth of Arya Mahagiri of Elapatya *gotra* is 145 A.N.M. (324 B.V., 381 B.C.). No information is available about his parents. The only mention about his early age is that he spent his childhood with Arya Yaksha. At the age of thirty years he was initiated by *Acharya* Sthulabhadra in the year 175 A.N.M. (284 B.V., 341 B.C.). For about forty years he studied under his guru and acquired all the available scriptural knowledge to become a *Dash Purvadhar*. After the death of *Acharya* Sthulibhadra he became the Head of the Order in the year 215 A.N.M. It is believed that *Acharya* Sthulibhadra promoted both him and Arya Suhasti to the position of *Acharya* but the Head of the Order was Arya Mahagiri. After imparting the scriptural knowledge to his colleague Arya Suhasti, and the disciples, Arya Mahagiri commenced his special spiritual practices. However, he moved along with the group. He was a strict follower and supporter of purity of conduct and never hesitated in advising Arya Suhasti if he saw any laxness. He died in the year 245 A.N.M. (224 B.V., 281 B.C.). According to historical chronology he was contemporary of both emperor Chandragupta Maurya and his son Bindusar.

Arya Suhasti—The estimated period of the birth of Arya Suhasti of Vashishta *gotra* is 191 A.N.M. (278 B.V., 335 B.C.). As in the case of Arya Mahagiri, no information is available about his parents. The only mention about his early age is that he spent his childhood with Arya Yaksha. There is a difference of opinion about the period of his initiation. However, the probable date should be somewhere between

214-215 A.N.M. (255-254 B.V.,312-311 B.C.). Thus it appears that he must have acquired the scriptural knowledge from Arya Sthulibhadra as well as Arya Mahagiri. As he was made an *Acharya* along with Arya Suhasti, who commenced his higher practices, he must have taken over the responsibility of managing the *Sangh*. His independent management of the *Sangh* started in the year 245 A.N.M. (224 B.V., 281 B.C.) when Arya Mahagiri died. It was during his reign over the religious organization that Bindusar died and Ashoka became the emperor. After the long reign of Ashoka, his grandson Samprati became the emperor. Arya Suhasti gave discourse to Samprati and made him a devotee. Emperor Samprati had great faith in Jain religion. His reign is known as the golden period in Jain history. Emperor Samprati enthusiastically worked for the spread of Jainism throughout the area under his rule.

After remaining *Acharya* for 46 years and leaving behind a well knit family of large number of disciples he died in the year 291 A.N.M. (178 B.V., 235 B.C.).

For the purpose of proper management of the religious order Arya Suhasti made three divisions of the duties and rights resting in the position of *Acharya—Ganadhar lineage, Vachak* lineage and *Yuga-pradhan* lineage. It was an important mile stone in the history of the Jain religious organization. This was the first attempt to evolve a management system aimed at envisaging and countering the possible pressures of changing times that are responsible for disintegration of the religious organization.

Acharya Ballissaha—Not much information is available about *Acharya* Ballissah of the Kaushik *gotra*. He was a disciple of Arya Mahagiri and, like him, gave a special stress on practice of pure conduct. After the death of Arya Mahagiri he became the *Ganacharya* (group chief) of his group.

Recognizing him as the most able scholar of scriptural knowledge, Arya Suhasti made him the *Vachanacharya* (the head of the scriptural scholars). He made important contribution towards spread of the scriptural knowledge and played a leading role in compiling and editing of the scriptures. The estimated date of his demise is 329 A.N.M. The twenty four year period when *Acharya* Ballissah was the *Vachanacharya* was a period of turmoil in Indian history. *Acharya*

Ballissah saw the golden periods of the Maurayan emperors Chandragupta, Bindusar and Samprati, there gradual fall followed by the cruel rule of Pushaymitra Shung. He was a witness to the two best periods in Jain history—the reigns of emperor Samprati and Maha Meghvahan Kharvel of Kalinga.

२८ : *हारियगुत्तं साइं च वंदिमो हारियं च सामज्जं।*
वंदे कोसियगोत्तं, संडिल्लं अज्जजीयधरं॥

अर्थ–हारीत गोत्रीय स्वाति को, हारीत गोत्रीय श्री श्यामाचार्य को वन्दन करता हूँ और वन्दना करता हूँ कौशिक गोत्र के आर्य जीतधर शाण्डिल्य को।

I pay homage to Swati of Hareet *gotra*, Shyamacharya also of the Hareet *gotra*, and then to Arya Jeetdhar Shandilya of the Kaushik *gotra*.

विवेचन–आचार्य सुहस्ती के पश्चात् कार्य-विभाजन के अनुसार आचार्यों की विभिन्न पट्टावलियाँ मिलती हैं जिनमें अनेक महत्त्वपूर्ण आचार्यों के नाम हैं। यहाँ मुख्यतया वाचक वंश (आगम वाचना देने वाले) के आचार्यों के नाम हैं।

आर्य स्वाति–आचार्य बलिस्सह के पश्चात् उनके शिष्य आर्य स्वाति वाचनाचार्य बने। ये हारीत गोत्रीय थे। इनके विषय में जानकारी का अभाव है। इनका स्वर्गवास वी. नि. ३३५-३६ (१३४-१३३ वि. पू., १९२ ई. पू.) में अनुमानित है।

श्यामाचार्य–इनका जन्म हारीत गोत्रीय परिवार में वी. नि. २८० में हुआ। २० वर्ष की अवस्था में इन्होंने आचार्य स्वाति के पास दीक्षा ग्रहण की। ३५ वर्ष की ज्ञान-साधना के पश्चात् वी. नि. ३३५ में वाचनाचार्य तथा युग-प्रधान बने। श्यामाचार्य द्रव्यानुयोग के अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्हीं को निगोद व्याख्याता कालकाचार्य प्रथम माना जाता है। सौधर्मेन्द्र ने सीमंधर स्वामी से आपके ज्ञान की प्रशंसा सुनकर निगोद विषयक प्रश्न कर परम संतोष प्राप्त किया था। आपने ही पन्नवणा–प्रज्ञापना सूत्र की रचना की थी जो तत्त्वज्ञान का अनूठा भण्डार माना जाता है। श्यामाचार्य का कार्यकाल भारतीय इतिहास में श्रमण परम्पराओं के विरोध का काल रहा है। पुष्यमित्र शुंग द्वारा यज्ञ परम्परा की पुनर्स्थापना तथा जैन व बौद्धों पर अत्याचार के इस कठिन काल में श्यामाचार्य ने श्रमण परम्परा को स्थिरता प्रदान करने का कठिनतम कार्य किया। आपका देहावसान वी. नि. ३७६ (९३ वि. पू., १५० ई. पू.) में हुआ।

आर्य शाण्डिल्य (स्कंदिलाचार्य)–श्यामाचार्य के निधन के पश्चात् वी. नि. ३७६ में आर्य शाण्डिल्य वाचनाचार्य तथा युग-प्रधानाचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हुए। इनका जन्म वी. नि. ३०६ में हुआ था तथा दीक्षा वी. नि. ३२८ (१४१ वि. पू.) में। ऐसी मान्यता है कि जीत मर्यादा नामक शास्त्र की रचना करने तथा जीत व्यवहार की प्रतिपालना में विशेष जागरूक रहने के

कारण इन्हें आर्य जीतधर विशेषण से विभूषित किया गया। ये शाण्डिल्यगच्छ के आदि पुरुष थे, जो कालान्तर में चन्द्रगच्छ में मिल गया। इनके विषय में अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है। आपका देहावसान वी. नि. ४१४ (५४ वि. पू., १११ ई. पू.) में हुआ।

Elaboration—Of the post Suhasti period, various lists of lineage *(pattavalis)*, based on the divisions of duties, are available. These include names of many important *Acharyas*. Here mainly those *Acharyas* who belonged to the *Vachak-vansh* (those who taught the *Agams*) have been mentioned.

Arya Swati—After *Acharya* Ballissaha his disciple Arya Swati became the *Vachanacharya*. He belonged to Hareet *gotra*. Hardly any information about him is available. The estimated period of his death is between 335-336 A.N.M. (134-133 B.V., 192 B.C.).

Shyamacharya—He was born in a family belonging to Hareet *gotra* in the year 280 A.N.M. He was initiated into the order by *Acharya* Swati when he was 20 years old. After a thirty five year long period of studies he became the *Vachanacharya* as well as the *Yuga-pradhan*. Shyamacharya was the leading scholar of *Dravyanuyoga* (Jain metaphysics) of his time. He is believed to be Kalakacharya the First, the elaborator of *Nigod* (the lowest or the dormant form of life). Hearing the praise of his knowledge from Simandhar Swami, Saudharmendra asked questions regarding *Nigod* from Shyamacharya and was satisfied. He was the author of *Pannavana Sutra (Prajnapana Sutra)* which is believed to be a unique compendium of knowledge of the fundamentals. The period of Shyamacharya is the historical period of antipathy for Jain religion. During this period of re-establishing of the ritual *Yajna* tradition and the torture of Jains and Buddhists by Pushyamitra Shung, Shyamacharya accomplished the impossible feat of imparting stability to the *Shraman* tradition. He died in the year 376 A.N.M. (93 B.V., 150 B.C.).

Arya Shandilya (Skandilacharya)—After the death of Shyamacharya in 376 A.N.M. Arya Shandilya became the *Vachanacharya* and *Yuga-pradhanacharya*. He was born in the year 306 A.N.M. and initiated in the year 328 A.N.M. (141 B.V., 198 B.C.). It is believed that he was honoured with the title of Jeetdhar Arya because he wrote a scripture titled *Jeet Maryada* and was very

particular about following the *Jeet* conduct. He was the founder of the *Shandilya Gaccha* which was later amalgamated with *Chandra Gaccha*. No more information about him is available. He died in the year 414 A.N.M. (54 B.V., 111 B.C.).

२९ : *ति-समुद्द-खाय-कित्तिं, दीव-समुद्देसु गहिय-पेयालं।*
वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय-समुद्दगंभीरं॥

अर्थ—जिनकी कीर्ति तीन समुद्रों तक फैली हुई थी, जिन्हें अनेक द्वीपों और समुद्रों पार प्रामाणिकता, विश्वसनीयता प्राप्त थी (अथवा जो द्वीप सागरप्रज्ञप्ति के विशिष्ट विद्वान् थे) ऐसे आर्य समुद्र को वन्दना करता हूँ।

I pay homage to Arya Samudra whose fame had spread right up to the three seas and whose credibility was established even beyond many islands and seas (or who was a distinguished scholar of Dveep Sagar Prajnapti).

विवेचन—आर्य समुद्र—आर्य शाण्डिल्य के पश्चात् वी. नि. ४१४ में आर्य समुद्र वाचनाचार्य बने। आपके विषय में गम्भीर ज्ञान गरिमा तथा भूगोल ज्ञान के अतिरिक्त कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। तीन समुद्रों तक ख्यातिप्राप्त होने के उल्लेख से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आपने सम्पूर्ण भारतवर्ष की व्यापक यात्राएँ की होंगी। कालकाचार्य कथा के अनुसार सागरसूरि (समुद्रसूरि) सुवर्णभूमि (जावा, सुमात्रा, इंडोनेशिया) द्वीप में भी विहार किया था। आपका स्वर्गारोहण वी. नि. ४५४ (१५ वि. पू., ७२ ई. पू.) में हुआ। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर के गुरु वृद्धवादी आपके ही शिष्य थे।

Elaboration—Arya Samudra—After Arya Shandilya Arya Samudra became the *Vachanacharya* in the year 414 A.N.M. He was a great and respected scholar and his field of special expertise was geography. No more information about him is available. The mention that his fame spread right up to the three seas indicates that he must have extensively toured all around India. According to the Kalakacharya Katha, Sagar Suri (Samudra Suri) also toured in Suwarna Bhoomi Dveep (today known as—Java, Sumatra, Indonesia). He died in the year 454 A.N.M. (15 B.V., 72 B.C.). Vriddha Vadi, the guru of *Acharya* Siddhasen Divakar, was his disciple.

३० : *भणगं करगं झरगं, पभावगं णाण-दंसण-गुणाणं।*
वंदामि अज्जमंगुं, सुय-सागरपारगं धीरं॥

अर्थ—जो समस्त कालिक सूत्रों के अध्येता थे और सूत्रानुसार चर्या करने वाले थे। जो धर्मध्यान के अभ्यासी तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र के गुणों को प्रदीप्त करने वाले थे और जो श्रुत-सागर के पारगामी थे, ऐसे धैर्य-सम्पन्न आचार्य मंगु को वन्दना करता हूँ।

I pay homage to Acharya Mangu, the embodiment of serenity, who studied the *Kalik Sutras* (the scriptures that are studied or recited only at a prescribed time of the day) and followed the conduct defined in the scriptures, who indulged in spiritual and meditational practices and enhanced virtues of knowledge, perception and conduct, who had also swam across the sea of scriptures.

विवेचन—आर्य मंगु—आचार्य समुद्र के देहावसान के पश्चात् वी. नि. ४५४ में आर्य मंगु वाचनाचार्य पद पर आसीन हुए। ये 'कषाय पाहुड' के रचनाकार दिगम्बर आचार्य यति वृषभ के विद्यागुरुओं में से एक थे। इनके विषय में अन्य सूचनाओं का अभाव है। अवन्ती-नरेश विक्रमादित्य आपके समकालीन बताये जाते हैं।

Elaboration—Acharya Mangu—After the death of *Acharya* Samudra in 454 A.N.M. Arya Mangu became the *Vachanacharya*. He was among one of the teachers of the *Digambar Acharya* Yati Vrishabh, the author of *Kashaya Pahud*. No further information about him is available. It is said that he was a contemporary of King Vikramaditya of Avanti.

३१ : *वंदामि अज्जधम्मं, तत्तो वंदे य भद्दगुत्तं च।*
तत्तो य अज्जवइरं, तव-नियमगुणेहिं वइरसमं॥

अर्थ—आर्य धर्म को और तब आर्य भद्रगुप्त को वन्दन करता हूँ और फिर तप, नियम आदि गुणों से वज्र समान बने आर्य वज्र को वन्दना करता हूँ।

I pay homage to Arya Dharma and to Arya Bhadragupt and then to Arya Vajra who had become diamond-hard (*vajra*) through virtues like austerity and discipline.

विवचेन—चूर्णिकार जिनदासगणि महत्तर, वृत्तिकार आचार्य हरिभद्रसूरि तथा टीकाकार मलयगिरि ने ३१ व ३२वीं गाथाओं को प्रक्षिप्त माना है किन्तु ये प्राचीन प्रतियों में उपलब्ध हैं। आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज के अनुसार इन गाथाओं में चर्चित आचार्य अपने समय के महान् प्रभावक युग-पुरुष और आगमों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनकी विशिष्ट प्रतिभाओं के कारण इन युग-प्रधान आचार्यों को वाचक वंश के न होते हुए भी वाचनाचार्य माना गया होगा।

आर्य धर्म–आर्य शाण्डिल्य के पश्चात् आर्य रेवतीमित्र और उनके पश्चात् आर्य धर्म युग-प्रधानाचार्य बने। आपका जन्म वी. नि. ३९२ (७७ वि. पू., १३४ ई. पू.) में हुआ था। १२ वर्ष की आयु में दीक्षित होने के पश्चात् ४० वर्ष तक श्रमण-साधना के बाद वी. नि. ४५० (१९ वि. पू., ७६ ई. पू.) में ये युग-प्रधानाचार्य बने और वी. नि. ४९४ (२५ वि., ३२ ई. पू.) में स्वर्गवासी हुए।

आर्य भद्रगुप्त–आर्य धर्म के पश्चात् आर्य भद्रगुप्त युग-प्रधानाचार्य बने। आपका जन्म वी. नि. ४२२ (४७ वि. पू., १०४ ई. पू.) में, दीक्षा वी. नि. ४४९ (१७ वि. पू., ७४ ई. पू.) में हुई। ४५ वर्ष की आयु में वी. नि. ४९४ में आपको युग-प्रधानाचार्य पद मिला और वी. नि. ५३३ (६४ वि., ७ ई.) में आपका स्वर्गवास हुआ। आप ज्योतिष विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् थे। ख्यातनामा वज्रस्वामी के आप शिक्षा गुरु थे।

आर्य वज्रस्वामी–परम मेधावी तथा अन्तिम दश पूर्वधर आर्य वज्रस्वामी के विषय में मान्यता है कि उन्हें जन्म के पश्चात् जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया था। यह अद्भुत महापुरुष संभवतः जैन इतिहास में अकेला उदाहरण है जिसको ६ माह की आयु में माता ने भिक्षादान स्वरूप अपने श्रमण पिता को ही दे दिया गया था। इनका लालन-पालन श्रमणियों के सान्निध्य में हुआ। जिसके फलस्वरूप अल्पायु में ही इन्होंने अपार श्रुतज्ञान आत्मसात कर लिया था। अवन्ती के श्रेष्ठि धन के पौत्र तथा धनगिरि के पुत्र आर्य वज्र अल्पायु में ही अपने साथी श्रमणों को वाचना देने लगे थे। पूर्व ज्ञान की प्राप्ति हेतु इन्हें अपने दीक्षा गुरु आर्य सिंहगिरि द्वारा आर्य भद्रगुप्त के पास भेजा गया। दश पूर्वों का ज्ञान धारण करने के पश्चात् वे आर्य सिंहगिरि के पास लौट आये। वी. नि. ५४८ (७९ वि., २२ ई.) में उन्हें आचार्य पद पर सुशोभित किया गया। आचार्य वज्र ने धर्म प्रभावना हेतु विशाल क्षेत्र की यात्राएँ कीं तथा अपने गम्भीर ज्ञान व कठोर संयम से जनमानस को प्रेरित किया। वज्र स्वामी का स्वर्गगमन वी. नि. ५८४ (११५ वि., ५८ ई.) में दक्षिण भारत में हुआ। चीनी यात्री ह्वेनसांग अपनी भारत यात्रा के समय इनसे मिला था और इनके ज्योतिष ज्ञान से बहुत प्रभावित हुआ था। इस बात की चर्चा उसने अपने यात्रा प्रसंगों में की है।

Elaboration—In the opinion of commentators Jindasgani Mahattar (*Churnikar*), *Acharya* Haribhadra Suri (*Vrittikar*) and Malayagiri (*Tikakar*) verses 31 and 32 are interpolated. However, they are available in the ancient manuscripts and according to *Acharya* Shri Hastimal ji M., the *Acharyas* mentioned therein were great scholars of *Agams* and towering personalities of their respective times. For their special talents these *Yuga-pradhanacharyas* must have been accepted as *Vachanacharyas* in spite of their not belonging to the *Vachak*-lineage.

Arya Dharma—Arya Shandilya was succeeded by Arya Revatimitra and then by Arya Dharma as *Yuga-pradhanacharya*. He was born in the year 392 A.N.M. (77 B.V., 134 B.C.). After getting

initiated at the age of 12 years and a 40 year long period of ascetic practices he became *Yuga-pradhanacharya* in the year 450 A.N.M. (19 B.V., 76 B.C.). He died in the year 494 A.N.M. (25 V., 32 B.C.). (V. = year of the Vikram calendar)

Arya Bhadragupt—Arya Dharma was succeeded by Arya Bhadragupta as *Yuga-pradhanacharya*. He was born in the year 422 A.N.M. (47 B.V., 104 B.C.) and was initiated in the year 449 A.N.M. (17 B.V., 74 B.C.). At the age of 45 years he became *Yuga-pradhanacharya* in the year 494 A.N.M. and he died in the year 533 A.N.M. (64 V., 7 A.D.). He was a great scholar of astrology and the teacher of the renowned Acharya Vajra Swami.

Arya Vajra Swami—It is believed that the extremely intelligent last *Dashapurvadhar*, Arya Vajra Swami had acquired *Jati-smaran Jnana* (the knowledge about earlier births). This unique person is probably the only example in Jain history who was given as alms at the age of 6 months to his own father who was an ascetic. He was brought up in the midst of *Shramanis* (female ascetics), as a result of which he had acquired the voluminous knowledge of scriptures at an early age. The grand-son of merchant Dhan of Avanti and the son of Dhanagiri, Arya Vajra had started giving scriptural discourses to his colleague *shramans* (Jain ascetics) when he was still a minor. For acquiring the knowledge of *Purvas* his guru Arya Simhagiri sent him to Arya Bhadragupta. After absorbing the knowledge of ten *Purvas* he returned to Arya Simhagiri. He was awarded the status of *Acharya* in the year 548 A.N.M. (79 V., 22 A.D.). For the spread of religion *Acharya* Vajra toured extensively and inspired the masses with his profound knowledge and strict austerities. *Acharya* Vajra Swami died somewhere in southern India in the year 584 A.N.M. (115 V., 58 A.D.). The famous Chinese traveller Huentsang had met him during his travels to India and was highly impressed with his knowledge of astrology. He has mentioned this in his travelogue.

३२ : *वंदामि अज्जरक्खिय-खवणे, रक्खिय-चारित्तसव्वस्से।*
रयण-करंडगभूओ-अणुओगो रक्खिओ जेहिं॥

अर्थ—जिन्होंने स्वयं के तथा अन्य सभी संयमियों के चारित्ररूपी सर्वस्व की रक्षा की और साथ ही रत्नों की पेटी के समान अनुयोग (श्रुतज्ञान सम्पदा का विषयानुसार विशिष्ट विभाजन) की रक्षा की, ऐसे विराट् तपस्वी क्षपण आर्य रक्षित को वन्दना करता हूँ।

I pay homage to the great austere ascetic Arya Rakshit, who protected the all important possession of right conduct belonging to him and the other practicers; who also protected the jewellery-chest like *Anuyog* (the subjectwise classified divisions of vast scriptural knowledge).

विवेचन—श्वेताम्बर परम्परा की मान्यतानुसार जैन श्रुतज्ञान के ह्रास का दूसरा युग आर्य वज्र के पश्चात् आरम्भ होता है। दश पूर्वों का ज्ञान आर्य वज्र तक विद्यमान था किन्तु उनके पश्चात् क्रमशः उसका ह्रास होने लगा। काल के प्रभाव से मेधा व धारणा शक्ति दोनों की हीनता बढ़ने लगी थी और विद्यमान श्रमण किसी प्रकार श्रुतज्ञान को यथासम्भव बचाये रखने के उपाय खोजने में जुट गये थे।

आर्य रक्षित—आर्य रक्षित का जन्म मालव प्रदेश के दशपुर (मन्दसौर) निवासी ब्राह्मण सोमदेव के घर में वी. नि. ५२२ (५३ वि., ४ ई. पू.) में हुआ था। इनकी माता जैनधर्मावलम्बी थी इस कारण वैदिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसने ही इन्हें जैन श्रुतज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी। ब्राह्मण कुमार रक्षित आचार्य तोषलि-पुत्र के पास गये और ज्ञान दान की याचना की। तोषली पुत्र ने जब उन्हें बताया कि जब तक वे दीक्षित नहीं होते उन्हें श्रुतज्ञान नहीं दिया जा सकता। दृढ़मना रक्षित ने तत्काल दीक्षा ग्रहण की और आचार्य के साथ वहाँ से प्रस्थान कर गये। अल्प समय में ही ग्यारह अंगों का अध्ययन कर रक्षित ने तोषलि-पुत्र को बहुत प्रभावित किया और उन्होंने दश पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने हेतु आर्य रक्षित को वज्रस्वामी के पास भेज दिया। आर्य रक्षित जैसा अपने काल का विशिष्ट मेधावी व्यक्ति भी नौ पूर्वों का सम्पूर्ण तथा दसवें पूर्व का आंशिक ज्ञान ही प्राप्त कर सका। आर्य रक्षित पुनः आचार्य तोषलि-पुत्र के पास लौट आये। वी. नि. ५४४ में तोषलि-पुत्र ने उन्हें युग-प्रधान पद देकर आचार्य बना दिया।

आर्य रक्षित ने काल के साथ मेधा व शक्ति के ह्रास की प्रक्रिया को पहचाना और समस्त श्रुतज्ञान को चार विषयों में विभक्त कर अध्येता के लिए अध्ययन प्रक्रिया को सरल बनाने का महान् व क्रान्तिकारी कार्य किया। इस विभाजन से पूर्व क्रमशः एक-एक आगम की वाचना दी जाती थी और प्रत्येक आगम के सूत्र, तत्त्वज्ञान, आचार धर्म, पालनकर्त्ताओं के उदाहरण, साधना क्षेत्र के नियम आदि एक साथ बताये जाते थे। आर्य रक्षित ने समस्त अंग वाङ्मय को चार अनुयोगों में विभाजित कर दिया। ये विभाजन हैं—चरणकरणानुयोग, धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग तथा द्रव्यानुयोग। इस विभाजन से पश्चात्वर्ती अध्येताओं तथा व्याख्या करने वालों को बहुत लाभ मिला। शास्त्राभ्यास का मार्ग सरल बना और लोप होते श्रुतज्ञान को यथासम्भव सुरक्षित रखने का मार्ग प्रशस्त हो गया। आज की जैन परम्परा इसके लिए आर्य रक्षित की सदा ऋणी रहेगी। आर्य रक्षित का स्वर्ग गमन वी. नि. ५९७ (१२८ वि., ७१ ई.) में हुआ।

Elaboration—According to the popular belief in the *Shvetambar* tradition, the second phase in the decline of the scriptural knowledge

started after the death of Arya Vajra; the knowledge of the ten *Purvas* was extant up to Arya Vajra. After him it gradually diminished. The changing times brought about a continuing decline in the general intelligence and capacity to remember. The *shramans* of that period put themselves to the task of finding all possible ways and means of saving the scriptural knowledge.

Arya Rakshit—He was born in the house of Brahman Somdev, an inhabitant of Dashpur (modern Mandsor) in the state of Malwa in the year 522 A.N.M. (53 V., 4 B.C.). His mother was Jain; that is why when he completed his conventional *Vedic* education, she inspired him to acquire the knowledge of Jain scriptures. The Brahman youth Rakshit went to *Acharya* Toshaliputra and begged him for scriptural knowledge. When Toshaliputra told him that unless he gets initiated into the order he could not be given scriptural knowledge, strong willed Rakshit at once got initiated and left the town with the *Acharya*. By acquiring the knowledge of all the eleven *Angas* in short time Arya Rakshit thoroughly impressed Toshaliputra, who then sent him to Vajra Swami to acquire the knowledge of ten *Purvas*. Even Arya Rakshit, a highly talented individual of that age, could only absorb the complete knowledge contained in nine *Purvas* and just a part of the tenth. After this he returned to Toshaliputra. In the year 544 A.N.M. Toshaliputra made him *Acharya* and honoured him with the status of *Yuga-pradhan*.

Arya Rakshit became aware of the ongoing process of decline of intellect and capability with the passage of time. He accomplished the task of classifying the scriptural knowledge into four divisions in order to simplify the method of study and revolutionized the process of scriptural learning. Before this classification *Agams* were taught one at a time and the aphorisms, fundamentals, codes of conduct, examples, areas of practices, rules etc. pertaining to that *Agam* were taught at the same time. Arya Rakshit classified the complete contents of all *Agams* into four *Anuyogs* subjectwise. These classifications are—*Charan-karananuyog* (conduct or activity), *Dharmakathanuyog* (narrative subjects like stories, examples, biographies etc.), *Ganitanuyog* (mathematics) and *Dravyanuyog* (fundamentals and substances or metaphysics). This classification immensely helped the later scholars and commentators. The process

of learning scriptures became easier and a new path was shown for preserving the hitherto vanishing scriptural knowledge as much as possible. The Jain tradition will always be indebted to Arya Rakshit for this. Arya Rakshit left for his heavenly abode in the year 597 A.N.M. (128 V., 71 A.D.).

३३ : *णाणम्मि दंसणम्मिय, तव-विणए णिच्चकालमुज्जुत्तं।*
अज्जं नंदिल-खपणं, सिरसा वंदे पसन्नमणं॥

अर्थ–जो ज्ञान, दर्शन, तप और विनय की साधना में अहर्निश तत्पर रहते थे और राग-द्वेष से उपरत होने के कारण सदा प्रसन्नचित्त रहते थे ऐसे आर्य नन्दिल क्षपण को नतमस्तक हो वन्दना करता हूँ।

I bow my head and pay homage to ascetic Arya Nandil, who was ever indulgent in practices like pursuit of knowledge, purity of perception, observation of austerities and behaviour of humbleness. And being free of attachment and aversion, who was always in a blissful state of mind.

विवेचना–आर्य नन्दिल पूर्ववर्ती आचार्य थे। इनका नाम युग-प्रधानाचार्यों में नहीं है। आर्य मंगु (वी. नि. की पाँचवीं शताब्दी) के पश्चात् वाचक परम्परा में आर्य नन्दिल वाचनाचार्य हुए। इनके विषय में अन्य ऐतिहासिक सूचना उपलब्ध नहीं है।

Elaboration—Arya Nandil—He was an earlier *Acharya*. He is not listed as *Yuga-pradhanacharya*. In the lineage of *Vachanacharyas* Arya Nandil succeeds Arya Mangu (5th century A.N.M.). No historical information about him is available.

३४ : *वड्ढउ वायगवंसो, जसवंसो अज्जनागहत्थीणं।*
वागरण-करण-भंगिय-कम्मप्पयडीपहाणाणं॥

अर्थ–व्याकरण (प्रश्नव्याकरण आदि), करण (पिण्डविशुद्धि आदि आचार ग्रन्थ), भंग (सप्तभंगी आदि न्यायशास्त्र तथा नियम पालन में पुष्टि हेतु किये गये सूत्र, विभाजन) और कर्म प्रकृति आदि विषयों की प्ररूपणा करने में पटु ऐसे आर्य नागहस्ति का वाचक वंश यश प्राप्त करे।

May the *Vachak*-lineage of Arya Nagahasti—who was proficient in explicating such subjects as *Vyakaran* (grammar in general and *Prashnavyakaran Sutra* in particular), *Karan* (codes of conduct and related scriptures like *Pindavishuddhi*),

Bhang (seven segments of logic split according to varied view points, the segmentation of codes to help memorizing and observation, and the related scriptures), *Karma Prakriti* (the nature of karma-particles)—beget glory.

विवेचन–आर्य नागहस्ति–आर्य नागहस्ति वाचक वंश में आर्य नन्दिल के पश्चात् वाचनाचार्य बने। इनके विषय में विशेष सूचना उपलब्ध नहीं है। स्वनामधन्य आचार्य पादलिप्त इन्हीं के शिष्य थे। इनके सुदीर्घ वाचनाचार्य काल में तीन युग-प्रधानाचार्य हुए–आर्य श्रीगुप्त, आर्य वज्र और आर्य रक्षित। अतः इनका अनुमानित कार्यकाल वी. नि. ४२३ से ५८४ के बीच का कोई समय रहा होगा।

Elaboration—Arya Nagahasti—In the *Vachak*-lineage Arya Nagahasti succeeded Arya Nandil as *Vachanacharya*. Not much information is available about him. The renowned *Acharya* Paadlipt was his disciple. His long tenure as *Vachanacharya* saw three *Yuga-pradhanacharyas*—Arya Shrigupt, Arya Vajra and Arya Rakshit. Therefore his probable period of activity must be some where between 423 and 584 A.N.M.

३५ : *जच्चंजण-धाउसमप्पहाणं, मद्दिय-कुवलय-निहाणं।*
वड्ढउ वायगवंसो, रेवइनक्खत्त-नामाणं॥

अर्थ–अंजन धातु के समान नेत्रों को शान्ति प्रदान करने वाली जिनकी प्रभा थी, द्राक्षा तथा कुवलय (नीलकमल) के समान जिनकी कान्ति थी, ऐसे आर्य रेवती नक्षत्र का वाचक वंश वर्धमान हो।

May the *Vachak*-lineage of Arya Revati Nakshatra—who had a glow as soothing to the eyes as is *Anjan*-metal (a metallic Ayurvedic preparation used as ophthalmic medicine and tonic), and who had a radiance like blue grapes and blue lotus—be ever expanding.

विवेचन–आर्य रेवती नक्षत्र–आर्य नागहस्ति के पश्चात् आर्य रेवती नक्षत्र वाचनाचार्य बने। इनके विषय में नामोल्लेख के अतिरिक्त सूचनाओं का अभाव है इस कारण भ्रान्ति वश इन्हें और युग-प्रधानाचार्य आर्य रेवती मित्र को एक ही व्यक्ति माना जाता था। किन्तु दोनों परम्पराओं के आचार्यों के काल के सम्बन्ध में गहन विवेचन से स्पष्ट होता है कि ये दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। इनका अनुमानित काल वी. नि. ५५० से ६५० (८१ से १८१ वि., २४ से १२४ ई.) के बीच का कोई समय रहा होगा। इनके समय में वाचक वंश की उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई थी।

Elaboration—Arya Revati Nakshatra—Arya Revati Nakshatra succeeded Arya Nagahasti as *Vachanacharya*. Besides the

mention of his name, no other information is available. That is why he is being confused with *Yuga-pradhanacharya* Arya Revati Mitra. But an in-depth study of the periods of the *Acharyas* of both the lineages reveals that they were two different persons. Arya Revati Nakshatra must have lived some time between 550 to 650 A.N.M. (81 to 181 V., 24 to 124 A.D.). During his tenure the *Vachak* group progressed considerably.

३६ : *अयलपुरा णिक्खंते, कालिय-सुय-आणुओगिए धीरे।*
बंभद्दीवग-सीहे, वायग-पय-मुत्तमं पत्ते॥

अर्थ–जो अचलपुर में दीक्षित हुए, जो कालिक सूत्रों के गम्भीर व्याख्याता थे और जिन्होंने उत्तम वाचक पद प्राप्त किया, ब्रह्मद्वीपिक शाखा के ऐसे सिंहाचार्य को वन्दना करता हूँ।

I pay homage to Simhacharya of the Brahmadvipik branch who got initiated in Achalpur, who was a great exponent of *Kalik Sutras*, and who attained the lofty status of *Vachak (Vachanacharya).*

विवेचन–आर्य रेवती नक्षत्र के पश्चात् आर्य ब्रह्मद्वीपिक सिंह वाचनाचार्य बने। इनके विषय में भी यह निश्चित मान्यता नहीं है कि ये और युग-प्रधानाचार्य सिंह पृथक् थे या एक ही। ये कालिक सूत्रों की व्याख्या करने में अत्यन्त निपुण माने गये हैं। युग-प्रधानाचार्य सिंह के काल के विषय में जो जानकारी उपलब्ध है तदनुसार इनका जन्म वी. नि. ७१० (२४१ वि., १८४ ई.) में, दीक्षा ७२२ (२५३ वि., १९६ ई.) में तथा स्वर्गवास ८२६ (३५७ वि., ३०० ई.) में हुआ था।

Elaboration—Arya Simha—Arya Brahmadvipik Simha succeeded Arya Revati Nakshatra as *Vachanacharya*. About him also there is no definite opinion if he was same as *Yuga-pradhanacharya* Simha or a different person. He has been accepted as a proficient elaborator of the *Kalik Sutras*. According to the available information about *Yuga-pradhanacharya* Simha, the important dates of his life are—Birth—710 A.N.M. (241 V., 184 A.D.). Diksha—722 A.N.M. (253 V., 196 A.D.). Death— 826 A.N.M. (357 V., 300 A.D.).

३७ : *जेसिं इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढ-भरहम्मि।*
बहुनयर-निग्गय-जसे, ते वंदे खंदिलायरिए॥

अर्थ–जिनका यह अनुयोग आज भी अर्द्ध-भरत क्षेत्र में प्रचलित है और जिनका यश अनेक नगरों में फैला हुआ है ऐसे स्कन्दिलाचार्य को वन्दना करता हूँ।

I pay homage to Skandilacharya whose *Anuyogs* are still popular in the *Ardhabharat Kshetra* (India) and whose glory has swarmed many cities.

विवेचन—आचार्य स्कन्दिल—आचार्य स्कन्दिल का जन्म मथुरा के ब्राह्मण मेघरथ और उनकी पत्नी रूपसेना के घर में हुआ। इनका नाम सोमरथ था तथा इनका परिवार आरम्भ से ही जैन धर्मावलम्बी था। आचार्य सिंह के एकदा मथुरा प्रवास के समय सोमरथ उनके प्रवचन से प्रभावित हो दीक्षित हो गये। अपने गुरु के निकट इस प्रतिभा-सम्पन्न युवक ने सम्पूर्ण उपलब्ध श्रुतज्ञान का अध्ययन किया। इनका सर्व सम्मत कार्यकाल वी. नि. ८२३ से ८४० के आसपास था। भारत के इतिहास में यह एक विषम काल था। मध्य भारत में हूणों तथा गुप्तों के बीच युद्ध चल रहे थे तथा किसी प्रभावी सम्राट् के अभाव में छोटे-छोटे राज्य परस्पर युद्धरत थे। इसी समय १२ वर्ष का भीषण दुर्भिक्ष भी पड़ा। ऐसी परिस्थितियों में आगम ज्ञान पुनः छिन्न-भिन्न होने लग गया था। आचार्य स्कन्दिल ने वी. नि. ८३० से ८४० (३६१ से ३७१ वि., ३०४ से ३१४ ई.) की बीच किसी समय उत्तर भारत के श्रमणों को मथुरा में एकत्रित कर आगमों की वाचना की और अनुयोग व्यवस्थित किये गये। जैन इतिहास में यह माथुरी वाचना के नाम से प्रसिद्ध है तथा आज जैन आगमों का जो रूप उपलब्ध है वह उसी वाचना की देन है। इस सम्बन्ध में एक उल्लेख यह भी मिलता है कि मथुरा के एक ओसवंशीय श्रावक पोलाक ने उन सूत्रों को ताड़पत्रादि पर लिखवाकर मुनियों को भेंट किया था।

आगम ज्ञान को नष्ट होने से बचाकर आर्य स्कन्दिल ने जिनशासन की जो अमूल्य सेवा की उसके लिए समस्त जैन धर्मावलम्बी ही नहीं, विश्व साहित्य भी उनका चिरकाल तक ऋणी रहेगा।

Elaboration—Acharya Skandil—He was born in Mathura. His parents were Brahman Megharath and Roopsena. His name was Somarath and his family was originally Jain. Once during a Mathura stay of *Acharya* Simha, Somarath got impressed with his discourse and got initiated. He studied the extant scriptural knowledge under his guru. There is a unanimity about his period of activity being between 823 and 840 A.N.M. This was a period of turmoil in Indian History. In the central part of India battles raged between the Huns and the Guptas and in absence of some influential central power the smaller kingdoms were continuing to feud with one another. During this period also there was a twelve year drought. In such troubled times the scriptural knowledge once again started to deplete. Some time between 830 and 840 A.N.M. (361 and 371 V., 304 and 314 A.D.) he invited all the *shramans* from northern India at Mathura. This congregation of scholarly ascetics accomplished the task of reciting and compiling the scriptures and reorganizing the *Anuyogs*. In the

Jain history this event is famous as *Mathuri Vachana*. The available form of Jain scriptures is credited to this Mathura congregation. In this context there is a mention that a *shravak* belonging to the *Os* clan arranged for getting the texts written on palm leaves and presenting them to the ascetics.

The Jains as well as the world literature will ever be indebted to Arya Skandil for his immense service of saving the scriptural knowledge from impending extinction.

३८ : *तत्तो हिमवंत-महंत-विक्कमे धिइ-परक्कममणंते।*
सज्झायमणंतधरे, हिमवंते वंदिमो सिरसा॥

अर्थ–इसके पश्चात् हिमालय के समान महान् विक्रमशाली, अनन्त धैर्य व पराक्रम वाले तथा अनन्त स्वाध्याय करने वाले हिमवान आचार्य को नतमस्तक हो वन्दना करता हूँ।

After this, I bow my head and pay homage to *Acharya* Himavan who was as towering as the Himalayas, who had infinite patience and resolve, and who studied endlessly.

विवेचन–आचार्य हिमवान–आचार्य हिमवान स्कन्दिलाचार्य के शिष्य माने गये हैं। इनके जन्म, दीक्षा आदि के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। पट्टावलियों आदि के अनुसार इनका अनुमानित काल वीर निर्वाण की नौवीं शताब्दी का मध्य काल होना चाहिए।

Elaboration—Acharya Himavan—It is believed that *Acharya* Himavan was a disciple of Skandilacharya. No information is available about the dates of his birth, initiation etc. According to the lineage charts his period is estimated to be the middle of the 9th century A.N.M.

३९ : *कालिय-सुय-अणुओगस्स धारए, धारए व पुव्वाणं।*
हिमवंत-खमासमणे वंदे, णागज्जुणायरिए॥

४० : *मिउ-मद्दव सम्पन्ने, आणुपुव्वी-वायगत्तणं पत्ते।*
ओह-सुयसमायारे, नागज्जुणवायए वंदे॥

अर्थ–और फिर कालिक श्रुतसम्बन्धी अनुयोगों के तथा उत्पाद आदि पूर्व ज्ञान के धारक हिमवन्त क्षमाश्रमण के समान श्रीनागार्जुनाचार्य को वन्दन करता हूँ।

मृदु-मार्दव आदि भावों से युक्त, क्रमशः वाचक पद को प्राप्त हुए ओघ-श्रुत अर्थात् उत्सर्ग विधि का नियमपूर्वक आचरण करने वाले नागार्जुन वाचक को वन्दना करता हूँ।

After that I pay homage to Shri Nagarjunacharya who had absorbed the *Anuyogs* relating to the *Kalik Sutras* and the knowledge of the *Purvas* like *Utpad*.

I pay homage to Nagarjun Vachak who embodied the attitudes of sweetness and sympathy, who adhered to the proper observance of the *Ogh-shrut* or the laid down procedure of systematic detachment, and gradually ascended to the status of *Vachak (Vachanacharya)*.

विवेचन–आर्य नागार्जुन ढंक नगर के क्षत्रिय संग्रामसिंह के पुत्र थे ऐसी मान्यता है। ये बाल्यावस्था में ही बड़े पराक्रमी और मेधावी थे तथा पादलिप्तसूरि के चमत्कारों से प्रभावित थे। ये पादलिप्तसूरि तथा आचार्य हिमवन्त दोनों के शिष्य बताये जाते हैं किन्तु कौन इनका दीक्षा-गुरु था और कौन शिक्षा-गुरु इस विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु पादलिप्तसूरि के काल से इनके काल का मेल नहीं खाता इस कारण उनका शिष्य होने की बात अनुश्रुति ही लगती है।

इन्हें क्रमशः वाचक पद प्राप्त हुआ यह कथन उस समय की आचार्य परम्परा के क्रम को देखने से समझ में आती है। प्राप्त सूचना के अनुसार आर्य स्कन्दिल, आर्य हिमवान और आर्य नागार्जुन समकालीन और वाचनाचार्य माने गये हैं। उपरोक्त श्लोक के अनुसार नागार्जुन आर्य हिमवन्त के पश्चात् हुए और युग-प्रधान पट्टावली के अनुसार वे आर्य सिंह के पश्चात् युग-प्रधान हुए। कालक्रम के अनुसार ऐसा लगता है कि वी. नि. ८२६ में युग-प्रधान आर्य सिंह के स्वर्गवास के समय आर्य स्कन्दिल को विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न मानकर वाचक पद प्रदान किया गया होगा और उसी समय युवा मुनि नागार्जुन को युग-प्रधान पद। तत्पश्चात् वी. नि. ८४0 के लगभग आर्य स्कन्दिल के स्वर्गवास होने पर ज्येष्ठ मुनि हिमवान को वाचनाचार्य बनाया गया होगा। जब आर्य हिमवन्त का स्वर्गवास हुआ तब अन्य वाचनाचार्य के अभाव में आर्य नागार्जुन को ही युग-प्रधान पद के साथ-साथ वाचनाचार्य का पद भी दे दिया गया होगा।

जब मथुरा में आर्य स्कन्दिल द्वारा आगम-वाचन हुई लगभग उसी समय आर्य नागार्जुन ने भी दक्षिण में श्रमणसंघ को एकत्र कर वल्लभी में वाचना की थी। वाचना के पश्चात् इन दोनों आचार्यों की भेंट नहीं हो सकी अतः वाचना भेद मिटाने का उपक्रम नहीं बन पाया। आर्य नागार्जुन के जीवन की प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं–जन्म वी. नि. ७९३ (३२४ वि., २६७ ई.), दीक्षा वी. नि. ८0७, स्वर्गवास वी. नि. ९0४ (४३५ वि., ३७८ ई.) मगध सम्राट् चन्द्रगुप्त व उनके पुत्र समुद्रगुप्त इनके समकालीन थे।

Elaboration—Arya Nagarjun—It is believed that Arya Nagarjun was the son of *Kshatriya* (the second caste in the traditional Hindu caste-hierarchy; the warrior or the regal caste) Sangram Simha of Dhank city. Since his childhood he was very brave

and intelligent. He was impressed by the miracles of Paadlipt Suri. It is said that he was a disciple of both Paadlipt Suri and *Acharya* Himvant but there is no clear indication as to which of these was his initiator and which the teacher. However, as his period does not coincide with that of Paadlipt Suri, his being a disciple of Paadlipt Suri appears just to be a hearsay.

The statement that he reached the status of *Vachanacharya* gradually becomes clear when we study the lineage of *Acharyas* of that period. According to the available information Arya Skandil, Arya Himavan and Arya Nagarjun were contemporaries and all the three were *Vachanacharyas*. According to this verse he succeeded Arya Himvant and according to the *Yuga-pradhan* lineage chart he succeeded Arya Simha as *Yuga-pradhanacharya*. As per the available dates it appears that after the death of Arya Simha in the year 826 A.N.M., the specially talented Arya Skandil must have been made *Vachanacharya* and at the same time young Nagarjun must have been made *Yuga-pradhanacharya*. After that, in the year 840 A.N.M. when Arya Skandil died, the senior ascetic Himavan must have been made *Vachanacharya*. When Arya Himavan died, in absence of another capable *shraman*, Nagarjun must have been given the joint responsibilities and positions of *Yuga-pradhanacharya* and *Vachanacharya*.

Almost coinciding with the Mathura congregation organized by Arya Skandil, Arya Nagarjun also organized another convention of *shramans* in Vallabhi in southern India. The two *Acharyas* could not meet after these congregations and so the task of removing differences in the compiled texts was left undone. The important dates in the life of Arya Nagarjun are—Birth—793 A.N.M. (324 V., 267 A.D.), Diksha—807 A.N.M. (338 V., 281 A.D.)., Death—904 A.N.M. (435 V., 378 A.D.)., Emperor Chandragupta of Magadh and his son Samudragupta were his contemporaries.

४१ : *गोविंदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणिंदाणं।*
णिच्चं खंति-दयाणं परूवणे दुल्लभिंदाणं॥

अर्थ—इन्द्र के समान जिनकी अनुयोगों की विपुल सम्पदा है, जो इन्द्रों में भी दुर्लभ हैं ऐसे क्षमा, दया आदि की स्थापना करने वाले गुणों से सम्पन्न आचार्य गोविन्द को भी नमस्कार हो।

I also pay homage to *Acharya* Govind who, like the mundane wealth of *Indra* (king of gods), had incomparable wealth of *Anuyogs* and who had virtues that inspire feelings like forgiveness and altruism which are rare even among *Indras* (kings of gods).

विवेचन-आचार्य गोविन्द का नाम तो प्रसिद्ध अनुयोगधर वाचकों में लिया जाता है किन्तु इनकी गुरु परम्परा आदि के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। निशीथचूर्णि में अवश्य यह उल्लेख है कि ये मूलतः एक बौद्ध भिक्षु थे और किसी जैनाचार्य से अनेक बार शास्त्रार्थ में पराजित होने पर जैन सिद्धान्तों के अध्ययनार्थ जैन साधु के रूप में दीक्षित हुए। गम्भीर अध्ययन के पश्चात् इनके विचारों तथा श्रद्धा में परिवर्तन आया और सम्यक्त्व जाग्रत होने पर इन्होंने पुनः श्रद्धापूर्वक दीक्षा ग्रहण की। अपने अपार श्रुतज्ञान तथा वाचना में अपूर्व गति के कारण बाद ये वाचनाचार्य बने। ऐसी मान्यता भी है कि इन्होंने आचारांग पर निर्युक्ति की रचना भी की थी जो आज अनुपलब्ध है। ये आचार्य आर्य स्कन्दिल के पश्चात् चौथे युग-प्रधानाचार्य थे। मुनि श्री पुण्यविजय जी के अनुसार इनका सत्ताकाल विक्रम की ५वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिए।

Elaboration—Acharya Govind—Although his name finds place among the famous *Vachaks* who were experts of *Anuyogs,* no information about the lineage of his gurus is available. In *Nisheeth Churni* there is just this mention that he was originally a Buddhist monk who got initiated as a Jain ascetic in order to study Jain tenets, after he was defeated repeatedly by some Jain *Acharya* in religious debates. After an in depth study he underwent a change in his thoughts and faith. This rise of *Samyaktva* lead him to re-initiation, this time genuinely. Due to his immense knowledge of scriptures and unprecedented proficiency in oration he later attained the status of *Vachanacharya*. It is said that he also wrote a commentary *(Niryukti)* on *Acharang* which is not available now. He came fourth after Arya Skandil in the *Yuga-pradhanacharya* lineage. According to Muni Shri Punyavijay ji his period should be the early part of the 5th century of the Vikram era.

४२ : *तत्तो य भूयदिन्नं, निच्चं तवसंजमे अनिव्विण्णं।*
पंडियजण-सम्माणं, वंदामो संजमविहिण्णुं॥

अर्थ-और तत्पश्चात् तप और संयम की अनुपालना में सदा खेदरहित, पण्डितजनों में सम्मानित और संयम विधि के निष्णात आचार्य भूतदिन्न को वन्दन करता हूँ।

After that I pay homage to *Acharya* Bhootadinn who was unperturbed in the observance of austerities and discipline, who was respected among scholars and who was an expert of the codes of discipline.

४३ : *वर-कणग-तविय-चंपग-विमउल-वर-कमल-गब्भसरिवन्ने।*
भविय-जण-हियय-दइए, दयागुणविसारए धीरे॥

४४ : *अड्ढभरहप्पहाणे बहुविह-सज्झाय-सुमुणिय-पहाणे।*
अणुओगिय-वरवसभे नाइलकुल-वंसनंदिकरे॥

४५ : *जगभूयहियप्पगब्भे, वंदेऽहं भूयदिन्नमायरिए।*
भव-भय-वुच्छेयकरे, सीसे नागज्जुणरिसीणं॥

अर्थ–जिनके शरीर का वर्ण तपे हुए शुद्ध सोने अथवा चम्पा के फूल या श्रेष्ठ जाति के विकसित कमल के गर्भ में रहे पराग के समान स्वर्णिम है, जो भव्य प्राणियों के हृदय सम्राट, और जनमानस में दया गुण प्रेरित करने में पटु हैं, जो अपने समय में समस्त भारत में युग-प्रधान माने गये हैं, जो स्वाध्याय की सभी विधियों के परम विशेषज्ञ तथा अनेकों श्रेष्ठ साधुओं को स्वाध्याय आदि में प्रयुक्त करने वाले हैं, जो नागेन्द्र कुल वंश की कीर्ति का संवर्धन करने वाले हैं, जो प्राणिमात्र के हितोपदेश में समर्थ और भव बन्धन के भय को नष्ट करने वाले हैं, ऐसे नागार्जुन ऋषि के शिष्य भूतदिन्न आचार्य को मैं वन्दना करता हूँ।

His complexion is golden like pure smelted gold or a *Champa* flower, or the pollen of the best quality lotus flower; he rules over the hearts of *Bhavya* beings (those who are capable of attaining *moksha*) and expertly invokes the virtue of altruism in masses; he was accepted as the *Yug-pradhan* (leader of the era) throughout India; he was the ultimate expert of all the processes of self-study and the promoter of many accomplished ascetics into practices like self-study; he was the enhancer of the glory of the Nagendra group (of ascetics); and he had the capability to guide all beings towards betterment and remove the fear of ties of rebirth. I pay homage to such *Acharya* Bhootadinn, the disciple of Rishi Nagarjun.

विवेचन–आर्य भूतदिन्न–आर्य नागार्जुन के पश्चात् आर्य भूतदिन्न वाचनाचार्य बने। "दुष्षमकाल श्री श्रमण संघ स्तोत्र" में आपको युग-प्रधानाचार्य माना है। इनके विषय में विशेष

सूचना उपलब्ध नहीं है। युग-प्रधान यन्त्र के अनुसार यदि इन्हें युग-प्रधान भी माना जाय तो इनका कार्यकाल इस प्रकार है–जन्म–वी. नि. ८६४ (३९५ वि., ३३८ ई.), दीक्षा–वी. नि. ८८२ (४१३ वि., ३५६ ई.), युग-प्रधानपद वी. नि. ९०४ (४३५ वि., ३७२ ई.) और स्वर्गगमन–वी. नि. ९२३ (४५४ वि., ३९७ ई.) भारतीय इतिहास में यह काल समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त का काल माना जाता है।

Acharya Bhootadinn—He succeeded Arya Nagarjun as *Vachanacharya*. In the panegyric—'*Dushsham-kaal Shri Shraman Sangh Stotra*' he has been mentioned as *Yuga-pradhanacharya*. Hardly any more information about him is available. If he is accepted as *Yuga-pradhanacharya* according to the *Yuga-pradhan* chart, important dates in his life should be—Birth—864 A.N.M. (395 V., 338 A.D.), Diksha—882 A.N.M. (413 V., 356 A.D.), Yuga-pradhan status—904 A.N.M. (435 V., 372 A.D.), Death—923 A.N.M. (454 V., 397 A.D.). In Indian history this was the period of successive reigns of Samudragupta, Chandragupta II, and Kumaragupta.

४६ : *सुमुणिय-णिच्चाणिच्चं, सुमुणिय-सुत्तत्थधारयं वंदे।*
सब्भावुब्भावणया, तत्थं लोहिच्चणामाणं॥

अर्थ–नित्य-अनित्य (जीव-अजीव) द्रव्यों को भलीभाँति जानने-समझने वाले, सूत्र व अर्थ को समझ-कर धारण करने वाले, सर्वज्ञ द्वारा प्रकट किये भावों का सत्य प्रतिपादन करने वाले लोहित्य नाम के आचार्य को वन्दना करता हूँ।

I pay homage to the *Acharya* whose name was Lohitya and who properly understood the substances like sentient and non-sentient, who absorbed the scriptures after fully understanding the text and the meaning, and who was the true explicator of the spirit of the tenets expounded by the omniscient.

विवेचन–आर्य भूतदिन्न के पश्चात्वर्ती आचार्य लोहित्य के विषय में इस उल्लेख के अतिरिक्त अन्य कहीं कोई सूचना प्राप्त नहीं होती।

Elaboration—*Acharya* Lohitya—Except for this mention, nowhere any information is available about Acharya Lohitya who succeeded Arya Bhootadinn.

४७ : *अत्थ-महत्थ-क्खाणिं, सुसमण-वक्खाण-कहण-निव्वाणिं।*
पयईए महुरवाणिं, पयओ पणमामि दूसगणिं॥

४८ : तव-नियम-सच्च-संजम-विणयज्जव-खंति-मद्दवरयाणं।
सीलगुणगद्दियाणं, अणुओग-जुगप्पहाणाणं॥

४९ : सुकुमालकोमलतले, तेसिं पणमामि लक्खणपसत्थे।
पाए पावयणीणं, पडिच्छिय-सएहिं पणिवइए॥

अर्थ–जो शास्त्रों के अर्थ व महार्थ (विशेष अर्थ या व्याख्या) की खान समान हैं, सुश्रमणों को आगमवाचना देते समय पूछे हुए प्रश्नों का समाधान करने में जो संतोष का अनुभव कराने वाले हैं और जो प्रकृति से मधुर वाणी वाले हैं ऐसे दूष्यगणि को ससम्मान प्रणाम करता हूँ। वे तप, नियम, सत्य, संयम, विनय, आर्जव (सरलता), क्षमा, मार्दव (नम्रता) आदि गुणों में तत्पर व संलग्न थे। शील आदि गुणों के कारण ख्यातिनामा और अनुयोग की व्याख्या करने में युग-प्रधान थे। पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न तथा प्रवचनकार आचार्यों के प्रशस्त लक्षणों से युक्त, सैकड़ों शिष्यों द्वारा पूजित उनके सुकुमार सुन्दर चरणों में प्रणाम करता हूँ।

With all reverence I pay homage to Dooshyagani who was like a treasure trove of meanings and interpretations of the scriptures, who imparted satisfaction by clarifying doubts and queries posed by able ascetics while giving them discourse of *Agams* and who had naturally sweet and soothing voice. He indulgently practised the virtues like austerity, discipline, truth, self-control, humbleness, simplicity, forgiveness and geniality. He was famous for his virtues like celibacy and was leader of the elaborators of *Anuyog* of his era. He was embellished with the said virtues and had the finer qualities of the orator *Acharyas*. I bow at his delicate and beautiful feet that were worshipped by hundreds of disciples.

विवेचन–आचार्य लोहित्य के पश्चात्‌वर्ती आचार्य दूष्यगणि का भी इस उल्लेख के अतिरिक्त अन्य कहीं कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। उपरोक्त स्तुति से यह प्रतीत होता है कि इस सूत्र के वृत्तिकार देववाचक या देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण इन्हीं दूष्यगणि के शिष्य थे। देवर्द्धिगणि के जन्मादि काल की सूचना अनुपलब्ध है किन्तु वल्लभी वाचना उनके सान्निध्य में ही हुई थी अतः वे वी. नि. ९८० (५११ वि., ५६८ ई.) में विद्यमान थे यह निश्चित है। अतः दूष्यगणि का सत्ता काल वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी का मध्य भाग रहा होगा।

Elaboration—Acharya Dushyagani—Like *Acharya* Lohitya no information anywhere is available about his successor *Acharya*

Dushyagani except for this mention. This panegyric gives an indication that the author of this work, Dev Vachak or Devardhigani Kshamashraman was a disciple of this Dushyagani. There is a lack of detailed information about Devardhigani also, but he was present at the Vallabhi convention. This indicates that he was alive in the year 980 A.N.M. (511 V., 568 A.D.). Thus the period of activity of Dushyagani must have been the middle part of the 10th century A.N.M.

५० : *जे अन्न भगवन्ते, कालिय-सुय-आणुओगिए धीरे।*
ते पणमिऊण सिरसा, नाणस्स परूवणं वोच्छं॥

अर्थ–अन्य जो भी कालिक श्रुत तथा अनुयोग के धारक धीर आचार्य भगवन्त हैं उन सभी को प्रणाम करके मैं तीर्थंकर भगवान द्वारा प्ररूपित ज्ञान की प्ररूपणा करता हूँ।

After paying my homage to all the other *Acharyas* who were experts of *Kalik Sutras* and *Anuyog* I commence presenting the knowledge propagated by *Tirthankars*.

विवेचन–दूष्यगणि के पश्चात् उनके शिष्य आचार्य देववाचक अथवा देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण वाचनाचार्य बने। यह विराट् व्यक्तित्व के धनी आचार्य जैन परम्परा में सदा सर्वदा पूजित रहेंगे। वी. नि. ९८० में इन्होंने जो क्रान्तिकारी कार्य किया वही आज जैन श्रुत-सम्पदा के रूप में हमें उपलब्ध है। देवर्द्धिगणि ने लुप्त होते आगम ज्ञान को वल्लभी में संकलित व सुव्यवस्थित तो किया ही, साथ ही उस समस्त ज्ञान-सम्पदा को लिपिबद्ध करवाकर श्रुतज्ञान परम्परा को स्थायित्व भी दिया।

जन्मना वे काश्यप गोत्रीय क्षत्रिय राजकुमार थे। सौराष्ट्र के वैरावल पट्टन में उनका जन्म हुआ था। एक मान्यता यह है कि इन्होंने आचार्य लोहित्य के पास दीक्षा ली। किन्तु काल गवेषणा व विवेचन से इनका दूष्यगणि आचार्य का शिष्य होना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। संभवतः आचार्य लोहित्य के पास इन्होंने आगमों तथा एक पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया हो।

देवर्द्धिगणि के जन्मादि काल के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है किन्तु उनके स्वर्गवास के विषय में स्थापित मान्यता यह है कि वी. नि. १००० में उनका देहावसान हुआ और उसी के साथ पूर्व ज्ञान का विच्छेद हो गया।

Elaboration — Devardhigani Kshamashraman — After Dushyagani his disciple Deva Vachak or Devardhigani Kshamashraman became the *Vachanacharya*. This lofty personality will always occupy a reverential place in the Jain tradition. The

revolutionary work he accomplished in the year 980 A.N.M. is available to us as the treasury of Jain scriptures. Devardhigani not only compiled and edited the depleting wealth of Jain scriptures but also gave permanence to the tradition of scriptural knowledge by getting it transcribed.

By birth he was a *Kshatriya* of the Kashyap *gotra*. He was born at a place named Vairaval in Saurashtra. There is a belief that he was initiated by *Acharya* Lohitya. But examining the available evidences and comparing them with historical dates, his being a disciple of *Acharya* Dushyagani seems to be more logical. He was probably taught the *Agams* and one *Purva* by Acharya Lohitya.

No information is available about important events of his life. However it is an established traditional belief that with his death in 1000 A.N.M. the knowledge of the *Purvas,* the sublime canons, became extinct.

●●

श्रोता के प्रकार
TYPES OF LISTENERS

चौदह प्रकार के श्रोता
FOURTEEN TYPES OF LISTENERS

प्राथमिक–किसी शास्त्र अथवा ग्रन्थ को आरम्भ करने के प्रथम चरणस्वरूप मंगल तथा विघ्न-शमन कामना के रूप में अर्हत्, गुरुजन आदि की स्तुति रचने की परम्परा रही है। यह प्रस्तुत करने के पश्चात् सामान्यतया शास्त्र अथवा ग्रन्थ में चर्चित विषय का वर्णन आरम्भ किया जाता है। किन्तु इस ग्रन्थ में एक अभिनव प्रयोग दिखाई देता है। विषय-वस्तु का आरम्भ करने से पूर्व सूत्रकार उस विषय को ग्रहण करने वाले अर्थात् श्रोता के गुणाधिकार की चर्चा करते हैं और फिर परिषद् की। यह चर्चा सुन्दर व सटीक उदाहरणों द्वारा बहुत ही रोचकता के साथ प्रस्तुत की गई है।

Introduction—It is a convention that as the first step of commencing the writing of a book a prayer wishing well being and removal of hurdles is written in the form of a panegyric of the *Arhat* or teachers. After this, generally an introduction of the subject matter discussed in the book is given. But a new experimental style can be seen in this book. Before dealing with the introduction of the subject matter first the virtues and rights of the recipients of the knowledge or the listeners have been discussed and then their congregation. This has been presented in a gripping style with beautiful and befitting examples.

५१ : *सेल-घण-कुडग-चालिणी, परिपुण्णग-हंस-महिस-मेसे य।*
मसग-जलूग-विराली, जाहग-गो-भेरि-आभीरी॥

अर्थ–गुण-भेद से श्रोताजन इस प्रकार के होते हैं–(१) शैल-घन (पत्थर व पुष्करावर्त मेघ), (२) कुटक (घड़ा), (३) चालनी, (४) परिपूर्णक (छन्ना अथवा फिल्टर), (५) हंस, (६) महिष, (७) मेष, (८) मशक, (९) जलौक (जौंक), (१०) विडाली (बिल्ली), (११) जाहक (चूहा), (१२) गाय, (१३) भेरी, तथा (१४) आभीरी (अहीर) के समान।

51. According to the variations in quality, different types of listeners are like—1. Smooth rock (*shail*) that remains

unaffected by down pour from rain clouds (*ghan*), 2. Earthen pitcher, 3. Sieve, 4. Filter, 5. Swan, 6. Buffalo, 7. Ram, 8. Mosquito, 9. Leech, 10. Cat, 11. Rat, 12. Cow, 13. Trumpet, and 14. Ahir.

विवेचन–ज्ञान के विषय में यह सर्वमान्य नियम है कि ज्ञानदान सुपात्र को होना चाहिए, कुपात्र को नहीं। श्रुतज्ञान के विषय में भी यही नियम मान्य है। दुष्ट, मूढ़, कुण्ठित, हठी, अविनीत, विषयानुरक्त आदि दुर्गुण सम्पन्न व्यक्ति ज्ञान का दुरुपयोग करता है। अतः वह अनधिकारी है। जिसमें रुचि, जिज्ञासा, लगन, विनय, चारित्र आदि गुण हैं वह श्रुतज्ञान का अधिकारी है। सूत्रकार ने श्रोता के गुण-दोषों को १४ उदाहरणों व दृष्टान्तों से स्पष्ट किया है–(देखें चित्र ५)

(१) शैल-घन–मुद्ग शैल नामक एक पत्थर होता है जो मूँग जैसा चिकना होता है और जिस पर एक सप्ताह तक निरन्तर वर्षा होती रहे तब भी पानी उसके भीतर पैठता नहीं। वर्षों पानी के भीतर पड़ा रहे तब भी तनिक भी आर्द्र या नम नहीं होता। इस पत्थर के समान गुणों वाले श्रोता को निरन्तर वर्षों तक उपदेश मिलता रहे तब भी वह तनिक भी सन्मार्ग की ओर प्रेरित नहीं होता। वह गोशालक व जमालि के समान दुराग्रही और शठ स्वभाव का होता है, जिन्हें स्वयं भगवान महावीर भी सन्मार्ग पर नहीं ला सके। ऐसे रावण और दुर्योधन जैसे जिद्दी स्वभाव वाले श्रोता कुपात्र तथा त्याज्य होते हैं।

(२) कुटक–घट अथवा घड़ा। ये दो प्रकार के होते हैं–कच्चा और पक्का। जो घड़ा केवल धूप में सुखाया जाता है वह कच्चा होता है और जल भरने के लिए सर्वथा अयोग्य; क्योंकि जल भरने से वह बिखर जाता है और जल बाहर बह जाता है। ऐसे स्वभाव वाला दुधमुँहा शिशु अथवा वैसे शिशु जैसे ही अविकसित-अपरिपक्व मस्तिष्क वाला श्रोता श्रुतज्ञान के लिए सर्वथा अयोग्य होता है।

पक्का घड़ा दो प्रकार का होता है–नया और पुराना। नया घड़ा पानी भरने के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। उसमें भरे पानी में अनायास विकृति नहीं आती तथा वह पानी प्यास मिटाने के लिए शीतल व उपयोगी होता है। ऐसे ही स्वभाव वाला श्रोता जो परिपक्व बुद्धि वाला तो हो, किन्तु अन्य ज्ञान अथवा सूचना ग्रहण कर पुराना या विकारग्रस्त न हो गया हो, श्रुतज्ञान देने के लिए श्रेष्ठ सुपात्र होता है।

पुराना घड़ा दो प्रकार का होता है। एक वह जो पुराना तो है किन्तु पानी भरने के उपयोग में नहीं लाया गया है। ऐसा घड़ा अपने पूर्ण गुण नहीं खोता। उसमें भरा पानी स्वच्छ व शीतल रहता है। ऐसे ही स्वभाव वाला श्रोता जो वयस्क तो हो चुका किन्तु दुराग्रह अथवा मिथ्यात्व से अछूता रहा है वह भी सुपात्र है, श्रुतज्ञान प्रदान करने योग्य है।

पुराना और उपयोग में लाया घट भी दो प्रकार का होता है। एक वह जो सुगन्धित व शुद्ध जल भरने के काम में लिया गया हो। ऐसे स्वभाव वाले श्रोता जिन्होंने ज्ञान प्राप्त कर गुणों को अपनाया हो दुर्गुणों को नहीं, वे भी सुपात्र होते हैं।

उपयोग में लाया दूसरे प्रकार का घट वह होता है जिसमें मदिरा आदि दुर्गन्धित पदार्थ भरा गया है। ऐसे घट की दुर्गन्ध यदि कुछ समय बाद स्वतः दूर हो जाती है तो वह उपयोग में लाया जा सकता है किन्तु यदि दुर्गन्ध ऐसी है कि दूर नहीं होती तो वह उपयोग में नहीं लाया जा सकता। इसी प्रकार जिस श्रोता ने दुर्गुण तो ग्रहण किये हों किन्तु वह चेष्टा करने पर उन दुर्गुणों से मुक्त हो सके तो वह ज्ञानदान के उपयुक्त है। जो श्रोता दुर्गुणों में इतना लिप्त हो चुका हो कि उनसे मुक्त होने की न तो सम्भावना हो न ही चेष्टा करता हो, वह ज्ञानदान हेतु सर्वथा अनुपयुक्त और कुपात्र होता है।

(३) चालणी–चालणी में कितना ही तरल पदार्थ डालो वह कभी भरती नहीं। जितने बड़े छेद हों उतनी ही शीघ्र खाली हो जाती है। जब तक पानी में रहती है, भरी हुई दिखाई देती है, परन्तु ऊपर उठाने पर खाली रहती है। चालणी का स्वभाव है, वह सार को निकाल देती है, असार को अपने पास रखती है। ऐसे स्वभाव वाला श्रोता जो भी सुनता है वह सब भूल जाता है तथा सुनकर गुणों को छोड़ अवगुणों पर ध्यान देता है, वह अपात्र होता है।

(४) परिपूर्णक–छन्ना अथवा फिल्टर का गुण है कि वह तरल पदार्थ में रही गन्दगी को रोक लेता है। ऐसे स्वभाव वाला व्यक्ति उपदेश में से भी गुण नहीं अवगुण ग्रहण करता है। वह श्रुतज्ञान के लिए अनुपयुक्त है। भाष्य में परिपूर्णक का अर्थ 'बया का घोंसला' किया है। जिससे घी छानने पर घी नीचे चला जाता है कचरा ऊपर रह जाता है।

(५) हंस–स्वभाव व सौन्दर्य दोनों दृष्टियों से हंस श्रेष्ठतम पक्षी माना जाता है। हेय और श्रेय के बीच चयन के लिए उसके नीर-क्षीर विवेक की उपमा दी जाती है। हिन्दी में एक प्रसिद्ध कहावत है–या हंसा मोती चुगे या लंघन कर जाय। हंस जैसी विवेक बुद्धि वाला श्रोता सुनकर गुण मात्र ग्रहण करता है, अवगुण की बात त्याग देता है। ऐसा श्रोता सुयोग्य पात्र होता है और श्रुत-श्रवण का अधिकारी है।

(६) महिष–भैंसा स्वभावतः स्वच्छता का विरोधी होता है। सामान्यतया वह कीचड़ में ही बैठता है और यदि स्वच्छ जल में प्रवेश करता है तो उसे भी कीचड़ जैसा बना देता है। ऐसे स्वभाव वाला श्रोता प्रथम तो ज्ञान की बात सुनने जाता ही नहीं और यदि गया तो वातावरण को ही दूषित कर देगा, अन्यों के लिए विघ्न उत्पन्न करेगा, असंबद्ध बातें और प्रगल्भ चेष्टाएँ करेगा। ऐसा श्रोता श्रुतज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी नहीं होता।

(७) मेष–मेंढ़े और उसी प्रजाति के पशु जब पानी पीते हैं तो जलाशय के किनारे अगले घुटने टेककर जल की सतह से पानी पीते हैं। इससे उसे स्वच्छ जल मिलता है और जलराशि

५. चित्र परिचय

Illustration No. 5

श्रोता के १४ भेद

१. शैलघन–चिकना गोल पत्थर मूसलाधार पानी बरसने पर भी भीगता नहीं है।

२. कुडग–घड़ा। घड़े भी कच्चे-पक्के यों कई प्रकार के होते हैं वैसे श्रोता के भी अनेक प्रकार हैं।

३. चालनी–कोई चालनी कचरा निकालकर दाना रख लेती है। कोई चालनी चावल वगैरा सार रखकर छिलका–कचरा निकाल देती है।

४. परिपूर्णक (छन्ना)–दूध आदि छानने का छन्ना (गालना) की तरह के श्रोता कचरा रखकर सारा निकाल देते हैं।

५. हंस–हंस जल छोड़कर दूध पी लेता है।

६. मेष–बकरी, भेड़ आदि किनारे का स्वच्छ जल पी लेती हैं।

७. महिष–भैंसा पानी पीने के लिए पानी के बीच जाकर सारा पानी गंदा कर देता है।

८. मशक–डांस-मच्छर, खटमल शरीर को काटकर रक्त पीते हैं।

९. जलूक–जलौका–जौंक, शरीर का गंदा खून पीती है।

१०. विडाली (बिल्ली)–बिल्ली दूध का वर्तन जमीन पर गिराकर फिर दूध पीती है।

११. जाहग–चूहे आदि वर्तन को नुकसान पहुँचाये विना चुपचाप दूध आदि पी लेते हैं।

१२. गौ–कुछ लोग गाय की सेवा नहीं करके भूखी मारकर भी दूध चाहते हैं। कुछ प्रेमपूर्वक सेवा करके फिर दूध लेते हैं।

१३. भेरी–भेरी की तरह श्रोता भी दो प्रकार के हैं।

१४. अहीर दम्पति–घी वेचने वाले अहीर दम्पति का दृष्टान्त गाथा ५१ के विवेचन में पढ़ें।

FOURTEEN TYPES OF LISTENERS

1. *Shail-ghan*—A smooth round stone does not get wet even in a down-pour.

2. *Earthen pitcher*—There are many types of listeners, as there are many types of earthen pitchers—unbaked, baked etc.

3. *Sieve*—Some sieve retains trash and allows grains to pass through and others retain grains and allow dirt to pass through.

4. *Filter*—There are listeners like the filter cloth used for filtering milk.

5. *Swan*—It drinks milk and leaves water.

6. *Ram*—Goat, lamb etc. drink clean water from the river-bank.

7. *Buffalo*—To drink water a buffalo enters the water and spoils it.

8. *Mosquito*—Mosquito and other such insects sting and suck blood.

9. *Leech*—Sucks our contaminated blood.

10. *Cat*—Cat topples the milk-pot and then laps up milk.

11. *Rat*—Rat sucks milk without harming the pot.

12. *Cow*—Some starve the cow and still want its milk. Others take proper care and then only take its milk.

13. *Trumpet*—Like trumpet there are two types of listeners.

14. *Ahir couple*—The story of Ahir couple is mentioned in the elaboration of the text listing types of listeners. (Example of 51) (Page-50)

गंवली भी नहीं होती। ऐसे स्वभाव के श्रोता गुरु के कथन के प्रति एकाग्र रह तत्त्व की बात ग्रहण करते हैं। ये सुपात्र होते हैं और श्रुतज्ञान के अधिकारी।

(८) मशक–मच्छर अथवा ऐसे ही अन्य जीव जिस शरीर पर बैठते हैं उसका रक्त चूसते हैं तथा डंक मारकर पीड़ा देते हैं। ऐसे स्वाभाव वाले श्रोता अपने गुरु से कुछ प्राप्त करें तो भी कष्ट और पीड़ा देते रहते हैं। ऐसे अविनीत श्रोता कुपात्र होते हैं।

(९) जलौका–जौंक भी जिस शरीर पर चिपकती है वहाँ से रक्त चूसती है। इसका उपयोग फोड़े में से दूषित रक्त दूर करने के लिए किया जाता है। ऐसे श्रोता भी गुरु के निकट ज्ञान नहीं, दुर्गुण ग्रहण करते हैं और साथ ही गुरुजनों की शक्ति के ह्रास का कारण बनते हैं। ऐसे जौंक के समान श्रोता भी कुपात्र होते हैं।

(१०) विडाली–बिल्ली स्वभावतः दूध-दही अथवा अन्य खाद्य पदार्थ को जमीन पर गिराती है और फिर वह धूल भरा पदार्थ चाटती है। ऐसे स्वभाव वाले श्रोता गुरु से साक्षात् शुद्ध ज्ञान प्राप्त नहीं करते। वे दूसरों से सुनकर अथवा प्रक्षिप्त साहित्य पढ़कर उचित-अनुचित सभी ग्रहण करते रहते हैं। ये भी कुपात्र होते हैं।

(११) जाहक–चूहे (झाऊ चूहा कांटों वाला चूहा) की प्रजाति वाला यह जीव दूध-दही आदि पदार्थ के पात्र के निकट जा उसमें से थोड़ा-थोड़ा पीता है अथवा बर्तन के बाहर की ओर लगे पदार्थ को चाट लेता है। इस प्रकार वह अपनी आवश्यकतानुसार शुद्ध वस्तु ग्रहण करता है और शेष को दूषित या नष्ट नहीं करता। ऐसे ही स्वभाव वाला श्रोता अपनी आवश्यकतानुसार और क्षमतानुसार गुरु के निकट ज्ञान ग्रहण कर लेता है और पुनः गुरु से प्रश्न कर उसे परिपक्व करता है साथ ही गुरु के पूर्ण समय और ऊर्जा को स्वयं मात्र के उपयोग में लेने की मनोवृत्ति नहीं रखता, वह सुपात्र होता है।

(१२) गौ–गाय के विषय में एक दृष्टान्त है जिससे श्रोता के गुणावगुण समझाए हैं–

किसी श्रेष्ठी ने चार ब्राह्मणों को एक ब्याई हुई गाय दान में दी जिसके दूध का उपयोग चारों को संयुक्त रूप से करना था। ब्राह्मणों ने परस्पर निश्चित कर लिया कि बारी-बारी से एक दिन प्रत्येक उसका दूध दुह लेगा। चारों ब्राह्मण निपट स्वार्थी थे। प्रत्येक ने यह सोचा कि मुझे दूध ले लेना चाहिए, दाना-पानी व सेवा तो शेष तीन कर ही रहे हैं। और इस प्रकार वे चारों ही दूध दुहते रहे। गाय दाने-पानी के अभाव में कुछ ही दिनों में मर गई। दान में मिली गाय के मरने का उन्हें कोई दुःख नहीं हुआ, न ही लोक-निन्दा की चिन्ता।इसी प्रकार जो श्रोता गुरु की सेवा-सुश्रूषा तथा उसके आहार-पानी का प्रबन्ध तो नहीं करता, केवल श्रुत प्राप्त करने की चेष्टा में लगा रहता है वह कुपात्र होता है।

इसके विपरीत चार अन्य ब्राह्मणों को भी किसी श्रेष्ठी ने इसी प्रकार एक गाय दान की। वे चारों परोपकारी और निःस्वार्थ स्वभाव के थे। उन सभी ने गाय की यथेष्ट सेवा करने तथा दाना-पानी खिलाने का नियम कर लिया। फलस्वरूप गाय भी हृष्ट-पुष्ट और दीर्घायु हुई और

सभी को प्रचुर मात्रा में दूध भी मिलता रहा। इसी प्रकार जो श्रोता गुरुजनों की निःस्वार्थ सेवा-सुश्रूषा करते हैं तथा आहार-पानी का प्रबन्ध करते हैं और फलस्वरूप गुरु से ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे सुपात्र होते हैं और क्षमतानुसार ज्ञान प्राप्त करने में सफल होते हैं।

(१३) भेरी—यह भी एक दृष्टान्त है—एक बार सौधर्मेन्द्र ने अपनी देव-सभा में वासुदेव श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए उनकी दो विशेषताएँ बताईं—गुण-ग्राहकता और अपनी गरिमा को नहीं त्यागना। इन्द्र की सभा का एक देव श्रीकृष्ण की परीक्षा लेने के उद्देश्य से धरती पर उतरा। उसने एक व्याधि से विगलित मृतप्राय काले श्वान का रूप धरा और उस मार्ग पर पड़ गया जिस पर श्रीकृष्ण जाने वाले थे। कुछ समय पश्चात् जब भगवान अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ वासुदेव श्रीकृष्ण उस मार्ग से निकले तो कुत्ते के शरीर से निकलती तीव्र दुर्गन्ध उनकी नाक में गई। दुर्गन्ध इतनी तीव्र थी कि श्रीकृष्ण के साथ चलते सैनिकों ने मार्ग बदल दिया। कुछेक ने कपड़े से नाक ढँक लिया। किन्तु श्रीकृष्ण हाड़-माँस के बने औदारिक शरीर के स्वभाव व परिणतियों के ज्ञाता थे, वे बिना किसी घृणा-भाव के कुत्ते के निकट से ही निकले और बोले—"देखो ! इस कुत्ते के काले शरीर से झाँकते सफेद, स्वच्छ और चमकते दाँत कितने सुन्दर लगते हैं मानो कृष्ण-मणि के पात्र में मोतियों की माला रखी हो।" कृष्ण की इस अभिव्यक्ति से देव को कृष्ण की गुणग्राहकता के स्वभाव का पता लगा और वह मन ही मन नतमस्तक हो गया।

वहाँ से अन्तर्ध्यान हो वह देव श्रीकृष्ण की अश्वशाला से एक श्रेष्ठ अश्व लेकर भाग गया। सैनिकों ने बहुत पीछा किया पर वह हाथ न आया। अन्ततः श्रीकृष्ण स्वयं उससे अश्व छुड़ाने गये। जब वे उसके निकट पहुँचे तो देव ने कहा—"आपको अपना अश्व छुड़ाने के लिए मुझसे युद्ध करना होगा।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"युद्ध अनेक प्रकार के होते हैं—मल्ल-युद्ध, मुष्ठि-युद्ध, असि-युद्ध आदि, तुम कौन-सा युद्ध करना चाहोगे।" देव ने कहा—"मैं पीठ-युद्ध करना चाहता हूँ। आपकी पीठ और मेरी पीठ से युद्ध किया जाये।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"ऐसा घृणित व नीच युद्ध करना मेरी गरिमा के विरुद्ध है। मैं किसी भी मूल्य पर अपनी गरिमा नहीं त्याग सकता। तुम यह अश्व ले जा सकते हो।"

श्रीकृष्ण का यह उत्तर सुन देव अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट हुआ और श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम कर उनकी परीक्षा लेने की बात बताई। फिर उसने श्रीकृष्ण को एक दिव्य भेरी भेंट की और बताया—"यह रोगनाशक दिव्य भेरी है। हर छह महीने बाद इसे बजाने पर जिसके कान में भी इसकी मेघ गर्जना जैसी गम्भीर ध्वनि जायेगी उसे छह माह तक कोई रोग नहीं होगा और पुराना रोग नष्ट हो जायेगा। इसकी ध्वनि बारह योजन तक जायेगी। सावधानी यह रहे कि न तो इसे छह माह पूर्व बजाया जाये और न इस पर लगा दिव्य लेप उतारा जाये क्योंकि उस लेप में ही रोग शमन का गुण है।"

एक निश्चित तिथि को वह भेरी बजाई गई और देव के कथनानुसार जहाँ तक उसकी ध्वनि गई सभी निरोग हो गये। श्रीकृष्ण ने वह भेरी अपने एक सेवक को दी और सारी विधि समझाकर हर छठे महीने बजाने की आज्ञा दे दी।

एक बार किसी गम्भीर रोग से पीड़ित एक श्रेष्ठी भेरी की महिमा सुन अन्य नगर से द्वारिका आया। उसके दुर्भाग्यवश भेरी उसके पहुँचने से एक दिन पूर्व ही बजाई गई थी। वह निराश हो सोच में डूब गया। तब उसे एक उपाय सूझा। वह भेरी-वादक के पास गया और किसी प्रकार धन का लालच दे उससे थोड़ा-सा लेप भेरी से खुरचकर प्राप्त कर लिया। वह तो निरोग होकर चला गया किन्तु भेरी-वादक को धनोपार्जन का उपाय हाथ लग गया। धीरे-धीरे उसने भेरी पर लगा सारा लेप खुरचकर बेच डाला। भेरी का दिव्य सामर्थ्य नष्ट हो गया।

श्रीकृष्ण को यह सूचना मिली तो उन्होंने उस भेरी-वादक को दण्डित कर द्वारिका से निकाल दिया। जन-सेवा की भावना से उन्होंने उस देवता का आह्वान कर पुनः वैसी ही एक भेरी प्राप्त की और इस बार एक अत्यन्त विश्वासपात्र तथा योग्य व्यक्ति को भेरी बजाने का उत्तरदायित्व सौंपा। उसके पश्चात् हर छह महीने बाद नियम से भेरी बजाई जाने लगी और जनता लाभान्वित होने लगी।

यह दृष्टान्त उपमा स्वरूप है—द्वारिका का अर्थ समस्त भरतक्षेत्र है। श्रीकृष्ण का अर्थ तीर्थंकर है। देव का अर्थ पुण्य-फल है। भेरी का अर्थ श्रुतज्ञान हे और भेरी-वादक का अर्थ साधु है। श्रमण जब श्रुतज्ञानरूपी भेरी बजाता है तब जन-जन का कर्मरूपी रोग नष्ट हो जाता है। किन्तु जो साधु श्रुतज्ञान का स्वार्थवश दुरुपयोग करते हैं और श्रुतसम्मत संयम को भंग करते हैं वे संसार-चक्ररूपी दण्ड के भागी होते हैं। ऐसे श्रोता कुपात्र हैं। जो श्रुतज्ञान का स्वार्थवश दुरुपयोग नहीं करते और श्रुत-सम्मत संयम को भंग नहीं करते वे स्व-हित तथा जन-हित दोनों उद्देश्यों में सफल होते हैं। ऐसे श्रोता सुपात्र हैं।

(१४) आभीरी—यह भी एक दृष्टान्त है—एक अहीर (गुजर) दम्पति घी के घड़े अपनी गाड़ी में भरकर नगर में बेचने के लिए जाते हैं। वहाँ पहुँचकर एक स्थान पर गाड़ी खड़ी कर वे घड़े उतारने लगे। दोनों में से किसी की असावधानी के कारण एक घड़ा हाथ से छूट गया और धरती पर गिरकर टूट गया। जमा हुआ घी धरती पर गिर गया। पति-पत्नी आपस में एक-दूसरे को दोष देते हुए लड़ने लगे। इसी बीच घी पिघलकर मिट्टी में पैठ गया। किसी प्रकार शेष घी बेचते-बेचते रात हो गई। घर लौटते समय मार्ग के अँधेरे में दस्युओं ने उन्हें लूट लिया। किसी प्रकार जान बचाकर अपने घर पहुँचे।

इसी प्रकार जो शिष्य ज्ञान प्राप्त करते समय किसी भूल को लेकर अपने गुरु अथवा अन्य सहपाठियों से कलह में लग जाते हैं वे अपना ही नहीं सभी का अनिष्ट करते हैं। ऐसे श्रोता कुपात्र होते हैं।

एक अन्य अहीर दम्पति के साथ भी ऐसी ही घटना घटी। घड़ा फूटने पर तत्काल दोनों ने एक-दूसरे से असावधनी के लिए क्षमा माँगी और धरती पर पड़े घी को पुनः झट से एकत्र कर तपाकर साफ किया और दूसरे घड़े में भर लिया। समय रहते अपना सारा माल बेच सूर्यास्त से पूर्व सकुशल अपने घर लौट आये।

इसी प्रकार जो शिष्य ज्ञान प्राप्त करते समय भूल होने पर तत्काल गुरु तथा सहपाठियों से क्षमा माँग भूल सुधारने तथा ज्ञान प्राप्त करने में जुट जाता है वह सफलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त कर ध्येय की ओर आगे बढ़ जाता है। ऐसा श्रोता सुपात्र है।

Elaboration—The widely accepted norm about knowledge is that it should be imparted to a worthy person, not unworthy. Same is true for scriptural knowledge. A person who is wicked, foolish, dull, adamant, impolite, carnal, or having other such vices always abuses knowledge. Therefore he is unworthy. One who has interest, curiosity, sincerity, humbleness, and right conduct is worthy of scriptural knowledge. The author has explained the vices and virtues of a listener with fourteen examples—*(See Illustration 5)*

1. **Smooth rock**—There is a rock known as *Mudg*-rock which is as smooth as black-gram. Even if it incessantly rains over it for one week, water does not seep into it. Even if it is kept submerged in water for years, it does not become damp. A person having attributes like this stone is not even slightly inspired towards the right path in spite of being preached continuously for years. He is as dogmatic and adamant as Goshalak and Jamali who could not be corrected even by *Bhagavan* Mahavir himself. Such listeners, who are as obstinate as Ravan and Duryodhan, are unworthy and should be rejected.

2. **Earthen pitcher**—These are of two types—unbaked and baked. A pitcher that is dried in sun is unbaked. It cannot be used to fill water in it because as soon as water is poured in, it disintegrates and water flows out. An infant with such a nature, or a listener with an undeveloped and immature mind, like an infant, is absolutely unworthy.

A baked pitcher is also of two types—new and old. A new pitcher is most suitable for filling water. Water filled in such a pitcher is generally not spoiled and it remains cool and satisfying. A listener with such disposition, who has a mature mind but has not become preconditioned or prejudiced by absorbing other knowledge or information, is most worthy recipient of scriptural knowledge.

An old pitcher is of two types. One that is old but has not been used for storing water. Such pitcher does not lose all its properties. When used, it still keeps the water clean and cool. A listener having

similar nature, who although old yet free of prejudices and misconceptions, is a worthy recipient of scriptural knowledge.

An old and used pitcher is also of two types. One that has been used for storing pure and fragrant water. Listeners having similar nature, who have, through learning, absorbed virtues and not vices, are the worthy ones.

The second type of used pitcher is that in which wines and other foul smelling liquids have been stored. If the stink of such pitcher is automatically removed after some time, it can be used. However, if it stinks permanently it cannot be used. In the same way a listener, who has acquired vices but can be free of them with perseverance, is a worthy recipient of knowledge. A listener who is so wrapped up in vices that their neither is an effort nor a chance of being free from vices is absolutely inappropriate and unworthy recipient of knowledge.

3. **Sieve**—No matter how much liquid is poured into a sieve it is never full. The bigger the holes the sooner it becomes empty. As long as it remains submerged in water it appears filled but the moment it is brought out, it is empty. The purpose of a sieve is to allow the useful part to pass through and retain what is useless and is to be thrown. A listener with similar nature forgets whatever he listens. Also, while listening he is attentive of vices and not virtues. He is unworthy.

4. **Filter**—The property of a filter is to retain the dirt and allow the clean liquid to pass through. A person with such nature while listening retains vices and allows the virtues to pass through. He is an unworthy recipient of scriptural knowledge. In the *Bhashya* (a style of commentary) *Paripurnak* is interpreted as the nest of *Baya* (weaver bird) which when used as a filter retains dirt and allows pure *Ghee* to pass through.

5. **Swan**—It is believed to be the best among birds in terms of beauty and disposition. It is used as a metaphor for discriminating between good and bad. In Hindi there is a proverb based on this supposed attitude of swan—a swan either eats pearls or remains hungry. A listener with a swan-like selective attitude absorbs virtues

and rejects vices while listening. Such a listener is a worthy recipient of scriptural knowledge.

6. **Buffalo**—By nature a buffalo is adverse to cleanliness. It generally sits in slime. Even if it enters clean water it makes the water slimy. A listener having such attitude avoids places where knowledge is given. If at all he goes there, he spoils the atmosphere, creates disturbance for others, and utters incoherently and acts irrationally. Such a listener is an unworthy recipient of scriptural knowledge.

7. **Ram**—A ram, as other animals of that species, drinks water by going on its front knees and sipping water from the surface of a water-body. This way it ensures that it gets clean water to drink and at the same time the water body is also not soiled. A listener having such attitude listens to the guru with apt attention and absorbs the essence. Such a listener is a worthy recipient of scriptural knowledge.

8. **Mosquito**—A mosquito and other such insects sting and suck blood from the body they sit on. A listener having such attitude inflicts pain and discomfort on his guru even while he learns something. Such impolite listeners are unworthy.

9. **Leech**—A leech also sucks blood from the body on which it sticks. It is used for sucking out contaminated blood from a wound. A listener having such attitude acquires vices instead of knowledge from a guru. He also becomes instrumental in depleting of the powers of the teacher. Such leech-like listeners are unworthy.

10. **Cat**—Habitually a cat spills milk, curd, or other eatables in dirt and then laps it up. Listeners having such attitude never get lessons directly from the guru. They either listen from others or read inauthentic literature and absorb right and wrong both. Such listeners are unworthy.

11. **Rat**—A creature of this species approaches a pot filled with milk or curd and carefully laps up only a little at a time. It also consumes the small quantities sticking on the outer walls of the pot. This way it collects what it requires and does not spoil the whole lot. A listener having such attitude collects knowledge according to his need and capacity. He approaches the guru again to remove doubts or

to consolidate what he has learned. He avoids monopolizing the guru. He is a worthy.

12. **Cow**—There is an incident related to cow. It explains the qualities of a listener.

A merchant donated a mature cow to four Brahmans who were to share the milk it produced. The Brahmans decided that by turn each one of them will milk the cow one day. All the four Brahmans were utterly selfish. Each one of them thought that he should only milk the cow; the other three must certainly be feeding it. This way all of them continued to milk the cow. In absence of feed, the cow died of starvation after a few days. The Brahmans did not feel sorry as it was a cow they got in donation. They were also not worried about any criticism. In the same way, a listener who neither arranges for food for the guru nor serves the guru in any other way and only tries to extract scriptural knowledge is unworthy.

13. **Trumpet**—This too is an incident given as an example—Once while praising *Vasudev* Shrikrishna, Saudharmendra, in his assembly of gods, mentioned two of his qualities—appreciation of virtues and maintaining his prestige. A god from the assembly descended to earth for the purpose of testing Shrikrishna. He transformed himself into a sick and scrawny dog and lied down on the path on which Shrikrishna was to pass. After some time, on his way to behold *Bhagavan* Arishtanemi, Shrikrishna arrived near that spot. The obnoxious stink emanating from the sick dog entered his nostrils. The stink was so acute that some of the guards accompanying Shrikrishna changed their path and the others covered their nostrils with their handkerchiefs. But Shrikrishna knew the nature of the earthly body and the changes it underwent; without even a trace of aversion he passed from near the sick dog and commented—"See there, how beautiful are the clean and brilliantly white teeth in the background of the black body of the dog. As if a pearl necklace is lying in a vessel made of black stone." This comment revealed before the god Shrikrishna's acute sense of appreciation of virtues. He was filled with a feeling of respect for Shrikrishna.

The god disappeared from there and reached Shrikrishna's stable. He eloped with one of the best horses. The guards followed him but in

vain. At last Shrikrishna himself went to recover the horse. When he caught up, the thief said—"In order to recover your horse you will have to fight with me." Shrikrishna said—"There are numerous types of duels—wrestling, boxing, fencing, etc. Which one you want ?" The god replied—"I want a back-duel. We will fight with our backs." Shrikrishna said—"It is against my prestige to enter into such a lowly and hateful duel. At no cost I would stoop so low. You may take away the horse."

On hearing this the god appeared in his natural form before Shrikrishna and bowing at his feet he explained how he had come to test Shrikrishna. After this he presented a divine trumpet to Shrikrishna and said—"This divine trumpet has healing qualities. It should be blown every six months. Who ever listens to the deeply resonant thunder like sound it emits will be free of all ailments for six months. He will also be cured of his old ailments. The reach of its sound is twelve *yojans* (measure of linear distance). Ensure that it is blown only once in six months and its coating is not removed because it is only the coating that has the healing power."

The trumpet was blown on a specific date. As the god had told, wherever its sound reached every one became free of all ailments. Shrikrishna gave the trumpet to one of his attendants and instructed him to blow only once every six months.

One day a very sick merchant in some other town heard about the divine qualities of the trumpet. He at once came to Dwarika. His bad luck that the trumpet had been blown just a day before his arrival. He was disappointed and worried. After contemplating for some time he got an inspiration. He went to the guard in charge of the trumpet and bribed him to scraping a little coating from the trumpet. The powder cured the merchant and he went away satisfied. But this provided the guard with a new source of income. Gradually he scraped off all the coating from the trumpet and sold it. The trumpet was now devoid of its divine healing power.

When Shrikrishna got this news he punished the trumpet blower guard and exiled him from Dwarika. For public welfare he invoked that god and got another trumpet from him. This time he gave it to a capable man of confidence with the responsibility to blow it every six

months. The instructions were strictly followed and the people benefitted.

This is a metaphoric example. Dwarika depicts the Indian subcontinent. Shrikrishna depicts *Tirthankar*. The god who came to test Shrikrishna depicts fruits of pious deeds. Trumpet depicts scriptural knowledge and trumpet-blower-guard depicts a *shraman*. When a *shraman* blows the trumpet of scriptural knowledge the masses are cured of their disease of karma. But the *shraman* who selfishly misuses scriptural knowledge and breaks the prescribed codes gets caught in the cycle of rebirths as punishment. Listeners having such attitude are unworthy. The *shraman* who does not selfishly misuses scriptural knowledge and avoids breaking the prescribed codes embraces success in the goals of development of the self as well as masses. Such listeners are worthy.

14. **Ahir** (a trade based caste in India; those who own cattle and deal in milk and milk products)—This is also an incident given as an example—An *Ahir* couple goes to the town to sell their cart full of pitchers filled with butter. Reaching the town they park their cart and start unloading the pitchers. Due to carelessness of one of them, a pitcher fell on the ground and broke. The condensed butter spilled on the ground. The husband and wife blamed each other and started quarrelling. During this squabble the butter melted and seeped into the sand. Valuable time was wasted and by the time they could sell the remaining butter, the day ended. They started back for their village. In the darkness of the night they were looted by dacoits. Abandoning everything they ran for their life and somehow reached the village.

In the same way a listener who enters into an argument with his teacher or a colleague over some mistake, wastes his own as well as others time. Such listeners are unworthy.

Another *Ahir* couple faced a similar coincidence. As soon as the pitcher broke they begged pardon mutually and at once collected the condensed butter spilled on the ground, melted it in a pot, filtered it and filled it back into a new pitcher. Their selling activity was not disturbed. They sold all their produce in time to return home safe before sunset.

In the same way a listener who, when committing a mistake, at once begs pardon of his guru and colleagues and proceeds to rectify the mistake and resume acquiring knowledge, successfully absorbs knowledge and progresses in the direction of his goal. Such listeners are worthy.

तीन प्रकार की परिषद्
THREE TYPES OF CONGREGATION

धर्म सुनने के लिए उपस्थित श्रोताओं के समूह को परिषद् कहते हैं। इनके विषय में कहा गया है–

A group of listeners assembled to listen to a religious discourse is called a congregation. About this it is mentioned that—

५२ : सा समासओ तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–जाणिया, अजाणिया, दुव्वियड्ढा। जाणिया जहा–

खीरमिव जहा हंसा, जे घुट्टंति इह गुरु-गुण-समिद्धा।
दोसे अ विवज्जंति, तं जाणसु जाणियं परिसं॥

अर्थ–वह (परिषद्) संक्षेप में तीन प्रकार की कही गई है–ज्ञायिका, अज्ञायिका तथा दुर्विदग्धा।

ज्ञायिका–जैसे हंस पानी को छोड़ दूध पी लेता है उसी प्रकार जहाँ श्रोताओं में गुणवान तथा गुणज्ञ व्यक्ति हो और जो दोषों का त्याग कर गुण ग्रहण कर लेते हैं उसे ज्ञायिका परिषद् समझो।

52. In brief it has been said to be of three types—*Jnayika*, *Ajnayika* and *Durvidagdha*.

Jnayika—Know this, that a *Jnayika Parishad* (a congregation of sagacious listeners) is where listeners are virtuous as well as appreciaters of virtues; and they reject vices and accept virtues just as a swan rejects water and accepts milk.

विवेचन–हंस के स्वभाव के उदाहरण से ज्ञायिका परिषद् के गुण को समझाया है। जहाँ श्रोता-समूह इतना गुण-सम्पन्न तथा विवेकी हो कि गुण और दोष में भेद कर गुण मात्र को स्वीकार करे और दोष को छोड़ देवे, वह समूह ज्ञायिका परिषद् कहा जाता है।
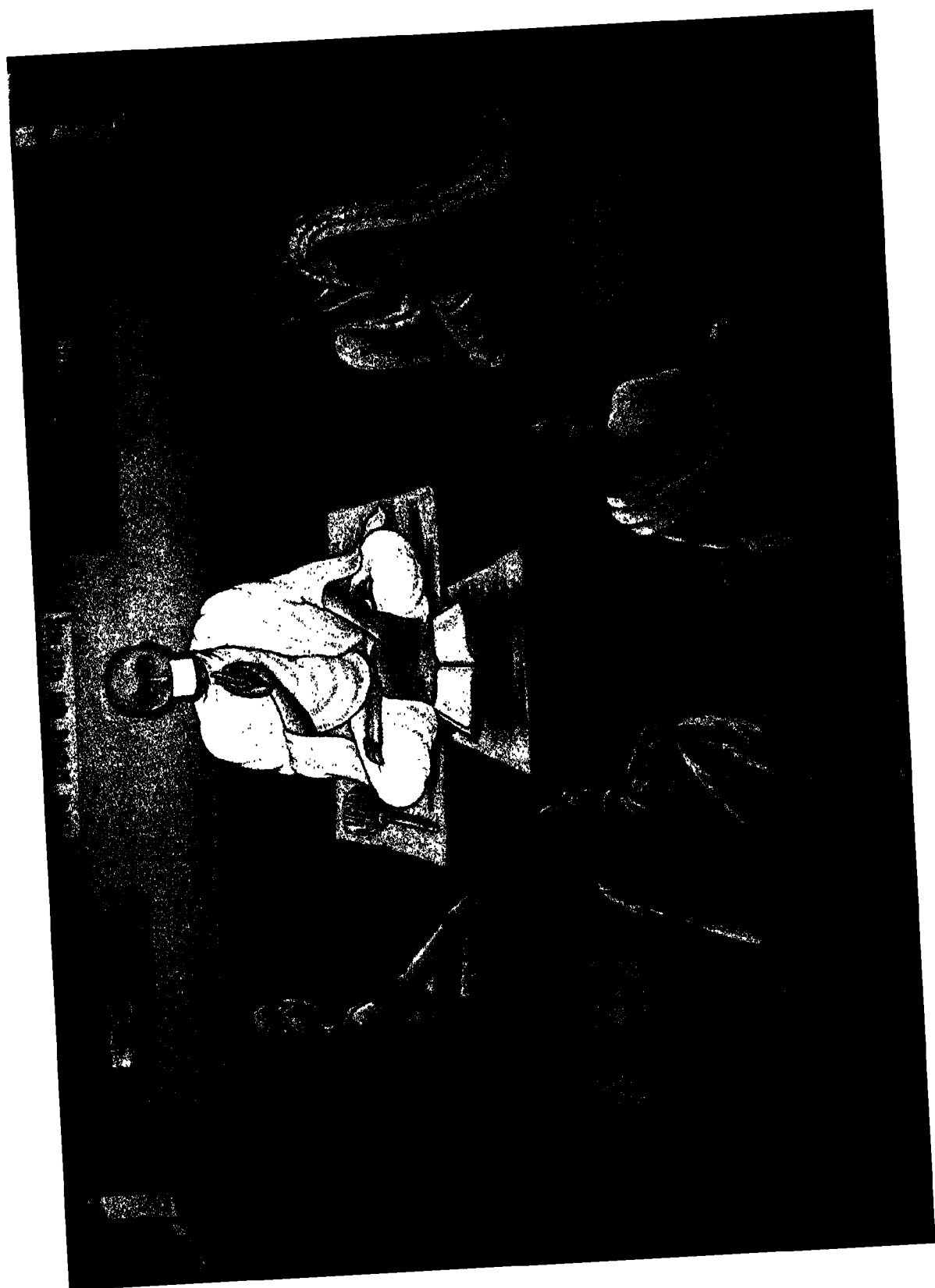
(१) तीन प्रकार की परिषद्

१. ज्ञायिका परिषद्-विनयपूर्वक योग्य आसन से बैठकर वक्ता की वाणी सुनकर उसका गुण ग्रहण करने वाले श्रोता।

२. अज्ञायिका परिषद्-जिनमें न तो विनय का गुण होता है न ही जिन्हें सुनने की विधि का ज्ञान होता है किन्तु मन से सरल और सीधे होते हैं। सुनते हुए वक्ता की तरफ नहीं देखकर इधर-उधर देखते हैं। चाहे जिस आसन से बैठ जाते हैं।

३. दुर्विदग्धा परिषद्-जिसको न तो तत्त्व का ज्ञान होता है और न ही सुनने की विधि का ज्ञान है, फिर भी अहंकार में अकड़कर बैठता है। ऐसा अविनीत श्रोता। (गाथा ५२)

(1) THREE TYPES OF CONGREGATION

There are three types of congregation—

1. *Jnayika Parishad*—The listeners who properly take their seat, humbly listen to the speaker and absorb the virtues.

2. *Ajnayika Parishad*—These listeners lack modesty and are ignorant about the etiquettes or procedure of attending a lecture. However, they are simple minded ignorants. While listening they do not look at the speaker, just look around. Their sitting postures too are immodest.

3. *Durvidagdha Parishad*—These are the listeners who have no inkling about the fundamentals neither are they acquainted with the procedures of listening. Still they behave like snobs and conceited. (52)

Elaboration—The qualities of a *Jnayika Parishad* have been explained with the help of the example of a swan. Where the lot of listeners is so knowledgeable and rational that it can discriminate between virtues and vices and consequently reject vices and accept virtues alone is known as *Jnayika Parishad*.

५३ : *अजाणिया जहा–*

जा होइ पगइमहुरा, मियछावय-सीह-कुक्कुडय-भूआ।
रयणमिव असंठविआ अजाणिया सा भवे परिसा॥

अर्थ–अज्ञायिका–जैसे हरिण, सिंह और मुर्गे के शावक (शिशु) के समान मधुर या कोमल स्वभाव वाले हों तथा खान से निकले रत्न के टुकड़े जैसे असंस्कृत अपरिष्कृत हों, ऐसे श्रोता-समूह को अज्ञायिका परिषद् कहते हैं।

Ajnayika—*Ajnayika Parishad* (a congregation of ignorant listeners) is where listeners are immature and puerile like the young of deer, lion and hen and uncut and unpolished like rough gem stones direct from a mine.

विवेचन–कोमल स्वभाव वाले अनभिज्ञ श्रोताओं को और जो सरल किन्तु संस्कार हीन हैं उन्हें जिस दिशा में चाहें मोड़ कर सुसंस्कृत बनाया जा सकता। उनके संस्कार रहित होने का अर्थ यह है कि वे सुसंस्कार से भी अछूते हैं। जैसे खान से निकले रत्न के टुकड़ों को तराश कर चमका कर मोहक रत्न बनाया जाता है वैसे ही संस्कार रहित श्रोता को संस्कारित कर ज्ञान मार्ग की ओर प्रेरित किया जा सकता है।

Elaboration—The naive and impressionable listeners as well as those who are rustic but simple can be turned in any desired direction and made cultured. Their being rustic or uncultured means they are devoid of vices and virtues both. As a rough gem stone excavated from a mine is turned into a shining attractive gem after cutting and polishing, a naive but simple listener can be educated and steered toward the path of knowledge.

५४ : *दुव्विअड्ढा जहा–*

न य कत्थई निम्माओ, न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं।
वत्थिव्व वायपुण्णो, फुट्टइ गामिल्लय विअड्ढो॥

अर्थ–दुर्विदग्धा–जैसे गाँव का पण्डित किसी भी विषय का पूर्ण ज्ञानी नहीं होता और तिरस्कार के भय के कारण किसी से ज्ञान भी नहीं प्राप्त करता और हवा भरी मशक के

समान मिथ्या अंहकार में फूला रहता है ऐसे श्रोता समूह/ऐसी परिषद को दुर्विदग्धा परिषद कहते हैं।

54. Durvidagdha—That congregation is known as a *Durvidagdha Parishad* where the listeners are like a village pundit who is not a complete scholar of any subject, avoids learning from some one for the fear of criticism, and always remains inflated like a balloon with false pride.

विवेचन—विदग्ध का अर्थ है पण्डित, जानकार। दुर्विदग्ध वह होता है जो पण्डित न होने पर भी अपने को पण्डित मानता है। अधजल गगरी छलकत जाय ऐसे मिथ्याभिमानी व्यक्ति अपने अज्ञान का रहस्य खुल जाने के भय से अन्य अनेक अवगुणों के भण्डार बन जाते हैं और अपने विकास की राह स्वयं बन्द कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति श्रुतज्ञान के लिए सर्वथा अयोग्य होते हैं।

इन तीनों परिषदों में प्रथम श्रेष्ठ है, द्वितीय मध्यम और तृतीय निकृष्ट। (देखें चित्र ६-७)

Elaboration—*Vidagdha* means a scholar, a learned person. *Durvidagdha* is he who considers himself a scholar in spite of not being so. Shallow brooks are noisy. Such individuals with bloated ego, apprehensive of their ignorance being revealed, become caches of numerous other vices and block their own progress. They are unworthy of getting scriptural knowledge.

Of these three congregations, first is the best, second is medium and third is the worst. *(See Illustration 6-7)*
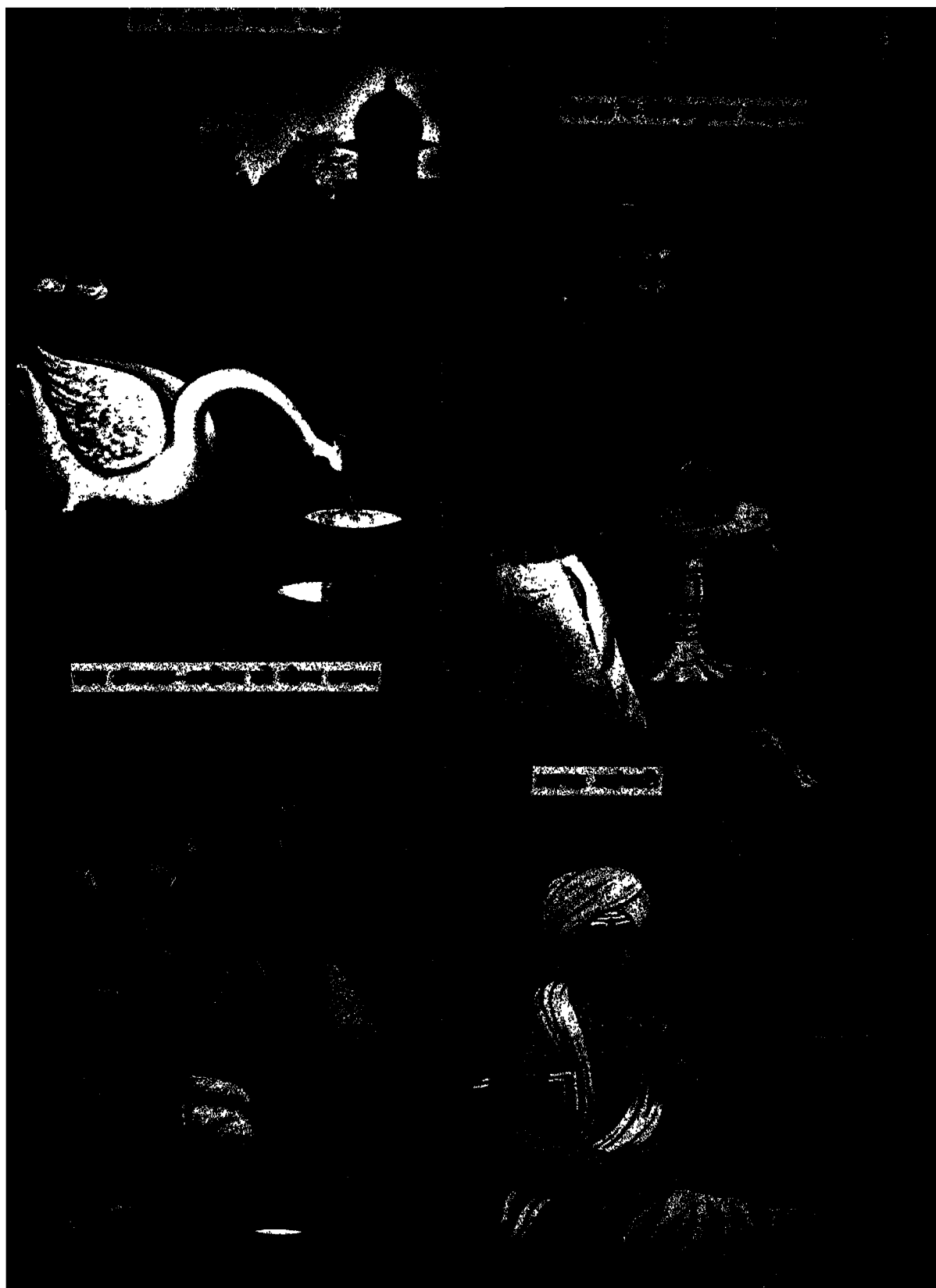
(२) तीन प्रकार की परिषद्

१. ज्ञायिका परिषद्–हंस के समान। हंस दूध से भरे कटोरे में से पानी छोड़कर दूध ग्रहण कर लेता है। ऐसा होता है विनीत और गुणज्ञ श्रोता।

२. अज्ञायिका परिषद्–जैसे मृग, सिंह, मुर्गा आदि को शिक्षक जिस प्रकार की शिक्षा देता है उसी प्रकार सीख जाते हैं। उसी प्रकार के सरल बुद्धि श्रोता।

रत्न संधायक–रत्न-मणि आदि पत्थर बेडोल होते हैं किन्तु कुशल कारीगर उन्हें तराशकर मन चाहे ढंग से जड़कर सुन्दर आभूषण बना लेता है। इसी प्रकार अज्ञानी किन्तु सरल प्रकृति वाले श्रोता को वक्ता अपने विचारों के अनुकूल बना लेता है।

३. दुर्विदग्धा परिषद्–जैसे गाँव का कम पढ़ा-लिखा पंडित अपनी प्रशंसा सुनकर अहंकार में फूला रहता है, दूसरों की बात नहीं मानता। वैसे ही अल्पज्ञानी अहंकारी श्रोता सदा अपनी बात पर ही अड़े रहते हैं। (गाथा ५२-५४ तक)

(2) THREE TYPES OF CONGREGATION

1. *Jnayika Parishad*—Like swans. Swan drinks milk from a bowl filled with milk and leaves any water mixed in it. Such is a modest and virtue appreciating listener.

2. *Ajnayika Parishad*—Animals like deer, lion and cock learn whatever is taught to them by their trainer. Such are the simple minded ignorant listeners.

Ornament maker—The gems in natural form are shapeless. A skilled artisan cuts and polishes them and an ornament maker sets them and makes beautiful ornaments. In the same way an ignorant but simple minded listeners can be moulded by a speaker.

3. *Durvidagdha Parishad*—A little read scholar from a village is filled with ego when he is praised and stops listening to others. In the same way a conceited listener with little knowledge is adamant on what he says. (52-54)

ज्ञान-मीमांसा

THE DISCUSSION ABOUT KNOWLEDGE

१ : *नाणं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा–*

(१) आभिणिबोहियनाणं, (२) सुयनाणं, (३) ओहिनाणं, (४) मण-पज्जवनाणं, (५) केवलनाणं।

अर्थ–ज्ञान के पाँच प्रकार/भेद बताये गये हैं–(१) आभिनिबोधिक ज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यवज्ञान, तथा (५) केवलज्ञान।

1. *Jnana* or knowledge is said to be of five types— 1. *Abhinibodhik-jnana*, 2. *Shrut-jnana*, 3. *Avadhi-jnana*, 4. *Manahparyav-jnana*, and 5. *Kewal-jnana*.

विवेचन–यद्यपि भगवान की स्तुति, गणधरों को तथा स्थविरों को वन्दना आदि के द्वारा सूत्रकार ने प्रथम मंगलाचरण कर दिया है किन्तु मूल सूत्र का प्रथम सूत्र होने के कारण इस सूत्र को भी मंगलाचरण माना जाता है। ज्ञान के भेद यहाँ नामरूप में दिये गये हैं जिनकी विस्तार से चर्चा आगे प्रश्नोत्तर शैली में की गई है।

ज्ञान का अर्थ है पदार्थ अथवा तत्त्व को यथार्थ रूप से या यथार्थ स्वरूप में जानना। इस सूत्र के वृत्तिकार ने ज्ञान शब्द को केवल भाव-साधन तथा करण-साधन के रूप में प्रयुक्त किया है। अर्थात् स्वरूप-बोध भाव साधनरूप है। जैसे–णाती णाणं–जानना ही ज्ञान है, तथा णज्जइ अणेणेति नाणं–जिस क्रिया द्वारा स्वरूप बोध हो–"ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनाऽस्मादस्मिन्वेति वा ज्ञानं।"–जिसके द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना जाये वह ज्ञान है। यह वह करण साधनरूप हैं। शास्त्रीय परिभाषा में ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षय अथवा क्षयोपशम से तत्त्व के यथार्थ रूप का बोध होने का नाम ज्ञान है। ज्ञान के उपरोक्त पाँच भेदों में प्रथम चार क्षयोपशमजनित होते हैं तथा अन्तिम क्षयजनित।

ज्ञान के पाँच भेदों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

(१) **आभिनिबोधिक ज्ञान** अथवा मतिज्ञान–पाँच इन्द्रियों तथा मन के माध्यम से आत्मा द्वारा सामने आये पदार्थों को उनके प्रकट स्वरूप में जान लेना आभिनिबोधिक ज्ञान है। इसका प्रचलित नाम मतिज्ञान है।

(२) **श्रुतज्ञान**–शब्द को सुनकर जो अर्थ ग्रहण किया जाता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान भी इन्द्रियों तथा मन के द्वारा ही ग्रहण किया जाता है अथवा उनके निमित्त ही उत्पन्न होता

है, किन्तु इसमें चिन्तन-मनन आदि क्रियाओं का आधिक्य होने के कारण इसे मुख्यतया मन का विषय माना गया है। श्रुतज्ञान के दो भेद बताये गये हैं–(१) अर्थश्रुत–केवलज्ञानी अरिहन्त प्रत्यक्ष रूप से जानकर जो प्रतिपादित करते हैं वह अर्थश्रुत कहलाता है। (२) सूत्रश्रुत–अरिहन्त के इस प्रवचन को उनके गणधर सूत्ररूप में संकलित कर जिसे प्रकट करते हैं वह सूत्रश्रुत कहलाता है। जैसा कि कहा गया है–

अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तेई॥

अर्थात् अरिहन्त अर्थ कहते हैं और उसे शासन-हित के लिए गणधर सूत्ररूप में गूँथते हैं।

(३) अवधिज्ञान–इन्द्रिय और मन पर निर्भर रहे बिना केवल आत्मा के द्वारा रूपी तथा मूर्त्त पदार्थों का साक्षात् कर लेने वाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। इसमें केवल रूपी पदार्थों को देखने-जानने की क्षमता होती है, अरूपी पदार्थ इसकी सीमा से परे हैं। अर्थात् इसके द्वारा आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता। अन्य शब्दों में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मर्यादा (अवधि-सीमा) से यह ज्ञान मूर्त्त द्रव्यों को प्रत्यक्ष करने की शक्ति रखता है।

(४) मनःपर्यवज्ञान–जब मन किसी वस्तु का चिन्तन करता है तथा उस वस्तु के अनुरूप मन भी भिन्न-भिन्न आकृतियाँ धारण करता है, इन्हें मन का पर्याय कहते हैं। समनस्क अथवा संज्ञी जीव के चिन्तन के इन परिणामों को जिस ज्ञान से ग्रहण किया जा सके वह मनःपर्यवज्ञान कहलाता है।

(५) केवलज्ञान–केवल शब्द के विभिन्न अर्थों से इस ज्ञान का समग्र अर्थ समझा जा सकता है। इन अर्थों के आधार पर संक्षेप में व्याख्या इस प्रकार है–

केवल अर्थात् एक मात्र–जिसके उत्पन्न होने से उपरोक्त चारों ज्ञान इस एक मात्र ज्ञान में विलीन हो जायें उसे केवलज्ञान कहते हैं।

केवल का अर्थ अकेला, पर-सहायता से निरपेक्ष–जो ज्ञान विना किसी अन्य सहायता या निमित्त के रूपी-अरूपी, मूर्त्त-अमूर्त्त सभी वस्तुओं तथा विषयों को प्रत्यक्ष कर देता है, जिसे मन, इन्द्रिय, देह व किसी प्रकार के यंत्र आदि माध्यम की आवश्यकता नहीं होती उसे केवलज्ञान कहते हैं।

केवल का अर्थ है विशुद्ध। चारों क्षायोपशमिक ज्ञान विशुद्ध होते हैं किन्तु जो विशुद्धतम है उसे ही केवलज्ञान कहते हैं। अन्य चारों ज्ञान कषाय के अंश सहित होते हैं किन्तु केवलज्ञान उनसे रहित होता है।

केवल का अर्थ है परिपूर्ण। क्षायोपशमिक ज्ञान किसी एक पदार्थ के सभी पर्यायों को नहीं जान सकते। जो समस्त द्रव्यों के समस्त पर्यायों को जान सके ऐसा परिपूर्ण ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है।

केवल का अर्थ है अनन्त–जो अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों से श्रेष्ठतम व सीमारहित है, अनन्त पदार्थों को जानने की शक्ति वाला है तथा उत्पन्न होने पर कभी नहीं जाता, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

केवल का अर्थ है निरावरण–जिस ज्ञान पर कैसा भी कोई आवरण नहीं हो, जो नित्य और शाश्वत हो वह ज्ञानावरणीय कर्मों के सम्पूर्ण क्षय से उत्पन्न केवलज्ञान है।

उपरोक्त पाँच ज्ञान में से प्रथम दो परोक्ष होते हैं और अन्तिम तीन प्रत्यक्ष।

Elaboration—Although the author has already written the panegyrics of *Tirthankars*, *Ganadhars* and era-leaders in the beginning, this verse is also considered as a panegyric because it is the first verse of the basic text. In this verse only the names of different types of knowledge have been given. The details have been discussed later in question-answer style.

Jnana or knowledge means to know matter and fundamentals in their true form. The commentator (*Vrittikar*) of this scripture has interpreted the word *Jnana* only as the mental means and the process. The data about the form of things is the mental means, as is said—to know is knowledge. And the activity through which the data about the form of a thing is acquired is known as the process as is said—the process of knowing the form of a thing is knowledge. The classical definition is—To know the true form of things as a consequence of *kshaya* or *kshayopsham* (extinction or extinction-cum-suppression) of *Jnanavaraniya-karmas* (knowledge veiling karma) is called knowledge. Of the five types of knowledge mentioned here the first four are acquired by extinction-cum-suppression of karma and the fifth by extinction of karma.

The definitions of the five types of knowledge in brief are as follows—

1. Abhinibodhik-jnana or Mati-jnana (sensory knowledge)—To know the apparent form of things coming before the soul by means of five sense organs and mind is called *Abhinibodhik-jnana*. It is popularly known as *Mati-jnana*.

2. Shrut-jnana (scriptural knowledge)—To know by hearing sound, word, or speech is called *Shrut-jnana*. Although this type of knowledge is also received with the help of sense organs and the mind, because of the larger involvement of the processes of thinking

and contemplating it is mainly considered an activity of the mind. There are said to be two classes of *Shrut-jnana*—1. *Arth shrut* (Word of the Omniscient)—what is propagated by the omniscient *Arihant* after knowing through his direct perception is called *Arth Shrut*. 2. *Sutra shrut*—based on this Word of the Omniscient, compiled as aphorisms, what is presented by the *Ganadhars* is called *Sutra shrut*. As is said—"The *Arihant* utters the Word (*arth*) and for the benefit of the religious order the *Ganadhars* collect and compile it in the form of aphorisms (*sutra*).

3. **Avadhi-jnana** (extrasensory perception of the physical dimension)—the knowledge of the tangible and material things acquired by soul without the help of sense organs and mind is known as *Avadhi-jnana*. It has the capacity to see and know only material things; the formless things are beyond its capacity. In other words, it cannot see or know soul. This type of knowledge has the capacity to directly perceive material things on the basis of four parameters (*avadhi*) of matter, space (area), time and view-point.

4. **Manahparyav-jnana**—When the mind thinks of some thing it takes the form of that thing; this is known as *paryaya* (form, variation). The knowledge that perceives these transformations taking place within the mind of a sentient being is known as *manahparyav-jnana*.

5. **Kewal-jnana**—The full meaning of this term can be understood best with the help of various meanings of the word *Kewal*. Based on these meanings the definition in brief is as follows—

Kewal means the only—*Kewal-jnana* is that which when dawns, the former four merge with it.

Kewal means alone or self reliant—The knowledge which directly perceives all things tangible or intangible, having a form or formless, without any help or assistance and which is not dependent on any instrument or equipment including the mind, sense organs, or body is known as *Kewal-jnana*.

Kewal means pure—The four *Kshayopashamik jnanas* are all pure but purest of all is *Kewal-jnana*. The other four *jnanas* have traces of passions but *Kewal-jnana* is absolutely free of them.

Kewal means complete—The *Kshayopashamik jnanas* cannot know all possible forms (variations) of a single thing. That complete knowledge which can know all forms of all things is called *Kewal-jnana*.

Kewal means unlimited—Which is best among all types of knowledge and has no limit is *Kewal-jnana*. It has limitless capacity and it is perpetual as well.

Kewal means unveiled—The knowledge which has no veil at all, which is ever eternal and perpetual, and which comes with the total extinction of the *Jnanavaraniya Karma* is *Kewal-jnana*.

Of these five types of knowledge the first two are indirect and the remaining three are direct.

प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान
DIRECT AND INDIRECT KNOWLEDGE

२ : *तं समासओ दुविहं पण्णत्तं,*
तं जहा–पच्चक्खं च परोक्खं च॥

अर्थ–पाँच प्रकार का ज्ञान संक्षेप में दो प्रकार से बताया गया है। वे हैं–प्रत्यक्ष और परोक्ष।

2. The five types of knowledge are divided into two classes. They are—*Pratyaksh* or direct and *Paroksh* or indirect.

विवेचन–अक्ष का अर्थ है जीव। जिस ज्ञान का जीव अथवा आत्मा के साथ बिना किसी अन्य साधन के सीधा सम्पर्क होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है तथा जो ज्ञान इन्द्रियों तथा मन के माध्यम से होता है उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं। अवधिज्ञान तथा मनःपर्यवज्ञान आंशिक रूप से प्रत्यक्ष अथवा देश-प्रत्यक्ष होते हैं तथा केवलज्ञान पूर्ण अथवा सर्व-प्रत्यक्ष होता है।

क्रम व्यवस्था–इन पाँच ज्ञानों में सर्वप्रथम उल्लेख मतिज्ञान का है क्योंकि यह सम्यक् अथवा मिथ्यारूप में समस्त संसारी जीवों को सदैव उपलब्ध रहता है। दूसरे स्थान पर श्रुतज्ञान है क्योंकि यह सामान्य प्रयत्न से ही सम्यक् अथवा मिथ्या रूप में प्रत्येक मतिज्ञान वाले जीव को प्राप्त होता है।

तीसरा स्थान अवधिज्ञान का है, क्योंकि इसमें विशेष प्रयत्न और विशुद्धि की आवश्यकता होती है। कर्म मल के क्षयोपशम से प्राप्त होने वाला यह ज्ञान इससे पूर्व के दोनों ज्ञानों के समान सम्यक् रूप तथा मिथ्यात्व दोनों में परिवर्तित हो सकता है। चौथा स्थान मनःपर्यवज्ञान का है। यह

और अधिक आत्म-विशुद्धि के द्वारा प्राप्त होता है और पदार्थ से अधिक भाव विषयक होता है अतः सम्यक्त्वी को ही प्राप्त होता है। केवलज्ञान का पाँचवाँ और सर्वोपरि स्थान है वह सम्पूर्ण विशुद्धि से प्राप्त होता है।

Elaboration—The word *Aksh* means sentient being or soul. The knowledge that is directly acquired by a being or a soul without any outside help is called directly perceived knowledge or *pratyaksh jnana* (direct-knowledge). And that which is acquired with the help of the sense organs and the mind is called indirectly perceived knowledge or *Paroksh jnana* (indirect-knowledge). *Avadhi-jnana* and *Manahparyav-jnana* are partially direct and *Kewal-jnana* is completely direct.

The sequence—In the five types of knowledge *Mati-jnana* (sensory knowledge) is mentioned first of all because in right or wrong form it always exists within all worldly beings. Second in order is *Shrut-jnana* (scriptural knowledge) which with very little effort can be acquired in right or wrong form by every being having *Mati-jnana*.

Third in order is *Avadhi-jnana* because it requires special efforts and purity of mind and soul. Acquired by the *kshayopasham* of the contamination of karma particles this knowledge, like the former two, can have right and wrong manifestations. Fourth in order is *Manahparyav-jnana*. It requires greater efforts and purity of mind and soul and is related more to thoughts or feelings rather than matter. Therefore it is acquired only by him who has *Samyaktva* (a specific state of righteousness where right perception and right knowledge start translating into right conduct). *Kewal-jnana* comes fifth and occupies the highest position. It is acquired only with complete and absolute purity.

प्रत्यक्ष ज्ञान के भेद

CLASSIFICATION OF DIRECT-KNOWLEDGE

३ : *से किं तं पच्चक्खं ?*

पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं,

तं जहा—इंदियपच्चक्खं च णोइंदियपच्चक्खं च।

अर्थ–प्रश्न–प्रत्यक्ष ज्ञान क्या है?

उत्तर–प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का बताया है–(१) इन्द्रिय-प्रत्यक्ष, तथा (२) नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष।

3. Question—What is this *Pratyaksh-jnana* ?

Answer—*Pratyaksh-jnana* is said to be of two types—1. *Indriya Pratyaksh*, and 2. *No-indriya Pratyaksh*.

विवेचन–प्रश्न का सीधा उत्तर–अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान की परिभाषा नहीं देकर उसके भेद बताना विषय को स्पष्ट करने की एक शैली है जो इस सूत्र में प्रयुक्त की गई है। आगम में अनेक शैलियों का विषयानुसार उपयोग किया गया है; जैसे–लक्षण द्वारा, स्वामी द्वारा, क्षेत्रादि गुणों द्वारा उत्तर देना आदि।

इन्द्रिय आत्मा की वैभाविक संज्ञा है अर्थात् जिसकी क्रियाओं से आत्मा के अस्तित्व की प्रतीति होती है। इन्द्रिय के दो भेद हैं–द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

द्रव्येन्द्रिय के भी दो भेद हैं–निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय और उपकरण द्रव्येन्द्रिय। निर्वृत्ति का अर्थ है–संरचना। इन्द्रिय की संरचना दो प्रकार की होती है। एक उसका शरीरस्थ भौतिक आकार जो सामान्यतया दिखाई पड़ता है। दूसरा उसी आकार में आत्म-प्रदेशों का संस्थान। इस बाह्य और आभ्यन्तर संरचना की कार्य-शक्ति को उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। समस्त जीवों में इन्द्रियों की बाह्य आकृति भिन्न-भिन्न होती है किन्तु आभ्यन्तर संरचना समान होती है।

भावेन्द्रिय भी दो प्रकार की होती हैं–लब्धि तथा उपयोग। मति ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न विशेष आत्मिक परिणाम और तद्जनित शक्ति अथवा योग्यता को लब्धि कहते हैं। शब्द, रूप आदि गुणों अथवा विषयों के सामान्य अथवा विशिष्ट बोध की क्रिया को उपयोग कहते हैं।

जो विषय द्रव्य और भाव दोनों प्रकार की इन्द्रियों से ग्रहण किया जाय वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। एक के अभाव में वह घटित नहीं होता।

"नो" शब्द यहाँ सर्वथा निषेधवाचक है। अर्थात् जो इन्द्रियों की अपेक्षा न रखे वह नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष है। व्यावहारिक भाषा में मन को भी नोइन्द्रिय कहते हैं। किन्तु यहाँ वह अर्थ नहीं है। जो ज्ञान बिना किसी माध्यम (इन्द्रिय, मन, प्रकाश आदि बाहरी साधन) के सीधा आत्मा द्वारा ग्रहण किया जाय वह नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष है।

व्यावहारिक भाषा में इन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये ज्ञान को भी प्रत्यक्ष कहने की प्रथा है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए इन दोनों प्रत्यक्षों को सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष (इन्द्रिय प्रत्यक्ष) तथा पारमार्थिक प्रत्यक्ष (नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष) भी कहते हैं।

Elaboration—Instead of giving a direct answer or the definition of *Pratyaksh-jnana* the author gives names of its types. He uses this style for a more explicit presentation of the subject throughout this work. In the *agams* many different styles have been used according to the demand of the subject such as—discussing the attributes, the sources, the areas, etc.

Indriya or a sense organ is the evident indicator of the soul. In other words it is through the activity of a sense organ that the existence of the soul becomes evident. There are two parts of a sense organ—physical (*dravyendriya)* and mental (*bhavendriya*).

The physical sense organ also has two parts—structural (*nivritti*) and operative (*upkaran)*. The structural part has two limbs—one is the visible physical structure within the body and the second is a matching subtle structure within the soul (this is a dimension that is beyond the normal physical and mental perception) made up of soul-sections (*atma-pradesh*). The joint active ability of these two limbs of the structural part is called the operative part. In all beings the outer structures of the sense organs are different but the inner structures (within the soul) are similar.

The mental sense organ is also of two types—ability (*labdhi*) and utility (*upayoga*). The capacity or power acquired as a consequence of the changes manifested within the soul due to the *kshayopasham* of the knowledge-veiling karmas is called ability or *labdhi*. The activity of acquiring normal and special knowledge of the sound, form, qualities, subjects etc. is called utility or *upayog*.

The knowledge that is acquired with the help of both these physical and mental sense organs is called *Indriya Pratyaksh*. It cannot be acquired in absence of any one of these.

The prefix *'no'* is used here as negation only. Therefore *No-indriya Pratyaksh* means the knowledge which is acquired without the help of the sense organs. Generally, mind is also called a *No-indriya*. But here it has not been used in that context. Here *No-indriya Pratyaksh* means the knowledge that is directly acquired by the soul without any outside help including that from sense organs, mind, light, or any other medium or instrument.

In common man's language the knowledge acquired through sense organs is also called direct knowledge. With this in view two other names have been given to these two types—*Indriya Pratyaksh* = *Samvyavaharik Pratyaksh* (mundanely direct) and *No-indriya Pratyaksh* = *Paramarthik Pratyaksh* (transcendentally direct).

सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष के प्रकार
TYPES OF SAMVYAVAHARIK PRATYAKSH

४ : से किं तं इंदियपच्चक्खं? इंदियपच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं,

तं जहा-(१) सोइंदियपच्चक्खं, (२) चक्खिंदियपच्चक्खं, (३) घाणिंदियपच्चक्खं, (४) रसनेन्दियपच्चक्खं, (५) फासिंदियपच्चक्खं।

से तं इंदियपच्चक्खं।

अर्थ–प्रश्न–इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान पाँच प्रकार का है, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय-प्रत्यक्ष, चक्षुरिन्द्रिय-प्रत्यक्ष, घ्राणेन्द्रिय-प्रत्यक्ष, रसनेन्द्रिय-प्रत्यक्ष तथा स्पर्शनेन्द्रिय-प्रत्यक्ष।

4. Question—What is this *Indriya Pratyaksh jnana* ?

Answer—*Indriya Pratyaksh-jnana* is of five types—that which is acquired through the sense organ of—hearing (ears), seeing (eyes), smelling (nose), tasting (tongue), touching (skin or the whole body).

विवेचन–ज्ञान ग्रहण के माध्यम रूप पाँच इन्द्रियाँ हैं। एकेन्द्रिय आदि जाति के विकास-क्रम से गणना करने पर सामान्यतया इनका क्रम इस प्रकार होता है–स्पर्श, रसना, घ्राण (गंध), चक्षु तथा श्रवण (कान)। किन्तु यहाँ जाति के कारण स्वरूप पुण्य तथा क्षयोपशम को महत्त्व दिया है इस कारण क्रम विपरीत है। पुण्य व क्षयोपशम उत्कृष्ट होने पर जीव पंचेन्द्रिय के रूप में जन्म लेता है। जैसे-जैसे इसमें न्यूनता आती है वैसे-वैसे क्रम से चतुरेन्द्रिय आदि के रूप में जन्म लेता है। यहाँ इसी क्रम से उल्लेख किया है।

Elaboration—The five sense organs in the body are the means of acquiring knowledge. If we count on the basis of the evolution of these sense organs normally the sequence is—touch, taste, smell, seeing and hearing. But here the emphasis is on piety and *kshayopasham* of karma which is the cause of being born in a

particular species; therefore the sequence is in reverse order. When piety and *kshayopasham* is of higher degree a soul is born in a species equipped with all the five sense organs. As this degree reduces a being is born in a species of graduatly decreasing number of sense organs like four, three etc. Here the mention follows this order.

नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष के भेद

CLASSIFICATION OF NOINDRIYA PRATYAKSH

५ : से किं तं नोइंदियपच्चक्खं ?

नोइंदियपच्चक्खं तिविहं पण्णत्तं,

तं जहा—(१) ओहिनाणपच्चक्खं, (२) मणपज्जवनाणपच्चक्खं, (३) केवलनाण-पच्चक्खं।

अर्थ—प्रश्न—नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान तीन प्रकार का है—(१) अवधिज्ञानप्रत्यक्ष, (२) मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष, तथा (३) केवलज्ञान प्रत्यक्ष।

5. Question—What is this No-indriya Pratyaksh jnana?

Answer—No-indriya Pratyaksh jnana is said to be of three tpes—(1) Avadhi-jnana Pratyaksh, (2) Manah-paryav-jnana Pratyaksh and (3) Kewal-jnana Pratyaksh.

●●

अवधि-ज्ञान
AVADHI-JNANA

६ : *से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं ? ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं,*

तं जहा–भवपच्चत्तियं च खओवसमियं च।

अर्थ–प्रश्न–वह अवधिज्ञान प्रत्यक्ष क्या है ?

उत्तर–अवधिज्ञान प्रत्यक्ष दो प्रकार का बताया है–(१) भवप्रत्ययिक, तथा (२) क्षायोपशमिक।

6. Question—What is this Avadhi-jnana Pratyaksh?

Answer—Avadhi-jnana Pratyaksh is said to be of two types—(1) Bhavapratyayik and (2) Kshayopashamik.

विवेचन–अवधिज्ञान के दो भेदों में प्रथम वह है जो जन्म लेते ही नैसर्गिक रूप से प्रकट हो जाता है, इसे भवप्रत्ययिक कहते हैं। जो प्रयत्न से अर्थात् संयम, नियम, व्रतादि आत्म-शुद्धि के अनुष्ठानों के फलस्वरूप उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक कहते हैं।

Elaboration—Of the two types of *avadhi-jnana* the first one is that which automatically and naturally manifests itself at the time birth of a being. It is called *Bhavapratyayik* or associated with birth. The second one is that which is gained by endeavors such as practices of discipline, following codes of conduct, observing vows, etc. aimed at spiritual purity. It is called *kshayopashamik* or associated with extinction-cum-suppression of karmas.

७ : *दोण्हं भवपच्चत्तियं,*

तं जहा–देवाणं च णेरइयाणं च।

अर्थ–प्रश्न–वह भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान किन्हें होते हैं ?

उत्तर–भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान दो प्रकार के जीवों को होता है–(१) देवों को तथा (२) नारकीय जीवों को।

7. Question—Who has this *Bhavapratyayik avadhi-jnana* ?

Answer—Two types of beings have this *Bhavapratyayik avadhi-jnana*—1. The gods, and 2. the hell beings.

विवेचन–इस स्थान पर एक शंका उत्पन्न हो सकती है–जब अवधिज्ञान मूलतः क्षयोपशम के प्रभाव से होता है तब देवों और नारकों में भव जनित अथवा जन्मना कैसे हो सकता है?

वस्तुतः इन्हें भी अवधिज्ञान क्षयोपशम द्वारा ही होता है क्योंकि इस प्रकार का क्षयोपशम उनमें होता ही है, किन्तु वह प्रकट होता है भव-परिवर्तन के साथ। यद्यपि नरक अथवा देवगतियाँ कर्मों के उदय की परिणति हैं किन्तु इन गतियों के अवश्यंभावी गुण के रूप में अवधिज्ञान प्रकट होने के कारण उसे भवप्रत्ययिक बताया गया है।

Elaboration—Here a doubt may arise—When *avadhi-jnana* appears basically as an effect of *kshayopasham* how can gods and hell beings have it by birth ?

In fact even in gods and hell beings *avadhi-jnana* appears as an effect of *kshayopasham* because the souls born as gods and hell beings already have *kshayopasham* but it becomes evident only at the time of birth. Although birth as a god or a hell being is a result of the fruition of karmas, the *avadhi-jnana* in these beings is called *Bhavapratyayik* because it is acquired as one of the fundamental attributes of these *gatis* (realms).

८ : *दोण्हं खओवसमियं, तं जहा–मणुस्साणं च पंचेन्दियतिरिक्खजोणियाणं च*

को हेऊ खाओवसमियं ?

खाओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं, अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिणाणं समुप्पज्जति।

अर्थ–प्रश्न–वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान किन्हें होता है?

उत्तर–क्षायोपशमिक अवधिज्ञान भी दो प्रकार के जीवों को होता है–(१) मनुष्यों को, तथा (२) पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को।

प्रश्न–इस क्षायोपशमिक अवधिज्ञान का हेतु क्या है?

उत्तर–अवधिज्ञान पर आवरण करने वाले कर्मों में से जिनका उदय हो चुका उनका क्षय करने से तथा जिनका उदय नहीं हुआ है उनका उपशम करने से यह अवधिज्ञान उत्पन्न होता है।

8. Question—Who has this *kshayopashamik avadhi-jnana*?

Answer—Two types of beings have this *kshayopashamik avadhi-jnana*—1. Human beings, and 2. Animals having five sense organs.

Question—What is the cause of this *kshayopashamik avadhi-jnana* ?

Answer—The cause of this *kshayopashamik avadhi-jnana* is the extinction of the *avadhi-jnana* veiling karmas that have precipitated or attained fruition and the suppression of those karmas that have not precipitated.

अवधिज्ञान के छह भेद
SIX CLASSES OF AVADHI-JNANA

९ : *अहवा गुणपडिवण्णस्स अणगारस्स ओहिणाणं समुप्पज्जति। तं समासओ छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–*

(१) आणुगामियं, (२) अणाणुगामियं, (३) वड्ढमाणयं,

(४) हायमाणयं, (५) पडिवाइत, (६) अपडिवाइयं।

अर्थ–और भी,ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणसम्पन्न अनगार को जो अवधिज्ञान उत्पन्न होता है वह संक्षेप में छह प्रकार का होता है–(१) आनुगामिक, (२) अनानुगामिक, (३) वर्द्धमान, (४) हीयमान, (५) प्रतिपातिक, तथा (६) अप्रतिपातिक।

9. Also, the *avadhi-jnana* acquired by an ascetic having qualities like right knowledge, perception, and conduct is briefly of six classes—1. *Anugamik*, 2. *Ananugamik*, 3. *Vardhaman*, 4. *Heeyaman*, 5. *Pratipatik*, and 6. *Apratipatik*.

विवेचन–(१) **आनुगामिक**–वह जो निरन्तर अनुसरण करे या साथ चले। जैसे–चलते हुए व्यक्ति के साथ नेत्र, सूर्य के साथ आतप/धूप तथा चन्द्र के साथ चाँदनी। इसी प्रकार जो निरन्तर ज्ञानी के साथ-साथ रहे वह आनुगामिक अवधिज्ञान है।

(२) **अनानुगामिक**–आनुगामिक के विपरीत वह जो साथ न चले। यह ज्ञान क्षेत्र-विशेष के बाह्य निमित्त से उत्पन्न होता है तथा ज्ञानी के वहाँ से प्रस्थान के साथ लुप्त हो जाता है। जैसे–एक स्थान पर स्थिर दीपक का प्रकाश चलने वाले के साथ नहीं चलता।

(३) **वर्द्धमान**–बढ़ने वाला। आग में जैसे-जैसे ईंधन डाला जाता है वैसे-वैसे वह अधिक प्रज्वलित होती जाती है। उसी प्रकार जैसे-जैसे परिणामों की शुद्धि होती जाती है वैसे-वैसे जो वृद्धि प्राप्त करता जाये उसे वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

(४) हीयमान-वर्द्धमान के विपरीत जैसे घी-ईंधन आदि के अभाव में आग धीरे-धीरे मन्द पड़ जाती है। जो परिणामों की अशुद्धता बढ़ने के साथ-साथ हीन होता जाये उसे हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं।

(५) प्रतिपातिक-जैसे तेल के समाप्त हो जाने पर दीपक प्रकाश देते-देते एकदम बुझ जाता है वैसे ही जो उत्पन्न होने के बाद शुद्धि के अभाव में सहसा नष्ट हो जाये उसे प्रतिपातिक अवधिज्ञान कहते हैं।

(६) अप्रतिपातिक-प्रतिपातिक के विपरीत जो ऐसी स्थिति को प्राप्त नहीं होता कि नष्ट हो जाये उसे अप्रतिपातिक अवधिज्ञान कहते हैं। यह केवलज्ञान उत्पन्न होने तक नष्ट नहीं होता। (देखें चित्र)

Elaboration—1. Anugamik or attendant—that which always accompanies or follows, as do eyes with a moving man, sun with the sun, and glow with the moon. In the same way, that which always accompanies a sage is the *Anugamik avadhi-jnana.*

2. Ananugamik or non-attendant—the opposite of attendant or that which does not accompany or follow. This knowledge is acquired under local circumstances or influence and is lost as soon as the individual leaves that place just as a stationary source of light does not shift with a moving person. It is called *Ananugamik avadhi-jnana.*

3. Vardhaman or increasing—that which increases. As fuel is added to fire its intensity increases. In the same way the *avadhi-jnana* that keeps on increasing with the increasing purity of attitudes is called *Vardhaman avadhi-jnana.*

4. Heeyaman or decreasing—Opposite of *Vardhaman.* The intensity of a fire is reduced in absence of fuel; in the same way the *avadhi-jnana* that keeps on decreasing with the increasing impurity of attitudes is called *Heeyaman avadhi-jnana.*

5. Pratipatik or destructible—When the oil in a lamp is finished the flame is suddenly extinguished. In the same way the *avadhi-jnana* that is destroyed all of a sudden in absence of inner purity is called *Pratipatik avadhi-jnana.*

6. Apratipatik or indestructible—Opposite of destructible. The *avadhi-jnana* that never reaches a state where it is destroyed is

called *Apratipatik avadhi-jnana*. It continues to exist till *Kewal-jnana* is attained. *(See Illustration)*

आनुगामिक अवधिज्ञान
ANUGAMIK AVADHI-JNANA

१० : *से किं तं आणुगामियं ओहिणाणं ?*

आणुगामियं ओहिणाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

अंतगयं च मज्झगयं च।

से किं तं अंतगयं ?

अंतगयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा–

(१) पुरओ अंतगयं, (२) मग्गओ अंतगयं, (३) पासतो अंतगयं।

(१) से किं तं पुरतो अंतगयं ?

पुरतो अंतगयं से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलियं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा पुरओ काउं पणुल्लेमाणे पणुल्लेमाणे गच्छेज्जा से त्तं पुरओ अंतगयं।

से किं तं मग्गओ अंतगयं ?

से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलियं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे अणुकड्ढेमाणे गच्छिज्जा, से तं मग्गओ अंतगयं।

से किं तं पासओ अंतगयं ?

पासओ अन्तगयं से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलियं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा पासओ काउं परिकड्ढेमाणे परिकड्ढेमाणे गच्छिज्जा, से तं पासओ अंतगयं। से त्तं अन्तगयं।

(२) से किं तं मज्झगयं ?

से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा चडुलियं वा अलायं वा मणिं वा पईवं वा जोइं वा मत्थए काउं गच्छेज्जा। से त्तं मज्झगयं।

अर्थ–प्रश्न–वह आनुगामिक अवधिज्ञान कैसा होता है ?

उत्तर–आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकार का बताया है–(१) अन्तगत, तथा (२) मध्यगत।

प्रश्न–यह अन्तगत अवधिज्ञान कैसा है?

उत्तर–यह अन्तगत अवधिज्ञान तीन प्रकार का है–(१) पुरतः अन्तगत (आगे से अन्तगत), (२) मार्गतः अन्तगत (पीछे से अन्तगत), तथा (३) पार्श्वतः अन्तगत (पार्श्व से अन्तगत)।

प्रश्न–पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान कैसा है?

उत्तर–जैसे कोई व्यक्ति दीपिका, घास की जलती हुई पूली, जलता हुआ काष्ठ, मणि, प्रदीप अथवा किसी पात्र में जलती हुई अग्नि रखकर हाथ से अथवा डण्डे से उसे आगे कर धीरे-धीरे उसके द्वारा उत्पन्न प्रकाश से मार्ग में रही वस्तुओं को देखता हुआ चलता है। उसी प्रकार पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान आगे के प्रदेश में प्रकाश करता हुआ साथ चलता है।

प्रश्न–मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान कैसा है?

उत्तर–जैसे कोई उपरोक्त प्रकार के प्रकाश साधनों–दीपिका, मणि, प्रदीप आदि को अपने पीछे रखकर उसके प्रकाश से मार्ग में रही हुई वस्तुओं को देखता चलता है। उसी प्रकार मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान पीछे के प्रदेश में प्रकाश करता हुआ चलता है।

प्रश्न–पार्श्वतः अन्तगत अवधिज्ञान कैसा है?

उत्तर–जैसे कोई उपरोक्त दीपिका घास की पूली आदि प्रकाश साधनों को अपने पार्श्व (बगल) में रखकर उसके प्रकाश से मार्ग में रही वस्तुओं को देखता हुआ चलता है। उसी प्रकार पार्श्वतः अन्तगत अवधिज्ञान पार्श्व में रहे प्रदेश में प्रकाश करता हुआ चलता है। यह अपने स्तरानुसार एक पार्श्व को अथवा दोनों पार्श्वों को उद्भासित करता है। यह अन्तगत अवधिज्ञान का वर्णन है।

प्रश्न–मध्यगत अवधिज्ञान कैसा है?

उत्तर–जैसे कोई व्यक्ति उपरोक्त उल्का, दीपिका, मणि आदि अनेक प्रकार के प्रकाश साधनों को अपने मस्तक पर उठाकर उसके प्रकाश से मार्ग में रही वस्तुओं को देखता हुआ चलता है। उसी प्रकार मध्यगत अवधिज्ञान सभी दिशाओं में प्रकाश करता हुआ चलता है। (देखें चित्र ८)

10. Question—What is this *Anugamik avadhi-jnana* ?

Answer—*Anugamik* or attendant *avadhi-jnana* is said to be of two types—1. *Antgat* (peripheral) and *Madhyagat* (central).
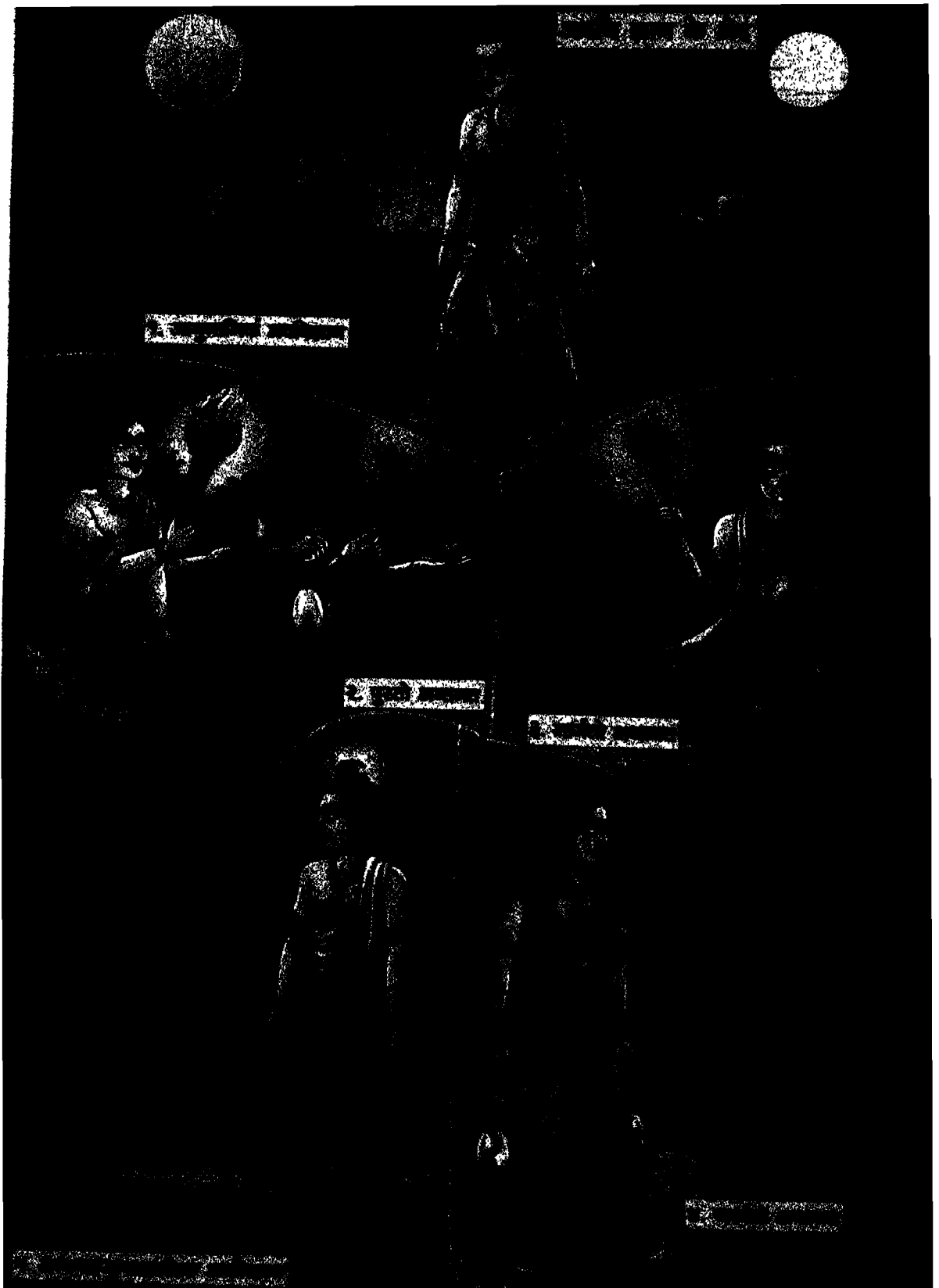
(१) आनुगामिक अवधिज्ञान के भेद

१. आनुगामिक अवधिज्ञान–जैसे सूर्य के साथ उसका ताप, चन्द्र के साथ चाँदनी तथा चलते हुए व्यक्ति के साथ उसके नेत्र चलते हैं, इसी प्रकार जो आत्मा के साथ-साथ चलता रहे वह आनुगामिक अवधिज्ञान है। (सूत्र ९)

२. पुरतो अन्तगत अवधिज्ञान–जैसे कोई चलता हुआ व्यक्ति हाथ में आगे-आगे मणि, जलती हुई लकड़ी या लालटेन, दीपक या मशाल लेकर चले तो आगे-आगे का मार्ग प्रकाशित होता रहे।

३. मार्गतो अन्तगत अवधिज्ञान–जैसे जलती हुई तृण पूलिका या मशाल को पीछे रखकर चले तो उसके पीछे का भाग प्रकाशित होता रहता है।

४. पार्श्वतो अन्तगत–जैसे चलता हुआ व्यक्ति दोनों हाथों में दीपिका (लालटेन) लेकर चले तो दोनों पार्श्वभाग प्रकाशित होते रहते हैं।

५. मध्यगत–जैसे चलता हुआ व्यक्ति मस्तक पर मणि आदि लेकर चले तो सभी दिशाओं में प्रकाश होता रहता है। (सूत्र १०)

(1) THE TYPES OF ANUGAMIK AVADHI-JNANA

1. *Anugamik Avadhi-jnana*—The heat moves with the sun, the glow moves with the moon, vision moves with man, in the same way what moves with the soul is called Anugamik avadhi-*jnana*. (9)

2. *Purto Antagat Avadhi-jnana*—As if a man moves keeping a radiant gem, a burning torch or lantern, lamp, or other source of light in his hand and keeping it ahead illuminated the area ahead.

3. *Margto Antagat Avadhi-jnana*—As if a man moves keeping the source of light at his back illuminating the area at his back.

4. *Parsvato Antagat*—As if a man moves keeping sources of light in both his hands and illuminating the area on both his flanks.

5. *Madhyagat*—As if a man moves keeping the source of light on his head and illuminating the are all around. (10)

Question—What is this *Antgat* (peripheral) *avadhi-jnana* ?

Answer—This *Antgat* (peripheral) *avadhi-jnana* is of three types—1. *Puratah Antgat* (front-peripheral), 2. *Margtah Antgat* (rear-peripheral), and 3. *Parshvatah Antgat* (flank-peripheral).

Question—What is this *Puratah Antgat* (front-peripheral) *avadhi-jnana* ?

Answer—While moving, a person having a source of light like small lamp, a burning bundle of hay, a burning piece of wood, a phosphorescent gem, a large lamp or a pot with burning fire, keeps it ahead of him with his hand or with the help a wooden stick, and progresses slowly seeing things ahead of him in the light produced. In the same way *Puratah Antgat* (front-peripheral) *avadhi-jnana* moves along illuminating the area in front.

Question—What is this *Margtah Antgat* (rear-peripheral) *avadhi-jnana*?

Answer—While moving, a person having a source of light as mentioned above keeps it behind him and progresses slowly seeing things in the light produced. In the same way *Margtah Antgat* (rear-peripheral) *avadhi-jnana* moves along illuminating the area at one's back.

Question—What is this *Parshvatah Antgat* (flank-peripheral) *avadhi-jnana* ?

Answer—While moving, a person having a source of light as mentioned above keeps it at his side and progresses slowly seeing things in the light produced. In the same way *Parshvatah Antgat* (rear-peripheral) *avadhi-jnana* moves along illuminating the area at one's side. Depending on its intensity it illuminates one or both flanks. This concludes the description of *Antagat avadhi-jnana.*

Question—What is this *Madhyagat* (central) *avadhi-jnana* ?

Answer—While moving, a person having a source of light like a comet, lamp, gems, etc. as mentioned above, lifts it over his

head and progresses slowly seeing things in the light produced. In the same way *Madhyagat* (central) *avadhi-jnana* moves along illuminating the area all around. *(See Illustration 8)*

विवेचन—अवधिज्ञान क्षयोपशम जनित होने से आत्मा का विषय है। इस सन्दर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि आनुगमिक अवधिज्ञान वह है जो पुनर्जन्म के समय साथ रहे। एक जन्म में उपार्जित हो और मृत्यु के साथ नष्ट न हो। अन्त शब्द यहाँ विनाश का नहीं, स्थान में अवस्थिति का बोध भी कराता है अर्थात् अन्त का अर्थ है छोर, सिरा केन्द्र आदि। इस सन्दर्भ में जो अवधिज्ञान आत्म-प्रदेशों के किसी विशेष छोर पर उत्पन्न हो वह अन्तगत अवधिज्ञान है। यह आत्म-प्रदेशों के जिस केन्द्र में उत्पन्न होता है उस दिशा के वाचक विशेषण से संबोधित होता है—जैसे पुरतः, पार्श्वतः, मार्गतः। मध्यगत अवधिज्ञान आत्म-प्रदेश के मध्य में उत्पन्न होता है।

अन्त का एक अर्थ सम्पूर्णता भी है। इस सन्दर्भ में किसी दिशा के छोर तक स्थित समस्त पदार्थों के ज्ञान को उस दिशा सम्बन्धी अन्तगत अवधिज्ञान कहते हैं। इसकी चरम स्थिति है मध्यगत अवधिज्ञान अर्थात् मध्य में स्थित हो जो चारों दिशाओं में अन्त तक रहे, पदार्थों का ज्ञान समेटे हो वह मध्यगत अवधिज्ञान है। इससे कर्मों के क्षयोपशम की तरतमता तथा विचित्रता प्रकट होती है।

Elaboration—As it is produced due to *kshayopasham, avadhi-jnana* is a subject of the soul. In this context it is to be kept in mind that *Anugamik avadhi-jnana* is that which accompanies the soul during rebirth or which is acquired during one incarnation and is not terminated with death. The term *'ant'* besides meaning the end in context of existence also means extremity or edge or periphery in context of location. In this context the *avadhi-jnana* that is produced at some specific peripheral segment of *atmapradeshas* or soul-bits (the soul being viewed as divided into infinitesimal fractions) is known as *Antgat avadhi-jnana*. The specific end being defined by the directional prefix such as front-, rear-, or flank-. The central *avadhi-jnana* is produced at the central segment of the soul-bits.

Another meaning of *'ant'* is the state of completion. In this context the knowledge of everything existing up to the end of a specific direction is known as the *antagat avadhi-jnana* related to that direction. The ultimate level of this is the *madhyagat avadhi-jnana* which encompasses the knowledge of all things existing up to the ends of all directions. This reveals the strange consequences of the levels of *kshayopasham*.

अन्तगत तथा मध्यगत की विशेषताएँ
THE ATTRIBUTES OF ANTAGAT AND MADHYAGAT

११ : *अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ?*

पुरओ अंतगएणं ओहिनाणेणं पुरओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाणि जाणइ पासइ।

मग्गओ अंतगएणं ओहिनाणेणं मग्गओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाणि जाणइ पासइ।

पासओ अंतगएणं ओहिनाणेणं पासओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

मज्झगएणं ओहिनाणेणं सव्वओ समंता संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

से त्तं आणुगामियं ओहिनाणं।

अर्थ–प्रश्न–अन्तगत और मध्यगत अवधिज्ञान में क्या विशेष अन्तर है ?

उत्तर–पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान से ज्ञाता आगे के संख्यात या असंख्यात योजनों में स्थित रूपी द्रव्यों को सामान्य रूप से देखता है तथा विशेष रूप से जानता है।

मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान से ज्ञाता पीछे के संख्यात या असंख्यात योजनों में स्थित रूपी द्रव्यों को देखता-जानता है।

पार्श्वतः अन्तगत अवधिज्ञान से ज्ञाता पार्श्व के संख्यात या असंख्यात योजनों में स्थित रूपी द्रव्यों को देखता-जानता है।

मध्यगत अवधिज्ञान से सभी दिशाओं और विदिशाओं में संख्यात या असंख्मत योजनों में स्थित रूपी द्रव्यों को आत्मा के सर्व प्रदेशों से देखता-जानता है।

यह आनुगामिक अवधिज्ञान का वर्णन है।

11. Question—What specific differences are there between the peripheral and central *Avadhi-jnana* ?

Answer—With the help of *Puratah Antagat* (front-peripheral) *Avadhi-jnana* the knower (scholar) observes in general and understands in particular all physical objects

existing in an area extending to countable or uncountable *yojans* in front of him. With the help of *Margatah Antagat* (rear-peripheral) *Avadhi-jnana* the knower (scholar) observes in general and understands in particular all physical objects existing in an area extending to countable or uncountable *yojans* at his back. With the help of *Parshvatah Antagat* (flank-peripheral) *Avadhi-jnana* the knower (scholar) observes in general and understands in particular all physical objects existing in an area extending to countable or uncountable *yojans* at his flanks. With the help of *Madhyagat* (central) *Avadhi-jnana* the knower (scholar) observes and understands through all *atmapradeshas* (soul-bits) all physical objects existing in an area extending to countable or uncountable *yojans* in all spatial directions (toward cardinal and intermediate points of the compass).

This concludes the description of the attributes of *Anugamik Avadhi-jnana*.

विवेचन–अन्तगत अवधिज्ञान सीमाबद्ध होता है और मध्यगत असीम। मध्यगत अवधिज्ञान देव, नारक तथा तीर्थंकर इन तीनों को तो नियमतः स्वाभाविक रूप से होता है। तिर्यंचों अथवा पशु-पक्षी आदि प्राणियों को केवल अन्तगत अवधिज्ञान होने की संभावना होती है। किन्तु मनुष्यों को दोनों प्रकार के आनुगामिक अवधिज्ञान होने की संभावना होती है।

संख्यात तथा असंख्यात योजनों के उल्लेख से यह इंगित होता है कि परिमाणतः (क्षेत्र-सीमा) अवधिज्ञान के अनेकों भेद हो सकते हैं। उदाहरणार्थ–रत्नप्रभा नरक के जीवों को जघन्य (न्यूनतम) साढ़े तीन कोस तथा उत्कृष्ट (अधिकतम) चार कोस तक का अवधिज्ञान बताया गया है। इसी प्रकार सौधर्मकल्प के देवों को न्यूनतम एक अंगुल के असंख्यातवें भाग के बराबर क्षेत्र और अधिकतम रत्नप्रभा के नीचे चरमान्त तक का अवधिज्ञान होता है।

नारकों तथा देवों के अवधिज्ञान का कोष्ठक–

लोक	जघन्य	उत्कृष्ट
१. तमस्तमा नरक	आधा कोस	एक कोस
२. तमःप्रभा नरक	एक कोस	डेढ़ कोस
३. धूमप्रभा नरक	डेढ़ कोस	दो कोस
४. पंकप्रभा नरक	दो कोस	अढाई कोस
५. बालुकाप्रभा नरक	अढाई कोस	तीन कोस

६. शर्कराप्रभा नरक	तीन कोस	साढ़े तीन कोस
७. रत्नप्रभा नरक	साढ़े तीन कोस	चार कोस
८. असुरकुमार देव	२५ योजन	असंख्यात द्वीप-समुद्र
९. नागकुमार देव	२५ योजन	संख्यात द्वीप-समुद्र
१०. स्तनितकुमार देव	२५ योजन	संख्यात द्वीप-समुद्र
११. वाणव्यन्तर देव	२५ योजन	संख्यात द्वीप-समुद्र
१२. ज्योतिष्क देव	संख्यात योजन	संख्यात योजन
१३. सौधर्मकल्प (देवलोक)	अंगुल का असंख्यातवाँ भाग	आधोदिशा में रत्नप्रभा के नीचे के चरमान्त तक, ऊर्ध्वदिशा में सौधर्मकल्प के ध्वज तक तथा तिर्यक् दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्र तक
१४. सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक		शर्कराप्रभा के चरमान्त तक
१५. ब्रह्म और लान्तक देवलोक बालुकाप्रभा के चरमान्त तक		
१६. महाशुक्र और सहस्रार देवलोक		पंकप्रभा के चरमान्त तक
१७. आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक		धूमप्रभा के चरमान्त तक
१८. तेरहवें से अठारहवें देवलोक		तमःप्रभा के चरमान्त तक
१९. ग्रैवेयक		तमस्तमा के चरमान्त तक
२०. अनुत्तरोपपातिक देवलोक		सम्पूर्ण लोक

Elaboration—The *Antagat Avadhi-jnana* is limited and the *Madhyagat* is unlimited. The Gods, the hell beings and the *Tirthankars* as a rule naturally acquire *Madhyagat Avadhi-jnana*. The beings of the animal world have scope of acquiring only *Antagat Avadhi-jnana*. But human beings have a possibility of acquiring both types of *Anugamik Avadhi-jnana*.

The use of the terms countable and uncountable *yojans* indicates that in context of the area covered there may be many levels of *Avadhi-jnana*. For example—the beings of the *Ratnaprabha* Hell have *Avadhi-jnana* covering a minimum area of three and a half *yojans* and a maximum area of four *yojans*; similarly the *Avadhi-jnana* of the gods of the *Saudharma Kalp* covers a minimum area of an infinitesimal part of an *angul* (the width of a human finger) and a maximum area extending up to the end of the *Ratnaprabha* Hell.

The table of the *Avadhi-jnana* of the hell beings and the gods—

S. No.	Lok or Dimension	Minimum	Maximum
1.	*Tamastama* or the Seventh Hell	Half *kos* or a mile	One *kos* or two miles
2.	*Tamahprabha* or the Sixth Hell	One *kos* or two miles	One and a half *kos* or three miles
3.	*Dhoomprabha* or the Fifth Hell	One and a half *kos* or three miles	Two *kos* or four miles
4.	*Punkprabha* or the Fourth Hell	Two *kos* or four miles	Two and a half *kos* or five miles
5.	*Balukaprabha* or the Third Hell	Two and a half *kos* or five miles	Three *kos* or six miles
6.	*Sharkaraprabha* or the Second Hell	Three *kos* or six miles	Three and a half *kos*
7.	*Ratnaprabha* or the First Hell	Three and a half *kos*	Four *kos*
8.	*Asurakumar* gods	25 *yojans*	Uncountable continents and seas
9.	*Nagkumar* gods	25 *yojans*	Countable continents and seas
10.	*Stanitkumar* gods	25 *yojans*	Countable continents and seas
11.	*Vaanvyantar* gods	25 *yojans*	Countable continents and seas
12.	*Jyotishk* gods	Countable *yojans*	Countable *yojans*
13.	*Saudharmkalp* dimension of gods	Infinitesimal part of an *angul*	Up to the end of the first hell towards the Nadir; up to the summit of the *Saudharmakalp* towards the zenith; and uncountable continents and seas in other directions
14.	*Sanatkumar* and *Mahendra* dimensions of gods	infinitesimal part of an *angul*	-do- but up to the end of the second hell
15.	*Brahma* and *Lantak* dimensions of gods	infinitesimal part of an *angul*	-do- but up to the end of the third hell
16.	*Mahashukra* and *Sahasrar* dimensions of gods	infinitesimal part of an *angul*	-do- but up to the end of the fourth hell

17.	*Anat, Pranat, Aran* and *Achyut* dimensions of gods	infinitesimal part of an *angul*	-do- but up to the end of the fifth hell
18.	Thirteenth to eighteenth dimensions of gods	infinitesimal part of an *angul*	-do- but up to the end of the sixth hell
19.	*Graiveyak* dimension of gods	infinitesimal part of an *angul*	-do- but up to the end of the seventh hell
20.	*Anuttaraupapatik* dimension of gods	infinitesimal part of an *angul*	the complete *Lok* or the whole habited universe

अनानुगामिक अवधिज्ञान का स्वरूप
ANANUGAMIK AVADHI-JNANA

१२ : से किं तं अणाणुगामियं ओहिणाणं !

अणाणुगामियं ओहिणाणं से जहाणामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइट्ठाणं काउं तस्सेव जोइट्ठाणस्स परिपरंतेहिं परिपरंतेहिं परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे तमेव जोइट्ठाणं पासइ, अण्णत्थगए ण पासइ, एवामेव अणाणुगामियं ओहिणाणं जत्थेव समुप्पज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा, संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, अण्णत्थगए ण पासइ।

से तं अणाणुगामियं ओहिणाणं।

अर्थ–प्रश्न–अनानुगामिक अवधिज्ञान कैसा होता है?

उत्तर–अनानुगामिक अवधिज्ञान वैसा ही होता है जैसे कोई व्यक्ति अग्नि के लिए एक बड़ा स्थान बनाकर उसमें आग जला दे और उस अग्नि द्वारा प्रकाशित चारों ओर के क्षेत्र को और घूमकर जहाँ तक दृष्टि जाती हो वहाँ तक देखता है अन्य कुछ नहीं। इसी प्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्र में उत्पन्न होता है उसी क्षेत्र में रहने पर संख्यात व असंख्यात योजन तक अपने प्रभाव क्षेत्र से सम्बन्धित तथा असम्बन्धित द्रव्यों को जानता-देखता है। अन्यत्र जाने पर यह सब नहीं देखता।

यह अनानुगामिक अवधिज्ञान का वर्णन है। (देखें चित्र ९)

12. Question—What is this *Ananugamik Avadhi-jnana* ?

Answer—*Ananugamik Avadhi-jnana* is as if a person prepares a large area and burns a fire there and in the light of this fire moves around and sees the illuminated area as far as the reach of his eyes and nothing beyond. Thus *Ananugamik*

Avadhi-jnana is effective only in the area where it has been acquired and while the person is in that area he sees and knows the physical objects, related or unrelated to the area of influence, existing in an area extending to countable or uncountable *yojans*. When he shifts from that area it becomes ineffective.

This concludes the description of *Ananugamik Avadhi-jnana*.

विवेचन–यहाँ क्षेत्र का अर्थ स्थान तथा भव दोनों है। सम्बन्धित का अर्थ है व्यवधानरहित अथवा जिस वस्तु और देखने वाले के बीच में कोई बाधा नहीं है, कोई आड़ नहीं है ऐसी वस्तु को देखना-जानना। असम्बन्धित का अर्थ है व्यवधान सहित अथवा जिस वस्तु और देखने वाले के बीच कोई बाधा है, कोई आड़ है ऐसी वस्तु को देखना-जानना।

Elaboration—Here *kshetra* means place and re-birth both. *Sambandhit* (related or connected) means without any blockade; without any obstacle between the subject and object. To know such a thing. *Asambandhit* (unrelated or disconnected) means with blockade; with an obstacle between the subject and object. To know such a thing.

वर्द्धमान अवधिज्ञान का स्वरूप
VARDHAMAN AVADHI-JNANA

१३ : *से किं तं वड्ढमाणयं ओहिणाणं ?*

वड्ढमाणयं ओहिणाणं पसत्थेसु अज्झवसाणट्ठाणेसु वड्ढमाणस्स वड्ढमाणचरित्तस्स विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही वड्ढइ।

अर्थ–प्रश्न–यह वर्द्धमान अवधिज्ञान कैसा होता है?

उत्तर–अध्यवसाय स्थानों अर्थात् विचारों व भावों के प्रशस्त बने रहने से सम्यक् चारित्र में वृद्धि होती है और फलस्वरूप चारित्र में विशुद्धि आती है। इस विशुद्धि से आत्मा में उत्पन्न अवधिज्ञान सभी दिशाओं में वृद्धि पाता है। इस बढ़ते हुए अवधिज्ञान को वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

13. Question—What is this *Vardhaman Avadhi-jnana* ?

Answer—When the areas of spiritual endeavour, in other words thoughts and attitudes, are active in the right direction there is an improvement in the right conduct and as a

(२) अनानुगामिक अवधिज्ञान के भेद

१. **ज्योति स्थान की परिक्रमावत्**–जैसे किसी स्थान पर अग्नि प्रज्वलित करके उसके चारों ओर परिक्रमा की जाये तो वह उतने ही प्रकाशित क्षेत्र को देखता है। वैसे ही उत्पत्तिस्थान पर ही रहने वाला अवधिज्ञान। (सूत्र १२)

२. **शृंखला से बँधे दीपकवत्**–किसी स्थान पर जलते हुए दीपक को बाँधकर लटका दिया हो तो उस स्थान पर बैठा व्यक्ति उतने स्थान को ही देख पाता है, वहाँ से उठकर चले जाने पर प्रकाश साथ नहीं जाता। इसी प्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान समझें। (सूत्र ९)

३. **वर्द्धमान अवधिज्ञान**–जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि में ईंधन डालने से वह बढ़ती रहती है, उसी प्रकार ज्यों-ज्यों भावों की विशुद्धि बढ़ती है त्यों-त्यों अवधिज्ञान भी वृद्धिंगत होता है। (सूत्र ९)

४. **हीयमान अवधिज्ञान**–जलती अग्नि में ईंधन कम होने पर वह बुझने लगती है, उसी प्रकार परिणामों की विशुद्धि घटने पर अवधिज्ञान क्षीण होता जाता है। (सूत्र ९)

५. **प्रतिपातिक अवधिज्ञान**–दीपक में तेल नहीं रहने पर वह बुझ जाता है, उसीप्रकार भावों की संक्लिष्टता के कारण अवधिज्ञान भी लुप्त हो जाता है। (सूत्र ९)

६. **केवलज्ञान का स्वरूप**–जैसे सूर्य का प्रकाश किसी के आश्रित नहीं रहकर अपना ही प्रकाश होता है, और वह अंधकार से कभी मिश्रित नहीं है। आकाश में बादलों, पहाड़ों, वृक्षों आदि से वह ढका नहीं जा सकता, इसी प्रकार आत्म-आश्रित केवलज्ञान का प्रकाश किसी अन्य आवरण से मंद नहीं हो सकता। (सूत्र २०)

(2) TYPES OF ANANUGAMIK AVADHI-JNANA

1. *Moving around a source of light*—When a fire is lit at some spot and person moves around it, he can see only the area illuminated by that light. The light does not move with him. (12)

2. *A hanging lamp*—When a lamp is lit and it is hung by cord, a person near this lamp sees only the area illuminated by this lamp. If he moves away, the does not move with him. These are the examples that explain the scope of ananugamik avadhi-*jnana*. (9)

3. *Vardhaman Avadhi-jnana*—When fuel is added to a fire its intensity increases. On the same way as the purity of attitudes increases the avadhi-*jnana* keeps on increasing. (9)

4. *Heeyaman Avadhi-jnana*—When fuel is consumed the intensity a fire is gradually reduced. In the same way when the purity of attitudes reduces the avadhi-*jnana* also reduces. (9)

5. *Pratipatik Avadhi-jnana*—In absence of oil a lamp gets extinguished. In the same way due to pervert attitudes avadhi-*jnana* becomes extinct. (9)

6. *Kewal-jnana*—Sun is not dependent on any fuel, it is a primary source of light. Its light is neither contaminated with darkness nor does it remain obscured by clouds, mountains, or trees. In the same way the light of the soul based Kewal-*jnana* can never be obscured by any veil. (20)

consequence the purity of conduct increases. This purity expands the *Avadhi-jnana* acquired by the soul in all directions. This expanding or increasing *Avadhi-jnana* is known as *Vardhaman Avadhi-jnana*.

विवेचन—जैनदर्शन क्रियाकाण्ड से अधिक भावनाओं तथा विचारों की शुद्धता पर बल देता है। क्रियाकाण्ड कितना भी व्यवस्थित व शुद्ध हो अध्यवसायों व परिणामों की विशुद्धि के बिना न तो ज्ञान में विकास होता न आत्म-शुद्धि में। इससे विपरीत जैसे-जैसे भावनाएँ निर्मल होती जाती हैं आत्मा शुद्ध होती है। दूसरे शब्दों में आत्मा पर पड़े आवरणों का क्षयोपशम होता है और ज्ञान निरन्तर विकास पाता है।

Elaboration—Jain philosophy lays more stress on the purity of thoughts and attitude than the ritual practices. No matter how immaculate and correct are the ritual practices, in absence of the purity of attitude and sincerity of endeavour neither there is a development in knowledge nor an increase in purity of the soul. On the contrary with the cleansing of feelings or attitude the soul becomes purer. In other words there is a *kshayopasham* (suppression-cum-extinction) of the veils covering the soul followed by continued increase in knowledge.

अवधिज्ञान का जघन्य विषय-(क्षेत्र)
THE MINIMAL SCOPE OF AVADHI-JNANA

१४ : *जावइया तिसमया-हारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स।*
ओगाहणा जहन्ना, ओहीखेत्तं जहन्नं तु।

अर्थ—तीन समय के आहारक सूक्ष्म पणग जीव (निगोदिया जीव) की जितनी जघन्य (कम से कम) अवगाहना (जितना स्थान कोई वस्तु ग्रहण करे, अर्थात् आकार) होती है अवधिज्ञान का कम से कम उतना क्षेत्र होता है।

14. The minimum scope of *Avadhi-jnana* is equivalent to the minimum area occupied by a three *samaya* (the ultimate fraction of time) old micro-*panag* being or a dormant micro-organism having intake-capacity.

विवेचन—पणग जीव की श्रेणी में काई, नीलन, फूलन आदि आते हैं। जैन जीव-विज्ञान के अनुसार ये निगोद जीवों की श्रेणी में आते हैं। निगोद जीव उसे कहते हैं जो अनन्त जीवों का पिण्ड हो अर्थात् एक शरीर में अनन्त जीव रहते हों। निगोद जीव दो प्रकार के होते हैं—बादर

(स्थूल) तथा सूक्ष्म। यहाँ सूक्ष्म निगोद का उदाहरण दिया है। सूक्ष्म निगोद सामान्य दृष्टि से दिखाई नहीं देता; उसके अस्तित्व का आभास पिण्डाकार समूह में ही होता है। ऐसे जीवों की आयु भी अति सूक्ष्म (अन्तर्मुहूर्त) होती है। समय काल के सूक्ष्मतम भाग का नाम है। सूक्ष्म (पनक) निगोद जीव तीन समय में अपने सबसे छोटा किन्तु पूर्ण आकार को प्राप्त कर लेता है। अवधिज्ञान का कम से कम क्षेत्र इतना सूक्ष्म होता है।

Elaboration—Moss, fungus, mildew, etc. come under the class of *panag* beings. According to the Jain biology these come under the class of *nigod* or dormant beings. A snowball like cluster of micro-beings or a cluster like body having infinite number of individual micro-beings living together is called *nigod* beings. There are two classes of these *nigod* beings—*badar* or gross and *sukshma* or tiny. Here the tiny or the micro-*nigod* has been cited. The micro-*nigod* is invisible to the naked eye. Its existence becomes apparent only in the cluster form. The life span of such beings is infinitely short. *Samaya* is the ultimate fraction of time, something even smaller than a nanosecond. A micro-*nigod* being reaches its minimum but full growth within three *samaya*. The minimal scope of *Avadhi-jnana* is so infinitesimal.

अवधिज्ञान का उत्कृष्ट विषय-(क्षेत्र)
THE MAXIMUM SCOPE OF AVADHI-JNANA

१५ : *सव्व-बहु अगणिजीवा णिरंतरं जत्तियं भरेज्जंसु।*
खेत्तं सव्वदिसागं परमोहीखेत्तनिद्दिट्ठं॥

अर्थ—अग्निकाय के सभी प्रकार के (सूक्ष्म-बादर) समस्त अधिकाधिक जीव सभी दिशाओं में आकाश के जितने क्षेत्र में अन्तररहित व्याप्त हो जाये उतना क्षेत्र अवधिज्ञान का अधिकतम क्षेत्र होता है।

15. The maximum scope of *Avadhi-jnana* is equivalent to an area that can be occupied by all or maximum number of all types (gross and micro) of fire-bodied beings in space, without a gap, in all directions.

विवेचन—तेजस्काय अथवा अग्निकाय के जीव सभी प्रकार के स्थावर जीवों में सबसे स्वल्प होते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं—अपर्याप्त सूक्ष्म, पर्याप्त सूक्ष्म, अपर्याप्त बादर तथा पर्याप्त बादर। ये समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं। इन चारों प्रकार के जीवों की अधिकतम संख्या

भगवान अजितनाथ के काल में थी यह मान्यता है। इतने अग्निकाय जीवों की, समस्त आकाश को सूक्ष्म टुकड़ों (प्रदेशों) में बाँटकर प्रत्येक में एक-एक जीव रख दिया जाये। लोकाकाश व्याप्त होने पर शेष रहे जीवों को अलोकाकाश के प्रदेशों में व्याप्त कर दिया जाये। जितने क्षेत्र में ये समस्त जीव व्याप्त हो जाये वह क्षेत्र अवधिज्ञान का अधिकतम क्षेत्र होता है। यह एक काल्पनिक उदाहरण है जिससे अवधिज्ञान के उत्कृष्ट क्षेत्र का व्यावहारिक भाषा में अनुमान किया जा सकता है।

Elaboration—The number of fire-bodied beings in this universe is minimum as compared to that of the other immobile beings. These are of four types—*aparyapt-sukshma* (micro-being that has not fully developed), *paryapt-sukshma* (fully developed micro-being), *aparyapt-badar* (gross being that has not fully developed), *paryapta-badar* (fully developed gross being). These beings are spread all over the *lokakash* or the inhabited universe. It is believed that the maximum number of this type of beings was during the period of *Bhagavan* Ajitnath. If the space is divided into infinitely small sections or space points and one such being is placed on each one of these space points; when the inhabited universe is filled the remaining beings are spilled over into such space points in the *alokakash* or uninhabited universe; then the total area covered makes up the maximum scope of *Avadhi-jnana*. This is a hypothetical example to give an idea of the vastness of the maximum scope of *Avadhi-jnana* in conceivable terms.

अवधिज्ञान का मध्यम विषय-(क्षेत्र)

THE AVERAGE SCOPE OF AVADHI-JNANA

१६ : *अंगुलमावलियाणं भागमसंखेज्ज दोसु संखेज्जा।*
अंगुलमावलियंतो आवलिया अंगुलपुहुत्तं॥

अर्थ—क्षेत्र के आधार पर एक अंगुल (उत्सेध अथवा प्रमाणांगुल) के असंख्यातवें भाग को जानने वाला अवधिज्ञानी काल के आधार पर भी आवलिका के असंख्यातवें भाग को जानता है। इसी प्रकार अंगुल के संख्यातवें भाग को जानने वाला आवलिका के संख्यातवें भाग को जानता है। किन्तु यदि वह अंगुल के बराबर क्षेत्र को जानता है तो आवलिका से कुछ कम जानता है और पूर्ण आवलिका को जानता है तो पृथक्त्व अंगुल (अंगुल के दस भाग हों तो दूसरे से नवें भाग को पृथक्त्व अंगुल कहते हैं) जानता है।

16. An *Avadhi-jnani* (one who possesses such knowledge) with a capacity to know infinitesimal part of a standard *angul* in terms of area also has the capacity to know infinitesimal

division of *avalika* (a micro-unit of time made up by uncountable units of *samaya*. Also a countable or a finite number of *avalikas* make one *shvas* or the time taken by one normal inhalation) in terms of time. In the same way if his capacity is to know countable fractions of an *angul*, he also has the capacity to know countable fractions of an *avalika*. However, if he knows one *angul* area he knows slightly less than an *avalika* and if he knows one *avalika* he knows only *prithaktva* (an arithmetical term which means second to ninth divisions of a thing divided into ten equal parts) *angul*.

१७ : *हत्थम्मि मुहुत्तंतो दिवसंतो गाउयम्मि बोद्धव्वो।*
जोयणदिवसपुहुत्तं पक्खंतो पण्णवीसाओ॥

अर्थ–(अवधिज्ञानी) यदि क्षेत्र से हाथ के बराबर देखता है तो काल से मुहूर्त्त से कुछ कम जानता है। यदि काल के आधार पर दिन से कुछ कम जानता है तो क्षेत्र से एक कोस तक जानता है। यदि क्षेत्र में एक योजन प्रमाण जानता है तो काल से दिवस पृथक्त्व जानता है (२ से ९ दिन)। यदि काल से पक्ष से कुछ कम जानता है तो क्षेत्र से २५ योजन प्रमाण जानता है।

17. If he knows an arms length in terms of area, he knows a little less than a *muhurt* (48 minutes) in terms of time. If he knows a little less than a day in terms of time, he knows two miles in terms of area. If he knows one *yojan* in terms of area, he knows *divas-prithaktva* (two to nine days) in terms of time. If he knows a little less than a fortnight in terms of time, he knows 25 *yojans* in terms of area.

१८ : *भरहम्मि अद्धमासो जंबुद्दीवम्मि साहिओ मासो।*
वासं च मणुयलोए वासपुहुत्तं च रुयगम्मि॥

अर्थ–यदि क्षेत्र से समस्त भरत क्षेत्र को देखता है तो काल से आधे महीने के समय के बराबर भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल को देखता है। यदि क्षेत्र से जम्बूद्वीप को देखता है तो काल से एक मास से भी अधिक तीनों काल तक देखता है। यदि क्षेत्र से समस्त मनुष्यलोक को देखता है तो काल से एक वर्ष के बराबर तीनों काल तक देखता है। यदि क्षेत्र से रूचक क्षेत्र तक देखता है तो काल से पृथक्त्व वर्ष (२ से ९) के बराबर तीनों काल तक देखता है।

18. If he knows *Bharat kshetra* (a geographical area according to Jain geography) in terms of area, he knows 15 days in the past, the present and the future in terms of time. If he knows the *Jambu* continent in terms of area, he knows more than one month in the past, the present and the future in terms of time. If he knows the complete area inhabited by human beings (the earth) in terms of area, he knows one year in the past, the present and the future in terms of time. If he knows *Ruchak kshetra* (the over all area where beings exist according to Jain cosmology) in terms of area, he knows *prithaktva-varsh* (2 to 9 years) in the past, the present and the future in terms of time.

१९ : *संखिज्जम्मि उ काले दीव-समुद्दा वि हुंति संखिज्जा।*
कालम्मि असंखिज्जे दीव-समुद्दा उ भइयव्वा॥

अर्थ—यदि काल से संख्यात काल को जानता है तो क्षेत्र से भी संख्यात द्वीप-समुद्र तक जानता है। यदि असंख्यात काल को जानता है तो क्षेत्र से संख्यात व असंख्यात (भजना) द्वीप-समुद्र तक जानता है।

19. If in terms of time he knows countable large units of time period, in terms of area also he knows up to countable continents and seas. If he knows uncountable large units of time period, in terms of area he knows up to countable or uncountable continents and seas.

२०. *काले चउण्ह वुड्ढी कालो भइअव्वु खित्तवुड्ढीए।*
वुड्ढीए दव्व-पज्जव भइयव्वा खित्त-काला उ॥

अर्थ—काल की वृद्धि होने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चारों की वृद्धि अवश्य होती है। क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल की वृद्धि हो सकती है और नहीं भी। द्रव्य और पर्याय की वृद्धि होने पर क्षेत्र और काल की वृद्धि होती भी है और नहीं भी।

20. With the increase in time there certainly is an increase in all the four parameters of matter, space (area), time, and *bhava* (thought, feeling, perspective, viewpoint, alternates, mode, etc.). With the increase in area there may or may not be an increase in time. With the increase in matter and its modes there may or may not be an increase in area and time. (This is about the increase of capacities in different parameters.)

कौन किससे सूक्ष्म है ?

WHICH IS SUBTLER THAN WHAT ?

२१ : *सुहुमो य होइ कालो तत्तो सुहुमयरयं हवइ खेत्तं।*
अंगुलसेढीमित्ते ओसप्पिणिओ असंखिज्जा॥
से त्तं वड्ढमाणयं ओहिणाणं।

अर्थ—काल सूक्ष्म होता है और क्षेत्र काल से भी सूक्ष्मतर होता है क्योंकि एक अंगुल मात्र के शृंखला रूपी क्षेत्र में रहे आकाश के प्रदेशों की गिनती की जाय तो असंख्यात काल चक्र (अवसर्पिणी उत्सर्पिणी) लग जायेंगे। यह वर्द्धमानक अवधिज्ञान का वर्णन है।

21. Time is infinitesimal or subtle but the area or space is subtler than time because if the space points covering the running length of the area covered by an *angul* are counted it will take uncountable cycles of time.

This concludes the description of *Vardhaman Avadhi-jnana.*

विवेचन—क्षेत्र तथा काल अरूपी हैं। क्षेत्र का अर्थ है आकाश अथवा शून्य का वह स्थान जहाँ कोई वस्तु स्थित हो और काल का अर्थ है किन्हीं दो घटनाओं के बीच का अन्तराल। अरूपी होने के कारण ये अवधिज्ञान के विषय नहीं हैं किन्तु परिमाण के बोधक हैं अर्थात् अवधिज्ञानी को इन क्षेत्र व काल की सीमाओं से सम्बद्ध सभी द्रव्यों का ज्ञान होता है।

जैसे क्षेत्र को काल से सूक्ष्म बताया है वैसे ही क्षेत्र से भी सूक्ष्म द्रव्य होता है क्योंकि आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक द्रव्य स्कन्ध स्थित होता है जिसमें अनन्त परमाणु होते हैं। द्रव्य की तुलना में भाव सूक्ष्म होता है क्योंकि प्रत्येक परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से अनन्त पर्याय होते हैं।

परमावधि ज्ञान केवलज्ञान उत्पन्न होने से अन्तर्मुहूर्त्त पहले उत्पन्न होता है और उसमें परमाणु को भी देखने की शक्ति होती है।

Elaboration—*Kshetra* (space) and time are formless. *Kshetra* (area) means the place or area in the empty space occupied by something. Time is the gap between two incidents. As these are formless they are beyond the scope of *Avadhi-jnana*. But as these are the parameters of measurement, everything within the scope of *Avadhi-jnana* is covered by these parameters. In other words everything falling within the scope of these parameters of time and space is the subject of *Avadhi-jnana*.

As space has been shown to be subtler than time, matter is subtler than space because a space point is occupied by one *skandh* (a bunch of particles of matter, atom) of matter which in turn is composed of infinite *paramanus* (ultimate particles). *Bhava* (mode) is even subtler than matter because every ultimate particle has infinite modes with reference to shape, smell, taste and touch.

The maximum or ultimate *Avadhi-jnana* is acquired just a moment (*antarmuhurt*) before attaining *Kewal-jnana* and it gives power to see even an ultimate particle.

हीयमान अवधिज्ञान का स्वरूप
HEEYAMAN AVADHI-JNANA

२२ : *से किं तं हीयमाणयं ओहिणाणं ?*

हीणमाणयं ओहिणाणं अप्पसत्थेहिं अज्झवसाणट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स, वट्टमाणचरित्तस्स, संकिलिस्समाणस्स, संकिलिस्समाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही परिहायइ।

से त्तं हीयमाणयं ओहिणाणं।

अर्थ–प्रश्न–यह हीयमान अवधिज्ञान कैसा होता है?

उत्तर–अप्रशस्त अथवा कलुषित विचारों में रमण करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि जीव, देशविरतिचारित्र और सर्वविरतिचारित्र वाले व्यक्ति (साधु) जब ऐसे अशुभ विचारों से संक्लेश अथवा दुःख प्राप्त करता है और फलस्वरूप उसके चारित्र में विकृति आती है तब सब ओर से और सभी प्रकार से अवधिज्ञान की पूर्व अवस्था में ह्रास/हानि होता है।

इस हीन होते अवधिज्ञान को हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं।

22. Question—What is this *Heeyaman Avadhi-jnana* ?

Answer—When an *avirat samyakdrishti* being (the being who has acquired right perception but is not completely detached) or an ascetic observing conduct of partial or complete detachment, involved in mean or pervert thoughts, suffers pain or sorrow as a consequence of such impious involvements, and consequently his conduct becomes faulty, then from every direction and in every way there is a decline in the existing level

of *Avadhi-jnana*. This declining *Avadhi-jnana* is known as *Heeyaman Avadhi-jnana*.

विवेचन—अवधिज्ञान का कारण क्षयोपशम जनित शुद्धि है। कलुषित विचारों का संयोग और क्लेश जनित आर्त्तध्यान ये दोनों ही शुद्धि को कलुषित करते हैं, क्षयोपशम को निरस्त करते हैं और अवधिज्ञान को हीन करते हैं। प्रशस्त योग और शान्ति—ये आत्मिक शुद्धि और अवधिज्ञान की वृद्धि में सहायक बनते हैं।

Elaboration—The purity gained by *kshayopasham* is the cause of *Avadhi-jnana*. Any contact with tainted thoughts and the disturbed mental state due to anguish tarnish purity, nullify *kshayopasham* and reduce *Avadhi-jnana*. Spiritual endeavour and mental peace help gain purity of soul and increase *Avadhi-jnana*.

प्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप

PRATIPATI AVADHI-JNANA

२३ : *से किं तं पडिवाई ओहिणाणं ?*

पडिवाइ ओहिणाणं जण्णं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जतिभागं वा संखिज्जतिभागं वा, बालग्गं वा बालग्गपुहुत्तं वा, लिक्खं वा लिक्खपुहुत्तं वा, जूयं वा जूयपुहुत्तं वा, जवं वा जवपुहुत्तं वा, अंगुलं वा अंगुलपुहुत्तं वा पायं वा पायपुहुत्तं वा, विहत्थिं वा विहत्थिपुहुत्तं वा, रयणिं वा रयणिपुहुत्तं वा, कुच्छिं वा कुच्छिपुहुत्तं वा, धणुयं वा धणुयपुहुत्तं वा, गाउयं वा गाउयपुहुत्तं वा, जोयणं वा जोयणपुहुत्तं वा, जोयणसयं वा जोयणसयपुहुत्तं वा, जोयणसहस्सं वा जोयणसहस्सपुहुत्तं वा, जोयणसतसहस्सं वा जोयणसतसहस्सपुहुत्तं वा, जोयणकोडिं वा जोयणकोडिपुहुत्तं वा, जोयणकोडाकोडिं वा जोयणकोडाकोडिपुहुत्तं वा ? उक्कोसेण लोगं वा पासित्ता णं पडिवएज्जा।

से त्तं पडिवाइ ओहिणाणं।

अर्थ—प्रश्न—प्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप क्या है?

उत्तर—कम से कम एक अंगुल के असंख्यातवें भाग को और फिर क्रमशः एक अंगुल के संख्यातवें भाग, बालाग्र या बालाग्रपृथक्त्व, लीख या लीखपृथक्त्व, यूका (जूँ) या यूकापृथक्त्व, यह यव (जौ) या यवपृथक्त्व, अंगुल या अंगुलपृथक्त्व, पाद या पादपृथक्त्व, वितस्ति (बिलाँद) या वितस्तिपृथक्त्व, रत्नि (हाथ) या रत्निपृथक्त्व, कुक्षि (दो हाथ) या कुक्षिपृथक्त्व, धनुष (चार हाथ) या धनुषपृथक्त्व, कोस या कोसपृथक्त्व, योजन या

योजनपृथक्त्व, योजनशत (सौ योजन) या योजनशतपृथक्त्व, योजनसहस्र या योजनसहस्रपृथक्त्व, लाख योजन या लाख योजनपृथक्त्व, योजन कोटि (एक करोड़ योजन) अथवा योजन कोटिपृथक्त्व, योजन कोटि-कोटि या योजन कोटि-कोटिपृथक्त्व, संख्यात योजन या संख्यातपृथक्त्व योजन, असंख्यात या असंख्यातयोजन पृथक्त्व, अथवा उत्कृष्ट रूप में सम्पूर्ण लोक को देखकर जो ज्ञान नष्ट हो जाता है वह प्रतिपाति अवधिज्ञान कहलाता है।

23. Question—What is this *Pratipati Avadhi-jnana* ?

Answer—The *jnana* that is lost after seeing a minimum area equivalent to an uncountable fraction of an *angul* or at any point during the gradual progress of seeing areas equivalent to a numerical divisions of an *angul*, *balagra* (the edge of a single hair) or *balagra prithaktva* (2 to 9), *leekh* (egg of a louse) or *leekh prithaktva*, *yuka* (louse) or *yuka prithaktva*, *yav* (a grain of barley) or *yav prithaktva*, *angul* (width of a finger) or *angul prithaktva*, *paad* (foot) or *paad prithaktva*, *vitasti* (one hand) or *vitasti prithaktva*, *ratni* (arm's length) or *ratni prithaktva*, *kukshi* (two arm's length) or *kukshi prithaktva*, *dhanush* (four arm's length) or *dhanush prithaktva*, *kos* (two miles) or *kos prithaktva*, *yojan* (four kos or eight miles) or *yojan prithaktva*, *yojanshat* (one hundred *yojans*) or *yojanshat prithaktva*, *yojansahasra* (one thousand *yojans*) or *yojansahasra prithaktva*, *yojanshatsahasra* (one hundred thousand *yojans*) or *yojanshatsahasra prithaktva*, *yojankoti* (ten million yojans) or *yojankoti prithaktva*, *yojankoti-koti* (one hundred trillion *yojans*) or *yojankoti-koti prithaktva*, *sankhyat yojan* (countable *yojans*, a very large but still countable number) or *sankhyat yojan prithaktva*, *asankhyat yojan* (uncountable *yojans*) or *asankhyat yojan prithaktva*, or a maximum of the whole habitable universe is known as *Pratipati Avadhi-jnana*.

विवेचन—प्रतिपाति का अर्थ है पतन को प्राप्त होने वाला। जैसे जलता हुआ दीपक हवा के झोंके से तत्काल बुझ जाता है वैसे ही प्रतिपाति अवधिज्ञान एक साथ ही लुप्त हो जाता है, शनैः-शनैः नहीं। ऐसा ज्ञान जीवन में अकस्मात् किसी भी क्षण उत्पन्न हो सकता है और किसी भी क्षण लुप्त हो सकता है।

Elaboration—*Pratipati* means that which falls. As a lamp is suddenly extinguished by a gust of wind so does *Pratipati Avadhi-jnana* vanish at once, and not gradually. This knowledge can be acquired suddenly at any moment during a life time and can be lost in the same manner.

अप्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप
APRATIPATI AVADHI-JNANA

२४ : से किं तं अपडिवाइ ओहिणाणं ?

अपडिवाइ ओहिनाणं जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ-पासइ तेणं परं अपडिवाइ ओहिनाणं।

से त्तं अपडिवाइ ओहिणाणं।

अर्थ-प्रश्न-यह अप्रतिपाति अवधिज्ञान कैसा होता है?

उत्तर-जिस ज्ञान से अलोक के एक भी आकाश-प्रदेश को भी जाना-देखा जाता है वह नष्ट न होने वाला ज्ञान अप्रतिपाति अवधिज्ञान कहलाता है।

24. Question—What is this *Apratipati Avadhi-jnana* ?

Answer—That indestructible knowledge in light of which even a single space point in *alok* or *alokakash* (the empty space beyond the inhabited universe) can be seen and known is known as *Apratipati Avadhi-jnana*.

विवेचन-अप्रतिपाति अवधिज्ञान को उसके सामर्थ्य की चरमता से समझाया गया है। अलोकाकाश द्रव्यरहित होता है और अवधिज्ञान का विषय मात्र द्रव्य (रूपी द्रव्य) होता है। अवधिज्ञान की चरम अवस्था यह है कि उससे लोक में रहे सभी द्रव्यों को देखा व जाना जा सकता है। जो ज्ञान उसमें भी पर (अन्तिम छोर) अलोक आकाश के भी एक प्रदेश को जान सके वैसा अवधिज्ञान अप्रतिपाति कहलाता है क्योंकि इस चरम अवस्था के पश्चात् उसकी हानि नहीं होती वह तो एकान्त विकासमय होता है और अन्तर्मुहूर्त्त में ही केवलज्ञान उत्पन्न कर देता है।

Elaboration—*Apratipati Avadhi-jnana* has been explained with the help of its maximum or ultimate capacity. *Alokakash* is devoid of matter whereas the subject of *Avadhi-jnana* is matter or tangible

matter. The ultimate capacity of *Avadhi-jnana* is that, with its help every existing matter in the inhabited universe can be seen and known. The *Avadhi-jnana* that knows even a single space point beyond that, in the *alokakash*, is classified as *Apratipati*. This is because once it attains this ultimate state it does not decline. It is singularly progressive and within *antarmuhurt* (less than 48 mts.) gives rise to *Kewal-jnana*.

द्रव्यादि क्रम से अवधिज्ञान का वर्णन

AVADHI-JNANA WITH REFERENCE TO THE FOUR PARAMETERS

२५ : *तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ।*

तत्थ दव्वओ णं ओहिणाणी जहण्णेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ।

खित्तओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जाइं भागं जाणइ पासइ। उक्कोसेणं असंखिज्जा अलोग लोइप्पमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ।

कालओ णं ओहिणाणी जहण्णेणं आवलियाए असंखिज्जइं भागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ अइमणागयं च कालं जाणइ पासइ।

भावओ णं ओहिणाणी जहण्णेणं अणंते भावे जाणइ पासइ, उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ।

अर्थ–उपरोक्त अवधिज्ञान संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है। यथा–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। ये इस प्रकार हैं–

(१) द्रव्य से–अवधिज्ञानी कम से कम अनन्त रूपी द्रव्यों को देखता-जानता है और अधिक से अधिक सभी रूपी द्रव्यों को देखता-जानता है।

(२) क्षेत्र से–अवधिज्ञानी कम से कम अंगुल के असंख्यातवें भाग के बराबर क्षेत्र को और अधिकतम अलोक के लोक के बराबर असंख्यात खण्डों को देखता-जानता है।

(३) काल से–अवधिज्ञानी न्यूनतम एक आवलिका (समय का माप) के असंख्यातवें भाग के बराबर काल को और अधिकतम अतीत व अनागत की असंख्यात उत्सर्पिणियों तथा अवसर्पिणियों के बराबर काल को देखता-जानता है।

(४) भाव से—अवधिज्ञानी न्यूनतम अनन्त भावों को तथा अधिकतम भी अनन्त भावों को जानता-देखता है किन्तु सब भावों (पर्यायों) के अनन्तवें भाग मात्र को जानता-देखता है।

25. In brief this *Avadhi-jnana* is said to be of four types, viz. (1) with reference to matter, (2) with reference to area or space, (3) with reference to time, and (4) with reference to mode. These are—

(1) With reference to matter—*Avadhi-jnani* sees and knows a minimum of infinite types and a maximum of all types of tangible matter.

(2) With reference to area or space—*Avadhi-jnani* sees and knows a minimum area equivalent to an inexpressible fraction of an *angul* and a maximum area equivalent to the uncountable space points occupied by the habited universe in the space.

(3) With reference to time—*Avadhi-jnani* sees and knows a minimum time span equivalent to an inexpressible fraction of one *avalika* and a maximum time span equivalent to uncountable number of ascending and descending time cycles of the past and future.

(4) With reference to mode—*Avadhi-jnani* sees and knows a minimum of infinite modes and a maximum also of infinite modes. However, he only knows only an infinitesimal fraction of the total number of modes.

विवेचना—अवधिज्ञान की जघन्य व उत्कृष्ट सीमाएँ इस सूत्र में समेटी गई हैं। ऐसे उत्कृष्ट अवधिज्ञान की सीमा से परे है भावों अथवा पर्यायों की सम्पूर्णता। न्यूनतम और अधिकतम दोनों प्रकार से अनन्त का उपयोग इसको स्पष्ट करता है। अनन्त के भी अनन्त स्तर होते हैं अतः यहाँ जघन्य अनन्त और उत्कृष्ट अनन्त में भी सामर्थ्य का बहुत बड़ा अन्तर है। किन्तु भावों का विस्तार इतना विशाल है कि सर्व भाव अथवा सर्व पर्याय अवधिज्ञान की सीमा से परे है। यद्यपि अवधिज्ञानी पुद्गल की अनन्त पर्यायों को जानता है, तथापि अवधिज्ञानी द्वारा अधिकतम सर्व पर्याय का अनन्तवाँ भाग ही देखा-जाना जा सकता है।

Elaboration—This paragraph encompasses the minimum and maximum limits of *Avadhi-jnana.* The totality of the modes or alternatives is beyond even this ultimate *Avadhi-jnana*. This is

conveyed by the use of infinite both with minimum and maximum. Even infinite has infinite levels and as such there is a vast difference in terms of capacity in the minimum infinite and maximum infinite. However, the expanse of modes is so great that to know it in its totality is beyond the scope of *Avadhi-jnana*. Although an *Avadhi-jnani* knows infinite modes or alternatives of matter, he can at best see and know only an infinitesimal fraction of the total number of modes.

विषय-उपसंहार
CONCLUSION

२६ : ओहीभवपच्चइओ, गुणपच्चइओ य वण्णिओ एसो।
तस्स य बहू वियप्पा, दव्वे खित्ते य काले य॥

अर्थ—यह अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक और गुण प्रत्ययिक दो प्रकार का बताया गया है और उसके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप अनेक विकल्प बताये हैं।

26. This *Avadhi-jnana* is said to be of two types—*bhavapratyayik* (birth related) and *gunapratyayik* (virtue related) and having numerous categories in relation to matter, space, time and mode.

अबाह्य-बाह्य अवधिज्ञान
WITH AND WITHOUT AVADHI-JNANA

२७ : नेरइय-देव तित्थकरा य ओहिस्सऽबाहिरा हुंति।
पासंति सव्वओ खलु सेसा देसेण पासंति॥
से त्तं ओहिनाणपच्चक्खं।

अर्थ—नारक, देव और तीर्थंकर अवधिज्ञान के अबाह्य (बाहर नहीं) होते हैं अर्थात् अवधिज्ञान से युक्त होते हैं, और वे निश्चय ही सब ओर देखते हैं। इनके अतिरिक्त सभी देश से अर्थात् अंशतः देखते हैं। इस प्रकार यह अवधिज्ञान का पूर्ण वर्णन है।

27. Hell-beings, gods and *Tirthankars* are not without *Avadhi-jnana*; which means they are with *Avadhi-jnana* and surely see all around. Other than these all see only partially.

This concludes the description of *Avadhi-jnana*.

विवेचन—नारकी, देव और तीर्थंकर ये तीनों नैसर्गिक रूप से अवधिज्ञान के धारक होते हैं और सभी दिशाओं में देखते हैं। तिर्यंच और मनुष्य अवधिज्ञान उत्पन्न होने पर भी अंशतः ही देख पाते हैं। तीर्थंकर छद्मस्थकाल तक अवधिज्ञान के धारक होते हैं। यह अवधिज्ञान उनके च्यवन स्थान के अनुसार सामर्थ्य लिए होता है। यदि वे २६ देवलोकों से और ९ लोकान्तिक देवलोकों से च्यव कर आते हैं तो विपुल मात्रा में अवधिज्ञान सहित आते हैं। यदि वे प्रथम तीन नरक से आते हैं तो उनकी अपर्याप्त अवस्था में अवधिज्ञान उस नरक विशेष से सम्बद्ध अवधिज्ञान के बराबर होता है किन्तु पर्याप्त अवस्था प्राप्त होते ही वह तत्काल विपुल अवधिज्ञान में विकसित हो जाता है। तीर्थंकरों का अवधिज्ञान अप्रतिपाति होता है। (देखें चित्र 10)

Elaboration—Hell-beings, gods, and *Tirthankars*, these three possess *Avadhi-jnana* as a natural rule and see in all directions. Animals and men even after acquiring *Avadhi-jnana* can only see partially. A *Tirthankar* possesses *Avadhi-jnana* during his *Chhadmastha* (a person in the state of bondage or one who has a finite cognition, not omniscience) state. This *Avadhi-jnana* has a potency depending on the place of descent or ascent. If they descend from any of the 26 abodes of gods or the 9 abodes of gods located at the edge of the universe, they come with a high potency *Avadhi-jnana*. If they ascent from the first three hells they possess, during their immature state, a low potency *Avadhi-jnana* matching that belonging to the particular hell; however as soon as they attain the state of maturity this develops into the high potency *Avadhi-jnana*. The *Avadhi-jnana* of the *Tirthankars* is indestructible.

(*See illustration* 10)
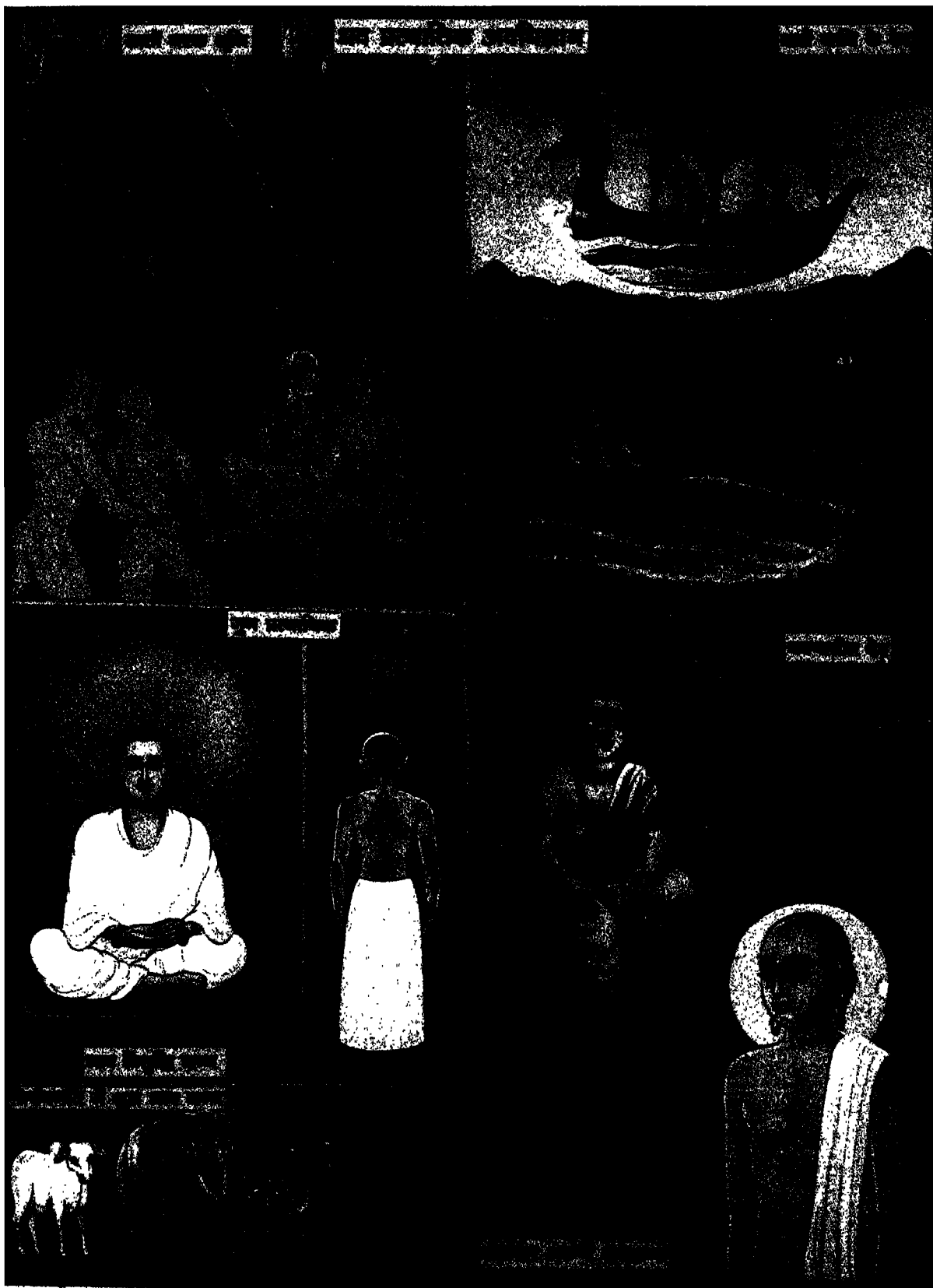
अवधिज्ञान के पात्र

१. भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान : (क) नैरयिकों में–नरक भूमि में उत्पन्न नैरयिकों को विना किसी प्रयत्न के उस भव स्थिति के कारण अवधिज्ञान होता है।

(ख) देवलोक में–इसी प्रकार चारों प्रकार के कल्पवासी देवताओं को उत्पन्न होते ही किसी प्रयत्न के विना ही साथ में अवधिज्ञान होता है। पाँच अनुत्तरविमानवासी देवों को और तीर्थंकरों को भी उस भव में स्वाभाविक अवधिज्ञान रहता है। यह भव प्रत्ययिक है।

२. गुणप्रत्ययिक अवधिज्ञान–मनुष्य एवं तिर्यंच गति में गुण प्रत्ययिक–सीमित अवधिज्ञान होता है। तिर्यंचों एवं मनुष्यों में जातिस्मरण ज्ञान होने पर अथवा शुभ भावधारा आने पर, मनुष्यों में शुभ चिन्तन तथा तपःसाधना आदि के कारण भी अविधज्ञान उत्पन्न होता है। (सूत्र २६-२७)

THOSE CAPABLE OF AVADHI-JNANA

1. *Bhava pratyayik Avadhi-jnana*—(A) The beings born in the hells have avadhi-jnana as a natural attribute of that genus.

(B) *In the dimension of gods*—All the four types of abode based gods are endowed with avadhi-*jnana* from their birth and without any effort. The five special celestial vehicle based gods and *Tirthankars* also have natural avadhi-*jnana* during that birth.

2. *Guna pratyayik Avadhi-jnana*—In the genus of human beings and that of animals there is virtue based avadhi-*jnana*. In these avadhi-*jnana* comes as a consequence of jati smaran *jnana* or a pious trend of attitudes and thoughts. In human beings it also comes as a result of spiritual practices and austerities. (26-27)

मनःपर्यवज्ञान का स्वरूप
MANAH-PARYAVA-JNANA

२८ : *से किं तं मणपज्जवनाणं ?*

मणपज्जवनाणे णं भंते ! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ अमणुस्साणं ?

गोयमा ! मणुस्साणं, णो अमणुस्साणं।

अर्थ–प्रश्न–भंते ! मनःपर्यवज्ञान का स्वरूप क्या है ?

यह ज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है अथवा अमनुष्यों (देव, नारक और तिर्यंच) को ?

भगवान ने उत्तर दिया–गौतम ! यह मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है, अमनुष्यों (मनुष्येतर) को नहीं।

28. Question—What is this *Manah-paryava jnana* ?

Is this knowledge acquired by human beings or non-human beings (gods, hell beings and animals) ?

Bhagavan replied—Gautam, this knowledge is acquired only by human beings and not by non-human beings.

२९ : *जइ मणुस्साणं, किं सम्मुच्छिम-मणुस्साणं गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?*

गोयमा ! नो संमुच्छिम-मणुस्साणं, गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उप्पज्जइ।

अर्थ–प्रश्न–यदि मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या सम्मूर्छिम मनुष्यों को होता है अथवा गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को ?

उत्तर–गौतम ! सम्मूर्छिम मनुष्यों को नहीं, गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है।

29. Question—When you say that it is acquired by human beings do you mean the *sammurchim* humans or the *garbhavyutkrantik* (born out of a womb, placental) humans ?

Answer—Gautam ! It is acquired only by the *garbhavyutkrantik* humans and not by the *sammurchim* humans.

विवेचन–सम्मूर्छिम मनुष्य सूक्ष्म मनुष्याकार जीव होते हैं जो गर्भज (गर्भव्युत्क्रान्तिक अर्थात् गर्भ से उत्पन्न अर्थात् सामान्य) मनुष्य के मल-मूत्र, स्वेद आदि अशुचि से उत्पन्न होते हैं। इनका आकार अंगुल के असंख्यातवें भाग के बराबर होता है। ये संज्ञाहीन, मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी, अपर्याप्त तथा अन्तर्मुहूर्त काल की आयु वाले होते हैं। (विस्तृत वर्णन प्रज्ञापनासूत्र, प्रथम पद से देखें)

Elaboration—The *sammurchim* human is a conceptual micro being that originate in the excreta (urine, stool, resspiration, etc.) of the normal placental humans. Its size is as small as an infinitesimal fraction of an *angul*. It is insensate, irrational, innocent and incomplete and have a momentary life. (for a detailed description consult *Prajapana Sutra*—first chapter)

३० : जइ *गब्भवक्कंतियमणुस्साणं किं कम्मभूमिगब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अकम्मभूमियगब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?*

गोयमा ! कम्मभूमियगब्भवक्कंतियमणुस्साणं, णो अकम्मभूमियगब्भक्कंतियमणुस्साणं णो अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं।

अर्थ–प्रश्न–यदि (मन:पर्यवज्ञान) गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को होता है तो क्या कर्मभूमि निवासियों को होता है, अकर्मभूमि निवासियों को होता है, या अन्तरद्वीप के निवासियों को होता है?

उत्तर–गौतम ! कर्मभूमि के गर्भज मनुष्यों को ही होता है अकर्मभूमि या अन्तरद्वीप के गर्भज मनुष्यों को नहीं।

30. Question—When you say that it (*Manah-paryav-jnana*) is acquired by *garbhavyutkrantik* human beings do you mean those belonging to *karmabhumi* (land of activity), *akarmabhumi* (land of inactivity or enjoyment) , or the middle continents ?

Answer—Gautam ! It is acquired only by the placental human beings belonging to *karmabhumi* and not by the placental human beings belonging to *akarmabhumi* or middle continents.

विवेचन–जहाँ असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, कला, शिल्प, राजनीति तथा साधु-साध्वी आदि चार तीर्थ विद्यमान और सक्रिय हों उसे कर्मभूमि कहते हैं, जैसे–हमारी पृथ्वी। जहाँ इनका अभाव हो वह अकर्मभूमि। अकर्मभूमि के मनुष्य कल्पवृक्षों पर निर्वाह करते हैं। ३० अकर्मभूमि और ५६ अन्तरद्वीप ये सब अकर्मभूमि या भोगभूमि कहलाते हैं। (विस्तृत वर्णन जीवाभिगमसूत्र तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति युगलिया प्रकरण में देखें)

Elaboration—The area where activities related to *asi* (sword), *masi* (ink), *krishi* (agriculture), *vanijya* (commerce), *kala* (arts), *shilp* (crafts), *rajaniti* (politics) and *teerth* (religious organisation comprising of ascetics and citizens) exist is called *karmabhumi*; like

the earth we live on. The areas where these activities do not exist are called *akarmabhumi*. The human beings living in *akarmabhumi* live on the produce of the *kalpavriksha* (wish-fulfilling trees). The 30 *akarmabhumis* and the 56 middle continents fall under the class of *akarmabhumis* or *bhog-bhumis* (the lands of enjoyment). (for a detailed description consult *Jivabhigam Sutra* and the *Yugalia* chapter of *Jambudveep Prajnapti*)

३१ : *जइ कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं किं संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं असंखिज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय मण्णुस्साणं ?*

गोयमा ! संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

णो असंखेज्जवासाउयकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं।

अर्थ—प्रश्न—यदि (मनःपर्यवज्ञान) कर्मभूमि के गर्भज मनुष्यों को होता है तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को?

उत्तर—गौतम ! यह संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है, असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को नहीं।

31. Question—When you say that it (*Manah-paryav-jnana*) is acquired by *karmabhumi* inhabitant *garbhaj* human beings do you mean those with a life-span of countable (a finite number of) years or those with a life-span of uncountable years ?

Answer—Gautam ! It is acquired only by the *karmabhumi* inhabitant placental human beings with a life-span of countable years and not by those with a life-span of uncountable years.

विवेचन—गर्भज मनुष्य दो प्रकार के बताये हैं—संख्यात एवं असंख्यात वर्ष आयु वाले। संख्यात वर्ष की आयु का अर्थ है ९ वर्ष से एक करोड़ पूर्व की आयु। इससे अधिक आयु असंख्यात वर्ष आयु कहलाती है।

Elaboration—Placental human beings are said to be of two types—with life-spans of countable and uncountable years. A life-span of countable (a finite number of) years means any age between 9 years to ten billion *purvas* (7056×10^{10} years). Any age more than this figure is known as a life-span of uncountable years.

काल गणना

जैन ग्रन्थों में काल का अति सूक्ष्म, विस्तृत और वैज्ञानिक विभाजन भी उपलब्ध है। इस विभाजन के दो अंग हैं–प्रथम संख्यात काल तथा दूसरा औपमिक काल।

The Measurement of Time

Jains have also worked out the minute, detailed and scientific division of time. This has two sections—one is the countable time and the other is the metaphoric time.

संख्यात काल
NUMERICAL TIME

सूक्ष्मतम निर्विभाज्य काल (Indivisible unit of time)	= १ समय (1 Samaya)
असंख्यात् समय (Innumerable Samaya)	= १ आवलिका (1 Avalika)
संख्यात आवलिका (Numerical Avalika)	= १ उच्छ्वास अथवा १ निश्वास (1 Exhalation or 1 Inhalation)
१ उच्छ्वास + १ निश्वास (1 Inhalation + 1 Exhalation)	= १ प्राण = (1 Pran)
७ प्राण (Pran)	= १ स्तोक (Stok)
७ स्तोक (Stok)	= १ लव (Lav)
७७ लव (Lav)	= १ मुहूर्त (Muhurt)
३० मुहूर्त (Muhurt)	= १ अहोरात्र (Day and Night) (24 hours)
१५ अहोरात्र (Day and Night)	= १ पक्ष (Fortnight)
२ पक्ष (Fortnight)	= १ मास (Month)
२ मास (Month)	= १ ऋतु (Season)
३ ऋतु (Season)	= १ अयन (Ayan) (1/2 year)
२ अयन (Ayan)	= १ संवत्सर (Year)
५ संवत्सर (Year)	= १ युग (Yug) (half a decade)
२० युग (Yug)	= १ शताब्दी (Century) 10^2 years
१० शताब्दी (Century)	= १ सहस्राब्दी (Millennium) 10^3 years
१०० सहस्राब्दी (Millennium)	= १ लक्षाब्दी (Lakshabdi) 10^5 years
८४ लक्षाब्दी (Lashabdi)	= १ पूर्वांग (Prsuvang) 84×10^5 years
८४ लक्ष पूर्वांग (Lac Prsuvang)	= १ पूर्व (Pruva) 7056×10^{10} years

'पूर्व' के बाद पच्चीस इकाइयाँ और हैं जो प्रत्येक पूर्ववर्ती इकाई से ८४ लाख गुणा अधिक हैं। अंतिम इकाई का नाम शीर्ष प्रहेलिका है जिसमें ५४ अंकों के बाद १४० शून्य होते हैं। यह लगभग 7.582×10^{193} के बराबर होती है।

After the 'Purva' there are twenty five units more. Each unit is a multiple of 84,00,000 and the previous unit. The last such unit of the finite number in this series is known as Sheersh Prahelika. It contains 54 numbers and 140 zeros. In mathametical terms it is approximately 7.582×10^{193}.

औपमिक काल

यह वह काल है जिसे संख्याओं या गणित से नहीं मापा जा सकता। अतः इसे समझने के लिए उपमा की आवश्यकता होती है। इसकी सबसे छोटी इकाई का नाम है पल्योपम। पल्योपम का परिमाण समझने के लिए शास्त्रोक्त परिभाषा है–"एक योजन लम्बा-चौड़ा-गहरा प्याले के आकार का गड्ढा खोदा जाए जिसकी परिधि तीन योजन हो। उसे उत्तर कुरु के मनुष्य के एक दिन से सात दिनों तक के बालाग्र (अत्यन्त सूक्ष्म बाल का अग्रभाग) से ऐसे ठसाठस भर दिया जाए कि जल और वायु भी प्रवेश न पा सके। फिर उसमें से एक-एक बालाग्र प्रत्येक १०० वर्ष के बाद निकाला जाए। इस प्रकार जितने समय में वह पल्य (गड्ढा) खाली हो जाए उस काल को पल्योपम कहते हैं।

१० कोटा-कोटि पल्योपम = १ सागरोपम

१० कोटा-कोटि सागरोपम = १ उत्सर्पिणी अथवा १ अवसर्पिणी

२० कोटा-कोटि सागरोपम = १ काल-चक्र

Metaphoric Time Scale

This is the period of time beyond the scope of numbers or mathematics. As such, it is measured metaphorically. Its smallest unit is *Palyopam*. The definition of *Palyopam* available in Jain scriptures is as follows : Dig a cup shape ditch measuring 1 *yojan* (approx. 8 miles) on all sides. Fill it with the miniscule hair of man from Uttar kuru. It would be so tightly packed that air or water may not find a passage within. Now start taking out one hair every hundred years. The time taken in emptying this ditch is termed as *Palyopam*.

1 thousand trillion Palyopam = 1 Sagaropam

1 thousand trillion Sagaropam = 1 Utsarpini or 1 Avasarpini

2 thousand trillion Sagaropam = 1 time cycle

३२ : जइ संखेज्जवासउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, किं पज्जत्तगसंखेज्ज-वासाउयकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं।

अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?

गोयमा ! पज्जत्तग-संखिज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, णो अपज्जत्तगसंखेज्ज-वासाउयकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं।

अर्थ–प्रश्न–यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमि में जन्में गर्भज मनुष्यों को होता है तो क्या पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है अथवा अपर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को?

उत्तर–गौतम ! पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान होता है अपर्याप्त को नहीं।

32. Question—When you say that it (*Manah-paryav-jnana*) is acquired by the *karmabhumi* inhabitant placental human beings with a finite life-span do you mean those who are fully developed or those who are under-developed ?

Answer—Gautam ! It is acquired only by the *karmabhumi* inhabitant placental human beings with a finite life-span who are fully developed and not by those who are under-developed.

विवेचन–संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य दो प्रकार के होते हैं–पर्याप्त और अपर्याप्त। पर्याप्त का अर्थ है कर्म प्रकृति के उदय से आवश्यक जीवन क्षमता की पूर्णता को प्राप्त कर लेना। अपर्याप्त इसका विलोम है अर्थात् क्षमता की पूर्णता को प्राप्त न कर पाना। पर्याप्ति का अर्थ है–जीव की शक्तियों की परिपूर्ण प्राप्ति। ये पर्याप्तियाँ छह प्रकार की होती हैं–

(१) आहार-पर्याप्ति–जिस क्षमता से जीव आहार के योग्य पदार्थों को ग्रहण कर उन्हें आवश्यक वर्ण, रस आदि रूप में परिणत कर लेता है उस क्षमता की पूर्णता को आहार-पर्याप्ति कहते हैं।

(२) शरीर-पर्याप्ति–जिस क्षमता से रस, रूप आदि में परिणत आहार को अस्थि, माँस, मज्जा आदि शरीर के आधारभूत तत्त्वों में परिणत किया जाता है उस क्षमता की पूर्णता को शरीर-पर्याप्ति कहते हैं।

(३) इन्द्रिय-पर्याप्ति–पाँच इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके अनाभोग निवर्तित योग शक्ति (यह जीव की नैसर्गिक शक्ति है जो पुद्गलों को निरासक्त रूप से जोड़ती है) द्वारा उन्हें इन्द्रिय विशेष का पूर्ण रूप प्रदान करने वाली क्षमता को इन्द्रिय-पर्याप्ति कहते हैं।

(४) श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति–जिस क्षमता के द्वारा उच्छ्वास के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करने व छोड़ने की क्रिया होती है उसके पूर्ण विकास को श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति कहते हैं।

(५) भाषा-पर्याप्ति–जिस क्षमता के द्वारा आत्मा भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर भाषा रूप में अभिव्यक्त करती है उसके पूर्ण विकास को भाषा-पर्याप्ति कहते हैं।

(६) मनःपर्याप्ति–जिस क्षमता के द्वारा आत्मा मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर मन रूप में परिणत करती है उसे मनःपर्याप्ति कहते हैं।

इनमें पहली, आहार-पर्याप्ति, प्रथम समय में हो जाती है और शेष पाँच गति के अनुसार अन्तर्मुहूर्त्त में सम्पन्न हो जाती हैं। एकेन्द्रिय जीव में प्रथम चार हो सकती हैं, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में प्रथम पाँच और संज्ञी मनुष्य में सभी हो सकती हैं। इनमें से किसी का भी उस गति के अनुसार अभाव हो तो वह जीव अपर्याप्त कहलाता है। मनःपर्यवज्ञान ऐसे पर्याप्त मनुष्य को ही हो सकता है अपर्याप्त को नहीं।

Elaboration—Placental human beings belonging to *karmabhumi* with a life-span of countable years are of two types—*paryapt* (fully developed) and *aparyapt* (under-developed). As a consequence of fruition of karma, to reach the state of full development of all faculties associated with life is called *paryapti*. *Aparyapt* is its opposite or not fully developed. *Paryapti* means maturity in terms of capacities of all faculties associated with life. There are six types of *paryaptis*—

1. ***Ahar-paryapti***—The maturity or full development of the capacity of a being to accept eatables and convert them into the required basic components of form, taste, smell etc. is known as *Ahar-paryapti* or the mature or fully developed capacity to eat.

2. ***Sharir-paryapti***—The maturity or full development of the capacity of a being to transform the basic components of form, taste, smell etc., extracted from food, into the basic constituents of the body such as bone, flesh, marrow, etc. is known as *Sharir-paryapti* or the fully developed capacity of body formation.

3. ***Indriya-paryapti***—The maturity or full development of the capacity of a being to absorb matter particles and build specific sense organ or organs, complete and active, with the help of *anabhog-nivartit-yoga-shakti* (this is the natural cohesive power of a being that provides a neutral bond between matter particles) is known as *Indriya-paryapti* or the fully developed capacity of sense-organ formation.

4. *Shvasocchavas-paryapti*—The maturity or full development of the capacity of a being to inhale and exhale suitable matter particles is known as *Shvasocchavas-paryapti* or the fully developed capacity of breathing.

5. *Bhasha-paryapti*—The maturity or full development of the capacity of a being to accept matter particles of acoustic category and express them in lingual form is known as *Bhasha-paryapti* or the fully developed capacity of lingual expression.

6. *Manah-paryapti*—The maturity or full development of the capacity of a being to accept matter particles of *manovargana* (a class of particles connected with thought process) and convert them into man (mind, the entity responsible for the thought process) is known as *Manah-paryapti* or the fully developed capacity of thinking.

Of these the first occurs at the first *samaya* (the infinitesimal unit of time) after birth. The remaining five are attained within *antarmuhurt* depending on the realm of birth. Beings with a single sense organ can attain the first four. Beings with two to four sense organs as well as *asanjni-panchendriya* (five sensed beings devoid of mind) can attain first five. Human beings can attain all six. When a being is short of the development specified for a particular class it is called *aparyapt* or under-developed. *Manah-paryav-jnana* is acquired only by such fully developed human being and not by an under-developed one.

दृष्टि-भेद
SPIRITUAL INSIGHT

३३ : जइ *पज्जत्तग-संखेज्जवासउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तगसंखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, सम्मामिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?*

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

णो मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुसाणं,

णो सम्मामिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय- कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं।

अर्थ—प्रश्न—यदि मनःपर्यवज्ञान पर्याप्त-संख्यातवर्षी-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्यों को होता है तो क्या वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्त-संख्यातवर्षी-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्यों को, मिथ्यादृष्टि पर्याप्त-संख्यातवर्षी-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्यों को अथवा मिश्रदृष्टि पर्याप्त-संख्यातवर्षी-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है?

उत्तर—गौतम ! सम्यग्दृष्टि पर्याप्त-संख्यातवर्षी-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्यों को होता है। मिथ्यादृष्टि पर्याप्त-संख्यातवर्षी-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्यों को और मिश्रदृष्टि पर्याप्त-संख्यातवर्षी-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्यों को नहीं होता।

33. Question—When you say that it (*Manah-paryav-jnana*) is acquired by fully developed, *karmabhumi* inhabitant, placental human beings of finite life-span do you mean those with *samyak-drishti*, *mithya-drishti*, or *mishra-drishti* ?

Answer—Gautam ! It is acquired only by the fully developed *karmabhumi* inhabitant placental human beings of finite life-span with *samyak-drishti* and not by those with *mithya-drishti*, or *mishra-drishti*.

विवेचन—मनुष्य दृष्टि भेद से तीन प्रकार के होते हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि। ये इस प्रकार हैं—

(१) सम्यग्दृष्टि—जिस मनुष्य की दृष्टि, भाव, विचारधारा आदि सत्य के सन्मुख हो, वीतराग जिन द्वारा प्ररूपित तत्त्व की दिशा में प्रेरित हो अर्थात् जिसे सत्य और तत्त्व पर सम्यक् श्रद्धा हो वह सम्यग्दृष्टि मनुष्य कहलाता है।

(२) मिथ्यादृष्टि—सम्यक् के विपरीत जो असत्य और अतत्त्व के प्रति श्रद्धा व आग्रह रखता हो उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

(३) मिश्रदृष्टि—जो न सत्य को स्वीकार कर सके और मिथ्या को त्याग सके ऐसे अनिर्णय भावी दिशाहीन मूढ व्यक्ति को मिश्रदृष्टि कहते हैं।

Elaboration—With respect to *drishti* (spiritual insight) there are three classes of human beings—*samyak-drishti, mithya-drishti* and *mishra-drishti*. These are defined as follows—

1. ***Samyak-drishti***—A person whose insight, feelings, thought process, etc. work in the direction of truth and are aimed at the fundamentals propounded by the *Veetaraga* (the Detached one) is known as *samyak-drishti manushya* or a man with right insight. In

other words a man with right insight has faith in truth and fundamentals.

2. *Mithya-drishti*—As opposed to the right, one who has faith in and is dogmatic about falsity and unreal fundamentals is known as *mithya-drishti* or a man with false insight.

3. *Mishra-drishti*—A wavering and aimless fool who neither can accept truth nor reject falsity is called *mishra-drishti* or a man with confused insight.

संयत, असंयत और संयतासंयत
PERFECT, IMPERFECT, AND MIXED

३४ : *जइ सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं संजय-सम्म-दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, असंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जावासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, संजया-संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?*

गोयमा! संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, णो असंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, णो संजया-संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं।

अर्थ—प्रश्न—यदि वह (मनःपर्यवज्ञान) सम्यग्दृष्टि प. सं. क. ग. मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या वह संयत स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को, अथवा असंयत स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को या संयतासंयत स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को होता है।[1]

उत्तर—गौतम ! वह संयत स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को उत्पन्न होता है तथा असंयत एवं संयतासंयत स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को नहीं होता।

34. Question—When you say that it (*Manahparyav-jnana*) is acquired by the *samyak-drishti* (having right insight), fully developed, *karmabhumi* inhabitant, placental human beings of

---

१. उक्त पाठों के मूल में आये पर्याप्तक-संख्यात वर्षी-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्य आदि शब्दों को अनुवाद में बार-बार नहीं दुहराकर उनका संक्षिप्त रूप लिख दिया जैसे—प. स. क. ग. इसी प्रकार संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक के लिए सं. प. संकेत किया है। अप्रमत्त संयत-सम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षी के भी अ. सं. स. प. का संक्षिप्त संकेत सर्वत्र समझना चाहिए।

finite life-span do you mean those who are *samyat*, *asamyat* or *samyatasamyat*.

Answer—Gautam ! It is acquired only by the *samyak-drishti*, fully developed, *karmabhumi* inhabitant, placental human beings of finite life-span who are *samyat* and not by those who are *asamyat* or *samyatasamyat*.

विवेचन—जो सब कुछ त्याग चुके हैं तथा चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम के फलस्वरूप जिन्हें सर्वविरति चारित्र की प्राप्ति हो गई है वे संयत होते हैं, जैसे–साधु।

इसके विपरीत जो नियमों व प्रत्याख्यान आदि में अधूरे हैं तथा चतुर्थ गुणस्थान में स्थित अविरत सम्यग्दृष्टि हैं वे असंयत होते हैं।

जो हिंसा आदि पाँच आस्रवों का आंशिक रूप में त्याग करते हैं, सम्पूर्ण नहीं, वे संयतासंयत होते हैं। (श्रावक) (पच्चक्खाणापच्चक्खाणी)

Elaboration—Those who have abandoned everything and have gained the conduct of the detached through extinction or extinction-cum-suppression of conduct veiling karmas are known as *samyat* or the perfect ones; such as accomplished ascetics.

As against this, those who are imperfect in observation of codes and critical review (*pratyakhyan*) and who are *avirat* (without self-discipline) *samyak-drishti* at the fourth *Gunashthan* are known as *asamyat* or the imperfect ones; such as ordinary ascetics.

Those who are not completely but only partially free of the five causes of *karmic* bondage including *himsa* (aggression) are known as *samyatasamyat*; such as *shravak* (a lay person who has accepted the prescribed code of conduct and tries to observe it).

अप्रमत्त और प्रमत्त

APRAMATT AND PRAMATT

३५ : *जइ संजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जावासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं किं पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्ज वासाउयकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, किं अप्पमत्त-संजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं ?*

गोयमा ! अप्पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, णो पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं।

अर्थ—प्रश्न—यदि वह (मनःपर्यवज्ञान) संयत स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या प्रमत्त सं. स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को होता है अथवा अप्रमत्त सं. स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को?

उत्तर—गौतम ! अप्रमत्त सं. स. प. सं. क. ग. मनुष्य को ही होता है, प्रमत्त सं. स. प. सं. क. ग. मनुष्य को नहीं होता।

35. Question—When you say that it (*Manah-paryav-jnana*) is acquired by the *samyat* (accomplished), *samyak-drishti* (having right insight), fully developed, *karmabhumi* inhabitant, placental human beings of finite life-span do you mean those who are *pramatt* or those who are *apramatt*.

Answer—Gautam ! It is acquired only by the *samyat*, *samyak-drishti*, fully developed, *karmabhumi* inhabitant, placental human beings of finite life-span who are *apramatt* and not by those who are *pramatt*.

विवेचन—जो सातवें गुणस्थान में पहुँचा हुआ हो, जो सदा संयम में ही लीन रहता हो, जो निद्रा आदि प्रमादों से ऊपर उठकर शुभ भाव धारा में आगे बढ़ रहा हो, उसे अप्रमत्त संयत कहते हैं।

जो इस उच्च स्तर पर भी संज्वलन कषाय, निद्रा, विकथा, शोक, अरति, हास्य आदि अशुभ भावों से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाते उन्हें प्रमत्त संयत कहते हैं। जैसे—जिनकल्पी, परिहार-विशुद्धि-चारित्र सम्पन्न एवं प्रतिमाधारी श्रमण।

Elaboration—One who has reached the seventh *gunasthan* (level of purity of soul), who is incessantly involved in spiritual activity, rising above the static and negligent activities like sleep, who steadily progresses in the stream of pious attitude, thought and feeling, is called *apramatt-samyat* (accomplished and alert).

He who is not absolutely free of the traces of non-righteous attitudes including residual passions, somnolence, opprobrium, grief, indifference and mirth is called *pramatt-samyat* (accomplished but negligent); such as *jinkalpi* (an ascetic living in complete isolation) and other *shramans* who adhere to strict observance of higher levels of discipline.

ऋद्धि प्राप्त
SPECIAL POWERS

३६ : *जइ अप्पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, किं इड्ढिपत्त-अप्पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जावासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, अणिड्ढिपत्त-अप्पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं।*

गोयमा! इड्ढिपत्त-अप्पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, णो अणिड्ढिप्पत्त-अप्पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं मणपज्जवणाणं- समुप्पज्जइ।

अर्थ—यदि वह (मनःपर्यवज्ञान) अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त सं. क. ग. मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या वह ऋद्धि प्राप्त अप्रमत्त सं. स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को होता है अथवा अनृद्धि प्राप्त (ऋद्धि रहित) अ. सं. स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को।

उत्तर—गौतम ! ऋद्धि प्राप्त अ. सं. स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को होता है अनृद्धि प्राप्त अ. सं. स. प. सं. क. ग. मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

36. Question—When you say that it (*Manchparyav-jnana*) is acquired by the *apramatt* (alert), *samyat*, *samyak-drishti*, fully developed, *karmabhumi* inhabitant, placental human beings of finite life-span do you mean those who are endowed with special powers or those who are not endowed with special powers.

Answer—Gautam ! It is acquired only by the *apramatt-samyat*, *samyak-drishti*, fully developed, *karmabhumi* inhabitant, placental human beings of finite life-span who are endowed with special powers and not by those who are not endowed with special powers.

विवेचन—जो अप्रमत्त साधक अवधिज्ञान, पूर्वगतज्ञान, अतिशायिनी विशेष बुद्धि तथा आमोसही, आहारक-वैक्रिय लब्धि, विपुल तेजोलेश्या, जंघाचारण एवं विद्याचारण आदि लब्धियों से सम्पन्न होते हैं उन्हें ऋद्धि प्राप्त कहते हैं। कुछ ऋद्धियाँ निम्न प्रकार हैं—

(१) अतिशायिनी बुद्धि—यह तीन प्रकार की होती है—(१) कोष्टक बुद्धि—सुना हुआ श्रुतज्ञान जिस बुद्धि में ज्यों का त्यों सुरक्षित रहे। (२) पदानुसारिणी बुद्धि—जो एक पद सुनकर तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण पाठ को समझ ले। (३) बीज बुद्धि—जो एक पद का अर्थ समझ लेने पर तद् सम्बन्धी समस्त पाठ के समस्त अर्थ समझ ले।

(२) आमोसही लब्धि—इस लब्धि के धारक के स्पर्श मात्र से असाध्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

(३) जंघाचरण लब्धि—आवश्यकतानुसार शीघ्रता से कहीं भी पहुँच जाने की शक्ति। आकाश गमन।

इस प्रकार की अनेक ऋद्धियाँ व लब्धियाँ हैं जो संयम और तप से प्राप्त होती हैं। इनमें से कुछ औदयिक भाव से होती है अर्थात् पूर्व कर्मों के उदय के फलस्वरूप; कुछ क्षयोपशम भाव से होती हैं अर्थात् तद् आवरणीय कर्मों के क्षयोपशम के फलस्वरूप; तथा कुछ क्षायिक भाव से होती हैं अर्थात् आवरणीय कर्मों के क्षय के फलस्वरूप। लब्धि आदि का विस्तृत विवरण भगवतीसूत्र शतक २० में प्राप्त होता है। वृत्तिकार मलयगिरि ने भी टीका में इसकी चर्चा की है।

जिन्हें ऐसी कोई विशिष्ट ऋद्धि प्राप्त नहीं होती वे अनृद्धिप्राप्त कहलाते हैं।

उपरोक्त नौ अपेक्षाएँ चार भागों में बाँटी जा सकती हैं—पर्याप्तक, गर्भज और मनुष्य—द्रव्य में; कर्मभूमिज क्षेत्र भाग में; संख्यातवर्ष की आयुष्य—काल भाग में तथा सम्यग्दृष्टि, संयत, अप्रमत्त, लब्धि प्राप्त—भाव-भाग में। इस प्रकार जहाँ जब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की समस्त अपेक्षाएँ पूर्ण होती हैं तभी मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है और मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं।

Elaboration—Those alert practicers who have acquired *Avadhi-jnana*, knowledge of the subtle canons, supreme intelligence, and other special powers namely—ambrosia *aharak-vaikriya labdhi*, *vipul tejoleshya*, *janghacharan*, *vidyacharan*, etc. are the 'ones endowed with special powers'. Some of these powers are as follows—

1. ***Atishayini buddhi*** (supreme intelligence)—This is of three types - (a) *Koshtak buddhi* - the capacity to retain all the listened scriptural knowledge in memory. (b) *Padanusarini buddhi* - The capacity to understand the complete chapter or lesson by listening to just one stanza. (c) *Beej buddhi* - the capacity to understand all the meanings of all related texts by understanding the meaning of just one stanza.

2. **Ambrosia *labdhi***—The person with this power can cure incurable diseases with a mere touch.

3. ***Janghacharan labdhi***—The power to transport oneself quickly to any desired destination; aerial transportation.

There are numerous such powers that can be acquired with the help of discipline and austerities. Some of these are *audayik* or caused by fruition of past karmas, others are *kshayopashamik* or

caused by suppression-cum-extinction of related karmas, and still others are *kshayik* or caused by extinction of related karmas. A detailed discussion of such powers (*labdhis*) is available in the 20th *shatak* of *Bhagavati Sutra*. Commentator Malayagiri has also discussed this topic in his commentary (*tika*) .

Those who have not been able to acquire any such powers are the 'ones not endowed with special powers'.

The above mentioned nine requirements can be divided into four categories—*paryaptak, garbhaj, and manushya* related to matter; *karmabhumij* related to area or space; life-span of *samkhyat* years related to time; and *Samyak-drishti, samyat, apramatt,* having *labdhi* related to attitude or mode. Thus only when all these requirements related to matter, space, time, and mode are met the process of *kshayopasham* of the knowledge veiling karmas takes place and *Manah-paryav jnana* is acquired, otherwise not.

मनः पर्यवज्ञान के भेद
TYPES OF MANAH-PARYAV JNANA

३७ : *तं च दुविहं उप्पज्जइ, तं जहा—उज्जुमई य विउलमई य।*

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ।

तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई अणंते अणंतपदेसिए खंधे जाणइ पासइ, ते चेव विउलमई अब्भहियतराए, विउलतराए, विसुद्धतराए, वितिमिरतराए जाणइ पासइ।

खित्तओ णं—उज्जुमई जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डागपयरे, उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु, पन्नरससु कम्मभूमिसु, तीसाए अकम्मभूमिसु, छप्पन्नाए अन्तरदीवगेसु सन्निपंचिंदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहि-मंगुलेहिं अब्भहियतरं, विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ पासइ।

कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसएणवि पलिओवमस्स असंखिज्जाइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं, वितिमिरतरागं जाणइ पासइ।

भावओ णं–उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ।

अर्थ–वह मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार से उत्पन्न होता है। यथा–ऋजुमति तथा विपुलमति। इन दोनों के भी चार-चार विभाग होते हैं–यथा–(१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से, और भाव से।

(१) द्रव्य से–ऋजुमति अनन्त प्रदेशों वाले अनन्त स्कन्धों को विशेष तथा सामान्य रूप से जानता-देखता है। विपुल मति उन्हीं स्कन्धों को कुछ अधिक विपुल, विशुद्ध और निर्मल (भ्रम रहित) रूप से जानता-देखता है।

(२) क्षेत्र से–ऋजुमति कम से कम अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने से क्षेत्र को और अधिकतम अधोदिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी के सबसे नीचे सूक्ष्मस्तर तक, उर्ध्वदिशा में ज्योतिष चक्र के ऊपरी स्तर तक और तिर्यक (तिरछे) लोक में मनुष्य क्षेत्र के अढाई द्वीप समुद्र पर्यन्त, पन्द्रह कर्म भूमियों, तीस अकर्म भूमियों और छप्पन अन्तर द्वीपों को तथा उनमें रहे पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानता व देखता है। उन्हीं भावों को विपुलमति अढाई अंगुल अधिक क्षेत्र तक कुछ अधिक विपुल, विशुद्ध और निर्मल रूप से जानता-देखता है।

(३) काल से–ऋजुमति कम से कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक और अधिकतम भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक भूत और भविष्यत् काल को जानता व देखता है। उसी काल को विपुलमति उससे कुछ अधिक विपुल, विशुद्ध और निर्मल रूप से जानता-देखता है।

(४) भाव से–ऋजुमति अनन्त भावों को जानता व देखता है किन्तु इन सभी अनन्त भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता-देखता है। उन्हीं भावों को विपुलमति कुछ अधिक विपुल, विशुद्ध और निर्मल रूप से भ्रान्ति रहित जानता-देखता है। (देखें चित्र ११)

37. In terms of potency this *Manah-paryav jnana* is of two types—*riju* (lesser) *mati* and *vipul* (greater) *mati*. These in turn have four categories each—(1) with reference to matter, (2) with reference to area or space, (3) with reference to time, and (4) with reference to mode.

(1) With reference to matter—a *rijumati* sees and knows infinite *skandhas* (blocks) having infinite sections or parts generally or in brief and specially or in detail; a *vipul mati* sees
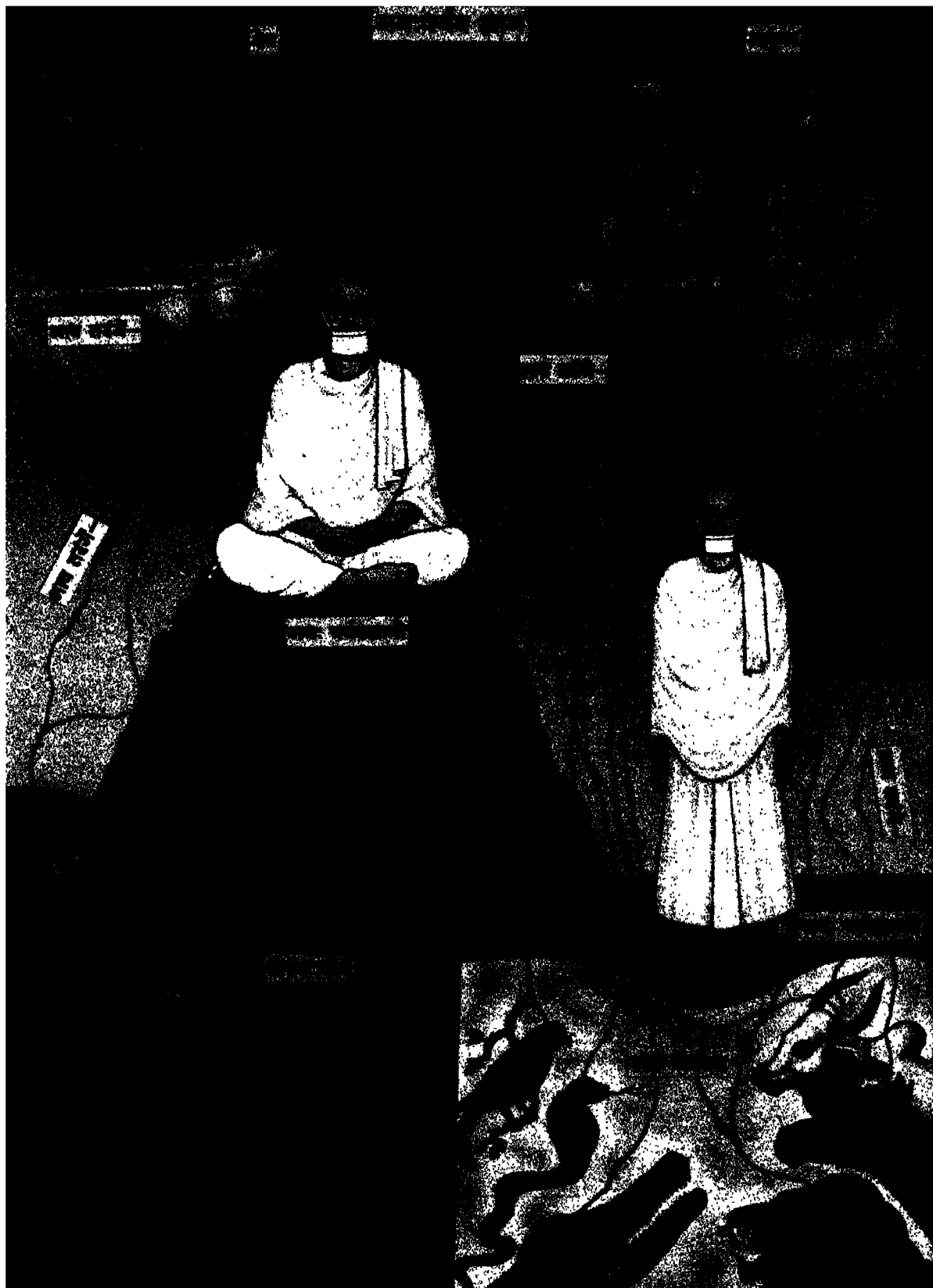
मनःपर्यवज्ञान का स्वरूप

मनःपर्यवज्ञान का पात्र–अप्रमत्त संयत–जो पूर्वों के ज्ञान का धारक आहारकलब्धि, तेजोलेश्या, जंघाचारण, विद्याचारण आदि विशिष्ट ऋद्धियुक्त अप्रमत्त संयत होते हैं, उन्हें विशिष्ट विशुद्ध उच्च भावधारा में स्थित होने पर मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है। वे लोक में स्थित ऊर्ध्वलोकवासी देवताओं, मध्यलोक में स्थित मनुष्यों, अनेक द्वीप-समुद्रों में स्थित संज्ञी पशु-पक्षियों तथा सातों नरक में स्थित नैरयिकों के मन की पर्यायों को जानते हैं।

चित्र में बताये अनुसार शुद्ध भावधारा में स्थित अप्रमत्त संयत मुनि अपने स्थान पर स्थित रहकर ही लोक के संज्ञी जीवों के मन में उठने वाली भाव तरंगों (मनोवर्गणा के पुद्गलों) को ग्रहण करते हैं। (वर्णन, सूत्र २८ से ३७ तक)

THE FORM OF MANAH-PARYAV-JNANA

Apramatt Samyat—The vessel of manah-paryav-jnana—Those who have acquired the knowledge of purvas; who possess special powers like Aharak labdhi, Tejolehsya, Janghacharan, Vidyacharan etc.; and are apramatt samyat acquire manah-paryav-jnana when they reach a highly pure and lofty spiritual state. The know the mental activities of the gods living in the upper world, the human beings living in the middle world, the sentient beings living in numerous continents and seas, and the hell beings living in all the seven hells.

As illustrated the apramatt samyat ascetics in the lofty spiritual state receive the thought waves arising in all the sentient beings in the universe. (Elaboration, 28 to 37)

and knows these blocks in slightly greater detail, with slightly better clarity and with a little more certainty.

(2) With reference to area or space—a *rijumati* sees and knows an area equivalent to a minimum of inexpressible fraction of an *angul* and a maximum of up to the lowest subtle level of *Ratnaprabha* hell towards nadir, the highest level of the *Jyotish chakra*, and all human inhabited areas in other spatial directions including fifteen *karmabhumis*, thirty *akarmabhumis*, and fifty six intermediate islands existing in *adhai-dveep-samudra* (two and a half continents and oceans) . He also knows the thoughts and feelings within the minds of fully developed sentient five-sensed beings living in the said areas. A *vipul mati* sees these thoughts and feelings in slightly greater detail, with slightly better clarity and with a little more certainty covering two and a half *angul* more area.

(3) With reference to time—a *rijumati* sees and knows into the past and the future up to a minimum as well as maximum span of inexpressible fraction of a *palyopam* (a vast conceptual unit of time) ; a *vipul mati* sees and knows the same in slightly greater detail, with slightly better clarity and with a little more certainty.

(4) With reference to mode—a *rijumati* sees and knows infinite modes but only an infinitesimal fraction of each such mode; a *vipul mati* sees and knows the same in slightly greater detail, with slightly better clarity and with a little more certainty. (*See Illustration* 11)

विवेचन—मन:पर्यवज्ञान के दोनों भेद मात्र गुणात्मक भेद हैं। संक्षेप में ऋजुमति के लिए यह मानें कि वह सामान्यतया जानता-देखता है तो विपुलमति उसी विषय को विशेष रूप से अथवा अधिक स्पष्ट व विस्तृत रूप से असंदिग्ध रूप में देखता है।

देखने-जानने की बात पर विद्वान् आचार्यों में मतभेद हैं, क्योंकि मन:पर्यवज्ञान जानने का विषय है देखने का नहीं, पर यहाँ देखने (पासइ) शब्द का उपयोग किया गया है। इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक चर्चा विशेषावश्यक भाष्य में उपलब्ध है। सामान्य रूप से इसका तात्पर्य यह समझा जा सकता है कि मनोवर्गणा के पुद्गलों में परिणत भावों को देखना और जो अभी तक पुद्गल रूप में परिणत नहीं हुए हैं केवल चिन्तन के स्तर पर हैं उन्हें समझना।

द्रव्य–जैन अवधारणा में पदार्थ को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। पदार्थ के संघटकों के रूप में स्कन्ध और स्कन्ध के संघटकों के रूप में परमाणुओं और उनके विभिन्न गुण-पर्यायों को परिभाषित किया है। साथ ही इस आकाश-मण्डल से भी विस्तीर्ण लोक-अलोक को परिभाषित किया है।

क्षेत्र–लोक के मध्य भाग में स्थित आकाश के आठ रुचक प्रदेशों को केन्द्र मानकर छह दिशाएँ और चार विदिशाएँ समस्त आकाश को विभाजित करती हैं। इस मध्य क्षेत्र में स्थित अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र हैं। इस कुण्डलाकार क्षेत्र को समय क्षेत्र भी कहते हैं। इसकी लम्बाई-चौड़ाई ४५ लाख योजन की है। यहाँ तक मनुष्यों का आवास क्षेत्र है।

काल–जैन अवधारणा में काल को भी बहुत सूक्ष्म और व्यापक रूप से परिभाषित किया है। सबसे छोटी इकाई को समय कहा है जो एक क्षण का असंख्यातवाँ भाग है। व्यापक इकाइयाँ पल्योपम, सागरोपम आदि कल्पनातीत काल है। काल के सामान्य तीन विभाजन–भूत, वर्तमान, भविष्य में सभी को इन सूक्ष्म-व्यापक इकाइयों से विभाजित कर परिभाषित किया गया है। मन:पर्यवज्ञानी वर्तमान की मन:पर्यायों को तो जानता ही है, अतीत तथा भविष्यत् काल के पल्योपम के असंख्यातवें कालपर्यन्त मन:पर्यायों को भी भलीभाँति जानता/देखता है।

भाव–आत्मा और शरीर के बीच का सेतु मन है। जैन अवधारणा में मन की रचना मनोवर्गणा के आठ सूक्ष्म पुद्गलों से होती है। मन के संकल्प-विकल्प, क्रिया, परिणाम आदि से बनी, आत्मा तथा पुद्गल के बीच की क्रिया प्रणाली जिनसे संचालित होती है उन्हें भाव कहते हैं। आत्मा की क्रियाएँ वर्णनातीत हैं। वे जब चिन्तन अथवा संकल्प-विकल्प के परिणामस्वरूप मनोवर्गणा के पुद्गलों में परिवर्तन लाती हैं तब वे भाव रूप में उपस्थित होती हैं–यही मन:पर्यवज्ञानी का विषय है। भावों के सतत परिवर्तनशील रूपों को पर्याय कहते हैं।

अवधिज्ञान तथा मन:पर्यवज्ञान में अन्तर–

(१) मन:पर्यवज्ञान अवधिज्ञान की तुलना में अधिक विशुद्ध होता है।

(२) अवधिज्ञान का विषय-क्षेत्र तीनों लोक हैं। मन:पर्यवज्ञान का विषय केवल पर्याप्त संज्ञी जीवों की मानसिक क्रियाएँ (मन के भाव) हैं।

(३) अवधिज्ञानी चारों गतियों में होते हैं। मन:पर्यवज्ञानी केवल लब्धि-सम्पन्न संयत ही होते हैं।

(४) अवधिज्ञान का विषय कुछ पर्याय सहित रूपी द्रव्य है। मन:पर्यवज्ञान का विषय उससे अनन्तवाँ भाग सूक्ष्म है।

(५) अवधिज्ञान मिथ्यात्व के उदय से विभंगज्ञान (विकृत ज्ञान) के रूप में परिणत हो सकता है। मन:पर्यवज्ञान हो जाने के पश्चात् मिथ्यात्व का उदय ही नहीं होता।

(६) अवधिज्ञान अगले भव में भी जा सकता है। मन:पर्यवज्ञान मात्र उसी भव तक रहता है, जैसे–संयम और तप।

Elaboration—These two divisions of *Manah-paryav jnana* are qualitative only. In brief it can be said that while a *rijumati* sees and knows only generally, a *vipul mati* sees and knows the same subject specially. In other words he sees and knows without any doubt and with more clarity and in greater detail.

There is a difference of opinion among scholarly *acharyas* with regard to 'seeing' and 'knowing' because the activity related to *manah-paryav-jnana* is knowing, not seeing but here the *Prakrit* term *pasai* has been used, which means—to see. A detailed discussion on this subject is available in *Visheshavashyak Bhashya*. In simple terms this ambiguity can be explained as—to see the thoughts that have been manifested as particles of *manovargana* (thought category) and to know those which have not yet been so manifested but are still at the thought level only.

Matter—Jain metaphysics has discussed matter minutely. It defines blocks or atoms as constituents of matter and ultimate particles as constituents of atoms; going further it defines different properties and variations of ultimate particles. Not only this, it has also dealt with in great details the much larger expanse of inhabited space and the empty space beyond the visible planetary system.

Space—Taking the eight *ruchak pradesh*, located at the middle of the inhabited space, as the central point six cardinal points and four intermediate points of the compass divide the outer space. In this middle section are situated two and a half continents and two oceans. This circular area is also known as the time zone. Its length and breadth is 4.5 million *yojans*. This is the living area of human beings.

Time—Jain metaphysics has also discussed time minutely and in great detail. The ultimate fractional unit of time which is described as the inexpressible fraction of one second is known as *samaya*. Beyond the countable are the much larger conceptual units like *palyopam, sagaropam*, etc. The three common categories of time—past, present and future—have also been elaborated by dividing them into these minute and vast units. A *manah-paryav-jnani* not only clearly sees and knows the thoughts (*manah-paryaya* or modes of mind) of the present but also belonging to the past and the future up to an inexpressible fraction of one *palyopam*.

Mode—The bridge between soul and body is mind. According to the Jain theory, mind is constituted of eight minute particles of *manovargana* (the category of subtle particles that is responsible for the formation and activity of the subtle-mind; mentatic particles). The driving force of the process of interaction between soul and matter, made up of mental activities like attitudes, thoughts, alternatives, decisions, is known as *bhava*. The activities of soul are beyond comprehension. However, when they bring about changes in the mentatic particles through thoughts, decisions and alternatives they are manifested in the form of *bhava*. This is the subject of *manah-paryav-jnana*. The ever changing forms of *bhava* are called *paryaya* or modes.

The difference between *avadhi-jnana* and *manah-paryav-jnana*—

1. As compared to *avadhi-jnana*, *manah-paryav-jnana* is more refined.

2. The scope of *avadhi-jnana* is the spread of the three worlds. The scope of *manah-paryav-jnana* is limited to the mental activities of fully developed sentient beings.

3. *Avadhi-jnana* can be acquired by beings of all the four dimensions. *Manah-paryav-jnana* can be acquired only by the ones having special powers.

4. The subject of *avadhi-jnana* is tangible matter with a few alternative modes. As compared to that, the subject of *manah-paryav-jnana* is infinitely minute.

5. *Avadhi-jnana* can turn into perversion due to the rise of attitude of falsity. The chance of rise of attitude of falsity is completely eliminated once *manah-paryav-jnana* is acquired.

6. *Avadhi-jnana* can accompany the soul to its reincarnation. *Manah-paryav-jnana* is confined to the particular birth only, just like discipline and austerities.

मनःपर्यवज्ञान का उपसंहार

CONCLUSION

३८ : *मणपज्जवनाणं पुण, जणमण-परिचिंतियत्थपागडणं।*
माणुसखित्तनिबद्धं, गुणपच्चइअं चरित्तवओ॥

अर्थ—अर्थात् मनःपर्यवज्ञान मनुष्य क्षेत्र में रहे प्राणियों के मन में परिचिन्तित (क्षण-क्षण उठने वाले भाव, विचार, संकल्प, विकल्पादि) अर्थ को प्रकट करने वाला है। इस ज्ञान की उत्पत्ति के कारण हैं गुण (क्षमा, संयम, तप आदि) और यह केवल चारित्रयुक्त आत्मा को ही होता है। यह मनःपर्यवज्ञान का वर्णन है।

38. *Manah-paryav-jnana* reveals the meaning of the thought activity (thoughts, feelings, alternatives, decisions etc. rising every moment) going on in the minds of beings living in the lands inhabited by humans. The causes of rise of this knowledge are virtues (clemency, discipline, austerities etc.) and it is acquired only by a person or a soul that is perfect in the prescribed conduct. This concludes the description of *manah-paryav-jnana*.

विवेचन—जन शब्द से अभिप्राय केवल मनुष्य नहीं है। जन का अर्थ है जो मन सहित जन्में हों। चारित्रयुक्त से इंगित चारित्र में स्थित अप्रमत्त संयत स्तर पर पहुँचे व्यक्ति से है।

Elaboration—Here the term *'jan'* does not specify humans alone it has been used for all sentient beings. Perfect in the prescribed conduct means those who have reached the level of *apramatt-samyat* (the alert perfect ones, as described earlier).

●●

केवलज्ञान का स्वरूप
KEWAL-JNANA

३९ : *से किं तं केवलनाणं?*

केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—भवत्थकेवलनाणं च सिद्धकेवलनाणं च।

से किं तं भवत्थकेवलनाणं?

भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—सजोगि-भवत्थकेवलनाणं च अजोगि-भवत्थकेवलनाणं च।

से किं तं सजोगि-भवत्थकेवलनाणं?

सजोगि-भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा—पढमसमय-सजोगि-भवत्थकेवलनाणं च, अपढमसमय-सजोगि-भवत्थकेवलनाणं च।

अहवा चरमसमय-सजोगि-भवत्थकेवलनाणं च, अचरमसमय-सजोगि-भवत्थकेवलनाणं च।

से त्तं सजोगि-भवत्थकेवलनाणं।

से किं तं अजोगि-भवत्थकेवलनाणं?

अजोगि-भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं तंजहा—पढमसमय-अजोगि-भवत्थकेवलनाणं च, अपढमसमय-अजोगि-भवत्थकेवलनाणं च।

अहवा चरमसमय-अजोगि-भवत्थकेवलनाणं, अचरमसमय-अजोगि-भवत्थकेवलनाणं च।

से त्तं भवत्थकेवलनाणं।

अर्थ—प्रश्न—केवलज्ञान का स्वरूप क्या है?

उत्तर—केवलज्ञान दो प्रकार का बताया है—भवस्थ केवलज्ञान तथा सिद्ध केवलज्ञान।

प्रश्न—यह भवस्थ केवलज्ञान क्या होता है?

उत्तर—भवस्थ केवलज्ञान भी दो प्रकार का होता है—सयोगी भवस्थ केवलज्ञान तथा अयोगी भवस्थ केवलज्ञान।

प्रश्न—सयोगी भवस्थ केवलज्ञान क्या है?

उत्तर—सयोगी भवस्थ केवलज्ञान भी दो प्रकार का है—प्रथम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान और अप्रथम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान। इन दोनों के अन्य नाम हैं—चरम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान और अचरम समय सयोगी भवस्थ केवलज्ञान।

१२. चित्र परिचय

Illustration No. 12
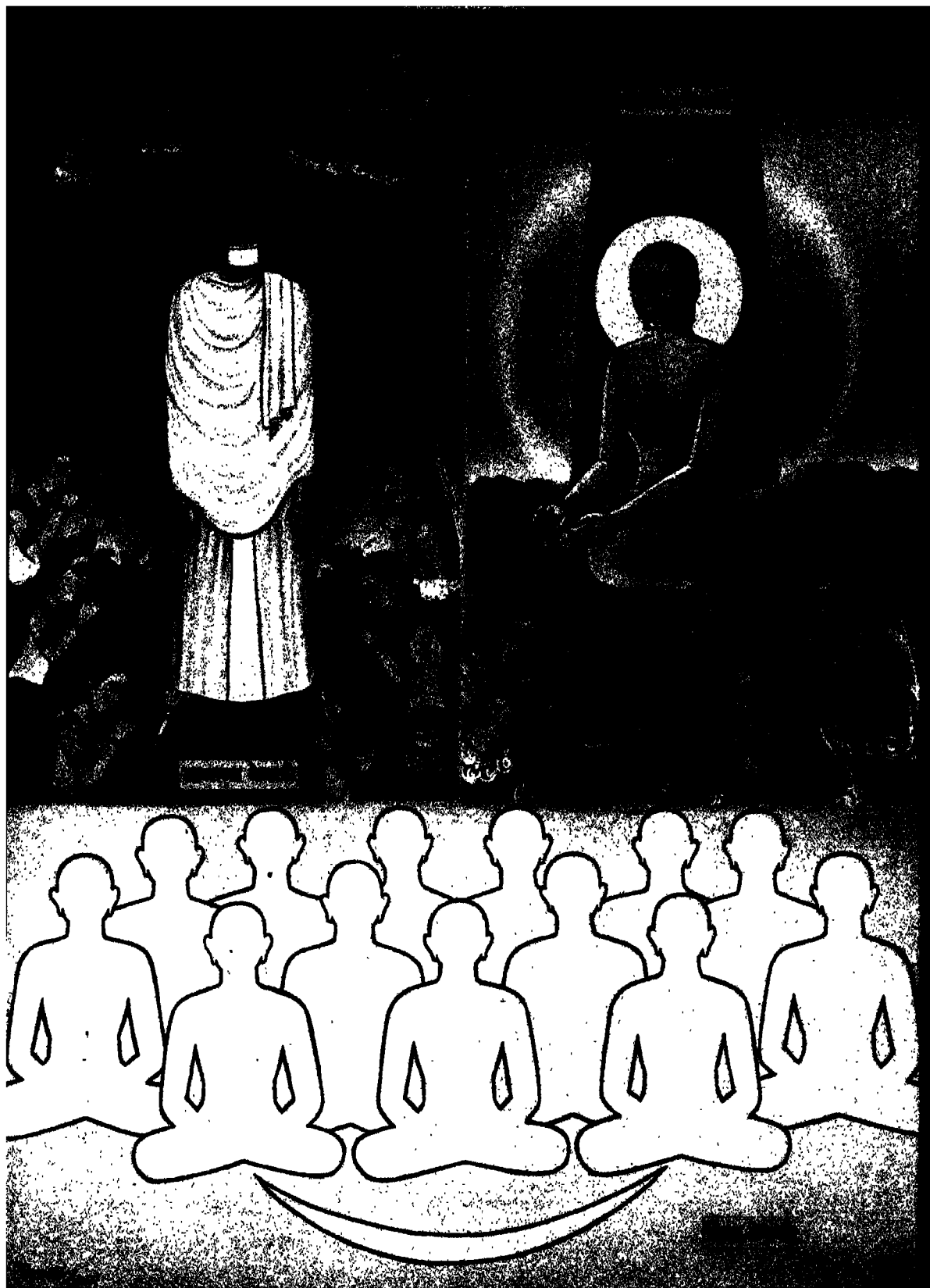
केवलज्ञान के पात्र

१. भवस्थ केवली–केवलज्ञान; केवल मनुष्य भव में चार घनघाती कर्मों का क्षय करने पर तेरहवाँ गुणस्थानवर्ती आत्मा को ही होता है। भवस्थ केवली का अर्थ है–मानव भव में स्थित केवली। इनके दो भेद हैं– १. सामान्य केवली, तथा २ तीर्थंकर केवली।

२. सिद्ध केवली–चौदहवें गुणस्थान की स्थिति समाप्त होने पर मानव शरीर त्यागकर मोक्ष में विराजित केवली भगवान सिद्ध केवली कहलाते हैं। इनके अनेक भेद हैं। (विशेष वर्णन सूत्र ३९-४० में देखें)

THE VESSELS OF KEWAL-JNANA

1. *Bhavasth Kewali*—Kewal-jnana is acquired only by human beings through extinction of four vitiating karmas and that too only to the soul that has reached the thirteenth Gunasthan. Bhavasth Kewali means the Kewali who exists as a human being. These are of two types—1. Ordinary Kewali, and 2. *Tirthankar* Kewali.

2. *Siddha Kewali*—At the culmination of the fourteenth Gunasthan, a Kewali leaves the human body and transcends to the state of Moksha. They are called Siddha Kewali. They are of two types. (Elaboration, 39-40)

प्रश्न–अयोगी भवस्थ केवलज्ञान क्या है?

उत्तर–अयोगी भवस्थ केवलज्ञान भी दो प्रकार का है–प्रथम समय अयोगी भवस्थ केवलज्ञान तथा अप्रथम समय अयोगी भवस्थ केवलज्ञान अथवा चरम समय अयोगी भवस्थ केवलज्ञान तथा अचरम समय अयोगी भवस्थ केवलज्ञान।

यह भवस्थ केवलज्ञान का वर्णन है। (देखें चित्र १२)

39. Question—What is this *Kewal-jnana* ?

Answer—*Kewal-jnana* is said to be of two types—*bhavasth Kewal-jnana* and *siddha Kewal-jnana.*

Question—What is this *bhavasth Kewal-jnana* ?

Answer—*Bhavasth Kewal-jnana* is also of two types—*sayogi bhavasth Kewal-jnana* and *ayogi bhavasth Kewal-jnana.*

Question—What is this *sayogi bhavasth Kewal-jnana* ?

Answer—*Sayogi bhavasth Kewal-jnana* is also of two types—*pratham samaya sayogi bhavasth Kewal-jnana* and *apratham samaya sayogi bhavasth Kewal-jnana.* These are also known as *charam samaya sayogi bhavasth Kewal-jnana* and *acharam samaya sayogi bhavasth Kewal-jnana.*

Question—What is this *ayogi bhavasth Kewal-jnana* ?

Answer—*Ayogi bhavasth Kewal-jnana* is also of two types—*pratham samaya ayogi bhavasth Kewal-jnana* and *apratham samaya ayogi bhavasth Kewal-jnana.* These are also known as *charam samaya ayogi bhavasth Kewal-jnana* and *acharam samaya ayogi bhavasth Kewal-jnana.*

This concludes the description of *bhavasth Kewal-jnana.*

(*See Illustration* 12)

विवेचन–चार घातिकर्म आत्मा पर आवरणस्वरूप होते हैं–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। जब इनके समूल नष्ट होने पर आत्मा पूर्ण विशुद्ध, निर्मल, प्रकाशवान और अनन्त ज्ञान-दर्शनमय हो जाती है वह स्थिति केवलज्ञान की है। केवलज्ञान एक बार उदय होने पर अस्त नहीं होता। सृष्टि में ऐसा कोई अन्धकार नहीं जो केवलज्ञान के प्रकाश को धूमिल कर सके। यह ज्ञान का सर्वोच्च स्तर है और केवल मनुष्य भव में उत्पन्न होता है। यह सादि-अनन्त होता है, सदा एक समान रहता है।

अरिहन्त भगवान और सिद्ध भगवान में केवलज्ञान समान होने पर भी उसके दो भेद बताये हैं। आयुपूर्वक मनुष्य देह में अवस्थित केवलज्ञान को भवस्थ केवलज्ञान कहा जाता है। अर्थात् जिसकी आयु पूर्ण होने से पूर्व केवलज्ञान उत्पन्न हो ऐसी शरीरस्थ आत्मा में उत्पन्न होने वाला ज्ञान भवस्थ केवलज्ञान है।

इसके भी दो भेद हैं—सयोगी और अयोगी। आत्मिक शक्ति अथवा चेतना आत्म-प्रदेशों को स्पन्दित करती है। यह स्पन्दन मन में और उसके माध्यम से शरीर में वचन तथा अन्य क्रियाओं के रूप में अभिव्यक्त होता है, सक्रिय होता है। आत्मा और मन, वचन, काया के इस जुड़ाव को योग कहते हैं। आध्यात्मिक साधना के प्रथम से तेरहवें गुणस्थान तक यह योग विद्यमान रहता है। चौदहवें अथवा अन्तिम गुणस्थान पर इसका पूर्ण अभाव हो जाता है। बारहवें गुणस्थान पर वीतराग दशा तो उत्पन्न हो जाती है किन्तु तब तक केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता। तेरहवें गुणस्थान पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है और यहाँ योग विद्यमान रहता है इसलिए इसे सयोगी केवलज्ञान कहते हैं। चौदहवें गुणस्थान पर योग का अभाव है इसलिए इस स्तर के केवलज्ञान को अयोगी केवलज्ञान कहा जाता है।

इन दोनों के भी दो-दो भेद हैं। तेरहवें गुणस्थान में प्रवेश के पहले समय में ही केवलज्ञान उत्पन्न होता है इसे प्रथम समय सयोगी केवलज्ञान कहते हैं और इसके पश्चात अप्रथम समय केवलज्ञान। अथवा जो तेरहवें गुणस्थान के चरम समय में पहुँच गया है उसे चरम समय सयोगी केवलज्ञान कहते हैं और इससे पूर्व अचरम समय सयोगी केवलज्ञान।

इसी प्रकार चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश के पहले समय में उत्पन्न हुए केवलज्ञान को प्रथम समय अयोगी केवलज्ञान कहते हैं और इसके पश्चात् अप्रथम समय अयोगी केवलज्ञान। अथवा जो चौदहवें गुणस्थान के चरम समय में पहुँच गया है उसे चरम समय अयोगी केवलज्ञान कहते हैं और इससे पूर्व अचरम समय अयोगी केवलज्ञान। चौदहवें गुणस्थान की अधिकतम स्थिति अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण में जितना समय लगता है उतनी मात्र ही है। इस स्थिति को शैलेशी अवस्था भी कहते हैं। इसके पूर्ण होते ही सिद्ध गति प्राप्त हो जाती है।

Elaboration—The four *Ghati-Karmas* (Karmas that have a vitiating effect upon the qualities of soul) act as veils on the soul. These are *jnanavaraniya* (that veils true knowledge), *darshanavaraniya* (that veils true perception), *mohaniya* (that tempts soul towards fondness for things), and *antaraya* (that acts as an impediment to a man's pursuits including realisation of his human, moral and spiritual goals). The state where all these are completely destroyed and consequently the soul becomes absolutely refined, pure, radiant and acquires infinite knowledge and perception, is known as *Kewal-jnana* (omniscience). Once attained,

Kewal-jnana is never destroyed. There is no darkness in the universe that can dim the light of *Kewal-jnana*. This is the highest level of knowledge and can be acquired only as human being. It is with a beginning but without an end, and is ever uniform.

Although the *Kewal-jnana* of *Arihant Bhagavan* and *Siddha Bhagavan* is the same, it is still said to be of two types. The *Kewal-jnana* resident in a human body with life-span is said to be *bhavasth Kewal-jnana*. In other words, *Kewal-jnana* acquired by a soul that has not yet completed its life-span in the human body is *bhavasth Kewal-jnana*. Still simpler definition is—the *Kewal-jnana* of a living human being is called *bhavasth Kewal-jnana*.

This is further divided into two classes—*sayogi* and *ayogi*. The power of the soul or *chetana* vibrates soul-bits (The soul is formless and indivisible. However, in order to understand its activity in our terminology it is conceptually divided into infinitesimal sections called *atma-pradesh* or soul-sections. For ease we shall call them soul-bits). This vibration manifests itself in the mind and, in turn, in the body as activities like thinking, speaking, moving etc. In other words it activates the mind and the body. This combination of soul with mind, body and speech is called YOGA. This *yoga* is active from the first to the thirteenth level of spiritual practices or purity of soul known as *Gunasthana*. At the highest or the fourteenth level it is finally absent. At the twelfth level although complete detachment is attained, *Kewal-jnana* is not acquired. At the thirteenth level *Kewal-jnana* is acquired and *yoga* is still existent; that is why it is known as *sayogi Kewal-jnana*. At the fourteenth level *yoga* becomes absent and so it is known as *ayogi Kewal-jnana*.

These two also have two divisions. At the first (*pratham*) *samaya* of entry into the thirteenth level *Kewal-jnana* is acquired; this is called *pratham samaya sayogi Kewal-jnana*. After this it is called *apratham samaya sayogi Kewal-jnana*. Similarly that which has reached the final (*charam*) *samaya* of the thirteenth level is called *charam samaya sayogi Kewal-jnana*. Prior to that it is called *acharam samaya sayogi Kewal-jnana*.

In the same way, *Kewal-jnana* acquired at the first (*pratham*) *samaya* of entry into the fourteenth level is called *pratham samaya*

ayogi Kewal-jnana. After this it is called *apratham samaya ayogi Kewal-jnana*. That which has reached the final (*charam*) *samaya* of the fourteenth level is called *charam samaya ayogi Kewal-jnana*. Prior to that it is called *acharam samaya ayogi Kewal-jnana*. The maximum staying time at the fourteenth level is equivalent to the time lapsed in pronouncing five short vowels of Prakrit Sanskrit language (*a, i, u, ri, lri*). This state is also known as *shaileshi* (mountain like) state. As soon as this ends the *Siddha* state and dimension is attained.

सिद्ध केवलज्ञान निरूपण

SIDDHA KEWAL-JNANA

४० : *से किं तं सिद्धकेवलनाणं?*

सिद्धकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं तं जहा–अणंतर-सिद्धकेवलनाणं च, परंपर-सिद्धकेवलनाणं च।

अर्थ–प्रश्न–यह सिद्ध केवलज्ञान कैसा कहा गया है ?

उत्तर–सिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का बताया है–अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान तथा परम्पर सिद्ध केवलज्ञान।

40. Question—What is this *Siddha Kewal-jnana* ?

Answer—*Siddha Kewal-jnana* is said to be of two types—*Anantar-Siddha Kewal-jnana* and *Parampar-Siddha Kewal-jnana*.

विवेचन–शैलेशी अवस्था के अन्तिम बिन्दु पर तैजस् और कार्मण शरीर से आत्मा सर्वथा मुक्त हो जाती है। यह स्थिति मोक्ष अथवा सिद्ध गति कहलाती है। ऐसे आठों कर्मों से सर्वथा विमुक्त हुए सिद्धात्मा कर्मों के नितान्त अभाव के कारण पुनर्जन्म के चक्र अथवा संसार से मुक्त होते हैं। ये राशि रूप में सब एक हैं अर्थात् एक समान हैं और संख्या में अनन्त। सिद्धों का केवलज्ञान भी समान होता है, स्तर भी समान और अपरिवर्तनीय होता है किन्तु भली प्रकार समझने के लिए अथवा सामान्य जन के यथासम्भव बुद्धि ग्राह्य बनाने के लिए समय, स्थान, भाव आदि के विभिन्न सन्दर्भों में इसमें कतिपय भेद किए गये हैं।

वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि ने भव्य जीवों के सिद्ध होने की पात्रता, समय, स्थान आदि के आधार पर सिद्ध स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए आठ द्वारों के सहारे सिद्ध होने के समय के

संदर्भ में दिए दो भेदों को समझाया है। ये दो भेद हैं–अनन्तर सिद्ध अर्थात् जिन्हें सिद्ध बने एक समय ही हुआ है; तथा परम्पर सिद्ध अर्थात् जिन्हें सिद्ध बने एक से अधिक समय हो चुका है।

आठ द्वार निम्न हैं–(१) आस्तिक द्वार (सत्पदप्ररूपणा), (२) द्रव्य द्वार (द्रव्यप्रमाण), (३) क्षेत्र द्वार, (४) स्पर्श द्वार, (५) काल द्वार, (६) अन्तरद्वार, (७) भाव द्वार, तथा (८) अल्पबहुत्व द्वार।

इन आठ द्वारों को भी पूर्णतया समझने के उद्देश्य से प्रत्येक द्वार के साथ १५ उपद्वारों का सहारा लिया गया है अथवा १५ उपद्वार घटाए गये हैं यथा–(१) क्षेत्र, (२) काल, (३) गति, (४) वेद, (५) तीर्थ, (६) लिङ्ग, (७) चारित्र, (८) बुद्ध, (९) ज्ञान, (१०) अवगाहना, (११) उत्कृष्ट, (१२) अन्तर, (१३) अनुसमय, (१४) संख्या, तथा (१५) अल्पबहुत्व।

Elaboration—At the end of the *shaileshi* state the soul is finally free from the *taijas* (the radiant component of the constitution of a being) and *karman* (the karmic component of the constitution of a being) bodies. This state is known as *moksha* or liberation or *Siddha* dimension. After shedding all the eight categories of karmas, such liberated souls, by virtue of their being devoid of karmas, are completely free of this world or the cycles of rebirth. By class they are one or alike, and in number they are infinite. The quality of *Kewal-jnana* and the status of all *Siddhas* is same and unchanging. However, in order to make the concept comprehensible to common man it has been divided in some categories with reference to parameters like time, place, mode etc.

In order to vivify the form of *Siddha* with reference to worthiness, time, place and other such parameters commentator (*vritti*) Acharya Malayagiri has explained the two categories of *Siddha*, based on the time of transcending, with the help of eight *dvars* (ports). These two categories are—*Anantar-Siddha* or those who have transcended just one *samaya* back; and *Parampar-Siddha* or those who have transcended more than one *samaya* back.

The eight *dvars* (ports; here it means the parameters defining the passage into the state) are—1. *Astik dvar* or *satpadprarupana* (the parameter of right faith), 2. *Dravya dvar* or *dravyapraman* (the parameter of matter), 3. *Kshetra dvar* (the parameter of area), 4. *Sparsha dvar* (the parameter of contact), 5. *Kaal dvar* (the parameter of time), 6. *Antar dvar* (the parameter of gap or void),

7. *Bhava dvar* (the parameter of mode), and 8. *Alpabahutva dvar* (the parameter of less and more).

In order to fully understand these eight primary parameters each one of them is further divided into 15 secondary parameters— 1. *Kshetra,* 2. *Kaal,* 3. *Gati,* 4. *Ved,* 5. *Teerth,* 6. *Ling,* 7. *Charitra,* 8. *Buddha,* 9. *Jnana,* 10. *Avagahana,* 11. *Utkrisht,* 12. *Antar,* 13. *Anusamaya,* 14. *Samkhya,* and 15. *Alpabahutva.*

(१) आस्तिक द्वार अथवा सत्पदप्ररूपणा

1. ASTIK DVAR OR SATPADPRARUPANA (THE PARAMETER OF RIGHT FAITH)

सिद्ध के अस्तित्व में आस्था के बिना अध्यात्म मार्ग की यात्रा का आरम्भ ही नहीं होता है। अतः सिद्ध पद अथवा सत्पद की स्थापना प्रथम द्वार है। इसे भलीभाँति समझने के लिए १५ उपद्वार इस प्रकार हैं–

(१) **क्षेत्र द्वार**–अढाई द्वीप में रही १५ कर्मभूमियों से जीव सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं। संहरण (एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर लाना) की अपेक्षा से दो समुद्र, अकर्मभूमि, अन्तरद्वीप, ऊर्ध्वदिशा में पाण्डुकवन, अधोदिशा में अधोगामिनी विजय से भी जीव सिद्ध होते हैं।

(२) **काल द्वार**–अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अन्तिम चरण से आरम्भ कर सम्पूर्ण चौथे आरे में तथा पाँचवें आरे के ६४ वर्ष बीतने तक सिद्ध हो सकते हैं। उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे में और चौथे आरे के कुछ काल में सिद्ध हो सकते हैं।

(३) **गति द्वार**–केवल मनुष्य गति से सिद्ध हो सकते हैं अन्य गति से नहीं। इसमें भी पहली चार नरक भूमियों, पृथ्वी-जल और बादर वनस्पति-काय, संज्ञी तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय, मनुष्य, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवलोकों से निकले जीव मनुष्य-जन्म लेकर सिद्धगति प्राप्त कर सकते हैं।

(४) **वेद द्वार**–वर्तमान काल की अपेक्षा वेदरहित जीव ही सिद्ध होते हैं। पहले चाहे उन्होंने तीनों वेदों का अनुभव किया हो (स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद)।

(५) **तीर्थ द्वार**–सामान्यतया अधिकांशतः सिद्ध तीर्थंकर के शासनकाल में ही होते हैं। अतीर्थ सिद्ध यदा-कदा ही होते हैं।

(६) **लिंग द्वार**–द्रव्यतः स्वलिंगी (श्रमण वेशधारी), अन्यलिंगी (अन्य वेशधारी) तथा गृहलिंगी (गृहस्थ) सिद्ध होते हैं किन्तु भावतः स्वलिंगी सिद्ध ही होते हैं, अन्य नहीं।

(७) चारित्र द्वार–पाँच चारित्र होते हैं जिनकी आराधना से सिद्धगति प्राप्त होती है। इनमें से सामायिक प्राथमिक तथा यथाख्यात चारित्र अवश्यंभावी आवश्यकता है, इसके अभाव में कोई आत्मा सिद्ध नहीं हो सकती। इसके साथ अन्य तीनों में से किन्हीं के संयोग से सिद्धगति प्राप्त होती है–कोई सामायिक और सूक्ष्मसंपराय के संयोग से, कोई सामायिक, छेदोपस्थापनीय तथा सूक्ष्मसम्पराय के संयोग से तथा कोई तीनों के संयोग से सिद्ध बनते हैं।

(८) बुद्ध द्वार–प्रत्येकबुद्ध, स्वयंबुद्ध तथा बुद्धबोधित इन तीनों अवस्थाओं से सिद्ध होते हैं। (विस्तार आगे यथास्थान देखें)

(९) ज्ञान द्वार–तात्कालिक रूप से मात्र केवलज्ञान के साथ ही सिद्ध होते हैं। किन्तु पूर्वावस्था की अपेक्षा से मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यवज्ञान के विभिन्न संयोगों से केवलज्ञान तक पहुँचकर सिद्ध होते हैं।

(१0) अवगाहना द्वार–कोई वस्तु आकाश में जितना क्षेत्र घेरती है उसे अवगाहना कहते हैं। न्यूनतम दो हाथ, मध्यम सात हाथ और अधिकतम ५00 धनुष की अवगाहना वाले जीव सिद्ध होते हैं।

(११) उत्कृष्ट द्वार–काल के संदर्भ में कोई सम्यक्त्व प्राप्त होने के पश्चात् देशोन अर्द्ध-पुद्गल परावर्तन काल (काल का एक दीर्घ भाग) बीतने पर सिद्ध होता है, कोई अनन्त काल के बाद, कोई असंख्यात काल के बाद और कोई संख्यात काल के बाद सिद्ध होता है।

(१२) अन्तर द्वार–दो सिद्ध होने के बीच का अन्तरकाल कम से कम एक समय और अधिक से अधिक छह मास है। छह मास बीतने पर कोई न कोई जीव सिद्ध होता ही है।

(१३) अनुसमय द्वार–कम से कम दो समय तक और अधिक से अधिक आठ समय तक निरन्तर सिद्ध होते हैं। आठ समय के पश्चात् अन्तर पड़ जाता है।

(१४) संख्या द्वार–एक समय में कम से कम १ और अधिक से अधिक १0८ सिद्ध हो सकते हैं। इससे अधिक नहीं।

(१५) अल्पबहुत्व द्वार–एक समय में एक साथ दो, तीन आदि संख्या में सिद्ध होने वाले बहुत कम जीव हैं। एक-एक कर होने वाले उनसे संख्यात गुणा अधिक हैं।

In absence of the belief in the existence of *Siddha* the journey on the spiritual path does not even begin. Therefore, the recognition of the status of *Siddha* is the first primary parameter. The fifteen secondary parameters to help understand this are as follows—

1. *Kshetra dvar* (the parameter of area)—Beings living in the 15 *karmabhumi* (lands of activity) of *adhai-dveep* (two and a half continents) attain the *Siddha* status. In context of transmigration,

beings transmigrated from two oceans, lands of inactivity, *antardveep* (the middle continents), Panduk forest in the higher direction and *Adhogamini Vijaya* in the lower direction also become *Siddha*.

2. *Kaal dvar* (the parameter of time)—The status of *Siddha* can be attained during the period starting from last part of the third epoch of a regressive cycle of time, covering the fourth epoch and going up to 64 years in the fifth epoch. During a progressive cycle of time this status can be attained during the third epoch and a small part of the fourth epoch.

3. *Gati dvar* (the parameter of incarnation-dimension or the state of existence)—The status of *Siddha* can be attained only from the human dimension and no other. That too only those who are born after transmigrating from the first four Hells; the dimensions of earth-bodied, water-bodied and gross plant-bodied beings, animals having five sense organs and human beings; and *Bhavanpati, Van-vyantar, Jyotishk* and *Vaimanik* classes of gods.

4. *Ved dvar* (the parameter of gender)—In context of the present, only those beings who have transcended gender can attain the status of *Siddha* irrespective of originally belonging to masculine, feminine or neutral gender.

5. *Teerth dvar* (the parameter of influence of *Tirthankar*)—By and large the status of *Siddha* is attained only during the period of influence of a *Tirthankar*. It is very rare that someone attains this status otherwise.

6. *Ling dvar* (the parameter of religious status)—Physically speaking the status of *Siddha* can be attained by persons of all the three appearances—*Svalingi* (our own or dressed as *shraman*), *Anyalingi* (other or in the dress of any other religious school), and *Grihalingi* (laity or dressed as a householder). However, spiritually speaking only those who are *shramans* can become *Siddhas* not others.

7. *Charitra dvar* (the parameter of level of purity)—There are five levels of purity leading to the *Siddha* status. Of these the primarily essential one is *samayik charitra* and compulsorily essential one is *yathakhyat charitra* (the level of absolute purity) in absence of which

it is not possible to become a *Siddha*. The status of *Siddha* is attained by a combination of these and any one or more of the remaining three. Some attain it through the combination of *Samayik and Sukshma-samparaya*, others through *Samayik, Chhedopasthaniya, and Sukshma-samparaya*; and so on.

8. *Buddha dvar* (the parameter of enlightenment)—The status of *Siddha* is attained from all the three types of enlightened states—*Pratyek-buddha, Svayam-budddha* and *Buddha-bodhit*. (details ahead)

9. *Jnana dvar* (the parameter of knowledge)—With reference to the specific moment the status of *Siddha* is attained only through *Kewal-jnana*. However, with reference to earlier period it is attained by acquiring *Kewal-jnana* through various combinations of *mati, shrut, avadhi* and *manah-paryav-jnana*.

10. *Avagahana dvar* (the parameter of physical dimension)—The area occupied by a thing in space is called *avagahana*. The status of *Siddha* is attained by beings measuring a minimum of 2 arm-lengths, an average of seven arm-lengths and a maximum of 500 *dhanush*.

11. *Utkrisht dvar* (the parameter of upper limit)—With reference to time the status of *Siddha* is attained after a lapse of *Ardh-pudgal paravartankaal* (a very large measure of time), infinite time, uncountable time, or countable time from the moment of acquiring *samyaktva* (a specific state of righteousness where right perception and right knowledge start translating into right conduct).

12. *Antar dvar* (the parameter of gap)—The minimum gap of time between two beings attaining the *Siddha* status is one *samaya*. The maximum gap is six months. Once six months have passed without any being becoming a *Siddha* some being has to attain that status.

13. *Anusamaya dvar* (the parameter of continuity)—For a minimum of two *samayas* and a maximum of eight *samayas* beings become *Siddha* one after another in continuity. After eight *samayas* there is a gap.

14. *Samkhya dvar* (the parameter of number)—In one *samaya* a minimum of one and maximum of 108 beings can become *Siddha*; never more than that.

15. *Alpabahutva dvar* (the parameter of high and low)—The number of beings becoming *Siddha* two or three or four or more at a time is very low. The number of those becoming *Siddha* only one at a time is many times more.

(२) द्रव्य द्वार
2. DRAVYA DVAR OR DRAVYAPRAMAN (THE PARAMETER OF MATTER)

(१) क्षेत्र द्वार–ऊर्ध्वदिशा में संहरण की अपेक्षा से एक समय में चार सिद्ध होते हैं। निषधपर्वत, नन्दनवन, और मेरु आदि के शिखर से चार, नदी नालों से तीन, समुद्र से दो, पण्डकवन से दो, तीस अकर्मभूमि क्षेत्रों में प्रत्येक में दस-दस। प्रत्येक विजय में कम से कम २० और अधिक से अधिक १०८। पन्द्रह कर्मभूमि क्षेत्रों से एक समय में अधिकतम १०८ आत्माएँ सिद्ध हो सकती हैं।

(२) काल द्वार–अवसर्पिणी काल के तीसरे और चौथे आरे में एक समय में अधिकतम १०८ तथा पाँचवें आरे में अधिकतम २० सिद्ध हो सकते हैं। उत्सर्पिणी काल के तीसरे और चौथे आरे के लिए भी यही नियम है। शेष सात आरों में संहरण की अपेक्षा एक समय में दस-दस सिद्ध हो सकते हैं।

(३) गति द्वार–एक समय में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा, इन नरक भूमियों से निकले हुए दस; पंकप्रभा से निकले हुए चार; सामान्य रूप से तिर्यंच से निकले हुए दस; विशेष रूप से पृथ्वीकाय और अप्काय से निकले हुए चार-चार और वनस्पतिकाय से निकले हुए छह सिद्ध हो सकते हैं।

विकलेन्द्रिय तथा असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय से निकले हुए जीव सिद्ध नहीं हो सकते। मनुष्यगति से आये बीस, मनुष्य पुरुषों से आए दस तथा मनुष्य स्त्री से आए दस जीव सिद्ध हो सकते हैं। देवगति से आये हुए एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं। इसमें भी भवनपति एवं व्यन्तर देवों से दस-दस तथा उनकी देवियों से पाँच-पाँच, ज्योतिष्क देवों से दस, देवियों से बीस और वैमानिक देवों से आए १०८ तथा उनकी देवियों से आये बीस सिद्ध हो सकते हैं।

(४) वेद द्वार–एक समय में स्त्रीवेदी २०, पुरुषवेदी १०८ और नपुंसकवेदी १० सिद्ध हो सकते हैं। मनुष्यगति से ही आए जीवों के वेद के अनुसार ९ विभाजन हैं इनमें से पुरुष मरकर पुरुष भव प्राप्त करे ऐसे जीव एक समय में १०८ सिद्ध हो सकते हैं। शेष आठ प्रकार के दस-दस ही हो सकते हैं।

(५) तीर्थंकर द्वार–एक समय में पुरुष तीर्थंकर चार और स्त्री तीर्थंकर दो सिद्ध हो सकते हैं।

(६) लिंग द्वार–एक समय में गृहलिंगी चार, अन्यलिंगी दस और स्वलिंगी एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं।

(७) चारित्र द्वार–सामायिक चारित्र के साथ सूक्ष्मसम्पराय तथा यथाख्यातचारित्र पालकर तथा छेदोपस्थापनीय चारित्र सहित चार चारित्रों को पालकर एक समय में १०८-१०८ सिद्ध हो सकते हैं। पाँचों चारित्रों की आराधना करने वाले एक समय में केवल १० सिद्ध हो सकते हैं।

(८) बुद्ध द्वार–एक समय में प्रत्येकबुद्ध १०, स्वयंबुद्ध ४ और बुद्धबोधित १०८ सिद्ध हो सकते हैं।

(९) ज्ञान द्वार–पूर्वभव की अपेक्षा से मति एवं श्रुतज्ञान के धारक एक समय में अधिक से अधिक चार, मति, श्रुत व मनःपर्यव वाले दस, चार ज्ञान वाले १०८ जीव केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हो सकते हैं।

(१०) अवगाहना द्वार–एक समय में न्यूनतम अवगाहना वाले चार, मध्यम अवगाहना वाले एक सौ आठ और अधिकतम अवगाहना वाले दो सिद्ध अधिक से अधिक हो सकते हैं।

(११) उत्कृष्ट द्वार–अनन्तकाल के प्रतिपाती (सम्यक्त्व प्राप्त करने के पश्चात् गिरे हुए) पुनः सम्यक्त्व की स्पर्शना करें तो एक समय में १०८ सिद्ध हो सकते हैं। ऐसे ही असंख्यातकाल एवं संख्यातकाल के प्रतिपाती दस-दस सिद्ध हो सकते हैं। अप्रतिपाती सम्यक्त्वी चार सिद्ध हो सकते हैं।

(१२) अन्तर द्वार–एक, दो, तीन आदि अनेक समयों का अन्तर पाकर सिद्ध हो सकते हैं।

(१३) अनुसमय द्वार–यदि आठ समय तक निरन्तर सिद्ध होते रहें तो प्रत्येक समय में कम से कम १ और अधिक से अधिक ३२ सिद्ध हो सकते हैं। इसके बाद नवें समय में अवश्य निरन्तरता टूट जाती है अर्थात् नवें समय में कोई सिद्ध नहीं होता। यदि सिद्ध होने वाले जीवों की संख्या एक समय में ३३ से ४८ हो तो सात समय के बाद आठवें समय में निरन्तरता टूट जाती है। यह क्रम इस प्रकार चलता है–

४९ से ६० सिद्ध–सातवें समय में अन्तर पड़ता है।

६१ से ७२ सिद्ध–छठे समय में अन्तर पड़ता है।

७३ से ८४ सिद्ध–पाँचवें समय में अन्तर पड़ता है।

८५ से ९६ सिद्ध–चौथे समय में अन्तर पड़ता है।

९७ से १०२ सिद्ध–तीसरे समय में अन्तर पड़ता है।

१०३ से १०८ सिद्ध–दूसरे समय में अन्तर पड़ता है।

(१४) संख्या द्वार–एक समय में न्यूनतम १ और अधिकतम १०८ सिद्ध होते हैं।

(१५) अल्पबहुत्व द्वार–पूर्वोक्त प्रकार से ही समझना चाहिए।

1. *Kshetra dvar* (the parameter of area)—With reference to transmigration in the upward direction, four beings become *Siddha*

in one *samaya*. The number of beings becoming *Siddha* from different areas are—Four from the peaks of Nishadh mountain, Nandan forest and Meru and other mountains; three from rivers and streams; two from oceans and Pandak forest; and 10 each from thirty lands of inactivity. From every *vijaya* a minimum of 20 and a maximum of 108. In one *samaya* a maximum of 108 beings can attain the status of *Siddha* from the fifteen lands of activity.

2. *Kaal dvar* (the parameter of time)—In one *samaya* a maximum of 108 beings can attain the status of *Siddha* during the third and the fourth epochs and twenty during the fifth epoch of a regressive cycle of time. The same rule applies to the third and fourth epochs in progressive cycle of time. During the remaining seven epochs, in one *samaya* ten beings each can become *Siddha* with reference to transmigration.

3. *Gati dvar* (the parameter of incarnation-dimension or state of existence)—In one *samaya* 10 beings transmigrating from the Ratnaprabha, Sharkaraprabha and Balukaprabha Hells can become *Siddha*. This number is 4 for Pankprabha Hell, 10 for normal animals, 4 each for particular earth-bodied and water-bodied beings and 6 for plant-bodied beings.

Beings transmigrating from states of underdeveloped and non-sentient beings with five sense organs cannot become *Siddha*. However, the above said number is 20 for human beings, 10 for men and ten for women, 108 for the dimension of gods, ten each for *Bhavanpati* and *Vyantar* gods and five each for their goddesses, ten for *Jyotishk* gods and 20 for their goddesses, and 108 for *Vaimanik* gods and twenty for their goddesses.

4. *Ved dvar* (the parameter of gender)—In one *samaya* 20 females, 108 males and 10 neuters can become *Siddha*. In context of gender there are nine categories of beings transmigrated from the human dimension. Out of these, from the category of those who die as male and reincarnate as male 108 can become *Siddha* in one *samaya*. This number for the remaining eight categories is 10 each only.

5. *Teerth dvar* (the parameter of influence of *Tirthankar*)—In one *samaya* four male *Tirthankars* can become *Siddha*. The number is 2 in case of female *Tirthankars*.

6. *Ling dvar* (the parameter of religious status)—In one *samaya* four *Grihalingi* can become *Siddha*. The number is 10 for *Anyalingi* and 108 for *Svalingi*.

7. *Charitra dvar* (the parameter of level of purity)—In one *samaya* 108 each of those who perfect different required combinations of *Samayik*, *Chhedopasthapniya* and *Sukshma-samparaya* with *yathakhyat charitra* can become *Siddha*. The number is only 10 for those who perfect all the five *charitras*.

8. *Buddha dvar* (the parameter of enlightenment)—In one *samaya* 10 *Pratyek-buddha* can become *Siddha*. The number is 4 for *Svayam-budddha* and 108 for *Buddha-bodhit*.

9. *Jnana dvar* (the parameter of knowledge)—In one *samaya* a maximum of four of those who possessed *mati* and *shrut-jnana* during their earlier incarnation can acquire *Kewal-jnana* and become *Siddha*. The number is 10 for those who possessed *mati*, *shrut* and *manah-paryav-jnana*, and 108 for those who possessed all the four *jnana*.

10. *Avagahana dvar* (the parameter of physical dimension)—In one *samaya* a maximum of four of those who have minimum physical dimension become *Siddha*. The number is 108 for medium physical dimension and 2 for maximum physical dimension.

11. *Utkrisht dvar* (the parameter of upper limit)—In one *samaya* a maximum of 108 of those who have fallen from *samyaktva* for infinite period, if regain *samyaktva*, can become *Siddha*. The number is 10 each for those who have fallen for uncountable period and countable period. This number is four for those who do not fall or *Apratipati samyaktvi*.

12. *Antar dvar* (the parameter of gap)—The status of *Siddha* can be attained by some or the other being after gaps of 1, 2, 3 or more *samaya*.

13. *Anusamaya dvar* (the parameter of continuity)—If beings attain the status of *Siddha* continuously for eight *samayas* a minimum of one and maximum of 32 beings can become *Siddha*. This continuity essentially breaks in the ninth *samaya* or in other

words in the ninth *samaya* no being becomes *Siddha*. In case the number of beings becoming *Siddha* in one *samaya* is 33 to 48 this break occurs after 7 *samaya* in the eighth *samaya*. This series goes as follows—

49 to 60 beings becoming *Siddha*—the break is in the seventh *samaya*.

61 to 72 beings becoming *Siddha*—the break is in the seventh *samaya*.

73 to 84 beings becoming *Siddha*—the break is in the seventh *samaya*.

85 to 96 beings becoming *Siddha*—the break is in the seventh *samaya*.

97 to 102 beings becoming *Siddha*—the break is in the seventh *samaya*.

103 to 108 beings becoming *Siddha*—the break is in the seventh *samaya*.

14. *Samkhya dvar* (the parameter of number)—In one *samaya* a minimum of 1 and a maximum of 108 beings become *Siddha*.

15. *Alpabahutva dvar* (the parameter of high and low)—Same as mentioned earlier.

(३) क्षेत्र द्वार

3. KSHETRA DVAR (THE PARAMETER OF AREA)

मानुषोत्तर पर्वत के अन्तर्गत अढाई द्वीप, लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र हैं। सिद्ध होने के लिए इसी क्षेत्र में जन्म लेना पड़ता है। केवलज्ञान का क्षेत्र यही है और इससे बाहर केवलज्ञान के अभाव में सिद्धगति सम्भव नहीं है। इसके भी १५ उपद्वार हैं जो पूर्व की भाँति ही घटाये जाते हैं।

The area called *Manushottar Parvat* includes Adhai Dveep, Lavan Samudra and Kalodadhi Samudra. To become *Siddha* one has to be born in this area only. This is the area of *Kewal jnana*; outside this area, in absence of the same, attaining the status of *Siddha* is not possible. This parameter also has 15 sub-parameters which can be defined as before.

(४) स्पर्शना द्वार

4. SPARSHA DVAR (THE PARAMETER OF CONTACT)

सिद्धगति में निर्मल आत्म-प्रदेशों की एक-दूसरे में अवगाहना (परस्पर मिलन) होती है। भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी सिद्धों के आत्म-प्रदेशों का परस्पर संयोग हो जाता है। जहाँ अनन्त है वहाँ एक है, जहाँ एक है वहाँ अनन्त है। स्थूल रूप से जैसे हजारों दीपकों का प्रकाश पुंजीभूत होता है उसी प्रकार अपनी पृथक् अस्मिता लिए सिद्ध आत्माएँ एकीकृत हो जाती हैं। इसके भी १५ उपद्वार हैं जिन्हें पूर्व समान ही समझना चाहिए।

In the *Siddha* state the stainless soul-bits of *Siddhas* mutually coalesce. The soul-bits of all the *Siddhas* of past, present, and future, merge into one. Where there are infinite there is one and where there is one there are infinite. In earthly terms, as the rays of light from thousands of lamps merge into a beam, so do the *Siddha* souls, with their independent identity intact, combine into one. This parameter also has 15 sub-parameters which can be defined as before.

(५) काल द्वार

5. KAAL DVAR (THE PARAMETER OF TIME)

जिन क्षेत्रों से एक समय में १०८ सिद्ध हो सकते हैं, वहाँ से निरन्तर आठ समय तक सिद्ध होते हैं। जिस क्षेत्र से १० अथवा २० सिद्ध हो सकते हैं वहाँ चार समय तक निरन्तर सिद्ध होते हैं। जहाँ से २, ३ अथवा ४ सिद्ध हो सकते हैं वहाँ दो समय तक निरन्तर सिद्ध होते हैं। इसमें केवल ११ उपद्वार घटाए जा सकते हैं–

(१) क्षेत्र द्वार–१५ कर्मभूमियों में एक समय में अधिकतम १०८ सिद्ध हो सकते हैं तथा वहाँ निरन्तर आठ समय तक सिद्ध हो सकते हैं। अकर्मभूमि तथा अधोलोक में चार समय तक, नन्दनवन, पाण्डुकवन और लवण-समुद्र में दो समय तक और ऊर्ध्वलोक में चार समय तक निरन्तर सिद्ध हो सकते हैं।

(२) काल द्वार–प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के तीसरे व चौथे आरे में निरन्तर आठ-आठ समय तक और शेष आरों में ४-४ समय तक सिद्ध हो सकते हैं।

(३) गति द्वार–देवगति से आये हुए जीव अधिकतम आठ समय तक और शेष तीन गतियों से आये जीव चार-चार समय तक निरन्तर सिद्ध हो सकते हैं।

(४) वेद द्वार–जो पूर्वभव में पुरुष थे और इस भव में भी पुरुष रूप में जन्मे हैं वे अधिकतम ८ समय तक और शेष ४ समय तक निरन्तर सिद्ध हो सकते हैं।

(५) तीर्थ द्वार–किसी भी तीर्थंकर के शासन में अधिकतम ८ समय तक सिद्ध हो सकते हैं। पुरुष तीर्थंकर और स्त्री तीर्थंकर निरन्तर दो समय तक सिद्ध हो सकते हैं।

(६) लिंग द्वार–स्वलिंग में आठ समय तक, अन्यलिंग में ४ समय तक और गृहिलिंग में दो समय तक निरन्तर सिद्ध हो सकते हैं।

(७) चारित्र द्वार–जिन्होंने क्रमशः पाँचों चारित्रों का पालन किया हो, वे संयत आत्मा चार समय तक तथा शेष तीन या चार चारित्र वाले आठ समय तक लगातार सिद्ध हो सकते हैं।

(८) बुद्ध द्वार–बुद्धबोधित आत्मा आठ समय तक, स्वयंबुद्ध दो समय तक, सामान्य साधु या साध्वी के द्वारा प्रतिबुद्ध हुए चार समय तक निरन्तर सिद्ध हो सकते हैं।

(९) ज्ञान द्वार–मति तथा श्रुत इन दो ज्ञानों से हुए केवली दो समय तक, मति-श्रुत और मनःपर्यवज्ञान से केवलज्ञानी हुए ४ समय तक तथा मति-श्रुत व अवधिज्ञान से एवं चारों ज्ञानपूर्वक केवली हुए ८ समय तक निरन्तर सिद्ध हो सकते हैं।

(१०) अवगाहना द्वार–उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो समय तक, मध्यम अवगाहना वाले ८ समय तक और जघन्य अवगाहना वाले दो समय तक निरन्तर सिद्ध हो सकते हैं।

(११) उत्कृष्ट द्वार–अप्रतिपाती सम्यक्त्वी दो समय तक, संख्यात एवं असंख्यात काल तक के प्रतिपाती ४ समय तक और अनन्तकाल के प्रतिपाती ८ समय तक निरन्तर सिद्ध हो सकते हैं।

In the areas where 108 beings can become *Siddha* in one *samaya*, the continuity of the process is for eight *samayas*. In other words every *samaya* some beings become *Siddha* for 8 *samayas* without a break. In case of the areas where 10 to 20 beings can become *Siddha* this figure is 4 *samayas* and in case of the areas where 2 to 4 beings can become *Siddha* this figure is 2 *samayas*. This parameter has only 11 sub-parameters. They are as follows—

1. *Kshetra dvar* (the parameter of area)—In the fifteen lands of activity a maximum of 108 beings can become *Siddha* in one *samaya*, therefore, there every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for 8 *samayas*. In case of the lands of inactivity and the lower dimension this figure is 4 *samayas*. In case of *Nandan* and *Panduk* forests and *Lavan Samudra* this figure is 2 *samayas*. And in case of the higher dimension this figure is 4 *samayas*.

2. *Kaal dvar* (the parameter of time)—During the third and fourth epochs of the progressive and regressive cycles of time every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for 8 *samayas*. In case of the remaining epochs this figure is 4 *samayas*.

3. *Gati dvar* (the parameter of incarnation-dimension)—Of the beings coming from the dimension of gods every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 8 *samayas*. In case of the beings coming from remaining 3 dimensions this figure is 4 *samayas*.

4. *Ved dvar* (the parameter of gender)—Of beings who were male in the earlier existence and have reborn as males in this existence, every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 8 *samayas*. In case of the remaining this figure is 4 *samayas*.

5. *Teerth dvar* (the parameter of influence of *Tirthankar*)—During the period of influence of a *Tirthankar* every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 8 *samayas*. Male and female *Tirthankars* can become *Siddha* continuously for a maximum of 2 *samayas*.

6. *Ling dvar* (the parameter of religious status)—Out of the *Svalingis* every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 8 *samayas*. In case of the *Anyalingis* and *Grihalingis* this figure is 4 and 2 *samayas* respectively.

7. *Charitra dvar* (the parameter of level of purity)—Of those disciplined souls who have gradually observed all the five *charitras* every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 4 *samayas*. In case of the remaining, or those who have observed 3 or 4 *charitras* this figure is 8 *samayas*.

8. *Buddha dvar* (the parameter of enlightenment)—Of those who have been enlightened by an enlightened one every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 8 *samayas*. In case of the self-enlightened this figure is 2 *samayas*. In case of those indoctrinated by ordinary ascetics this figure is 4 *samayas*.

9. *Jnana dvar* (the parameter of knowledge)—Of those who have become omniscient after acquiring *mati* and *shrut-jnana* every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 2 *samayas*. In case of those who have become omniscient after acquiring *mati, shrut* and *manah-paryav-jnana* this figure is 4 *samayas*. In case of those who have become omniscient after

acquiring *mati, shrut* and *avadhi-jnana* as well as all the four *jnana* this figure is 8 *samayas.*

10. *Avagahana dvar* (the parameter of physical dimension)—Of those having maximum physical dimensions every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 2 *samayas.* In case of those having medium and minimum physical dimensions this figure is 8 and 2 *samayas* respectively.

11. *Utkrisht dvar* (the parameter of upper limit)—Of the *Apratipati samyaktvi* beings every *samaya* some beings become *Siddha* continuously for a maximum of 2 *samayas.* In case of those who have fallen for countable and uncountable period and those who have fallen for infinite period, having medium and minimum physical dimensions this figure is 4 and 8 *samayas* respectively.

(६) अन्तर द्वार

6. ANTAR DVAR (THE PARAMETER OF GAP OR VOID)

जितने काल तक एक भी जीव सिद्ध न हो वह समय अन्तरकाल है। इसे विरहकाल भी कहते हैं। यह विभिन्न उपद्वारों से इस प्रकार बताया है–

(१) क्षेत्र द्वार–समस्त अढाई द्वीप में विरहकाल कम से कम एक समय का और अधिकतम ६ मास का होता है। जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र और धातकीखण्ड के महाविदेह क्षेत्र में अधिकतम अन्तर दो से ९ वर्ष का होता है। पुष्करार्द्ध द्वीप में यह एक वर्ष से कुछ अधिक समय का होता है।

(२) काल द्वार–५ भरत तथा ५ ऐरावत क्षेत्र में १८ कोटाकोटि सागरोपम से कुछ कम समय का विरह होता है। उत्सर्पिणी काल का चौथा आरा दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम, पाँचवाँ तीन और छठा चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। अवसर्पिणी काल का पहला आरा चार, दूसरा तीन और चौथा दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। ये सब १८ कोड़ाकोड़ी हुए। इनमें से उत्सर्पिणी काल में चौथे आरे की आदि में २४वें तीर्थंकर का शासन संख्यात काल तक चलता है। तत्पश्चात् विच्छेद हो जाता है। अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अन्तिम भाग में पहले तीर्थंकर पैदा होते हैं। उनका शासन तीसरे आरे में एक लाख पूर्व तक चलता है, इस कारण अठारह कोड़ाकोड़ी से कुछ न्यून कहा गया है। उस शासन में से सिद्ध हो सकते हैं, उसके व्यवच्छेद होने पर उस क्षेत्र में जन्मे हुए सिद्ध नहीं होते। संहरण की अपेक्षा से अधिकतम अन्तर संख्यात हजार वर्ष का होता है।

(३) गति द्वार–नरक से निकले हुए जीवों के सिद्ध होने का अधिकतम अन्तर पृथक्त्व (२ से ९) हजार वर्ष का, तिर्यंच से निकले सिद्धों का पृथक्त्व १०० वर्ष का, तिर्यंच योनि और सौधर्म

ईशान देवलोक के देवों को छोड़कर सभी देवलोकों से आये हुए सिद्धों का अन्तर १ वर्ष से कुछ अधिक का और मनुष्यगति से हुए स्वयंबुद्ध सिद्धों का अन्तर संख्यात हजार वर्ष का होता है। पृथ्वी, पानी, वनस्पति, सौधर्म-ईशान देवलोक के देव और दूसरी नरकभूमि से निकले हुए जीवों के सिद्ध होने का अधिकतम अन्तर हजार वर्षों का होता है। न्यूनतम अन्तर एक समय का होता है।

(४) वेद द्वार–पुरुषवेदी से अवेदी होकर सिद्ध होने का अधिकतम अन्तर एक वर्ष से कुछ अधिक, स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी से अवेदी होकर सिद्ध होने वालों का उत्कृष्ट विरह संख्यात हजार वर्ष का, पुरुषवेदी से पुरुषवेदी होकर सिद्ध होने वालों का अधिकतम अन्तर एक वर्ष से कुछ अधिक होता है। शेष सभी का संख्यात हजार वर्ष है।

(५) तीर्थंकर द्वार–तीर्थंकरों का सिद्ध बनने का अधिकतम अन्तर पृथक्त्व हजार पूर्व और स्त्री तीर्थंकरों का अनन्तकाल होता है। अतीर्थंकरों का एक वर्ष से अधिक और प्रत्येक बुद्धों का संख्यात हजार वर्ष होता है।

(६) लिंग द्वार–स्वलिंगी सिद्ध होने का अधिकतम अन्तर एक वर्ष से कुछ अधिक तथा अन्यलिंगी और गृहलिंगी का संख्यात हजार वर्ष होता है।

(७) चारित्र द्वार–पूर्वभव की अपेक्षा से सामायिक, सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात चारित्र पालकर सिद्ध होने का अन्तर एक वर्ष से कुछ अधिक होता है। शेष दो चारित्रों का अन्तर १८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम से कुछ अधिक का।

(८) बुद्ध द्वार–बुद्धबोधित सिद्धों का अन्तर १ वर्ष से कुछ अधिक का, अन्यों द्वारा प्रतिबोधित हुए सिद्धों का संख्यात हजार वर्ष का तथा स्वयंबुद्ध सिद्धों का पृथक्त्व हजार पूर्व का अन्तर होता है।

(९) ज्ञान द्वार–मति-श्रुतज्ञानपूर्वक केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध होने वालों का अन्तर पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितना, मति, श्रुत एवं अवधिज्ञान सहित केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध होने वालों का अन्तर एक वर्ष से कुछ अधिक। चारों ज्ञानों से केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध होने वालों का अन्तर संख्यात हजार वर्ष का होना है।

(१०) अवगाहना द्वार–१४ रज्जू लोक का काल्पनिक घन बनाया जाये तो उसमें एक प्रदेश की श्रेणी ७ रज्जू लम्बी होगी। इसके असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश हैं उन्हें एक समय में एक आकाश प्रदेश निकालकर क्रमशः खाली किया जाये तो जितना समय लगेगा वह अधिकतम अवगाहना वाले सिद्धों का अन्तरकाल होता है। मध्यम अवगाहना वालों का अन्तर एक वर्ष से कुछ अधिक और न्यूनतम अवगाहना वालों का अन्तर एक समय।

(११) उत्कृष्ट द्वार–अप्रतिपाती सिद्धों का अधिकतम अन्तरकाल सागरोपम का असंख्यातवाँ भाग होता है। संख्यात काल तथा असंख्यात काल के प्रतिपाती सिद्धों का अन्तरकाल संख्यात हजार वर्ष तथा अनन्तकाल के प्रतिपाती सिद्धों का अन्तरकाल १ वर्ष से कुछ अधिक होता है।

(१२) अनुसमय द्वार–दो से लेकर आठ समय तक निरन्तर सिद्ध होते हैं।

(१३) गणना द्वार–एकाकी या अनेकसिद्ध होने का अन्तर अधिकतम संख्यात हजार वर्ष होता है।

(१४) अल्पबहुत्व द्वार–पूर्ववत्।

The time during which no being attains the status of *Siddha* is called the *antar kaal* (intervening period or time gap). This is also known as period of separation or *virah kaal*. The fifteen secondary parameters to help understand this are as follows—

1. *Kshetra dvar* (the parameter of area)—In the whole *adhai dveep* this *virah kaal* is minimum *one samaya* and maximum six months. In the *Maha Videh* areas of *Jambu Dveep* and *Dhatki Khand* the maximum time gap is 2 to 9 years and in *Pushkarardh Dveep* this is a little more than one year.

2. *Kaal dvar* (the parameter of time)—In the 5 Bharat and 5 Airavat areas this time gap is a little less than 18 *kota-koti sagaropam*. The fourth, fifth and sixth epochs of the progressive cycle of time are 2, 3 and 4 *kota-koti sagaropam* long respectively. After that the first, second and third epochs of the regressive cycle of time are 4, 3 and 2 *kota-koti sagaropam* long respectively. All these make a total of 18 *kota-koti sagaropam*. Of these, in the beginning of the fourth epoch of the progressive cycle of time the period of influence of the 24th *Tirthankar* of that cycle of time continues for a countable period of time before it terminates. During the last part of the third epoch of the following regressive cycle of time the first *Tirthankar* of that cycle is born. His period of influence continues for a hundred thousand *purvas*. That is why the time gap is said to be a little less than 18 *kota-koti sagaropam*. During this period of influence of a *Tirthankar* the status of *Siddha* can be attained. Once it is terminated no being born in that area can become *Siddha*. With reference to transmigration the maximum time gap is countable thousand years.

3. *Gati dvar* (the parameter of incarnation-dimension or state of existence)—The maximum time gap between beings transmigrating from hells and becoming *Siddha* is *prithaktva* thousand years. In case of the beings transmigrating from the state of existence as

animals, this gap is *prithaktva* hundred years. In case of beings transmigrating from the state of gods, excepting those from *tiryanch* and *Saudharm Ishan* dimensions, this gap is a little more than a year. In case of the self enlightened human beings this gap is countable thousand years. In case of the beings transmigrating from the state of existence as earth-, water- and plant-bodied beings, gods of *Saudharm Ishan* dimension and the second hell this gap is one thousand years. The minimum time gap is one *samaya*.

4. *Ved dvar* (the parameter of gender)—The maximum time gap between beings becoming *Siddha* after turning genderless from masculine is a little more than one year. In case of feminine and neuter this gap is countable thousand years. With reference to transmigration in case of masculine turning masculine and becoming *Siddha* this gap is a little more than one year; in case of all the remaining this gap is countable thousand years.

5. *Teerth dvar* (the parameter of influence of Tirthankar)—The maximum time gap between *Tirthankars* becoming *Siddha* is *prithaktva* thousand *purvas*. In case of female *Tirthankars* this gap is infinite time. In case of non-*Tirthankars* and *Pratyek Buddhas* this gap is a little more than a thousand years and countable thousand years respectively.

6. *Ling dvar* (the parameter of religious status)—The maximum time gap between *Svalingis* becoming *Siddha* is a little more than one year. and that for *Anyalingis* and *Grihalingis* is countable thousand years.

7. *Charitra dvar* (the parameter of level of purity)—The maximum time gap between beings becoming *Siddha* after perfecting *Samayik* and *Sukshma-samparaya* with *yathakhyat charitra,* in context of the earlier existence, is a little more than one year. In case of the remaining two combinations it is a little more than 18 *kota-koti sagaropam*.

8. *Buddha dvar* (the parameter of enlightenment)—The maximum time gap between beings enlightened by the enlightened one, indoctrinated by others, and self-enlightened becoming *Siddhas* is a little more than one year, countable thousand years and two to nine thousand *purvas* respectively.

9. *Jnana dvar* (the parameter of knowledge)—The maximum time gap between those who have become omniscient after acquiring *mati* and *shrut-jnana* becoming *Siddha* is uncountable fraction of one Palyopam. In case of those who have become omniscient after acquiring *mati, shrut* and *avadhi-jnana* it is a little more than a year. In case of those who have become omniscient after acquiring all the four *jnanas* it is countable thousand years.

10. *Avagahana dvar* (the parameter of physical dimension)—The maximum time gap between those with maximum physical dimension becoming *Siddha* is so large that it has been explained by a conceptual example—if a cube is made of 14 rajjulok its one line of unit space points will be 7 rajjus long. The time taken in emptying this line at the rate of one space point per *samaya* is said to be equivalent to the said gap. In case of those having medium physical dimension this gap is a little more than one year and for those having minimum physical dimension it is one *samaya*.

11. *Utkrisht dvar* (the parameter of upper limit)—The maximum time gap between the *Apratipati samyaktvi* beings becoming *Siddha* is uncountable fraction of one sagaropam. In case of those who have fallen for uncountable and countable period it is countable thousand years and in case of those who have fallen for infinite period it is a little more than one year.

12. *Anusamaya dvar* (the parameter of continuity)—Beings become *Siddha* continuously for 2 to 8 *samaya*.

13. *Samkhya dvar* (the parameter of number)—The maximum time gap between a solitary being becoming *Siddha* and many becoming *Siddha* together is countable thousand years.

14. *Alpabahutva dvar* (the parameter of high and low)—As mentioned earlier.

(७) भाव द्वार
7. BHAVA DVAR (THE PARAMETER OF MODE)

भाव छह होते हैं-औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, पारिणामिक और सान्निपातिक। सिद्ध केवल क्षायिक भाव से ही होते हैं। १५ द्वार पूर्ववत् हैं।

There are six types of modes or attitudes—*Audayik, Aupashamik, Kshayopashamik, Kshayik, Parinamik* and *Sannipatik.* Beings

become *Siddha* only through *Kshayik* attitude. This parameter also has 15 sub-parameters which can be defined as before.

(८) अल्पबहुत्व द्वार
8. ALPABAHUTVA DVAR
(THE PARAMETER OF MINIMUM-MAXIMUM)

सबसे कम सिद्ध ऊर्ध्वलोक के हैं। अकर्मभूमि के उनसे संख्यात गुणा होते हैं। स्त्री आदि से हुए सिद्ध भी संख्यात गुणा होते हैं। अलग-अलग विजयों के होने वाले सिद्ध उससे संख्यात गुणा होते हैं और जिन क्षेत्रों में १०८ सिद्ध होते हैं वहाँ के सिद्ध इससे भी संख्यात गुणा होते हैं।

The minimum number of beings becoming *Siddha* are from the higher world. The number of those from the lands of inactivity is countable times more than these. The number of those belonging to the female gender and other such categories is also countable times more than the first category. The number of those belonging to different *Vijayas* is countable times more than that of the second category. And the number of those belonging to these areas from where 108 beings become *Siddha* is again countable times more than the third category.

परम्पर सिद्ध केवलज्ञान
PARAMPAR-SIDDHA KEWAL-JNANA

जिनको सिद्ध हुए एक समय से अधिक हो गया ऐसे परम्पर सिद्ध इन द्वारों तथा उपद्वारों के अनुसार अनन्त होते हैं। अर्थात् सर्वक्षेत्रों से अनन्त जीव सिद्ध हो चुके हैं। इसका विस्तार परम्पर सिद्ध का थोकड़ा से जानें।

According to these parameters and sub-parameters the number of beings who have become *Siddha* for more than one *samaya* is infinite. This means that from all the areas infinite beings have become *Siddha*. More details about this can be seen in the *thokada* (a style of Jain writing where lists are compiled) of *Parampar-Siddha*.

अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान के भेद
ANANTAR-SIDDHA KEWAL-JNANA

४१ : *से किं तं अणंतर सिद्धकेवलनाणं ?*

अणंतर सिद्धकेवलनाणं पण्णरसविहं पण्णत्तं, तं जहा–

(१) *तित्थसिद्धा* (२) *अतित्थसिद्धा*

(३) *तित्थयरसिद्धा* (४) *अतित्थयरसिद्धा*

(५) *सयंबुद्धसिद्धा* (६) *पत्तेयबुद्धसिद्धा*

(७) *बुद्धबोहियसिद्धा* (८) *इत्थिलिंगसिद्धा*

(९) *पुरिसलिंगसिद्धा* (१०) *नपुंसगलिंगसिद्धा*

(११) *सलिंगसिद्धा* (१२) *अन्नलिंगसिद्धा*

(१३) *गिहिलिंगसिद्धा* (१४) *एगसिद्धा*

(१५) *अणेगसिद्धा,*

से त्तं अणंतर सिद्धकेवलनाणं।

अर्थ–प्रश्न–अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान का स्वरूप क्या है?

उत्तर–अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान १५ प्रकार का बताया गया है। यथा–

(१) तीर्थ सिद्ध (२) अतीर्थ सिद्ध

(३) तीर्थंकर सिद्ध (४) अतीर्थंकर सिद्ध

(५) स्वयंबुद्ध सिद्ध (६) प्रत्येकबुद्ध सिद्ध

(७) बुद्धबोधित सिद्ध (८) स्त्रीलिंग सिद्ध

(९) पुरुषलिंग सिद्ध (१०) नपुंसकलिंग सिद्ध

(११) स्वलिंग सिद्ध (१२) अन्यलिंग सिद्ध

(१३) गृहिलिंग सिद्ध (१४) एकसिद्ध

(१५) अनेक सिद्ध।

इन सबका केवलज्ञान अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान होता है।

41. Question—What is this *Anantar Siddha Kewal-jnana ?*

Answer—*Anantar Siddha-kewal Jnana* is said to be of fifteen types—

1. *Teerth Siddha* 2. *Ateerth Siddha*
3. *Tirthankar Siddha* 4. *Atirthankar Siddha*
5. *Svayam-buddha Siddha* 6. *Pratyek-buddha Siddha*
7. *Buddha-bodhit Siddha* 8. *Streeling Siddha*

(२) सिद्धों के भेद
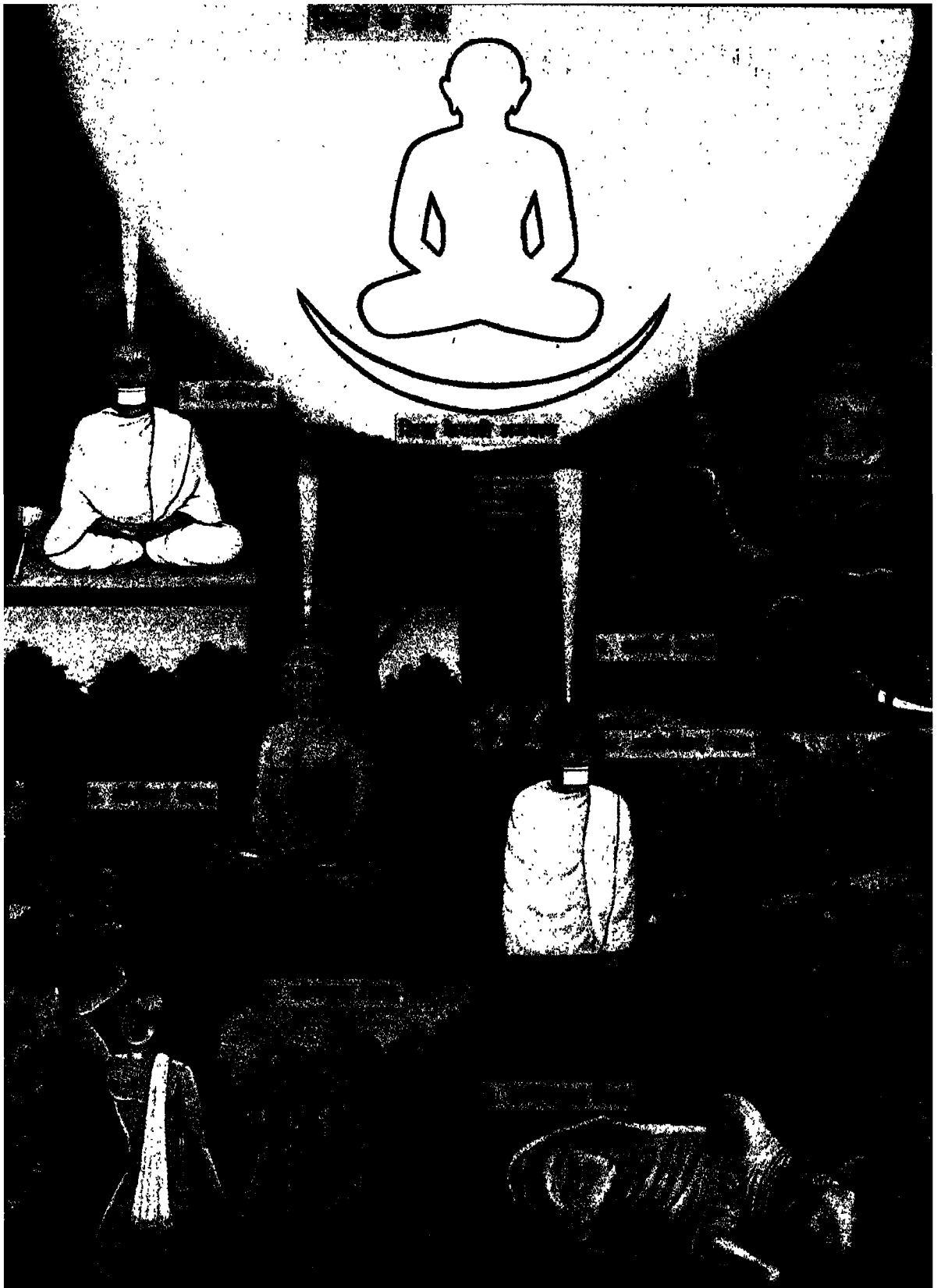
७. बुद्धबोधित–ज्ञानियों से बोध प्राप्त कर दीक्षा लेकर सिद्ध होने वाले। जैसे–मुनि अतिमुक्तकुमार।

८. स्त्रीलिंग सिद्ध–स्त्री देह में दीक्षा लेकर मुक्त होने वाले। जैसे–महासती चन्दनबाला, मृगावती आदि।

९. पुरुषलिंग सिद्ध–पुरुष देही में सिद्ध होने वाले। जैसे- अनेकानेक मुनि।

१०. नपुंसकलिंग सिद्ध–नपुंसक शरीर में (पुरुष नपुंसक) सिद्ध होने वाले।

११. स्वलिंग सिद्ध–निर्ग्रन्थ श्रमणों का परिपूर्ण वेश स्वलिंग कहलाता है। मुनि वेश में सिद्ध होने वाले।

१२. अन्यलिंग सिद्ध–जिनका बाह्य वेश परिव्राजक संन्यासी आदि का हो, किन्तु क्रिया जिनागम अनुसार करके सिद्ध गति प्राप्त करने वाले। (क्रमशः) (सूत्र ४९)

(2) TYPES OF SIDDHAS

7. *Buddha-Bodhit*—Those who were enlightened by the enlightened ones, got initiated and then liberated. e.g. Muni Atimukta Kumar.

8. *Striling Siddha*—Those who got initiated as females and got liberated. e.g. Mahasati Chandanbala, Mrigavati etc.

9. *Purushling Siddha*—Those who got initiated as males and got liberated. e.g. numerous ascetics.

10. *Napunsakling Siddha*—Those who got liberated as neuter gender in the male body.

11. *Svaling Siddha*—The complete formal dress of the Jain ascetic is called svalingi. Those who got liberated as ascetics.

12. *Anyaling Siddha*—Those not dressed as Jain ascetics but still got liberated after following the spiritual practices according to Agams. (continued) (49)
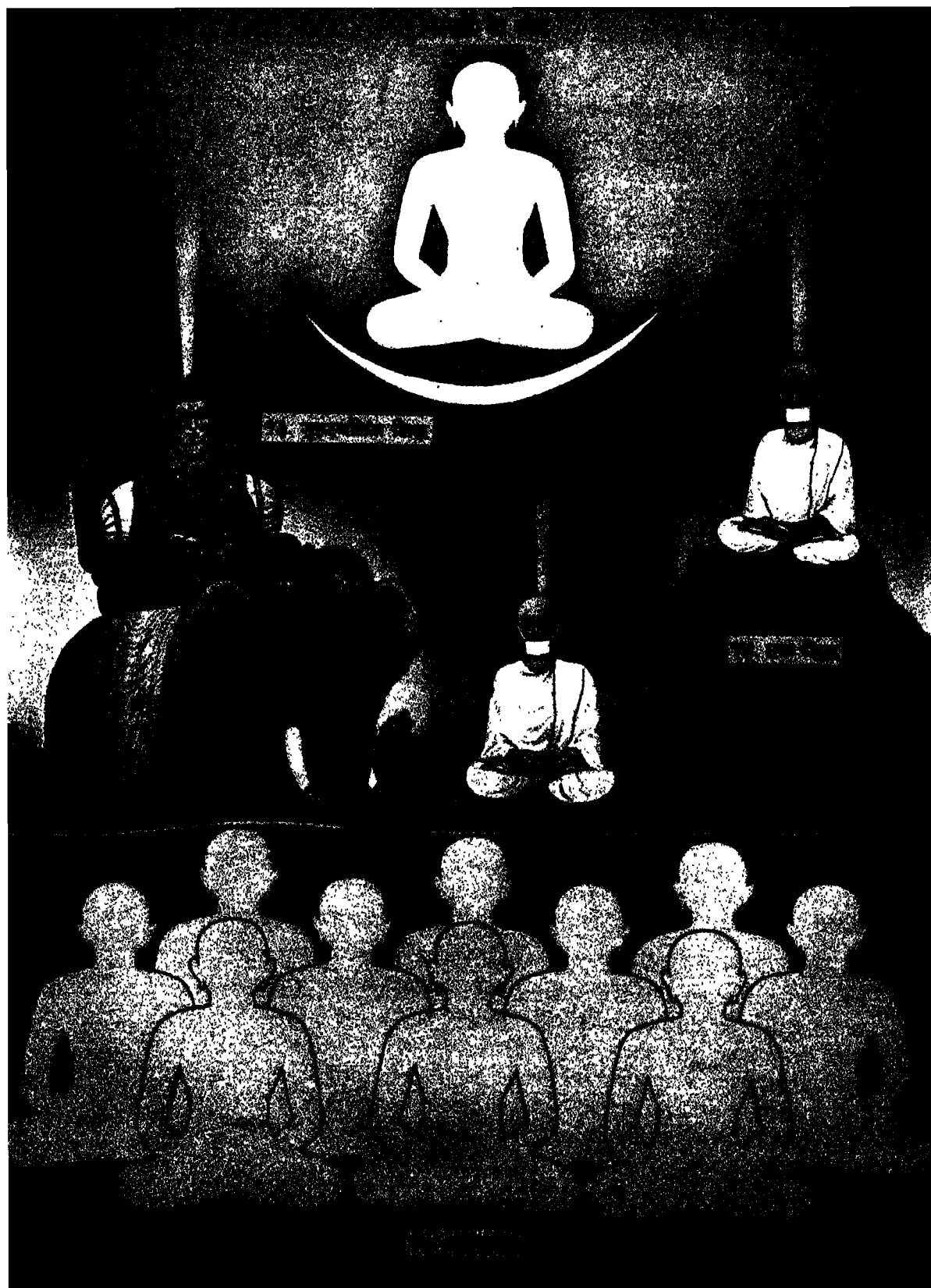
(3) सिद्धों के भेद

१३. गृहस्थलिंग सिद्ध–गृहस्थ के वेश में ही मुनि बनकर मोक्ष प्राप्त करने वाले। जैसे–मरुदेवी माता।

१४. एक सिद्ध–एक-एक समय में एक सिद्ध होने वाले।

१५. अनेक सिद्ध–एक समय में एक साथ अनेक सिद्ध होने वाले। ये जघन्य दो से १०८ (उत्कृष्ट) तक हो सकते हैं। (विशेष वर्णन सूत्र ४९ देखें)

(3) TYPES OF SIDDHAS

13. *Grihasth ling Siddha*—Those who got liberated as householders observing the conduct of ascetics. e.g. Marudevi Mata.

14. *Ek Siddha*—Those who become Siddha one at a time.

15. *Anek Siddha*—Those who become Siddhas more than one at a time. This number can be 2 to 108 at a time. (Elaboration, 49)
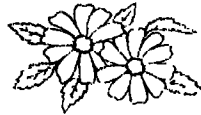
is one such example as she became *Siddha* before the *Teerth* was established. From the period of influence of *Bhagavan* Suvidhinath to that of *Bhagavan* Shantinath, during the seven intervening periods the *Teerth* became extinct. During these intervening periods all the liberated *Kewalis* are also called *Atirtha Siddha*.

3. *Tirthankar Siddha*—Those who become *Siddha* after attaining the status of *Tirthankar* are called *Tirthankar Siddha*. One such example is *Bhagavan Mahavir*.

4. *Atirthankar Siddha*—Besides the *Tirthankars* all the other *Siddhas* are called *Atirthankar Siddha*. One such example is *Gaj Sukumal Muni*.

5. *Svayam-buddha Siddha*—Those who become free of passions with their own efforts by acquiring *Jatismaran-jnana* and *Avadhi-jnana* without any outside help including that of religious discourses or preaching and consequently get enlightened are called *Svayam-buddha* or self-enlightened. When they become *Siddha* they are called *Svayam-buddha Siddha*. All *Tirthankars are examples of this.*

6. *Pratyek-buddha Siddha*—Those who get enlightened after getting inspired by some outside factor but without any help in the form of religious discourse and consequently become *Siddha* are called *Pratyek-buddha Siddha*. Some examples are Karkandu and Nami Raja. (*See Illustration* 13)

7. *Buddha-bodhit Siddha*—Those who get enlightened with the help of a discourse or preaching of a *Tirthankar, acharya* or any other accomplished ascetic and consequently become *Siddha* are called *Buddha-bodhit Siddha*. Some examples are Chandanbala, Jambu Kumar, Atimuktak Muni etc.

8. *Streeling Siddha*—The term *streeling* indicates womanhood. This is of three types—the female body, the female psyche and the female garb. When a soul in a female body becomes *Siddha* it is called *Streeling Siddha*. As female psyche indicates the passions and lust it is against detachment and so there is no scope of liberation. The female garb can be used to cover a male or an idol as well and as such it is irrelevant in this context. Some example are Mrigavati Chandan Bala etc.

9. *Purushling Siddha*—When a soul in a male body becomes *Siddha* it is called *Purushling Siddha.*

10. *Napunsakling Siddha*—When a soul in neuter gender body becomes *Siddha* it is called *Napunsakling Siddha.*

11. *Svaling Siddha*—Here the term *ling* indicates the social status (like dress etc.). Those who become *Siddha* after indulging in spiritual practices as a *shraman* (Jain ascetic) are called *Svaling Siddha.*

12. *Anyaling Siddha*—In spite of belonging to other religious school, those who indulge in spiritual practices according to the tenets of the *Jina* and consequently become *Siddha* are called *Anyaling Siddha.* (*See Illustration* 14)

13. *Grihiling Siddha*—Those who become *Siddha* after indulging in spiritual practices as householders are called *Grihiling Siddha.* One example is Marudevi Mata.

14. *Ek Siddha*—Those who become *Siddha* one at a time are called *Ek Siddha.*

15. *Anek Siddha*—Those who become *Siddha* with others at the same time (2 to 108 in number) are called *Anek Siddha.*

(*See Illustration* 15)

परम्पर सिद्ध केवलज्ञान का निरूपण
PARAMPAR-SIDDHA KEWAL-JNANA

४२ : से किं तं परम्पर सिद्धकेवलनाणं?

परंपर-सिद्धकेवलनाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—अपढमसमयसिद्धा, दुसमयसिद्धा, तिसमयसिद्धा, चउसमयसिद्धा, जाव दससमयसिद्धा, संखिज्जसमयसिद्धा, असंखिज्जसमयसिद्धा, अणंतसमयसिद्धा।

से त्तं परंपर सिद्धकेवलनाणं, से त्तं सिद्धकेवलनाणं।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ।

तत्थ दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ, पासइ।

खित्तओ णं केवलनाणी सव्वं खित्तं जाणइ, पासइ।

कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ, पासइ।
भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ, पासइ।

अर्थ–प्रश्न–परम्पर सिद्ध केवलज्ञान का स्वरूप कैसा होता है?

उत्तर–परम्पर सिद्ध केवलज्ञान अनेक प्रकार से बताया गया है। यथा–अप्रथम समय सिद्ध, द्विसमय सिद्ध, त्रिसमय सिद्ध, चतुःसमय सिद्ध, यावत् दस समय सिद्ध, संख्यात समय सिद्ध, असंख्यात समय सिद्ध और अनन्त समय सिद्ध। इस प्रकार परम्पर सिद्ध केवलज्ञान का वर्णन है।

संक्षेप में वह चार प्रकार का है–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से।

द्रव्य से केवलज्ञानी सर्व द्रव्यों को जानता-देखता है।

क्षेत्र से केवलज्ञानी सभी क्षेत्रों (लोक-अलोक) को जानता-देखता है।

काल से केवलज्ञानी सभी कालों को (भूत, वर्तमान, भविष्य) जानता-देखता है।

भाव से केवलज्ञानी सभी भावों (सब द्रव्यों के मनःपर्यायों) को जानता-देखता है।

42. Question—What is this *Parampar-Siddha Kewal-jnana ?*

Answer—*Parampar-Siddha Kewal-jnana* is said to be of numerous types—non-first *samaya Siddha*, second *samaya Siddha*, third *samaya Siddha*, fourth *samaya Siddha*, and so on up to ten *samaya Siddha*, countable *samaya Siddha*, uncountable *samaya Siddha* and infinite *samaya Siddha*.

This concludes the description of *Parampar-Siddha Kewal-jnana*.

In short it is of four types—with reference to matter, area, time and mode.

With reference to matter *Kewal-jnani* knows all matter or all material things.

With reference to area *Kewal-jnani* knows all areas including the inhabited space and beyond.

With reference to time *Kewal-jnani* knows all time including present, past and future.

With reference to mode *Kewal-jnani* knows all modes including the variations of matter and thoughts.

विवेचन—केवलज्ञान और केवलदर्शन के उपयोग के विषय में आचार्यों की विभिन्न धारणाएँ हैं। जैनदर्शन के अनुसार उपयोग बारह प्रकार के होते हैं—पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन। १. मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान, और ५. केवलज्ञान। १. मतिअज्ञान, २. श्रुतअज्ञान, और ३. विभंगज्ञान। १. चक्षुदर्शन, २. अचक्षुदर्शन, ३. अवधिदर्शन, और ४. केवलदर्शन। इनमें से किसी एक में कुछ समय तक स्थिर तल्लीन हो जाने को उपयोग कहते हैं। केवलज्ञान और केवलदर्शन के अतिरिक्त शेष दस उपयोग छद्मस्थ अवस्था में होते हैं।

मिथ्यादृष्टि में तीन अज्ञान और तीन दर्शन ये छह उपयोग होते हैं। छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि में चार ज्ञान और तीन दर्शन ये सात उपयोग होते हैं। छद्मस्थ के दस उपयोग क्षायोपशमिक होते हैं और इनमें ह्रास-विकास तथा न्यूनाधिकता होती रहती है। केवलज्ञान और केवलदर्शन क्षायिक और सम्पूर्ण होते हैं। इनमें न तो ह्रास-विकास होता है और न न्यूनाधिकता।

छद्मस्थ का उपयोग क्रमभावी है अर्थात् एक समय में एक ही उपयोग होता है, इस विषय में सभी आचार्य एक मत हैं। किन्तु केवली के उपयोग के सम्बन्ध में तीन धारणाएँ हैं—

(१) निरावरण ज्ञान-दर्शन होते हुए भी केवली में एक समय में एक ही उपयोग होता है। जब ज्ञानोपयोग होता है तब दर्शनोपयोग नहीं होता और जब दर्शनोपयोग होता है तब ज्ञानोपयोग नहीं होता। इस मान्यता को क्रमभावी तथा एकान्तर उपयोगवाद कहते हैं। इस धारणा के समर्थकों में थे जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण।

(२) दूसरी धारणा है कि जैसे सूर्य का प्रकाश और ताप युगपत् होता है अर्थात् एक ही समय में दोनों क्रियाएँ घटित होती हैं वैसे ही केवलज्ञान और केवलदर्शन भी युगपत् होते हैं। दोनों एक साथ अपने-अपने विषय का ग्रहण करते रहते हैं। इस मान्यता के समर्थकों में थे प्रसिद्ध तार्किक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर। यह युगपद् उपयोगवाद नाम से प्रसिद्ध है।

(३) तीसरी धारणा है अभेदवादियों की। इनके अनुसार केवलज्ञान और केवलदर्शन एक रूप होते हैं। जब किसी विषय को ग्रहण करने का माध्यम ज्ञान हो तब दर्शन का पृथक् अस्तित्व अर्थहीन हो जाता है। और फिर ज्ञान को प्रमाण माना है दर्शन को नहीं। क्योंकि केवलज्ञानी प्रत्यक्ष और निर्निमित्त अनुभव करता है अतः उसका दर्शन ज्ञान ही है। इस मान्यता के समर्थक आचार्य वृद्धवादी थे। यह अभिन्न उपयोगवाद है।

उपाध्याय यशोविजय जी ने इन तीनों मान्यताओं का नयों के आधार पर समन्वय किया है—उनका कहना है कि ऋजुसूत्रनय से देखें तो एकान्तर उपयोगवाद उपयुक्त है। व्यवहारनय से देखें तो युगपद् उपयोगवाद ठीक है और संग्रहनय से अभेद उपयोगवाद उचित है। वस्तुतः इस विषय में मतभेद को स्थान नहीं है। केवलज्ञान और केवलदर्शन शक्यातीत और तर्कातीत विषय हैं अतः ये सभी धारणाएँ उन्हें समझने के प्रयासों की भिन्नताओं से अधिक कुछ नहीं। नन्दीसूत्र की चूर्णि एवं मलयगिरिकृत टीका में विस्तारपूर्वक यह चर्चा की गई है।

Elaboration—*Acharyas* have varying opinion about *upayoga* (indulgence) in *Kewal-jnana* and *Kewal darshan*. According to the Jain philosophy *upayoga* is of twelve types—five *jnana*, three *ajnana* and four *darshan*. The details of these are—1. *Mati-jnana*, 2. *Shrut-jnana*, 3. *Avadhi-jnana*, 4. *manah-paryav-jnana*, and 5. *Kewal-jnana*; 1. *Mati-ajnana*, 2. *Shrut-ajnana*, and 3. *Vibhang-jnana* (perverted knowledge); and 1. *Chakshu darshan* (visual perception), 2. *Achakshu darshan* (non-visual perception), 3. *Avadhi darshan*, and 4. *Kewal darshan*. A stable engrossment in any one of these for some time is called *upayoga* (indulgence). Except *Kewal-jnana* and *Kewal darshan* the remaining ten *upayogas* belong to the *Chhadmasth* state (state of finite cognition).

A *Mithyadrishti* (one who is in the state of false cognition) has six types of *upayogas*—three *ajnana* and three *darshan*. A *chhadmasth samyagdrishti* has seven types of *upayogas*—four *jnana* and three *darshan*. A *chhadmasth* has ten types of *upayogas* which are *kshayopashamik* and there is a reduction and addition as well as progress and decline in these. *Kewal-jnana* and *Kewal darshan* are *kshayik* and complete; they are without any reduction and addition or progress and decline.

The *upayoga* of a *chhadmasth* is gradual. In other words in one *samaya* there is only one *upayoga*. All the *acharyas* are unanimous on this point. However, there are three different views about the *upayoga* of a *kewali*—

1. In spite of having absolutely unveiled knowledge and perception *kewali* has only one *upayoga* in one *samaya*. When there is *jnanopayoga* (indulgence in knowledge) there is no *darshanopayoga* (indulgence in perception) and when there is *darshanopayoga* there is no *jnanopayoga*. This belief is known as *Kram Bhavi* or *Ekanter Upayogavad* (the school of gradual or unitary indulgence). Jinabhadragani Kshamashraman was among the supporters of this school.

2. The second belief is that like the light and heat of the sun *Kewal-jnana* and *Kewal darshan* also coexist. Both indulge in their respective subjects simultaneously. The famous logician Acharya Siddhasen Divakar was among the supporters of this school. This belief is famous as *Yugpad Upayogavad* (The school of coexistant indulgence).

3. The third belief is that of the *Abhedavadis* (the school of singularity). According to them *Kewal-jnana* and *Kewal darshan* are one. In other words they are the two faces of the same coin. When the medium of grasping some subject is knowledge or *jnana* the separate existence of perception or *darshan* becomes redundant. Also, only *jnana* is accepted as authentic and not *darshan*. As the *Kewali* has direct and independent experience, his *darshan* is *jnana* only. Acharya Vriddhavadi was among the supporters of this school. This belief is famous as *Abhinna Upayogavad* (the school of Unified Indulgence).

Upadhyaya Yashovijay ji has combined these three different beliefs on the basis of *Nayas*. He says that if we look it from *Riju Sutra naya* the *Ekantar Upayogavad* is correct. From the *Vyavahar naya Yugapad Upayogavad* is correct and from *Sangraha naya Abhed Upayogavad* is correct. In fact, there are no grounds for a difference of opinion on this subject. As *Kewal-jnana* and *Kewal darshan* are beyond comprehension and logic all these views are nothing but variations in efforts of understanding these concepts. This subject has been discussed in details in *Nandi Sutra Churni* (a type of commentary) and its *Tika* (another type of commentary) by Malayagiri.

उपसंहार

CONCLUSION

४३ : *अह सव्वदव्व-परिणाम-भाव-विण्णत्तिकारणमणंतं।*
सासयमप्पडिवाई, एगविहं केवलं नाणं॥

अर्थ–केवलज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य परिमाण, औदयिक आदि भाव अर्थात् वर्ण, गन्ध, रस आदि को जानने का कारण है। वह अनन्त है, शाश्वत है और अप्रतिपाती है। ऐसा केवलज्ञान एक ही प्रकार का है।

43. *Kewal-jnana* is the means of knowing all existing substances and their manifestations and transformations including *Audayik* and other modes (form, smell, taste etc.). It is endless, eternal and indestructible. Such *Kewal-jnana* is of one type only.

●●

परोक्ष ज्ञान
INDIRECT KNOWLEDGE

वाग् योग और श्रुत का वर्णन
VAGYOGA AND SHRUT (SPEECH AND VERBALISATION)

४४ : *केवलनाणेणऽत्थे, नाउं जे तत्थ पण्णवणजोगे।*
ते भासइ तित्थयरो, वइजोगसुअं हवइ सेसं।
से त्तं केवलनाणं
से त्तं नोइन्दियपच्चक्खं।

अर्थ—केवलज्ञान द्वारा सब पदार्थों को देख-जानकर उनमें से जो कुछ वर्णन करने योग्य होता है अर्थात् वाणी द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है उसे तीर्थंकर भगवान अपने प्रवचनों द्वारा प्रतिपादित करते हैं। यही वचनयोग अर्थात् द्रव्य श्रुत होता है, शेष श्रुत अप्रधान होता है।

इस प्रकार केवलज्ञान का विषय सम्पूर्ण हुआ और नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष का प्रकरण भी समाप्त हुआ।

44. After seeing and knowing all substances, *Tirthankar Bhagavan* propagates through his discourse all what is worth describing or which can be expressed through speech. This is called *vachan-yoga* or *dravya* shrut (the combination of thought and speech or the material manifestation of knowledge). All other *shrut* is insignificant.

This concludes the description of *Kewal-jnana* and also *No-indriya pratyaksh*.

विवेचन—तीर्थंकर भगवान अपने केवलज्ञान से अनन्त पदार्थों को अनन्त भावों को जानते-देखते हैं परन्तु वह सभी शाब्दिक अभिव्यक्ति के परे हैं। अतः जो जितना शब्दों में अभिव्यक्त हो सकता वे उतना ही कहते हैं। जैनदर्शन के अनुसार वस्तुतः केवलज्ञानी के प्रवचन का कारण उनका केवलज्ञान नहीं है अपितु वचनयोग है जो भाषा-पर्याप्ति नामक कर्म के उदय

से होता है। यह वाग्योग द्रव्यश्रुत कहलाता है और जो प्राणी सुनते हैं उनके लिए वही भावश्रुत बन जाता है। यही गणधरों द्वारा सूत्रबद्ध श्रुतज्ञान है-यही आगम है।

Elaboration—*Tirthankar Bhagavan* with the help of his *Kewal-jnana* sees and knows infinite things and infinite modes but not all come within the scope of expression. Therefore he tells only what is expressible in words. According to the Jain philosophy the inspiring cause for a discourse by a *Kewal-jnani* is not his omniscience but *vachan yoga* which manifests due to fruition of the karma known as *Bhasha Paryapti*. This *vagyoga* is also called *dravya-shrut* and it becomes *bhava-shrut* (the thought manifestation of knowledge) for those who listen. This alone is the *Shrut-jnana* organised or verbalised by the *Ganadhars*—this is *Agam* or the canons.

परोक्षज्ञान का निरूपण

PAROKSH-JNANA

४५ : *से किं तं परोक्खनाणं?*

परोक्खनाणं दुविहं पन्नत्तं, तं जहा-आभिणिबोहिअनाणपरोक्खं, सुअनाणपरोक्खं च।

जत्थ आभिणिबोहियनाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुअनाणं तत्थ आभिणिबोहियनाणं।

दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं तहवि पुण इत्थ आयरिआ नाणत्तं पण्णवयंति-अभिनिबुज्झइ त्ति आभिणिबोहियनाणं, सुणेइ त्ति सुअं, मइपुव्वं जेण सुअं, न मई सुअपुव्विआ।

अर्थ-प्रश्न-यह परोक्षज्ञान क्या है?

उत्तर-परोक्षज्ञान दो प्रकार का बताया है-आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान।

जहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान है वहाँ पर श्रुतज्ञान भी होता है और जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान।

ये दोनों ही अन्योन्यानुगत हैं अर्थात् एक-दूसरे के साथ रहने वाले हैं। परस्पर अनुगत होने पर भी आचार्य जन इनमें परस्पर भेद का प्रतिपादन करते हैं।

जो सामने आये पदार्थों को प्रमाणपूर्वक समझता है वह आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान है और जो सुना जाता है वह श्रुतज्ञान। श्रुतज्ञान मतिपूर्वक ही होता है। किन्तु मतिज्ञान श्रुतपूर्वक नहीं होता।

45. Question—What is this *Paroksh-Jnana* ?

Answer—*Paroksh-Jnana* is said to be of two types—*Abhinibodhik-jnana* and shrut-*jnana*.

Where there is *Abhinibodhik-jnana* there also is *shrut-jnana* and where there is *shrut-jnana* there also is *Abhinibodhik-jnana*.

They both are interdependent or exist with each other. Even then the *acharyas* detail difference between them. That which understands the presented object with authentication is called *Abhinibodhik-jnana* or *mati-jnana*. And that which is listened is *shrut-jnana*. *Shrut-jnana* is acquired only with *mati* (intellect) but *mati-jnana* cannot be acquired just with *shruti* (hearing).

विवेचन–पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा छठे मन के माध्यम से प्राप्त ज्ञान को परोक्षज्ञान कहते हैं। इसका प्रथम भेद है मतिज्ञान। 'मति' शब्द अज्ञान के लिए भी प्रयुक्त होता है किन्तु आभिनिबोधिक, जो मति का ही दूसरा नाम है, मात्र ज्ञान के लिए है। यह वह ज्ञान है जो सामने आये पदार्थों को इन्द्रिय और मन के द्वारा ग्रहण करता है। श्रुतज्ञान वह है जो शब्द को सुनकर उन्हें समझने में सहायक होता है। ये दोनों परस्पर एक-दूसरे के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकते किन्तु प्रथम मतिज्ञान का होना आवश्यक है। यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसे वस्त्र के अस्तित्व के लिए ताने और बाने दोनों का साहचर्य आवश्यक है फिर भी पहले ताना तन जाने पर ही बाना बुना जा सकता है। अन्य शब्दों में मतिज्ञान कारण है और श्रुतज्ञान उसका कार्य। मतिज्ञान का विषय वर्तमानकालिक वस्तु है और श्रुतज्ञान का विषय तीनों काल होते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरेन्द्रिय तक द्रव्य श्रुत नहीं होता किन्तु भाव श्रुत उनमें भी होता है। (देखें चित्र १६)

Elaboration—The knowledge acquired with the help of five sense organs and mind is known as *paroksh-jnana* or indirect knowledge. Its first category is *mati-jnana*. *'Mati'* is also used for a *jnana* (ignorance) but ***Abhinibodhik***, another name of ***mati***, is only used for *jnana*. It is the knowledge that understands things, brought before, with the help of five sense organs and mind. *Shrut-jnana* is that which understands these things by hearing about them. These two cannot exist without each other but the first requirement is *mati-jnana*. It is exactly same as for the existence of cloth, both warp and woof are necessary but still first the warp is stretched and then only woof can be woven. In other words *mati-jnana* is the cause and *shrut-*

jnana its effect. Information of the present is the subject of mati-*jnana* whereas the subjects of *shrut-jnana* are all the three facets of time. In one sensed to four sensed beings there is no *dravya* (physical) *shrut* but even they have *bhava* shrut (thought). *(See Illustration 16)*

मति और श्रुत के दो रूप
TWO FORMS OF MATI AND SHRUT

४६ : *अविसेसिआ मई मइनाणं च मइअन्नाणं च।*

विसेसिआ सम्मदिट्ठिस्स मई मइनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स मई मइअन्नाणं।

अविसेसिअं सुयं सुयनाणं च सुयअन्नाणं च।

विसेसिअं सुयं सम्मदिट्ठिस्स सुयं सुयनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स सुयं सुयअन्नाणं।

अर्थ–सामान्य रूप से मति दो प्रकार का है–मतिज्ञान और मति-अज्ञान। विशेष रूप से सम्यग्दृष्टि की मति मतिज्ञान है और मिथ्या दृष्टि की मति मति-अज्ञान है। इसी प्रकार सामान्य रूप से श्रुत भी दो प्रकार का है–श्रुतज्ञान और श्रुत-अज्ञान। विशेष रूप से सम्यग्दृष्टि का श्रुत श्रुतज्ञान है और मिथ्यादृष्टि का श्रुत श्रुत-अज्ञान है।

46. Generally speaking *mati* is of two types—*mati-jnana* and *mati-ajnana*. Specifically the *mati* of *samyagdrishti* is *mati-jnana* and that of *mithyadrishti* is *mati-ajnana*. In the same way, generally speaking *shrut* is of two types—*shrut-jnana* and *shrut-ajnana*. Specifically the *shrut* of *samyagdrishti* is *shrut-jnana* and that of *mithyadrishti* is *shrut-ajnana*.

विवेचन–मिथ्यादृष्टि की समझ और प्रवृत्ति विकारग्रस्त होती है। अतः उसके द्वारा ग्रहण किया ज्ञान दुष्प्रवृत्ति के उपयोग में आता है। वह सत्य और मिथ्या दोनों को स्वीकार करता है और सत्य को भी मिथ्या में परिवर्तित कर देता है। अतः मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को अज्ञान कहा है चाहे वह मति हो अथवा श्रुत।

इसके विपरीत सम्यग्दृष्टि पदार्थ के स्वरूप को प्रमाण और नय आदि की अपेक्षा से पहचानता है और तदनुसार सत्य व यथार्थ को ग्रहण करता है तथा मिथ्या और अयथार्थ का त्याग कर देता है। वह मिथ्या में से भी दोहन कर सत्य निकाल लेता है तथा अपने ज्ञान का उपयोग आत्मोन्नति तथा परोपकार के लिए करता है। अतः सम्यग्दृष्टि का ज्ञान ही वस्तुतः ज्ञान कहलाता है चाहे वह मति हो अथवा श्रुत।

मति-श्रुत ज्ञान

१. आभिनिबोधिक ज्ञान–सम्मुख आये हुए पदार्थों को पाँचों ही इन्द्रिय एवं मन की सहायता से जानना-आभिनिबोधिक-मतिज्ञान कहलाता है।

जैसे–कोई चक्षु इन्द्रिय द्वारा शुक आदि का रूप देखता है, श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा वाद्य का शब्द सुन रहा है। घ्राण इन्द्रिय द्वारा फूलों की सुगंध ले रहा है। जिह्वा इन्द्रिय द्वारा आम आदि का रस चख रहा है और हाथ में रखी बर्फ का शीतल स्पर्श भी स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा कर रहा है। इन सबका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा मन तक पहुँच रहा है। यह मतिज्ञान है। (सूत्र ४५)

२. श्रुतज्ञान–शब्द सुनकर या अक्षर पढ़कर मन के द्वारा जो वाच्य पदार्थ का ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है। जैसे–एक को पुस्तक का पाठ करते उच्चारित शब्द सुनाई देता है, यह अक्षर श्रुत है। नगाड़े आदि का शब्द अनक्षर श्रुत में गिना जाता है। दोनों ही श्रुतज्ञान में समाविष्ट हैं। (सूत्र ४५ तथा सूत्र ७३-७४)

MATI-SHRUT-JNANA

1. *Abhinibodhik-jnana*—To know things before one with the help of five sense organs and mind is called abhinibodhik mati-jnana. For example—Seeing form with eyes. Hearing with ears the sound of birds or musical instruments. Smelling with nose the fragrance of flowers. Tasting with tongue the taste of mango juice etc. Experiencing with hands the cold touch of ice. All this knowledge collected through the sense organs is reaching the mind. This is mati-jnana. (45)

2. *Shrut-jnana*—The knowledge about a thing acquired through hearing a sound or reading the alphabets is shrut-jnana. For example—one hears the recited text; this is Akshar shrut. The sound of drums etc. is anakshar shrut. Both are included in shrut-jnana. (45 and 73-74)

सम्यग्दृष्टि का ज्ञान दूसरों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है जबकि मिथ्यादृष्टि का ज्ञान वितण्डा, विकथा, विवाद आदि को प्रेरित करता है और आत्मिक दृष्टि से पतन का कारण बनता है।

यहाँ सहज ही एक संदेह उत्पन्न होता है कि जब ज्ञान-अज्ञान दोनों ही ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं तब सम्यक् मिथ्या का भेद क्यों? इसका मूल कारण है मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय जिसके कारण सत्य मिथ्या बन जाता है और ज्ञान अज्ञान।

Elaboration—The attitudes and understanding of a *mithyadrishti* is perverted. Therefore the knowledge acquired by him is misused. He accepts truth as well as lie and turns truth into a lie. That is why the knowledge of a *mithyadrishti* is called *ajnana* whether it is *mati* or *shrut*.

On the other hand, a *samyagdrishti* understands a thing with reference to its authenticity and view points and accordingly accepts truth and reality and rejects falsity and unreality. He churns falsity and extracts truth out of it and uses his knowledge only for the development of self and others. Therefore, it is only the knowledge of a *samyagdrishti* that is truly called *jnana* whether it is *mati* or *shrut*.

The knowledge of *samyagdrishti* provides guidance to others on the spiritual path whereas the knowledge of *mithyadrishti* only inspires controversy, vituperation, argument etc. and causes spiritual regression.

Here a doubt arises—when *jnana* and *ajnana* both are caused by *Kshayopasham* of the knowledge veiling karma why the division of right and false ? The root cause of this is the fruition of *mithyatva mohaniya karma* (the karma that prevents the true perception of reality and causes affinity for falsity) which turns truth into a lie and *jnana* into *ajnana*.

●●

आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान)
ABHINIBODHIK-JNANA (MATI-JNANA)

४७ : *से किं तं आभिणिबोहियनाणं?*

आभिणिबोहियनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–सुयनिस्सियं च असुयनिस्सियं च।

से किं तं असुयनिस्सियं? असुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं तं जहा–

उप्पत्तिया वेणइया कम्मया पारिणामिया।

बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भइ।

अर्थ–प्रश्न–यह आभिनिबोधिक ज्ञान क्या है?

उत्तर–आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) दो प्रकार का बताया है–श्रुत-निश्रित और अश्रुत-निश्रित।

प्रश्न–अश्रुत-निश्रित क्या है?

उत्तर–अश्रुत-निश्रित चार प्रकार का है–(१) औत्पत्तिकी, (२) वैनयिकी, (३) कर्मजा, और (४) पारिणामिकी। ये चार प्रकार की बुद्धियाँ बताई गई हैं। इनके अतिरिक्त पाँचवाँ भेद उपलब्ध नहीं है।

47. Question—What is this *abhinibodhik-jnana* ?

Answer—*Abhinibodhik-jnana* (*mati-jnana*) is said to be of two types—*shrut nishrit* and *ashrut nishrit*.

Question—What is this *ashrut nishrit*?

Answer—*Ashrut nishrit* is said to be of four types—1. *Autpattiki*, 2. *Vainayiki*, 3. *Karmaja*, and 4. *Parinamiki*. It is said that wisdom is of these four types; a fifth type does not exist.

विवेचन–श्रुत-निश्रित वह है जो श्रुत सुनने के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो। अश्रुत-निश्रित वह है जो बिना श्रुत के स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो। अश्रुत-निश्रित के चार भेदों का संक्षिप्त अर्थ है–

(१) **औत्पत्तिकी**–क्षयोपशम भाव के कारण तथा शास्त्र अभ्यास किये बिना ही जो सहसा व सहज उत्पन्न हो वह औत्पत्तिकी बुद्धि होती है।

(२) वैनयिकी—गुरुजनों की भक्ति-सेवा विनय करने से उत्पन्न हो वह वैनयिकी बुद्धि होती है।

(३) कर्मजा—शिल्पादि कलाओं के निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न हो वह कर्मजा बुद्धि होती है।

(४) पारिणामिकी—लम्बे समय तक निरन्तर चिन्तन-पर्यालोचना से अथवा आयु के परिपक्व होने के परिणाम से जो उत्पन्न हो वह पारिणामिकी बुद्धि होती है।

Elaboration—*Shrut nishrit* means that which is acquired by listening to the *shrut*. *Ashrut nishrit* is that which is acquired naturally without any help from the *shrut*. The four types of *ashrut nishrit* are briefly defined as follows—

1. *Autpattiki*—That which rises suddenly, spontaneously and without studying scriptures is called *autpattiki buddhi.*

2. *Vainayiki*—That which is acquired through devotion for teachers and elders or seniors, by serving them and being humble before them is called *vainayiki buddhi.*

3. *Karmaja*—That which is acquired through regular practice like that of various arts and crafts.

4. *Parinamiki*—That which is acquired through long and continuous contemplation or as a consequence of maturity and experience is called *parinamiki buddhi.*

औत्पत्तिकी बुद्धि का लक्षण

ATTRIBUTES OF AUTPATTIKI BUDDHI

४८ : *उप्पत्तिया बुद्धि—*

पुव्वमदिट्ठ-मस्सुय-मवेइय, तक्खणविसुद्धगहियत्था।
अव्वाहय-फलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम॥

अर्थ—औत्पत्तिकी बुद्धि—जिस बुद्धि के द्वारा बिना देखे और बिना सुने पदार्थों के सम्यक् अर्थ का अभिप्राय तत्काल ग्रहण कर लिया जाता है और जिससे इच्छित फल प्राप्त होता है उसे औत्पत्तिकी बुद्धि कहते हैं।

48. The wisdom that helps understand at once the correct meaning of and the information conveyed by hitherto unseen and unheard of things is called *autpattiki buddhi.*

(१) औत्पत्तिकी बुद्धि के उदाहरण

(1) THE EXAMPLES OF AUTPATTIKI BUDDHI

४९ : *भरह-सिल-मिंढ-कुक्कुड-तिल-बालुय-हत्थि-अगड-वणसंडे।*
पायस-अइआ-पत्ते, खाडहिला-पंचपियरो य ॥१॥
भरह-सिल-पणिय-रुक्खे, खुड्डग-पड-सरड-काय-उच्चारे।
गय-घयण-गोल-खंभे-खुड्डग-मग्गि-त्थि-पइ-पुत्ते ॥२॥
महुसित्थ-मुद्दि-अंके नाणए भिक्खु चेडगनिहाणे।
सिक्खा य अत्थसत्थे इच्छा य महं सयसहस्से ॥३॥

अर्थ-(१) भरत, शिला, मेंढा, कुक्कुट, तिल, बालुका, हस्ती, अगड कूप, वन-खण्ड, पायस (खीर), अतिग, पत्र, खाडहिला (गिलहरी), पाँच पिता।

(२) भरत, शिला, पणित (प्रतिज्ञा), वृक्ष, खुड्डग (अंगूठी), पट (कपड़ा), सरट (गिरगिट), काक, उच्चार (मल परीक्षा), गज, घयण (भांड), गोलक, खम्भ, क्षुल्लक, मार्ग, स्त्री, पति, पुत्र।

(३) मधुछत्र, मुद्रिका, अङ्क, नाणक, भिक्षु, चेटक-निधान, शिक्षा-धनुर्वेद, अर्थशास्त्र-नीतिशास्त्र, इच्छामहं, शत सहस्र।

49. (1) Bharat (name of a person), The Rock, The Ram, The Cock, Til, Sand, The Elephant, The Well, The Forest, *Kheer* (a dessert cooked with rice and milk), *Atig*, Leaves, The squirrel, Five Fathers. (2) Bharat, The Rock, The Condition, The Tree, The Finger-ring, The Cloth, The Chemeleon, The Crow, Stool Test, The Elephant, The Jester, The Ball, The Pillar, The *Kshullak*, The Path, The Woman, The Husband, The Son. (3) The Bee-hive, The Seal, The Number, *Nanak*, The Mendicant, *Chetak-nidhan*, Education of Archery, Economics, *Icchamaham*, Hundred Thousand.

विवेचन-आगमों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में तत्काल उत्पन्न बुद्धि या सूझ-बूझ के अनेक कथानक मिलते हैं। इस सूत्र में औत्पत्तिकी बुद्धि के उदाहरणस्वरूप ऐसे कुछ कथानकों के नाम संकलित किये हैं। इन कथानकों से यह विषय स्पष्ट रूप से समझ में आता है-

(१) भरत-उज्जयिनी नगरी के पास नटों का एक गाँव था जिसमें भरत नाम का एक नट रहता था। उसकी पत्नी का देहान्त हो चुका था और वह अपने पीछे एक पुत्र छोड़ गई थी

जिसका नाम रोहक था। बालक होनहार और प्रखर बुद्धि था। अपने अवयस्क बालक की देखभाल तथा घर-गृहस्थी की सँभाल करने के लिए भरत ने दूसरा विवाह कर लिया।

भरत की नई पत्नी दुष्ट स्वभाव की थी। वह रोहक को कष्ट देती थी। तंग आकर एक दिन रोहक बोला—"माँ ! आप मुझसे दुर्व्यवहार करती हैं, क्या यह आपके लिए उचित है ?" यह सुनते ही विमाता आगबबूला हो गई और चिल्लाकर बोली—"दुष्ट ! छोटे मुँह बड़ी बात करता है। ऐसे दुष्ट के साथ तो जैसे मैं ठीक समझूँगी, व्यवहार करूँगी। तुझसे जो बन पड़े वह कर ले।"

रोहक के मन में विमाता की बात चुभ गई। वह बदला लेने की ठानकर उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन जब वह अपने पिता के पास सोया हुआ था तब अचानक उठकर बोला—"पिताजी ! देखिए, कोई व्यक्ति भागा जा रहा है।" भरत के मन में संदेह उत्पन्न हो गया कि उसकी स्त्री सदाचारिणी नहीं है। धीरे-धीरे वह पत्नी से विमुख हो गया और उससे बोलना तक बन्द कर दिया।

रोहक की विमाता ताड़ गई कि हो न हो यह रोहक की करतूत है कि उसने अपने पिता को भड़का दिया है। उसे सबक मिल गया। वह रोहक से स्नेह भरे स्वर में बोली—"बेटा ! मुझसे भूल हुई थी। भविष्य में मैं तेरे साथ मधुर व्यवहार रखूँगी।" रोहक का बाल सुलभ क्रोध शान्त हो गया और वह अपने पिता का भ्रम मिटाने का अवसर खोजने लगा। एक दिन चाँदनी रात में वह अपनी ही परछाईं की ओर इंगित कर बोला—"पिताजी ! देखिये कोई व्यक्ति भागा जा रहा है।" भरत ने क्रोधित हो अपने हाथ में तलवार उठाई और एक कदम आगे बढ़ा, पूछा—"कहाँ है वह दुष्ट ?" रोहक ने फिर अपनी छाया की ओर इशारा करके कहा—"यह रहा।"

छाया देख भरत को अपनी भूल मालूम पड़ी, अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ और उसने पत्नी से क्षमा माँग पूर्ववत् मधुर व्यवहार आरम्भ कर दिया। बुद्धिमान् रोहक ने सोचा—विमाता अन्ततः विमाता ही है। कहीं मेरे व्यवहार से क्रुद्ध हो बदला लेने की नीयत से किसी दिन मुझे विष न दे डाले। अतः वह सदा अपने पिता के साथ ही रहने लगा। उन्हीं के साथ खाता, पीता व सोता।

एक दिन किसी कार्यवश भरत को उज्जयिनी जाना था। रोहक भी पिता के साथ गया। बालक रोहक नगरी का वैभव और सौन्दर्य देख मुग्ध हो गया और घूम-घूमकर नगरी का पूरा मानचित्र अपनी स्मृति में बैठा लिया। जब गाँव लौटने का समय हुआ तो भरत ने रोहक को साथ लिया और नगरी के बाहर निकला। नगरी के निकट ही क्षिप्रा नदी के तट पर आते-आते भरत को कुछ याद आया कि वह कुछ भूल गया है, और वह रोहक को नदी तट पर बैठाकर पुनः नगरी में गया।

रोहक नदी के तट की बालू में खेल ही खेल में उज्जयिनी का मानचित्र बनाने लगा। कुछ ही समय में उसने महलों सहित सम्पूर्ण नगरी का मानचित्र जैसा का तैसा बना दिया। संयोगवश उसी समय नगरी का राजा घूमते हुए उधर आया। चलते-चलते वह रोहक के निकट पहुँचा और जैसे ही मानचित्र पर पैर रखने को हुआ रोहक ने उसे रोक दिया—"महाशय ! इस मार्ग से न जायें।"

राजा चौंककर बोला–"क्यों ? क्या बात है भाई ?"

रोहक–"महाशय, यह राजभवन है। यहाँ बिना राजाज्ञा के कोई प्रवेश नहीं कर सकता।"

यह सुन राजा ने कौतूहलपूर्वक रोहक द्वारा बनाये मानचित्र को ध्यान से देखा। वह ठगा-सा रह गया और सोचने लगा–यह छोटा-सा बालक बड़ा मेधावी लगता है। इसने नगर-भ्रमण करके ही पूरा मानचित्र बना दिया। मेरे चार सौ निन्यानवे मंत्री हैं। यदि उनका मुखिया इस बालक जैसा कुशाग्र बुद्धि वाला महामंत्री हो तो राज्य का कितना विकास हो। किन्तु पहले इसकी परीक्षा लेनी चाहिए। राजा ने रोहक का परिचय व गाँव का नाम पूछा और नगर की ओर लौट गया। कुछ देर में भरत लौट आया और रोहक को साथ ले अपने गाँव चला आया।

राजा यह घटना भूला नहीं और उसने रोहक की बुद्धि-परीक्षा का प्रबन्ध कर दिया।

(२) शिला–राजा ने सबसे पहले रोहक के गाँव वालों को बुलाया और कहा–"तुम लोग मिलकर एक ऐसा मण्डप बनाओ जो राजा के योग्य हो और उसे गाँव के बाहर पड़ी विशाल शिला से ढको। पर ध्यान रहे शिला को वहाँ से न उखाड़ा जाये।"

राजा की आज्ञा सुन नट अपने गाँव लौट आये और चिन्ता में पड़ गये–"मण्डप तो बना देंगे पर शिला को उठाए बिना मण्डप पर कैसे रखेंगे।" यह विचार-विमर्श चल ही रहा था कि रोहक अपने पिता को भोजन के लिए बुलाने वहाँ पहुँचा। उसने नटों की बातें सुनी और उनकी चिन्ता को तत्काल समझ गया। गाँव के बड़ों की ओर देखकर वह बोला–"आप इतनी छोटी-सी बात को लेकर व्यर्थ चिन्ता कर रहे हैं। मैं अभी आपकी चिन्ता मिटा देता हूँ।"

हैरान हो मुखिया ने बालक रोहक से उपाय पूछा। रोहक ने समझाया–"सर्वप्रथम आप शिला से कुछ दूर चारों ओर की भूमि को खोद डालो। शिला के चारों ओर उसके नीचे ऐसे स्तम्भ खड़े कर दो जिन पर शिला टिक जाए। इसके बाद शिला के नीचे की मिट्टी निकाल दो। अंत में स्तम्भों को जोड़ती हुई सुन्दर दीवारें खड़ी कर दो। इस प्रकार मंडप भी तैयार हो जाएगा और शिला को हटाना भी नहीं पड़ेगा।"

गाँव वाले बड़े प्रसन्न हुए और उसके निर्देशानुसार सुन्दर मण्डप तैयार कर दिया। कार्य पूर्ण होते ही वे गर्व सहित राजा के पास गए और सूचना दी कि "उनके कथनानुसार मंडप तैयार हो गया है। जब चाहे निरीक्षण कर लें।"

राजा ने आकर मंडप देखा और प्रसन्न होकर पूछा–"तुम्हें मंडप बनाने की यह विधि किसने सुझाई ?"

ग्रामीणों ने एक स्वर में रोहक का नाम लिया और उसकी बुद्धि तथा चतुराई की प्रशंसा की। राजा को इसी उत्तर की अपेक्षा थी। उसने भी रोहक की प्रशंसा की और लौटकर दूसरी परीक्षा की योजना बनाने लगा।

औत्पत्तिकी बुद्धि के दृष्टान्त

रोहक की औत्पत्तिकी वुद्धि–

१. राजा का आदेश–सैनिकों ने गाँव वालों को राजा का आदेश सुनाया कि इस शिला को बिना हटाये सभा-मण्डप बना दिया जायें।

२. शिला-मण्डप–तब नटपुत्र रोहक ने बताया–शिला को चारों तरफ से खोदकर स्तम्भ लगाकर नीचे की भूमि खोद दो। यह मण्डप बनकर तैयार हो गया।

३. भयभीत मेंढ़ा–राजा ने आदेश दिया कि इस मेंढ़े को खूब खिलाओ, परन्तु वजन एक रत्तीभर भी नहीं बढ़ना चाहिए। गाँव वालों ने रोहक से पूछकर सामने पिंजरे में वाघ लाकर वाँध दिया। उसके भय से मेंढ़ा सदा भयभीत रहने लगा। वजन नहीं वढ़ा।

४. कुक्कुट युद्ध–फिर राजा ने आज्ञा दी–हमारे अकेले मुर्गे को लड़ना सिखाओ। रोहक ने बताया–मुर्गे को दर्पण के सामने अकेला छोड़ दो। अपनी छाया से ही लड़ता हुआ लड़ाकू वन जायेगा।

यह सब रोहक की औत्पत्तिकी वुद्धि के कारनामे थे। (सूत्र ४९ का दृष्टान्त)

EXAMPLES OF AUTPATTIKI BUDDHI

. . . of Rohak—

1. *King's order*—The soldiers conveyed—Make a pavilion without shifting the rock.

2. *The pavilion*—Rohak advised—Dig all around the rock, erect pillars to support the rock and excavate the sand from under the rock. The pavilion is ready.

3. *Ram under terror*—The king ordered to amply feed the ram. But its weight should not increase. Under Rohak's instructions, the villagers brought a caged tiger and placed it before the ram. Terrorized by the tiger the ram did not add to its weight in spite of being fed amply.

4. *The fighting cock*—The next order of the king was to train his cock to fight without the aid of another cock. Rohak advised to leave the cock before a thick mirror. It will become a fighting cock with the help of its own image.

These were the miracles of Rohak's autpattiki Buddhi. (Example from 49)

(३) मिण्ढ (मेंढा)–रोहक की दूसरी परीक्षा के लिए राजा ने गाँव वालों के पास एक मेंढा भेजा और आज्ञा दी कि पन्द्रह दिन तक मेंढे को सँभालकर रखा जाए परन्तु जब उसे लौटाया जाए तो उसका भार न बढ़ा हुआ हो न घटा हुआ।

गाँव वाले फिर चिन्तित हो गए–"यदि इसे अच्छा भोजन दिया तो हृष्ट-पुष्ट हो जाएगा और भूखा रखेंगे तो क्षीण हो जाएगा।" जब उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा तो उन्होंने रोहक को बुलाकर पूछा। रोहक ने झट से उपाय सुझा दिया और तदनुसार एक बाघ को पकड़कर पिंजरे में बंद कर दिया। उस पिंजरे के सामने मेंढे को एक पेड़ से बाँध दिया और उसे पेटभर अच्छा भोजन दिया गया। पन्द्रह दिन बाद मेंढे को राजा के पास भेज दिया। राजा ने जब मेंढे को तुलवाया तो यह देख चकित रह गया कि मेंढे के भार में तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ था। तब उसने उपाय बताने वाले के विषय में पूछा। यह चतुराई भी रोहक की देन थी यह जानकर राजा संतुष्ट हुआ।

(४) कुक्कुट (मुर्गा)–कुछ दिनों के बाद राजा ने नटों के पास एक मुर्गा भेजा और यह कहलवाया कि यह मुर्गा लड़ना नहीं जानता। इसे लड़ना सिखाया जाए किन्तु किसी भी अन्य मुर्गे का उपयोग नहीं किया जाए।

इस बार भी गाँव वालों की असमर्थता देख रोहक ने उपाय बताया। उसने एक बड़ा और मोटा दर्पण मँगवाकर मुर्गे के सामने रखवा दिया। इस दर्पण में जब मुर्गे ने झाँका तो उसे एक अन्य मुर्गा दिखाई दिया। पहले तो वह चकित हुआ और फिर धीरे-धीरे चोंच मार-मारकर लड़ने लगा। कुछ ही दिनों में वह पूरी तरह लड़ाकू बन गया। राजा यह सब समाचार जान प्रसन्न हुआ। (देखें चित्र १७)

Elaboration—In the *Agams* are found numerous stories about spontaneous wisdom and intelligence. In this verse are listed titles of some such stories given as examples of *autpattiki buddhi*. The topic can be easily and clearly understood with the help of these stories—

1. Bharat—Near the city of Ujjaini there was a village of acrobats, where lived an acrobat named Bharat. Leaving a son behind, his wife had died. His name was Rohak. He was a prodigious and sharp witted child. To provide proper care to the infant and look after the household, Bharat married again.

Bharat's new wife was a wicked woman and she tortured Rohak. Fed up with this treatment Rohak one day said—"Mother ! You ill-treat me, is it becoming of you ?" The step-mother got infuriated at these words and shouted—"Rascal ! So small and still a loud mouth. I will treat a rascal like you as I wish. Do what you like."

The words of his step-mother acted like a sting and Rohak resolved to take revenge. He waited for an opportune moment. One night when he was sleeping near his father, he suddenly got up and said—"Father, look ! Someone is running away." A shadow of doubt crept into Bharat's mind that his wife was not true to him. Slowly he distanced from his wife and even stopped talking to her.

Rohak's step-mother understood that all this was his doing. He had provoked his father against her. She got her lesson. She spoke to Rohak affectionately—"Son, I had committed a mistake. In future I will improve my behaviour and shower my love on you." Rohak's childish anger was pacified and he looked for an opportunity to remove his father's doubt. One moonlit night he pointed at his own shadow and said—"Father ! Look someone is running away." Bharat was filled with anger. He drew out his sword, took a step and asked—"Where is that rogue?" Rohak innocently pointed at his own shadow and said—"Here."

When Bharat saw the shadow he realised his mistake. He repented on his behaviour and asked his wife's pardon. The couple resumed the normal marital behaviour. Intelligent Rohak thought—"A step-mother is after all a step-mother. She may get angry at me due to some mistake of mine and may poison me some day to take revenge." Therefore he spent all his time with his father. He ate with his father and slept with him as well.

One day Bharat had to go to Ujjaini on some errand. Rohak also went with him. The little boy was enchanted with the beauty and grandeur of the city and roaming around the streets he memorised the plan of the city. When it was time to return home Bharat took Rohak with him and came out of the city. When they reached the banks of the nearby Kshipra river, Bharat remembered that he had forgotten something. He asked Rohak to sit down at the riverbank and returned to the city.

Rohak started playing with the sand and started making a model of Ujjaini. Soon he made a complete scale model of the city including its palaces. Coincidentally the king passed that way. When he arrived where Rohak had made the city in the sand and was about to step on the model Rohak stopped him—"Sir ! Please don't step on this road."

Taken by surprise the king asked, "Why ? What is the matter son ?"

Rohak—"Sir ! This is the king's palace. Nobody is allowed to enter without the king's permission."

With curiosity the king carefully looked at the model made by Rohak. He was astonished at what he saw, and thought—"This little boy is highly intelligent. He has wandered around the city and made this scale model. I have 499 ministers. If I have a sharp witted prime minister as their chief my kingdom will make tremendous progress. But first I should test him." The king inquired about the boy's name and address and returned to the city. A little later Bharat came and left for his village with Rohak.

The king did not forget this incident and made necessary arrangements for assessing Rohak's wisdom.

2. The Rock—First of all the king summoned the villagers from Rohak's village and asked them to make such a pavilion that suits the king's grandeur and then cover it with the giant rock lying outside the village. But the condition is that the rock should not be dug out from that place.

The acrobats returned to there village and were deeply worried—"There is no problem in erecting a pavilion but how to place the rock over it without lifting it up." While they were deliberating thus, Rohak arrived there to call his father for dinner. He heard the exchange between the elders and at once understood there problem. Looking at the elders he said—"You are unnecessarily bothering yourselves with this small problem. I will free you of your worries just now."

The astonished chief asked boy Rohak about his solution. Rohak explained—"First of all you clear some land by digging out the sand around the rock. Then erect strong pillars under its edges all around. The pillars should be strong enough to take the weight of the rock. Now excavate out all the sand from under the rock and fill the gaps between the pillars with beautifully designed walls. The pavilion will be ready without removing the rock from where it rests."

The villagers were pleased. They constructed a beautiful pavilion following *Rohak's* instructions. When the job was completed they

went to the king and with pride informed him that they had made a pavilion following the king's instructions. He could come and inspect it at his convenience.

The king came and saw the pavilion and was much pleased. He asked—Who advised you how to make this pavilion ?"

The villagers uttered Rohak's name in one voice and acclaimed his wisdom and intelligence. The king expected this reply. He also praised Rohak and returned to plan another test.

3. **The Ram**—For Rohak's second test the king sent a ram to the villagers with instructions that it should be kept in the village with all necessary care so that when it is returned it should neither have gained nor lost any weight.

The villagers again got worried—If we give it rich food it will gain weight and if not it will loose." When they failed to find a solution they called Rohak and asked his advise. Rohak at once provided a solution. Accordingly a tiger was caught and put in a cage. In front of the cage the ram was tethered to a tree and fed richly and in abundance. A fortnight later the ram was sent back to the king. When the king got the ram weighed he was surprised to see that there was no change in its weight. When he asked about the person who did the trick, he was pleased to know that this clever solution was also provided by Rohak.

4. **The Cock**—A few days later the king sent a cock to the villagers with a message that it does not fight. It should be trained to fight but without using another cock.

This time also Rohak provided the solution when he saw the elders unable to find one. He arranged for a large and thick mirror and placed it before the cock. When the cock looked into the mirror it found another cock looking back at it. At first it was surprised but soon it started pecking at its own image. In a few days it became a fully trained fighting cock. The king was pleased to get the news. *(See Illustration 17)*

(५) तिल–कुछ दिन बीते तो राजा ने नटों को अपने दरबार में बुलाया और तिलों के एक बड़े-से ढेर को इंगित कर कहा–"इस ढेर के तिलों को गिने बिना ही बताना है कि ये कितने तिल हैं। अधिक समय नहीं लगना चाहिए।"

नट किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। तत्काल एक व्यक्ति को रोहक के पास दौड़ाया। रोहक ने उसे समझाकर वापस भेज दिया। लौटकर उसने कहा–"महाराज, हम गणित के विद्वान् नहीं हैं। तिलों की संख्या इतनी विशाल है कि उसे कहना हमारे लिए संभव नहीं है। फिर भी हम उस संख्या को उपमा देकर आपको बताते हैं–उज्जयिनी नगरी की सीध में ऊपर आकाश का जो भाग है उसमें जितने तारे दिखाई देते हैं ठीक उतनी ही संख्या इन तिलों की है।" रोहक की बुद्धिमत्ता से एक बार पुनः राजा प्रभावित हुआ।

(६) बालुक–राजा को रोहक की इन परीक्षाओं में आनन्द आने लगा। इस बार उसने नटों से कहा–"तुम्हारे गाँव के बाहर जो टीले के टीले बालू है वह बहुत सुन्दर है। एक काम करो। उस बालू की एक लम्बी रस्सी बनाकर हमें ला दो।"

इस बार तो नटों के प्राण ही निकल गए। ऐसा असंभव काम तो शायद रोहक के बस का भी न हो। फिर भी वे रोहक के पास समस्या के निदान के लिए गए। रोहक सीधासादा बुद्धिमान् ही नहीं चतुर भी था। उसने तत्काल एक उपाय बता दिया।

नटों का मुखिया राजा के पास आकर भरे दरबार में बोला–"महाराज ! हम तो नट हैं। बाँसों और रस्सियों पर नाचते हैं। रस्सी बनाना तो हमें नहीं आता पर हम यह अवश्य जानते हैं कि रस्सियाँ अनेक प्रकार की बनावट की होती हैं। हम पूरी लगन से आपकी इच्छापूर्ण करने को तत्पर हैं। आप बस इतना-सा कष्ट कीजिए कि अपने भण्डार से रेत की रस्सी का एक छोटा-सा टुकड़ा नमूने का हमें दिलवा दीजिए जिससे हम वैसी की वैसी रस्सी बनाकर ले आवें।"

राजा निरुत्तर हो गया और रोहक की चतुराई पर मुग्ध भी।

(७) हस्ती–तत्पश्चात् एक दिन राजा ने एक बूढ़े मरणासन्न हाथी को नटों के गाँव में भेज दिया। आज्ञा दी कि "उस हाथी की भली प्रकार सेवा की जाए और प्रतिदिन क्षेम-कुशल के समाचार भेजे जाएँ। जिस दिन किसी ने यह समाचार दिया कि हाथी मर गया है, सबको दण्ड दिया जाएगा।"

भयभीत गाँव वाले फिर रोहक के पास पहुँचे। रोहक ने सारी बात समझकर आश्वासन दिया–"आप लोग हाथी को खुराक देते रहें। बाकी जो होगा वह मैं ठीक कर लूँगा।" संध्या को हाथी को यथोचित श्रेष्ठ आहार दिया गया किन्तु फिर भी वह रात नहीं निकाल सका। लोग डर गए। किन्तु रोहक ने आकर उन्हें ढाढ़स बँधाई और आवश्यक निर्देश दे दिए।

गाँव वाले राजा के पास जाकर बोले–"महाराज ! आज हाथी न कुछ खाता है, न पीता है, न उठता है और न ही कोई चेष्टा करता है। ऐसा लगता है कि वह साँस भी नहीं ले रहा।" राजा ने क्रोध दर्शाकर ऊँचे स्वर में कहा–"तो क्या हाथी मर गया?" नट बोले–"प्रभु ! हम ऐसा कैसे कह सकते हैं, यह बात तो आप ही कह सकते हैं।"

राजा एक बार फिर रोहक की कुशाग्र बुद्धि से चमत्कृत हो चुप रह गया। गाँव वाले प्रसन्न हो लौट आए।

(८) अगड-कूप–फिर एक अवसर देख राजा ने नटों के पास एक संदेश भेजा–"तुम्हारे गाँव के कुएँ का जल बड़ा मीठा और शीतल है। उस कुएँ को हमारे पास भेज दो अन्यथा दण्ड के भागी बनोगे।"

राजा की ऐसी असंभव-सी माँग ने गाँव वालों को एक बार फिर भयभीत कर दिया। किन्तु उनके पास रोहक का सहारा था। उसी से उपाय पूछा। वे राजा के पास पहुँचे और बोले–"महाराज ! आप की आज्ञानुसार हमने अपने कुएँ के पास जा उसे नगर में आपके पास आने को बहुत समझाया। किन्तु वह बहुत ही संकोची और भीरू है, साथ ही शंकालु भी। वह हम पर विश्वास करने को ही तैयार नहीं है कि आप उसे बुला रहे हैं। आपसे अनुरोध है कि नगर के किसी कुएँ को हमारे गाँव में ग्राम-कूप को समझाने भिजवा देवें। हमें पूरा विश्वास है कि ग्राम-कूप अपने सजातीय बंधु की बात पर विश्वास कर तत्काल उसके साथ यहाँ चला आएगा।" राजा मुस्कराकर चुप रहा। वह समझ गया यह सब रोहक की चतुर बुद्धि का खेल है।

इस प्रकार हर परीक्षा के साथ राजा का रोहक के प्रति आकर्षण बढ़ता गया और उसे आनन्द आने लगा।

(९) वन-खण्ड–कुछ दिनों का अन्तर देकर राजा ने एक और आज्ञा भेजी–"तुम्हारे गाँव के पूर्व में जो वन-खण्ड है उसे पश्चिम में कर दो।"

गाँव वाले सदा की तरह फिर रोहक की शरण में गए। उसने कहा–"यह तो बच्चों का खेल है। अपना गाँव तो छोटा-सा है। डेरा-डण्डा उठाकर हम गाँव को ही वन के पूर्व में बसा देते हैं। वन-खण्ड स्वतः हमारे पश्चिम में हो जाएगा। नया गाँव बसाकर राजा को सूचना भेज दी गई कि उसकी आज्ञा का पालन कर दिया गया है। राजा ने आकर देखा और मन ही मन रोहक की प्रशंसा कर लौट गया।

(१०) पायस–एक दिन अनायास ही राजा ने नटों के मुखिया को बुलाकर आज्ञा दी–"बिना आग के खीर पकाकर हमारे लिए भेजो।"

नटों ने फिर रोहक का सहारा लिया। उसने बताया–"चावलों को पहले पानी में भिगोकर रख दो फिर उन्हें निकालकर दूध से भरी देगची में डाल दो। चूने का एक ढेर बना उसमें डेगची को रखने की जगह बनाओ और डेगची को जमाकर रख दो। फिर चूने में पानी डाल दो। चूने और पानी के मेल से उत्पन्न तीव्र ताप से खीर पक जाएगी।"

गाँव वालों ने रोहक के बताए उपाय से खीर बनाकर राजा के पास भेज दी। राजा स्वादिष्ट खीर खा आनन्दित हुआ। जब उसने खीर बनाने का उपाय सुना तो रोहक की कुशाग्रता पर मोहित हो गया।

(११) अतिग–अगली बार राजा ने रोहक को ही अपने पास बुलाकर कहा–"मेरी आज्ञा का पालन करने वाला बालक मेरे निर्देशानुसार मेरे पास आवे। आते समय इन नियमों का पालन

करे–वह न शुक्ल पक्ष में आवे न कृष्ण पक्ष में, न दिन में आवे न रात में, न धूप में आवे न छाया में, न आकाशमार्ग से आवे न भूमि से, न मार्ग से आवे और न उन्मार्ग से, न स्नान करके आवे और न ही बिना स्नान किए। किन्तु उसे आना अवश्य है।"

राजा की यह असंभव-सी नियमावली सुन सारी राज्यसभा में सन्नाटा छा गया। सब यही सोच रहे थे कि इस नियम से राजा के पास आना तो वयस्क और अनुभवी व्यक्ति के लिए भी संभव नहीं फिर बालक की तो बात ही क्या। किन्तु रोहक निश्चिन्त था। वह सहज भाव से अपने गाँव लौट गया।

अगली अमावस्या और एकम के संधि समय से कुछ पूर्व उसने कंठ तक स्नान किया और संध्या के समय सिर पर चालनी का छत्र धारणकर, एक मेंढे पर बैठकर गाड़ी के पहियों के बीच के मार्ग से राजा के पास चल दिया। राजा को भेंट देने हेतु रास्ते में से मिट्टी का एक ढेला उठा लिया।

राजा के पास पहुँच उसने यथोचित रीति से अभिवादन किया और बताया कि किस प्रकार उसने राजा के बताए नियमों का पालन किया इसके बाद उसने राजा को मिट्टी का ढेला भेंट किया। राजा ने चकित हो पूछा–"यह क्या है?"

रोहक ने विनयपूर्वक उत्तर दिया–"महाराज ! आप पृथ्वीपति हैं, अतः मैं आपकी सेवा में पृथ्वी लाया हूँ।"

राजा प्रसन्न हुआ और उसने रोहक को अपने पास रहने को कहा। गाँव वाले प्रसन्न होकर लौट गए। रात में राजा ने रोहक को अपने निकट ही सुला लिया। दूसरे प्रहर में राजा की नींद खुली तो उसने कहा–"रोहक ! जाग रहे हो या सो रहे हो?

रोहक ने तपाक से उत्तर दिया–"जाग रहा हूँ महाराज !"

"क्या सोच रहे हो?"

"मैं सोच रहा हूँ कि बकरी के पेट में गोल-गोल मींगनियाँ कैसे बन जाती हैं?"

राजा को कोई उत्तर नहीं सूझा तो उसने रोहक से ही पूछा–"क्या सोचा? कैसे बनती हैं?"

"महाराज ! बकरी के पेट में संवर्त्तक नामक एक विशेष प्रकार की वायु होती है, उसी के प्रभाव से मींगनियाँ गोल बन जाती हैं।" यह कहकर रोहक सो गया।

(१२) पत्ते–रात्रि के तीसरे प्रहर में राजा ने फिर पुकारा–"रोहक जाग रहे हो?"

"जाग रहा हूँ, स्वामी !"

"क्या सोच रहे हो?"

"मैं सोच रहा हूँ कि पीपल के पत्ते का डंठल बड़ा होता है या शिखा?"

राजा संशय में पड़ गया। उसने रोहक से पूछा–"क्या निर्णय किया?"

"जब तक शिखा का कुछ भाग सूखता नहीं तब तक दोनों बराबर होते हैं।" उत्तर देकर रोहक फिर सो गया।

(१३) गिलहरी (खाड़हिला)–चौथे प्रहर में फिर राजा ने पुकारा–"रोहक ! क्या सोच रहे हो?"

"महाराज, गिलहरी की पूँछ उसके शरीर से बड़ी होती है या छोटी?"

"क्या समझ में आया?"

"राजन्, दोनों बराबर होते हैं।"

(१४) पाँच पिता–रात बीत गई। पौ फटने पर जब मंगल वाद्य बजने लगे तो राजा की नींद टूटी किन्तु रोहक गहरी नींद में सोया रहा? राजा के पुकारने पर भी जब वह नहीं उठा तो राजा ने अपनी छड़ी से उसे कोंचा। रोहक जागा तो राजा ने फिर पूछा–"क्यों रोहक ! अब क्या सोच रहे हो?"

"महाराज ! मैं सोच रहा था कि आपके पिता कितने हैं?"

यह अनर्गल बात सुन राजा को पहले तो क्रोध आया पर उसे रोहक की बुद्धिमत्ता पर विश्वास हो चुका था, अतः शांत होकर पूछा–"तुम्हीं बताओ मेरे कितने पिता हैं?"

रोहक ने गंभीर स्वर में कहा–"महाराज ! आपके पाँच पिता हैं।

राजा ने आश्चर्य के साथ पूछा–"क्या? बताओ कैसे?"

रोहक बोला–"एक तो वैश्रवण (कुबेर), क्योंकि आप कुबेर के समान उदार चित्त हैं। दूसरा पिता है चाण्डाल, क्योंकि शत्रुओं के लिए आप चाण्डाल के समान क्रूर हैं। तीसरा है धोबी, क्योंकि जैसे धोबी गीले कपड़े निचोड़कर सारा पानी निकाल देता है वैसे ही आप भी राजद्रोही तथा देशद्रोहियों का सर्वस्व हर लेते हैं। चौथा है बिच्छू, क्योंकि बिच्छू जैसे डंक मारकर दूसरों को पीड़ा देता है वैसे ही छड़ी की नोंक से कोंचकर आपने मुझे पीड़ा पहुँचाई है और आपके पाँचवें पिता हैं आपके अपने पिता, पूर्व महाराज, क्योंकि आप उनके ही समान न्यायपूर्वक प्रजा का पालन कर रहे हैं।"

राजा इस विश्लेषण को सुन दंग रह गया। नित्य क्रियाओं से निवृत्त हो वह अपनी माता के पास गया और प्रणाम कर रोहक की कही बातें बताईं। राजमाता ने कहा–"पुत्र ! संभवतः रोहक ठीक ही कहता है। यदि मेरा विकारपूर्वक किसी ओर देखना तेरे संस्कारों का कारण है तो रोहक की बताई बातें ठीक हैं। जब तू गर्भ में था तब एक दिन मैं कुबेर की पूजा करने गई थी। लौटते समय मार्ग में एक धोबी और एक चाण्डाल को देखा। महल में पहुँची तो एक कोने में बिच्छू युगल को रति-क्रीड़ा में संलग्न देखा। इस पूरे समय में मेरा मन विकारी अवस्था में था

और वैसी ही भावनाएँ मन में उठ रही थीं। उन्हीं का प्रभाव तुझ पर हुआ है। वैसे तुम्हारे जनक एक ही हैं।"

राजा रोहक की अद्‌भुत बुद्धि के चमत्कारों से अभिभूत हो गया। राज्यसभा में पहुँच उसने रोहक को महामंत्री के पद पर नियुक्त कर दिया।

5. **Sesame Seeds**—When some days passed the king called the acrobats to his court and asked pointing at a large heap of sesame seeds—"Without counting and taking much time tell me how mane seeds are there in this heap."

The acrobats were dumb struck. They at once sent a messenger to Rohak. He sent the messenger back with necessary instructions. On reaching the court the messenger said to the king—"Sire, we have very little knowledge of arithmetic. The number of seeds in this heap is so large that it is beyond the numbers we know. However, we can convey it to you by using a metaphor. The total number of stars that can be seen in the patch of sky right above the city of Ujjaini is exactly equal to the number of seeds in this heap." The king was once again impressed by Rohak's wisdom.

6. **Sand**—The king started enjoying these tests he arranged for Rohak. This time he asked the acrobats—"The sand of the dunes outside your village looks beautiful. Do one thing, make a long rope of that sand and bring it for me."

This time the acrobats were filled with fear for their life. This impossible task appeared to be even beyond Rohak's wisdom. However, they still went to Rohak for solution. Rohak was not just a simple minded intelligent person, he was clever as well. He at once gave them a solution.

The chief of the acrobats went to the king and submitted in presence of all his courtiers—"Sire ! We are acrobats and can only perform acrobatics on bamboo and ropes. We do not know how to make ropes, but we know that ropes come in many designs. We are ready to follow your command in all earnestness but you will have to take a little trouble. Please arrange for a small piece of sample of a rope made of sand so that we may copy the design and make a similar rope for you."

The king was at a loss to find words in reply. He was all praises for Rohak's cleverness.

7. **The Elephant**—After this the king one day sent an old elephant, who was about to die, to the village of acrobats. He also sent instructions that the villagers should take proper care of the elephant and report about it's well being every day. The day anyone gave the news that the elephant had died all the villagers will be punished.

Filled with fear the villagers once again came to Rohak. He listened everything and gave them assurance—"You just regularly feed the elephant. I will take care of everything." In the evening the elephant was given best suitable diet for it, but still it could not pass the night. The villagers became afraid. But Rohak came and gave them necessary instruction after reassuring them.

The villagers went to the king and informed—"Sire ! The elephant is neither eating nor drinking anything, it is neither standing nor making any other movement. It appears that it is not even breathing." The king, displaying a mock anger, uttered in high pitched voice—"Has the elephant died ?" The acrobats humbly said—"Your excellency, how can we say that, it is for you to decide."

The king was once again astonished at the sharp intelligence of Rohak and remained silent. The villagers returned happy.

8. **The Well**—Once again, finding an opportune moment, the king sent a message to the villagers—"The water of the well in your village is very cool and sweet. Send that well to me otherwise you will be punished."

This impossible demand of the king once again terrorised the villagers. But they had the support of Rohak in solving such problems. He was asked the solution. After being tutored by Rohak they went to the king and said—"Sire ! As per your instructions we went to our village-well and tried to persuade it to come to you in the city. But it is very shy and apprehensive; not only this, it is very sceptic as well. It is not even ready to believe us that you have called it. We humbly submit that you should send some city-well to our village to persuade that village-well. We are confident that the

village-well will believe the statement of a kin and at once accompany it here." The king silently smiled. He understood that all this was inspired by the astute wisdom of Rohak.

Thus, with every test the king's attraction for Rohak increased and he also started enjoying these games of intellect.

9. **The Patch of Forest**—After allowing a few days to pass the king sent another order—"Shift the patch of forest on the east side of your village to the west side."

As ever, the villagers took refuge with Rohak. He said—"This is a child's play. Ours is a tiny village. Let us collect all our possessions and shift the village itself to the east of the patch of forest. As a result the patch of forest will automatically be on the west of the village." After establishing the new village the king was informed that his order has been complied with. The king came and inspected. He silently praised Rohak and returned.

10. **Kheer (a dessert cooked with rice and milk)**—One day the king suddenly called the chief of the acrobats and said—"Cook some Kheer without a fire and send it for me."

The acrobats once again sought Rohak's help. He said—"First of all submerge some rice in water. After some time transfer them in a deep cooking vessel filled with milk. Make a heap of lime and place this covered vessel in a hollow made in this heap. Now sprinkle water over the lime. The heat produced by the exothermic reaction of water and lime will be enough to cook the rice."

The villagers followed the instructions given by Rohak and cooked Kheer. It was sent to the king, who became very pleased to eat the tasty dessert. When he heard about the process of cooking his attraction for Rohak's wisdom increased.

11. **Atig**—The next time the king called Rohak himself and said—"The boy who wishes to obey my order should come to me exactly following my instructions. While coming he should stick to these rules—he should neither come during the bright fortnight nor the dark one; he should neither come during the night nor the day; he should neither come in the sun nor the shade; he should neither come

by the aerial rout nor the land one; he should neither come on the path nor away from it; and he should neither come after taking a bath nor without taking one. But come he has to."

Hearing these impossible rules there was a pin drop silence in the assembly. Every one was thinking that, what to say of a child, it was impossible even for an experienced adult to observe these rules and come to the king. But Rohak was not flustered at all. He returned to his village in his usual composed manner.

Just before the end of the next dark fortnight he washed his body up to his neck and at the hour of the dusk prepared to leave. He made an umbrella of a perforated metal vessel and sat on the back of a ram. He set out to meet the king on the passage in the middle of the lines made by two wheels of the carts plying on the road. He picked up a lump of sand for presenting to the king.

When he arrived before the king he properly greeted the king and explained him how he had observed the rules laid down by the king while coming to him. After that he offered the lump of sand as a gift to the king. The king asked with surprise—"What is this ?"

Rohak said humbly—"Sire ! You are the lord of the land, therefore I have brought a piece of land as gift for you."

The king was pleased and he asked Rohak to live with him. The happy villagers returned. During the night the king asked Rohak to sleep near him. During the second quarter of the night the king awoke and asked Rohak—"Are you awake or asleep, Rohak ?"

He at once replied—"I am awake, sire !"

"What are you thinking about ?"

"I am thinking how the dung-balls are made in a goat's stomach ?"

The king found no reply to Rohak's question. He asked Rohak—"Did you find an answer ? How are they made ?"

"Sire, in the stomach of a goat there is a unique type of wind called *samvartak*. The effect of this wind makes its excreta into balls." And Rohak went to sleep.

12. **Leaves**—During the third quarter of the night the king once again called—"Rohak, are you awake ?"

"Yes, I am awake, sire !"

"What are you thinking about ?"

"In Peepal leave which is large, stalk or the pointed edge ?"

The king became confused. He asked Rohak—"What did you decide ?"

"As long as a part of the edge does not dry, both are equal." After giving this reply Rohak went back to sleep.

13. **The Squirrel**—During the fourth quarter of the night the king once again called—"Rohak, What are you thinking about ?"

"Sire, the tail of a squirrel is larger than its body or smaller ?"

"What do you think ?"

"Sire, both are equal."

14. **Five Fathers**—The night ended. At dawn the sound of auspicious music woke the king but Rohak was still in deep sleep. He did not awake even when the king called. The king then goaded him with his stick. When Rohak opened his eyes the king asked—"Say Rohak ! What are you thinking now ?"

"Sire, I was thinking how many fathers you have ?"

This loose statement first infuriated the king. But as he had faith in Rohak's wisdom he composed himself and asked—"You tell me, how many fathers I have ?"

Rohak became serious and said—"Sire ! You have five fathers."

The king uttered with surprise—"What ? Tell me how ?"

Rohak replied—"First is Kuber (the god of wealth) because you are as magnanimous as Kuber. The second is *chandal* (the keeper of a crematorium) because for your enemies you are as cruel as a *chandal*. The third is washer-man because as a washer-man squeezes all water from the clothes so you do squeeze everything out of a traitor of the kingdom or the country. The fourth is a scorpion because just as a scorpion causes pain by its sting, you have caused pain to me by goading with a stick. And your fifth father is your real father, the late king, because like him you are benevolently and justly ruling over your subjects and the kingdom."

The king was astonished at this analysis. After daily chores he went to his mother and after greetings told her about all what Rohak had said. The queen mother said—"Son ! What Rohak says is probably true. If your attitudes are the result of my looking at something with some momentary perversions in my mind then what Rohak says is true. When you were in my womb I went to the Kuber temple for worship. On my way back I saw a *chandal* and a washerman. When arrived at the palace I saw a scorpion couple mating. During all this period my mind was in a state of perversion giving rise to pervert feelings. These feelings have influenced your attitude. Otherwise you have only one father."

The king was completely taken aback by the miracles of the astonishing wisdom of Rohak. When he arrived in his assembly he appointed Rohak as his prime minister.

दूसरी गाथा के उदाहरण
EXAMPLES OF THE SECOND VERSE

१. भरत व शिला के उदाहरण पूर्ववत् हैं।

२. पणित (प्रतिज्ञा-शर्त)–एक बार एक गाँव का भोलाभाला किसान एक शहर में ककड़ियाँ बेचने गया। नगर के द्वार पर पहुँचा ही था कि उसे एक धूर्त्त मिला। धूर्त्त किसान को देखते ही समझ गया कि यह सीधासाधा शिकार है। उसके पास जाकर बोला–"भाई ! अगर मैं तुम्हारी सारी ककड़ियाँ खा लूँ तो तुम क्या दोगे?" किसान ने चकित हो उसकी ओर देखा। इतनी सारी ककड़ियाँ खाने की बात उसे ठिठोली लगी। उसने भी उसी तरह उत्तर दिया–"तुम ये सब ककड़ियाँ खा लोगे तो मैं तुम्हें ऐसा लड्डू दूँगा जो इस द्वार में न आ सके।" दोनों में यह शर्त लग गई और वहाँ खड़े कुछ राहगीरों को साक्षी बना लिया।

धूर्त्त ने एक ककड़ी उठाई और दाँतों से एक छोटा टुकड़ा काटकर चबा गया। वह ककड़ी वापस रख दी और दूसरी उठाकर फिर वही किया। इस प्रकार प्रत्येक ककड़ी में से एक-एक टुकड़ा चबा लिया और बोला–"लो भाई ! मैंने तुम्हारी सब ककड़ियाँ खा लीं।"

किसान ने आश्चर्य और गुस्से से कहा–"तुमने सारी ककड़ियाँ कहाँ खाईं? ये सब पड़ी जो हैं।"

धूर्त्त ने कहा–"मैं अभी सिद्ध कर देता हूँ कि मैंने सब ककड़ियाँ खा ली हैं।" और वह ककड़ियों के ढेर के पास खड़ा हो उन्हें बेचने की चेष्टा करने लगा। कई लोगों को पुकारकर बुलाया–ककड़ियाँ ले लो। किन्तु जो भी आता वह यह कहकर लौट जाता कि ये ककड़ियाँ तो खाई हुई हैं।"

धूर्त ने किसान से कहा–"देखो ! सभी यह कह रहे हैं कि ये सब ककड़ियाँ खाई हुई हैं। तुम हार गए। अब मुझे अपना लड्डू दो।" साक्षी लोग भी इस तर्क के आगे कुछ न बोल सके।

किसान घबरा गया। उसके समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। उसने धूर्त से पीछा छुड़ाने को कुछ पैसे देने की चेष्टा की पर वह कहाँ आसानी से मानने वाला था। हारकर किसान ने उससे थोड़ा समय माँगा कि लड्डू ढूँढ़कर लाना पड़ेगा।

अब वह नगर में गया और किसी ऐसे व्यक्ति को खोजने लगा जो उसे इस संकट से उबार सके। कुछ दूर चलने पर उसे एक अन्य धूर्त मिला और उसने समस्या का हल सुझा दिया। किसान प्रसन्न हो मिठाई की दुकान से एक लड्डू खरीद लाया और नगर के द्वार के बाहर उस लड्डू को धर दिया। वह स्वयं दो कदम चल द्वार के दूसरी ओर जा खड़ा हुआ और वहाँ से पुकारने लगा–"हे लड्डू ! चल इस द्वार में आ जा।"

कुछ देर यों पुकारने पर भी जब वह लड्डू अपने स्थान से टस से मस नहीं हुआ तो किसान आगे बढ़ा और लड्डू उठाकर पहले धूर्त की ओर बढ़ाकर बोला–"लो भाई ! यह रहा तुम्हारा लड्डू। मैंने तुमसे कहा था न कि ऐसा लड्डू दूँगा जो इस द्वार में न आ सके। यह ऐसा ही ढीठ लड्डू है। अब मैं अपने वचन से मुक्त हुआ।" धूर्त को काटो तो खून नहीं। साक्षियों ने भी किसान के तर्क को माना।

३. वृक्ष–कुछ यात्री विश्राम करने के लिए आम के एक सघन पेड़ के नीचे रुके। ऊपर देखा तो वह पके आमों से लदा हुआ था और कुछ बंदर भी कूद-फाँद रहे थे। आमों को देख यात्रियों के मुँह में पानी भर आया। पर एक तो पेड़ ऊँचा और दूसरे उस पर खेल रहे बंदरों का डर, यात्री समझ नहीं पाए कि कैसे आम तोड़कर खाए जाएँ। सब उपाय खोजने लगे। तभी उनमें से एक चतुर व्यक्ति को उपाय सूझ आया। उसने कुछ पत्थर उठाए और एक-एक कर पेड़ पर चढ़े बंदरों की ओर फेंकना चालू कर दिया। बंदर चंचल और नकलची होते ही हैं। वे भी पत्थर फेंकने की नकल करते हुए पेड़ से आम तोड़-तोड़कर उस यात्री की ओर फेंकने लगे। सभी ने पेट भरकर आम खाये और आगे बढ़ गए।

४. अँगूठी–राजगृह नगर में एक समय राजा प्रसेनजित का राज्य था। उन्होंने अपने पराक्रम से समस्त शत्रुओं को पराजित कर दिया था और न्यायप्रियता से अपनी प्रजा का मन मोह लिया था। उनके अनेक पुत्र थे किन्तु उनमें से एक श्रेणिक उनको विशेष प्रिय था। कुमार श्रेणिक आकर्षक व्यक्तित्व, अद्भुत बुद्धि और समस्त राजोचित गुणों से सम्पन्न था। ईर्ष्यावश कोई उसकी हत्या न कर दे इस आशंका से राजा अपने इस पुत्र पर अपना स्नेह प्रकट नहीं करता था। यह बात श्रेणिक के युवा मन को बहुत कष्ट देती थी। अपने पिता से उचित स्नेह व सम्मान न मिलने से दुःखी श्रेणिक एक दिन घर छोड़ने का निश्चय कर बैठा। योजना बनाकर एक दिन वह चुपचाप महल से निकला और विदेश-यात्रा के लिए रवाना हो गया।

चलते-चलते एक दिन वह वेन्नातट नाम के नगर में पहुँचा और एक व्यापारी की दुकान पर विश्राम करने के लिए बैठ गया। यह व्यापारी भाग्य का मारा अपना समस्त धन-वैभव खो चुका था और किसी तरह बुरे दिन बिता रहा था। संयोगवश कुमार श्रेणिक के वहाँ बैठने से जैसे उसके भाग्य ने पलटा खाया। कुछ ही देर में उसका पुराना माल ऊँचे दामों में बिकना चालू हो गया और साथ ही विदेश से आये व्यापारियों से सौदा करने में उसे बहुमूल्य रत्न बहुत नीचे दामों में मिल गए। इस अनहोनी घटना से उसके मन में विचार उठे-"आज मुझे इतना अप्रत्याशित लाभ हुआ है। हो न हो यह इस तेजस्वी युवक की उपस्थिति का परिणाम लगता है। यह अवश्य ही कोई महान् पुण्यात्मा है।"

उसे पिछली रात देखा स्वप्न भी याद हो आया। उसने देखा था कि उसकी पुत्री का विवाह एक 'रत्नाकर' से हो रहा है। व्यापारी के मन में फिर विचार उठा-"जिसके बैठने मात्र से इतना लाभ हो वही तो रत्नाकर हो सकता है।" उत्सुकतावश उसने श्रेणिक से पूछा-"आप इस नगर में किसके अतिथि बनकर आए हैं?" श्रेणिक ने मधुर और विनम्र स्वर में कहा-"श्रीमान् ! मैं तो आपका ही अतिथि हूँ।" आत्मीयता की इस अभिव्यक्ति ने व्यापारी का मन मोह लिया। वह बड़े स्नेह से श्रेणिक को अपने घर ले गया।

श्रेष्ठ भोजनादि से युवक का सत्कार कर उसे घर में ही ठहरने का आग्रह किया। श्रेणिक ने भी यह सोचकर कि कहीं तो रहना ही पड़ेगा, निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। सौभाग्यवश उस व्यापारी का व्यवसाय व प्रतिष्ठा दिनोंदिन बढ़ती ही गई। कुछ ही दिनों में उसने अपनी खोई सम्पदा और साख पुनः प्राप्त कर ली। वह इसे श्रेणिक के ही पुण्य का प्रताप समझता था। कुछ दिनों बाद उसने अपनी सुयोग्य व सुन्दर पुत्री नंदा का विवाह श्रेणिक से कर दिया। श्रेणिक भी अब अपनी ससुराल में पत्नी के साथ सुख से दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने लगा। कुछ समय बीतने पर नंदा गर्भवती हो गई।

उधर श्रेणिक के पलायन से राजा प्रसेनजित बहुत दुःखी थे। उन्होंने चारों ओर श्रेणिक की खोज में अपने गुप्तचर भेज दिये। बहुत दिनों बाद कुछ गुप्तचरों ने आकर श्रेणिक के वेन्नातट नामक नगर में होने की सूचना दी। राजा ने श्रेणिक को लौटा लाने के लिए कुछ सैनिक भेजे। श्रेणिक को जब राजा के दूतों ने राजा का संदेश दिया और कहा कि राजा उसके वियोग में व्याकुल रहते हैं तो श्रेणिक ने तत्काल लौटने का निश्चय किया। एक पत्र में अपना पूरा परिचय लिखकर नंदा को दे दिया और उसकी अनुमति लेकर राजगृह को प्रस्थान कर गया।

नंदा के गर्भ में देवलोक से च्युत होकर एक आत्मा आई थी। उसके पुण्य-प्रभाव से एक दिन नंदा को दोहद उत्पन्न हुआ कि वह एक विशाल हाथी पर आरूढ़ होकर नगर-निवासियों को धनदान और अभयदान दे। नंदा के पिता ने सहर्ष उसका दोहद पूर्ण किया। यथासमय नंदा ने एक सुंदर, चंचल और हृष्ट-पुष्ट शिशु को जन्म दिया। इस तेजस्वी बालक का जन्मोत्सव मनाया गया और उसका नाम अभयकुमार रखा गया।

समय बीतने के साथ अभयकुमार बड़ा होने लगा। धीरे-धीरे उसने शिक्षा प्राप्त की और अनेक शास्त्रों तथा कलाओं का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया। किशोर अभय ने एक दिन अपनी माता से पूछा–"माँ ! मेरे पिता कौन हैं और कहाँ रहते हैं?" नंदा ने उपयुक्त समय आया जानकर अभयकुमार को श्रेणिक का पत्र दिया और अपने जीवन की सारी कथा आद्योपान्त सुनाई। पिता का परिचय पाकर अभयकुमार बहुल प्रसन्न हुआ और राजगृह जाने को व्यग्र हो उठा। उसने अपनी माता से आज्ञा माँगी तो वह स्वयं भी उसके साथ जाने को तैयार हो गईं। माता-पुत्र यात्रा की तैयारी कर उसी दिन एक सार्थ के साथ राजगृह के लिए रवाना हो गए।

कुछ दिनों की यात्रा के बाद सार्थ राजगृह पहुँचा। नगर के बाहर एक मनोरम उद्यान में पड़ाव डाला गया। अभयकुमार ने अपनी माता को सार्थ की देखरेख में वहीं छोड़ा और नगर में प्रवेश किया। वह यह जानना चाहता था कि नगर का परिवेश कैसा है और राजा के समक्ष किस उपाय से पहुँचा जा सकता है।

नगर में कुछ दूर चलने पर उसे एक स्थान पर लोगों की भीड़ दिखाई दी। उत्सुकतावश अभयकुमार वहाँ पहुँचा तो पता चला कि एक सूखे कुएँ के चारों ओर भीड़ एकत्र है। पूछने पर उसे बताया गया कि राजा की स्वर्ण-मुद्रिका उस सूखे कुएँ में गिर गई है और राजा ने घोषणा की है कि जो व्यक्ति बिना कुएँ में उतरे अपने हाथ से वह मुद्रिका निकाल देगा राजा उसे प्रचुर पुरस्कार प्रदान करेंगे। भीड़ अँगूठी निकालने का उपाय खोजने वालों की थी पर कोई तब तक सफल नहीं हो सका था।

अभयकुमार ने कहा–"यदि मुझे अनुमति मिले तो मैं मुद्रिका निकाल सकता हूँ।" पास खड़े नागरिक ने तत्काल यह बात राज्य-कर्मचारियों को बताई। यह जानकर कि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति इस भीड़ में आ पहुँचा है, राज्य-कर्मचारियों ने अभयकुमार से अनुरोध किया कि राजा की मुद्रिका निकाल दे।

अभयकुमार ने वहीं पास पड़ा ताजा गोबर हाथ में उठाया और सावधानी से मुद्रिका पर डाल दिया। कुछ घंटों बाद गोबर का वह पोठा सूख गया और मुद्रिका उसमें चिपक गई। अब अभयकुमार ने राज्य-कर्मचारियों की सहायता से कुएँ में पानी भरवाया। कुछ देर में जैसे ही पानी की सतह ऊँची आई गोबर का पोठा भी तैरता हुआ ऊपर आ गया। बस अभयकुमार ने हाथ बढ़ाया और उसे उठा लिया। पोठे को तोड़कर मुद्रिका निकाली और पानी में धोकर राजा के आदमियों को दे दी। ये समाचार जब राजा श्रेणिक के पास पहुँचे तो वह आश्चर्यचकित रह गया। उसने तत्काल दूत भेजकर अभयकुमार को बुलवाया और स्वागत कर पूछा–"वत्स ! तुम कौन हो और कहाँ से आए हो?"

अभयकुमार ने सादर उत्तर दिया–"देव ! मैं आपका ही पुत्र हूँ।" राजा श्रेणिक अभयकुमार के इस उत्तर से ठगे-से रह गए। अपने पिता के विस्मय से विस्फारित नेत्र देख अभयकुमार ने अपने जन्म से लेकर राजगृह आने तक का सारा वृत्तान्त सुनाया। राजा श्रेणिक गद्‌गद हो गए

और सिंहासन से उठ अपने सुयोग्य पुत्र को गले से लगा लिया। तत्पश्चात् दोनों पिता-पुत्र राजसी ठाट से समारोहपूर्वक महारानी नंदा को महल में ले आए। राह में राजगृह की जनता ने उनका अपूर्व स्वागत किया। राजा ने कुछ ही दिनों में अभयकुमार की विलक्षण औत्पत्तिकी बुद्धि से प्रभावित हो उसे महामंत्री पद से सम्मानित किया।

1. The stories of Bharat and the Rock are same as before.

2. **The Condition**—Once an innocent and simple farmer from a village went to a city to sell cucumbers. As he reached the city gate he met a rogue who at once measured him to be a simpleton and a prey. The rogue approached the farmer and said—"Brother, if I eat all your cucumbers what would you offer me as a prize ?" The farmer looked at him with surprise. To him the statement about eating the large heap of cucumbers appeared to be a joke. He also replied in the same spirit—"If you eat all these cucumbers I will give a *laddu* (ball shaped sweet) that does not come through this gate." They had this wager and some of the onlookers became witnesses.

The rogue now picked up one cucumber, bit and ate a small piece from it and put the cucumber back. After that he lifted another cucumber and repeated the process. This way he ate a small piece from each cucumber and said to the farmer—"Here brother, I have eaten all your cucumbers."

Taken unawares the farmer said with anger—"Where have you eaten all the cucumbers ? They are all lying here."

The rogue said—"I will prove in no time that I have eaten all the cucumbers." He went and stood near the heap of cucumbers and started trying to sell them. He shouted and called many people and asked them to buy the cucumbers. Everyone who came and looked at the cucumbers refused to buy them saying—"All these cucumbers are eaten."

The rogue said to the farmer—"See, everyone says these cucumbers are eaten. You have lost the wager. Now give me the laddu." The witnesses also failed to counter this argument.

The farmer was disturbed. He could not think what to do. He tried to pay some money and get rid of the rogue but it was not so easy to convince him. At last the farmer sought some time on the pretext that he will have to search and bring the laddu.

Now he went into the city and looked for someone who could save him from this predicament. When he walked some distance he found another rogue who was good enough to show him a way out. The farmer was pleased. He at once went to a shop and purchased a laddu. Coming back to the place where the rogue was waiting with the witnesses, he placed the laddu outside the city gate. He himself walked and stood on the other side of the gate. Now he gestured with his hand beckoned the laddu—"O laddu ! Come on ! Enter this gate."

After repeatedly shouting and gesturing for some time when the laddu did not move from where it was placed, the farmer approached the rogue and said—"Here is your laddu brother. I told you that I will give a laddu that does not come through this gate. This is one such obstinate laddu. Now I have fulfilled my commitment." The rogue was stunned. The witnesses also accepted the farmer's argument.

3. **The Tree**—Some wayfarers stopped under a dense mango tree to rest. When they looked up they saw that it was loaded with ripe mangoes and some monkeys were leaping around playfully. The ripe mangoes made their mouths water. The height of the tree and the fear of monkeys were the impediments that made them stop and think. Each one of them started applying his brain. Suddenly one of them had a brain wave. He picked up a few stones and one by one started throwing them at the monkeys. As the monkeys are hyper-active and born mimics they started mimicking the action of throwing stones by plucking mangoes and throwing them at the wayfarers. The travellers had their fill and resumed their journey.

4. **The Finger-ring**—The city of Rajagriha was once under the rule of king Prasenjit. He had won over his enemies with his courage and valour. He had also won over the hearts of the masses with his love for justice. He had a number of sons but one of them, Shrenik, was his favourite. Prince Shrenik was endowed with an attractive personality, astonishing wisdom, and all other princely virtues. Due to the apprehension that his son could be murdered out of jealousy the king refrained from expressing his affection for Shrenik. This was a source of pain for Shrenik's young heart. Distressed by the absence of due affection and honour from his father's side, one day Shrenik decided to abscond from the palace. Making necessary plan he one day eloped from the palace to go on a journey to far away lands.

While on his journey he reached one day a city named Vennatat and sat down at the shop of a merchant to take rest. Due to bad luck this merchant had lost all his wealth and grandeur and was somehow passing this lean period. It appeared as if this coincidence of Shrenik's sitting at his shop turned the tide of his fate. Soon his old stocks were selling at high prices and at the same time he was able to close a deal of purchasing high priced gems from foreign merchants at a bargain price. This unusual incident made him think—"I have made unprecedented profits today. It appears that the presence of this scintillating young man has certainly played a fateful role. He is, for sure, some great and pious soul."

He also recalled the dream he had seen last night. He had dreamt that his daughter was getting married to a *Ratnakar* (source of gems, a sea). The merchant thought—"He who imparts so much of profit just by his presence should be a *Ratnakar*." Curiosity guided him to ask Shrenik—"Whose guest are you in this town ?" Shrenik replied humbly and softly—"Sir, I am your guest only." The expression of this affinity won the heart of the merchant. He affectionately took Shrenik to his residence.

Offering him rich food with due honour, the merchant requested him to stay at his residence. Thinking that, after all, he will have to find some place to stay, Shrenik accepted the invitation. As luck would have it, the merchant's prosperity and prestige multiplied with every passing day. Very soon he recovered all his lost wealth as well as good will. He considered all this to be the influence of Shrenik's spiritual merit. A few days later he married his virtuous and beautiful daughter, Nanda, to Shrenik. And now Shrenik lived a happy and comfortable married life at his father-in-laws house. In due course Nanda became pregnant.

Back at Rajagriha, king Prasenjit was in a state of gloom since Shrenik had eloped. He sent his spies all around in search of Shrenik. After a long search some of the spies informed about Shrenik's presence in Vennatat city. The king sent a contingent of soldiers to bring back Shrenik. When these soldiers informed Shrenik that his father misses him acutely and wants him to return, he decided to return immediately. In a letter he wrote all pertinent details about himself to Nanda and begging her leave, left for Rajagriha.

A divine soul had descended into the womb of Nanda. Under the pious influence of this soul Nanda had a dohad (pregnancy desire) that she should ride an elephant and go around the city offering wealth and goodwill to the townspeople. Nanda's father was pleased to fulfil her desire. In due course Nanda gave birth to a beautiful, playful and healthy son. The birth ceremony of this brilliant child was celebrated and he was named Abhaya Kumar.

With passage of time Abhaya Kumar started growing and getting education. He soon acquired profound knowledge of numerous scriptures and many arts, crafts and skills. Young Abhaya Kumar one day asked his mother—"Ma ! Who is my father and where does he live ?" Considering that it was proper time for Abhaya Kumar to know everything, she gave him Shrenik's letter and told him her complete story. Abhaya Kumar was pleased to know about his father and became eager to go to Rajagriha. When he sought permission from his mother, she also decided to join him. After necessary preparations both, mother and son, left for Rajagriha with a merchant convoy.

After a few days of travel the convoy reached Rajagriha. They camped in a beautiful garden outside the city. Abhaya Kumar left his mother in care of the group and went into the city. He wanted to acquaint himself with the city atmosphere and explore how to approach the king gracefully.

After covering some distance within the city he saw a crowd of people gathered at a place. Curiosity drew Abhaya Kumar to that spot and he found that the crowd had gathered around a dry well. When he asked about the cause he was told that a gold ring belonging to the king had fallen in the well and the king had announced a reward for the person who can get it out of the well without getting down into the well. The crowd was of the people wanting to find a way to bring out the ring but no one could find one till that moment.

Abhaya Kumar said—"If I get the permission I can bring the ring out." The man standing adjacent to him at once gave this information to the state employees. Realising that some intelligent individual has come, the king's men requested Abhaya Kumar to get the ring out.

Abhaya Kumar picked up a handful of cow-dung lying nearby and carefully dropped it on the ring visible in the well. A few hours later when the lump of cow-dung in the well dried, he filled the well with water with the help of the king's men. As the water level rose to the brim of the well the dung-lump floated on the surface. Abhaya Kumar leaned and lifted the dung-heap. He broke the lump and released the ring. After washing it well he handed over the ring to the king's men. When the king heard this news he was astonished. He at once sent his emissary to bring Abhaya Kumar and when he came the king warmly greeted him and asked—"Son ! Who are you and where from do you come ?"

With due respect Abhaya Kumar replied—"Lord ! I am your son." King Shrenik was taken aback at this answer from Abhaya Kumar. When he looked at wide eyed Shrenik, his father, he narrated in details the story of his life from his birth to his arriving at Rajagriha. King Shrenik was exhilarated with joy. He got up from his throne and embraced his able son. After this the father and the son brought queen Nanda into the palace with due celebrations and pomp and show. On the way the citizens of Rajagriha extended an unprecedented welcome to the royal family. Impressed by Abhaya Kumar's *autpattiki buddhi*, very soon the king honoured him with the post of prime minister.

५. पट–दो राहगीर संयोगवश एक सरोवर पर एक ही समय में पहुँचे। उनमें से एक जो समृद्धिवान लगता था उसने बहुमूल्य वस्त्र पहन रखे थे और उसके कंधे पर एक मूल्यवान ऊनी कंबल था। दूसरा सामान्य वस्त्र पहने था और उसके कंधे पर मोटी सूती चद्दर थी। सरोवर तट पर दोनों ने अपने कपड़े उतारे और स्नान करने लगे। सामान्य कपड़े पहना व्यक्ति झट से स्नान कर निकल आया, जल्दी-जल्दी अपने कपड़े और दूसरे व्यक्ति का बहुमूल्य ऊनी कंबल उठाकर अपने कंधे पर डाल लिया। शालीन व्यक्ति ने जब यह देखा तो उसने पुकारकर कहा–"ओ ! मेरा कंबल कहाँ लिए जा रहे हो?" धूर्त ने कोई उत्तर नहीं दिया, धीरे-धीरे चलता ही रहा। शालीन व्यक्ति दौड़कर आया, झट से अपने कपड़े पहने और दौड़कर धूर्त को पकड़ लिया। धूर्त यह कहकर झगड़ने लगा कि कंबल उसी का है। अंततः दोनों न्यायालय में गए और अपनी-अपनी बात कहकर न्यायाधीश से न्याय करने का अनुरोध किया।

पहले तो न्यायाधीश किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। कंबल पर ऐसा कोई चिह्न नहीं था जिससे उसके स्वामी का पता चल सकता। फिर कुछ सोचकर न्यायाधीश ने दो कंघियाँ मँगवाईं और दोनों व्यक्तियों से भली प्रकार बाल सँवारने को कहा। उसके बाद न्यायाधीश ने कंघियाँ अपने

हाथ में लीं और भली प्रकार निरीक्षण किया। शालीन व्यक्ति की कंघी में ऊन के रेशे अटके थे और धूर्त की कंघी में सूत के। कंबल का रहस्य खुल गया। न्यायाधीश ने कंबल असली मालिक को दे दिया और धूर्त को पकड़कर दंड देने का आदेश दिया।

६. गिरगिट—एक बार एक व्यक्ति किसी जंगल से गुजर रहा था कि अचानक उसे शौच की हाजत हुई। जल्दी में वह धरती पर एक छेद देखकर उसी पर निवृत्त होने बैठ गया। वह छेद नहीं, एक गिरगिट का बिल था। जैसे ही वह व्यक्ति निवृत्त होने लगा—गिरगिट झपटकर अपने बिल में घुस गया। बिल में घुसते समय उस व्यक्ति के गुदा भाग से गिरगिट का स्पर्श हो गया। इससे उस व्यक्ति के मन में यह बात बैठ गई कि गिरगिट उसके पेट में समा गया है। उस दिन से उसे यही चिन्ता सताती रही और धीरे-धीरे वह बीमार हो गया। बहुत उपचार कराया किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ और वह दिनोंदिन दुर्बल होता चला गया।

एक दिन वह एक बहुत अनुभवी वैद्य के पास पहुँचा। वैद्य ने नाड़ी-परीक्षा तथा अन्य साधनों से जाँच की किन्तु कोई बीमारी समझ में नहीं आई। इस पर वैद्यराज ने पूछा कि उसकी ऐसी स्थिति कब से चल रही है। उस व्यक्ति ने जंगल में शौच और गिरगिट के पेट में घुस जाने की बात बताई। वैद्य समझ गया कि यह मानसिक रूप से पीड़ित है। उसे तत्काल ही औत्पत्तिकी बुद्धि के सहारे उपाय सूझ गया।

वैद्य ने उस समय तो रोगी से कहा—"यह एक गंभीर व्याधि है। मुझे गिरगिट निकालने की औषधि बनानी पड़ेगी। कल तुम्हारा इलाज हो जाएगा।" वैद्य ने एक मरा गिरगिट मँगवाया और उस पर लाख लपेट एक बरतन में डाल दिया। यह बरतन उसने अपने निवास के बाहर एक अंधेरे कोने में रख दिया। दूसरे दिन रोगी को बुलाकर उसे तीव्र जुलाव दिया और जाकर उस बरतन में शौच करने को कहा। जब वह व्यक्ति निवृत्त हो चुका तब वैद्य ने वह बरतन प्रकाश में खींच लिया और शौच में पड़ा गिरगिट रोगी को दिखाकर कहा—"देखो, यही वह गिरगिट था न, जो इतने दिनों से तुम्हें पीड़ा दे रहा था। अब यह निकल गया है। अतः अब तुम्हें शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ होगा।" रोगी को बहुत संतोष हुआ और प्रसन्नता भी। मानसिक भ्रम दूर होते ही वह पुनः स्वस्थ हो गया।

७. काक—वेन्नातट नगर में भिक्षा हेतु घूमते एक बौद्ध भिक्षु को एक जैन श्रमण मिल गए। बौद्ध भिक्षु ने नीचा दिखाने के लिए जैन श्रमण से प्रश्न किया—"मुनिराज ! आपके अर्हत् सर्वज्ञ हैं और आप उनके अनुयायी, क्या आप एक छोटी-सी बात बता सकते हैं कि इस नगर में कितने कौवे हैं?" श्रमण ने भिक्षु के भोले प्रश्न के पीछे रही दुरभिसन्धि को भाँपकर तत्काल उत्तर दिया—"भंते ! यह भी कोई प्रश्न हुआ। इस नगर में साठ हजार दो सौ तिरपन कौवे हैं। आप गिनकर देख लें। यदि कम हैं तो कुछ अन्य नगरों में भ्रमण के लिए गए हैं और यदि अधिक हैं तो वे अन्य नगरों से आए कुछ अतिथि कौवे हैं।"

जैन श्रमण की औत्पत्तिकी बुद्धि से लज्जित हो बौद्ध भिक्षु आगे बढ़ गए।

८. **मल-परीक्षा**—एक बार एक व्यक्ति अपनी नवविवाहिता सुन्दर पत्नी के साथ कहीं जा रहा था। रास्ते में एक धूर्त उनके साथ हो लिया और उसकी पत्नी से बातें करने लगा। कुछ ही देर में उसने उस स्त्री को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उसे अपने साथ ले जाने लगा। जब पति ने रोका तो धूर्त यह कहकर झगड़ने लगा कि यह तो मेरी पत्नी है। अन्त में वे तीनों न्यायाधीश के पास पहुँचे। न्यायाधीश ने सारी बात जानकर सबसे पहले तीनों को अलग-अलग कमरों में भेज दिया। इसके बाद वे उस संभ्रान्त व्यक्ति के पास गए और अकेले में उससे पूछा—"तुमने कल क्या भोजन किया था?" उस व्यक्ति ने बताया—"मैंने और मेरी पत्नी ने कल तिल के लड्डू खाए थे।" इसके बाद न्यायाधीश उस धूर्त के पास गया और उससे वही प्रश्न किया। धूर्त ने कुछ अन्य खाद्य पदार्थों के नाम बताए।

इसके पश्चात् न्यायाधीश ने धूर्त और स्त्री दोनों को जुलाब दिलवाकर उनके मल की परीक्षा करवाई। स्त्री के पेट से तिल निकले और धूर्त के पेट से नहीं। इस प्रकार सत्य का पता चल गया और उसने धूर्त को दण्ड दे स्त्री को उस संभ्रान्त व्यक्ति को सौंप दिया।

९. *गज—किसी राजा को एक बुद्धिमान् मंत्री की आवश्यकता थी।* ऐसे मेधावी और औत्पत्तिकी बुद्धि के धनी व्यक्ति की खोज के लिए राजा ने एक विशाल हाथी को नगर चौक में बँधवा दिया और घोषणा करवा दी कि जो व्यक्ति इस हाथी को सही-सही तोल देगा उसे पुरस्कृत किया जाएगा।

अनेक लोग आए और हाथी को देख-देख यह सोचते हुए चले गए कि प्रथम तो इतनी बड़ी तुला कहाँ से आएगी और आ भी गई तो हाथी को उसके पलड़े में कैसे चढ़ाया जाएगा? वहुत समय बीतने पर एक व्यक्ति आया और उसने कहा कि मैं इस हाथी का सही-सही वजन कर दूँगा। राज्य- कर्मचारियों की सहायता से वह हाथी को खुलवाकर एक सरोवर के तट पर ले आया। तट के पास एक नाव मँगवाकर लकड़ी के बड़े पाट के सहारे हाथी को नाव पर सवार करवा दिया। नाव जितनी पानी में डूबी उस स्थान पर उसने एक चिह्न लगा दिया और हाथी को पुनः तट पर उतरवा दिया। इसके बाद उसने नाव में पत्थर डलवाना आरंभ किया और तब तक डलवाता रहा जब तक नाव पुनः उस चिह्न तक नहीं डूब गई। अब उसने नाव में से सारे पत्थर निकलवाकर एक तराजू की सहायता से कुछ देर में तोल लिये। उसने हाथी का सही-सही वजन बता दिया। उस व्यक्ति को पुरस्कार के लिए राजा के पास ले गये। राजा उसकी विलक्षण बुद्धि से प्रभावित हुआ और उसे मंत्री पद से पुरस्कृत किया।

१०. **भांड**—किसी राजा के दरबार में एक भांड था, जो उसका स्नेहपात्र था और उसके मुँह लगा था। राजा सदा उसके सामने अपनी रानी की प्रशंसा किया करता था, साथ ही यह भी कहता था कि वह बड़ी आज्ञाकारिणी है। एक दिन भांड ने राजा से इस बात के उत्तर में कहा—"महाराज ! रानी स्वार्थवश ऐसा करती है। आपको विश्वास न हो तो परीक्षा करके देख लीजिए।"

राजा ने भांड के कहे अनुसार एक दिन रानी से पूछा–"देवी, मेरी इच्छा है कि मैं दूसरा विवाह करूँ और उस रानी के गर्भ से जो पुत्र हो उसे राज्य का उत्तराधिकारी बनाऊँ।" रानी ने उत्तर दिया, "महाराज ! आप अवश्य ही दूसरा विवाह कर लें किन्तु राज्य का अधिकारी तो परम्परानुसार ज्येष्ठ कुमार ही हो सकता है।" राजा को भांड की बात की पुष्टि मिली तो वह हँस पड़ा। रानी ने हँसने का कारण पूछा तो राजा ने भांड वाली बात उसे बता दी। रानी भांड पर कुपित हो गई और राजा से हठकर भाँड को देश निकाला देने की आज्ञा दिलवा दी।

भांड समझ गया कि यह किसका काम है। उसने ढेर सारे जूतों को एक गठरी में बाँधा और सिर पर रखकर रानी से विदा लेने महल में गया। रानी ने आश्चर्य से पूछा–"सिर पर इतना बोझ क्यों उठाए फिरते हो?" भांड ने उत्तर दिया–"रानी जी ! इस गठरी में मैंने जितने आ सकते थे उतने जूतों के जोड़े भर लिए हैं। जब तक ये सभी फट नहीं जाते मैं एक-एक कर इन्हें पहनकर देश-विदेश भ्रमण करूँगा और सबको बताऊँगा कि मुझे किसने और क्यों देश निकाला दिया।"

रानी भांड की यह बात सुन अपने अपयश की संभावना से आशंकित हो गई और राजा से कहकर देश निकाले की आज्ञा को निरस्त करवा दिया। अपनी औत्पत्तिकी बुद्धि के सहारे भांड बच गया।

5. **The Cloth**—Two wayfarers coincidentally reached a lake at the same time. One of them, who appeared wealthy, was wearing costly dress and had a very costly woollen shawl on his shoulders. The other was dressed in ordinary clothes and had a rough cotton shawl on his shoulders. At the bank of the lake they both put off their clothes and started bathing. The man with ordinary dress quickly finished his bath, put on his dress, picked up the costly woollen shawl and left hastily. The wealthy man called when he saw this—"Hey ! Where are you taking my shawl ?" The swindler did not respond and continued to walk slowly. The wealthy person rushed after getting dressed and caught the swindler. But the swindler started a dispute by claiming the shawl to be his. At last they went to the court and requested the judge to pass a judgement after telling him about their respective claims.

At first the judge failed to arrive at some conclusion. There was no identifying mark on the shawl that could point at its owner. After pondering over the matter for some time the judge called for two fresh combs. He asked the two claimants to comb their hair well and return the combs. He then carefully examined the two combs. He

found that the comb of the wealthy person had some fibres of wool and that of the cunning had cotton fibres. The secret of the shawl was revealed. The judge gave the shawl to its rightful owner and got the cunning person apprehended and punished.

6. **The Chameleon**—Once a man was passing through a jungle when he suddenly wanted to defecate. In hurry he found a hole in the ground and sat over it to relieve himself. This was not a simple hole but a chameleon's burrow. While the man was defecating the chameleon rushed and entered its burrow touching the man's anus. The defecating man felt as if the chameleon had entered his stomach through his anus. He kept worrying about it for some days and it turned into a phobia. He fell sick and in spite of all treatment did not recover. His weakness increased with every passing day.

One day he went to a very experienced doctor. The doctor examined his pulse and conducted other tests as well but failed to find any medical cause of his weakness. At last the doctor asked him since when he was having this condition. The man told him the story of going to relieve himself in the jungle and a chameleon entering his anus. The doctor at once understood that it was a psychological ailment and with the help of his *autpattiki buddhi* he at once found the solution.

However, he said to the patient—"This is a serious disease. I will have to make a special medicine to expel the chameleon out of your stomach. Your treatment will be done tomorrow." After the patient left, the doctor arranged for a dead chameleon, covered it with shellac and placed it in a bowl. He placed this bowl outside his house in a dark corner. Next day he called the patient, gave him a strong purgative, and told him to pass his stool in that bowl. When the patient did as told, the doctor drew the bowl in light and pointing at the dead chameleon in the pot said—"See, this is the chameleon that has been causing you so much pain since long. Now it has been expelled and soon you will regain your health. The patient was relieved and pleased. As he became free of his phobia he regained his health.

7. **The Crow**—Roaming around in Vennatat city a Buddhist monk met a Jain shraman. In order to pull his leg he posed a question to

the Jain shraman—"Muniraj ! Your Arhat is omniscient. You are his able disciple. Can you give me a simple information—how many crows are there in this city ?" The shraman at once understood the conspiracy at the back of this question. He accordingly gave a clever answer—"Bhante ! This is hardly a question of consequence. The city has sixty thousand two hundred and sixty three crows. You may count them. If you find the number a little less, know that some of the local crows have gone out for site seeing. However, if you find the number a little more, consider that some crows from other cities are visiting."

His arrogance having shattered by the *autpattiki buddhi* of the Jain shraman, the Buddhist monk felt ashamed and went away.

8. Stool Test—Once a man was going some where with his newly wedded beautiful wife. On the way a charlatan joined them and started talking to his wife. Soon he spun his web over the young woman and tried to take her away. When the husband stopped him, the charlatan started a quarrel claiming the woman to be his wife. At last they went to the judge. After hearing to the story the judge, first of all, send them all to different rooms. Then he went to the gentleman and asked him—"What did you eat yesterday." The man informed—"I and my wife both ate cookies made of sesame seeds." After this the judge went to the charlatan and posed the same question. The charlatan gave names of some other eatables.

After this the judge arranged for administering purgative to the charlatan and the woman and consequently got their stool test done. It was found that the stool of the woman contained sesame seeds and that of the charlatan did not. Thus the truth was revealed. The woman was returned to the gentleman and the charlatan was punished.

9. The Elephant—A king needed a wise minister. To search an intelligent man with *autpattiki buddhi* the king got a large elephant tethered in the public park of the town and made an announcement that the man who weighs this elephant exactly will be rewarded.

Numerous persons came, saw the elephant and returned back disheartened thinking that first of all how would they get such a large weighing scale ? And even if they got it, how would they put the

elephant in it ? After many days passed, a man came and claimed that he will find the exact weight of the elephant. With the help of the king's men he took the elephant to the lake outside the town. He then arranged to bring a large boat near the shore and with the help of a gang-plank made the elephant walk into the boat. He marked the level to which the boat had submerged in water and brought back the elephant to shore. After this he started filling the boat with stones till the boat once again submerged up to the marked level. Now he transferred all the stone on shore and started weighing them with the help of a normal weighing scale. Some time later, when the weighing was over he added up the figures and told the exact weight of the elephant. The man was taken to the king for reward. The king was impressed by his astonishing wisdom and rewarded him by appointing him as his minister.

10. Court Jester—A king had a favourite court jester whom he gave too much liberty. The king always praised his wife before this man. He also stressed that she was very obedient. One day the jester commented—"Sire ! The queen's behaviour is guided by her self interest. If you don't believe, you may verify this by some test.

Provoked by the jester the king one day asked his queen—"Darling ! I have this wish of marrying again and make the offspring from this marriage my heir apparent. The queen replied—"My lord ! You are well within your rights to marry once more and you are welcome. But as per the tradition the heir apparent can only be the eldest son." When the jester's opinion was confirmed the king laughed heartily. The queen asked the reason for this laughter and the king told her about his discussion with the jester. The queen got infuriated and forced the king to issue orders for the jesters exile.

The jester could guess who was at the back of this order. He collected a heap of shoes, made a large bundle, lifted it on his head and went to bid farewell to the queen. The queen asked with surprise—"What makes you carry so much weight on your head ?" The jester replied—"Your Highness ! I have collected as many pair of shoes as I could in this bundle. As long as this whole lot lasts I will walk far and near to different villages and towns and tell everyone I meet about who exiled me and why."

When the queen heard this she was apprehensive about her possible disrepute. She at once requested the king and got the exile order rescinded. The jester saved himself with his *Autpattiki Buddhi.*

११. लाख की गोली–किसी बालक ने खेल-खेल में लाख की एक गोली नाक में डाल ली। गोली नाक के भीतर अटक गई और बच्चे को पीड़ा होने लगी। उसे साँस लेने में भी कठिनाई होने लगी। माता-पिता घबराकर किसी चिकित्सक को तलाशने लगे। तभी एक सुनार उधर से निकला। उसने बच्चे का रोना सुनकर पूछा कि "क्या कष्ट है?" माता-पिता से सारी बात सुनकर उसने कहा–"चिंता न करो, मैं अभी गोली निकाल देता हूँ।" उसने लोहे की एक पतली सलाख मँगवाई। सलाख की नोंक को गर्म कर सावधानी से बच्चे की नाक में फँसी गोली पर धीरे से दबाया। लाख थोड़ा-सा पिघला और गोली उस सलाख से चिपक गई। सुनार ने सावधानी से खींचकर गोली को बाहर निकाल दिया।

11. The Shellac Ball—A little boy playfully inserted a shellac ball in his nostril and it got stuck there. It was painful. The boy had difficulty in breathing. The disturbed parents started searching for a doctor. Just then a goldsmith happened to pass by. When he saw the boy crying he asked "what was the problem ?" When the parents told him about the incident he reassured them—"Don't worry. I will just take out the ball." He asked for a thin steel rod and heated it. When it gained the required temperature he carefully pushed it into the shellac ball inside the nostril. The shellac melted a little and the rod stuck to the ball. Now he carefully pulled out the ball.

१२. खंभ–किसी राजा को एक कुशाग्र बुद्धि मंत्री की आवश्यकता थी। उसने ऐसे व्यक्ति की खोज के लिए एक अनोखी परीक्षा की योजना बनाई। नगर के बाहर के एक सरोवर के बीचोंबीच उसने एक ऊँचा खंभा गड़वा दिया। इसके बाद उसने घोषणा करवा दी कि बिना तालाब में उतरे, किनारे से ही जो इस खंभे को रस्सी में बाँध देगा उसे पुरस्कार दिया जाएगा।

घोषणा सुनकर अनेक लोग आए और खंभे से रस्सी बाँधने का उपाय खोजने लगे। बहुत समय बीत गया पर कोई इस असम्भव-से काम को करने में सफल नहीं हुआ। तभी एक व्यक्ति आया, स्तम्भ को देख उसने सरोवर के चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। फिर उपाय सोचकर एक लम्बी रस्सी और एक खूँटा ले आया। पहले उसने खूँटी को सरोवर के किनारे गाड़ दिया और रस्सी के एक छोर को उस खूँटी से बाँध दिया। अब शेष रस्सी को हाथ में ले उसने चलना आरंभ किया। एक-एक कदम चलता जाता और रस्सी को थोड़ा-थोड़ा छोड़ता जाता। इस प्रकार वह सरोवर के चारों ओर घूमकर वापस खूँटे के पास लौट आया। रस्सी तालाब के बीच गड़े स्तम्भ के चारों ओर लिपट गई थी। उसने दूसरा छोर पहले छोर से बाँध दिया और पुरस्कार लेने राजा के पास जा पहुँचा।

उसकी औत्पत्तिकी बुद्धि से प्रभावित राजा ने उसे मन्त्रीपद देकर पुरस्कृत किया।

12. The Pillar—A king required a sharp-witted minister. In order to find such a man he planned a strange test. In a large pond outside the town he got a pillar erected at the centre of the pond. After this he made an announcement that any person who ties a rope around this pillar without getting into the water will be rewarded.

After the announcement, many persons came and tried to find some way to tie a rope to the pillar. Many days passed but still no one was able to accomplish this seemingly impossible task. At last one day a witty individual came and carefully looked at the pillar and all around the pond. He thought a little to find a solution and brought a very long rope and a large spike. First of all he selected a point and hammered the spike in the ground and then tied one end of the rope to the spike. Now he took the coil of rope in his hand and started walking. As he took a step he released a short length of the rope in his hand. This way he walked around the pond and returned at the starting point. The rope had now encircled the pillar. He tied the second end of the rope with the first and proceeded to get his prize from the king.

Impressed by his *Autpattiki Buddhi* the king rewarded him and made him a minister.

१३. क्षुल्लक–किसी समय एक नगर में एक संन्यासिनी रहती थी जिसे अपने आचार-विचार पर बड़ा गर्व था। एक दिन वह राजसभा में पहुँची और राजा को सम्बोधित करती हुई बोली–"महाराज, इस नगर में ऐसा कोई नहीं है जो मुझे परास्त कर दे।" संन्यासिनी की यह गर्वोक्ति सुन राजा ने अपने राज्य में घोषणा करवा दी कि जो कोई इस संन्यासिनी को पराजित कर देगा उसे पुरस्कार मिलेगा। घोषणा सुनकर कोई भी नागरिक उस संन्यासिनी को पराजित करने तैयार नहीं हुआ। एक क्षुल्लक ने संन्यासिनी का दर्प चूर्ण करने की ठानी और दरवार में आया।

संन्यासिनी उसे देख हँस पड़ी–"यह मुंडित मेरा सामना करेगा !" क्षुल्लक गंभीर बना रहा। वह संन्यासिनी के वचनों से उसका चातुर्य समझ गया और उसी के उपयुक्त चाल चलने की ठानकर बोला–"जो मैं करूँ वही अगर तुम नहीं कर सकी तो तुम्हें हार माननी पड़ेगी।" गर्वोन्मत्त संन्यासिनी ने मन ही मन सोचा कि ऐसा क्या है जो यह क्षुद्र क्षुल्लक कर सकता है और मैं नहीं कर सकती। वह बोली–"मुझे स्वीकार है।" क्षुल्लक इसी उत्तर की राह देख रहा था। उसने झट से पास के आसन पर बैठे सभासद को हाथ पकड़कर खड़ा किया और अपना परिधान उतारकर उसे ओढ़ा दिया। फिर पलटकर संन्यासिनी की ओर देखकर बोला–"करो

जैसा मैंने किया है।" संन्यासिनी ने निरावरण (वस्त्ररहित) क्षुल्लक की ओर देखा और दृष्टि नीचे कर लज्जा सहित बोली-"नहीं, मैं यह नहीं कर सकती।" उसका दर्प तिरोहित हो गया और वह हार मान अपने स्थान को चली गई।

13. Kshullak (a type of Jain ascetic clad in a single piece of cloth and is in process of becoming completely non-clad)—Once there lived a *sanyasini* (a female mendicant) in a town. She was very proud of her knowledge and conduct. One day she went to the king's assembly and addressed the king, "Sire, there is no one in the town who can defeat me in a debate." This conceited remark disturbed the king and he made an announcement that he who defeats the *sanyasini* will be richly rewarded. In spite of this announcement no one came to confront the *sanyasini*. Some days later a *Kshullak* decided to melt the *sanyasini's* ego and came to the assembly.

The *sanyasini* laughed when she saw the challenger—"Ha! This shaved head will face me!" The *Kshullak* did not react. He could assess the cunning mind of the *sanyasini* by her utterance and decided to employ a suitable trick. He said—"You will have to accept defeat if you cannot do what I do." The conceited *sanyasini* thought that there was hardly anything that the petty *Kshullak* could do and she could not. She said—"I accept your challenge." The *Kshullak* was eager to hear this reply. He at once caught hold of the arm of the nearest courtier and made him stand. He now took off the only cloth covering his body and wrapped it around the courtier. He turned to face the *sanyasini* and said—"Now do as I did." The *sanyasini* looked at the now nude *Kshullak* and at once shifted her gaze. She uttered shyly—"No, I can't do this." Her ego shattered, she accepted her defeat and went to her place.

१४. मार्ग-एक व्यक्ति अपनी पत्नी सहित रथ में बैठकर किसी अन्य गाँव को जा रहा था। मार्ग में एक सुनसान स्थान पर उसकी पत्नी रथ रुकवाकर पास की झाड़ी में लघुशंका हेतु गई। रास्ते के किनारे एक विशाल वृक्ष पर एक व्यन्तरी रहती थी। वह उस पुरुष पर मोहित हो गई और उसकी स्त्री का रूप बनाकर उसके पास आकर बैठ गई। रथ रवाना हो गया। तभी झाड़ी में से पुरुष की पत्नी बाहर आई। उसे देख व्यन्तरी ने पुरुष से कहा-"देखो, कोई व्यन्तरी मेरे जैसा रूप धरकर उधर से आ रही है। आप रथ को तेज़ चलायें।"

पुरुष रथ की गति बढ़ाता तब तक उसकी पत्नी पास आ गई और रथ के साथ दौड़ती हुई कहने लगी-"रथ रोको स्वामी ! आपके पास जो बैठी है वह तो कोई व्यन्तरी है जिसने मेरा

रूप धर लिया है।" पुरुष किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। दोनों स्त्रियों की ओर देखता और सोचता कि क्या करूँ, कैसे पहचानूँ। उसने रथ की गति कम कर दी।

इसी बीच दूसरा गाँव निकट आ गया। वह व्यक्ति वहाँ की पंचायत में गया और सारा हाल सुनाया। वृद्ध सरपंच अनुभवी था उसने अपनी औत्पत्तिकी बुद्धि से काम लिया। दोनों स्त्रियों को पुरुष से दस-बारह कदम दूर खड़ा कर दिया और उनसे कहा–"जो स्त्री इस पुरुष को पहले छू लेगी उसे ही इसकी पत्नी माना जाएगा।"

यह सुनकर उस पुरुष की पत्नी तेज कदमों से आगे बढ़ी। व्यन्तरी ने झट से अपना हाथ आगे बढ़ाया और उसे लम्बाकर पुरुष को छू लिया। सरपंच ने झट से कहा–"अब पोल खुल गई।" पुरुष को उसकी पत्नी मिल गई और व्यन्तरी हारकर अन्तर्ध्यान हो गई।

14. The Path—A man with his wife was going to another village on a chariot. On the way his wife asked him to stop the chariot and went to a nearby bush to relieve herself. On a roadside tree lived a witch. She was attracted towards this man. She transformed herself into the form of the man's wife and came to sit near him in the chariot. The man started the chariot. Just then the real wife came out of the bush. Pointing at her the witch said—"Look ! Some witch has taken my form and is coming in our direction. Please increase the speed of the chariot."

Before the man could increase the speed the real wife arrived near the chariot. Running along the chariot she pleaded—"Please stop the chariot, my lord ! The one who is sitting with you is some witch disguised as me." The man was in a quandary. He shifted his gaze from one woman to the other and thought—what to do, how to spot the real one. He reduced the speed of the chariot.

By this time they arrived near a village. The man went to the local *panchayat* (a group of five village elders) and narrated his story. The old head of the *panchayat* was very experienced. He applied his *Autpattiki Buddhi*. He made the two women stand about ten to twelve steps away from the man and said to them—"The lady who first touches this man will be accepted as his wife."

Hearing this the real wife started running towards her husband. The witch just extended her hand and touched the man. The village head said—"The disguise has been removed now." The man got his wife and the witch disappeared.

१५. स्त्री–मूलदेव और पुण्डरीक नाम के दो मित्र थे। एक दिन वे कहीं जा रहे थे। उसी मार्ग से एक अन्य पुरुष भी अपनी पत्नी के साथ जा रहा था। पुण्डरीक उस स्त्री को देख उस पर मोहित हो गया। उसने मूलदेव से कहा–"मित्र ! यदि यह स्त्री मुझे नहीं मिली तो मैं जीवित नहीं रहूँगा।" यह सुन मूलदेव चिन्तित हो गया। मित्र का जीवन बचाने हेतु एक अन्य पगडंडी से निकलकर मुख्य मार्ग पर उस दम्पति से आगे जा पहुँचा। वहाँ एक घनी झाड़ी में पुण्डरीक को बिठा दिया और स्वयं उस दम्पति के पास पहुँचा। उसने विनम्र स्वर में उन्हें कहा–"भाई ! मेरी स्त्री को इस समीप की झाड़ी में प्रसव हुआ है। आप कुछ समय को अपनी पत्नी को झाड़ी में भेज दें तो बहुत उपकार होगा।" पुरुष ने मूलदेव की बात को सच समझा और अपनी पत्नी को उधर भेज दिया। स्त्री चतुर थी। वह झाड़ी की ओर गई और शीघ्र ही लौट आई। उसने हँसते हुए मूलदेव से कहा–"आपको बधाई है। बहुत सुन्दर बच्चा पैदा हुआ है।" और पति-पत्नी आगे बढ़ गए। इस कटाक्ष से पुण्डरीक बहुत शर्मिन्दा हुआ। मूलदेव उसे साथ ले चला गया।

15. The Woman—There were two friends named Mooldev and Pundareek. One day they were going somewhere. On the same path a man was also walking with his wife. When Pundareek saw this woman, he got infatuated with her beauty. He said to Mooldev—"Friend, if I do not get this woman I will die." This made Mooldev worried. In order to save his friend"s life he took a detour and went a long distance ahead of the couple on the same path. There he made Pundareek sit behind a thick bush. He himself now approached the advancing couple and pleaded humbly—"Brother, my wife is about to deliver a child. If you could send your wife for some time behind that bush I will be much obliged." The man believed Mooldev and sent his wife. The woman was clever. She went behind the bush and returned soon. With a smile she said to Mooldev in a loud voice—"Congratulations ! You have got a beautiful son." And the couple went ahead. Pundareek was filled with shame at this biting taunt. Mooldev took him along and procuded ahead.

१६. पति–एक गाँव में दो भाई रहते थे। उन दोनों के एक ही पत्नी थी। वह बड़ी चतुर थी, कभी यह प्रगट नहीं होने देती थी कि दोनों पतियों में से किस पर उसका अनुराग अधिक है। इस बात को लेकर गाँव वाले उसकी प्रशंसा करते थे। धीरे-धीरे यह बात राजा के कानों तक भी पहुँची। वे भी प्रभावित हुए किन्तु उनके मन्त्री ने कहा–"महाराज ! यह असंभव है। उस स्त्री का एक पति के प्रति अनुराग अवश्य ही अधिक होगा।" राजा ने कहा–"इसका पता कैसे लगे ?" मन्त्री ने कहा–"मैं शीघ्र ही कोई उपाय करता हूँ।"

एक दिन मन्त्री ने उस स्त्री को एक आदेश भेजा कि वह अपने एक पति को पूर्व दिशा के एक ग्राम विशेष में भेजे और दूसरे को पश्चिम दिशा के अमुक गाँव में। यह आदेश पाकर स्त्री ने जिस

पति पर अधिक स्नेह था उसे पश्चिम के गाँव को भेजा जिससे आने जाने में सूर्य का ताप पीछे से पड़े और कष्ट कम हो। जिस पर कम स्नेह था उसे पूर्व दिशा के गाँव भेजा जिससे सूर्य का ताप सामने से पड़े। मंत्री ने राजा से यह बात बताई। किन्तु राजा इससे संतुष्ट नहीं हुआ।

मंत्री ने पुनः आदेश भेजा और दो अन्य गाँवों के नाम बता दोनों पतियों को एक ही समय अलग-अलग गाँव भेजने को कहा। स्त्री ने फिर दोनों को भेज दिया पर इस बार कुछ समय पश्चात् मंत्री ने स्त्री के यहाँ दूत भेजे जिन्होंने उसे यह सूचना दी कि उसके पति बीमार हैं उन्हें जाकर सँभाले। स्त्री तत्काल एक के लिए बोल उठी-"वे तो सदा ऐसे ही रहते हैं, कोई नई बात नहीं है। पहले मैं दूसरे को देखूँ उन्हें बड़ा कष्ट हो रहा होगा।" यह कहकर वह उस पति की ओर रवाना हो गई जिस पर उसका विशेष स्नेह था। मंत्री ने राजा को सारी बात बताकर संतुष्ट किया।

16. Husbands—Two brothers lived in a village. They had the same wife. She was very clever and never revealed which of the brothers she loved most. The villagers praised her for this quality. In time this news reached the king also. He was also impressed, but his minister said—"Sire, It is impossible. It is for sure that the woman loves one of her husbands more than the other." The king asked—"How to find about this ?" The minister said—"I will soon think of some way."

One day the minister send an order to the woman that she should send one of her husbands to a certain village in the east and the other to another village towards west. Getting this order the woman sent the husband she loved more to the village in the west so that while going as well as coming, the sun is on his back and the heat is less oppressive. The one she loved less, she sent to the eastern village so that he walks facing the sun. The minister informed the king of this but the king was not satisfied.

Once again the minister sent an order to her to send her husbands to two different destinations at the same time. The woman complied the order but this time the minister sent two different messengers to her after a lapse of few hours. They both carried the same message but from different villages—"Your husband is sick and needs your care." The woman at once said about one of her husbands—"This is nothing new, he gets sick now and then. First I should go to see the other one. He must be in pain." And she left to see the husband she loved more. The minister satisfied the king by giving all these details.

१७. पुत्र–किसी नगर में एक व्यापारी रहता था। उसके दो पत्नियाँ थीं। एक पुत्रवती थी और दूसरी बंध्या। किन्तु दोनों ही बालक को समान रूप से स्नेह करती थीं और सार-सँभाल भी। दोनों माताओं के समान व्यवहार के कारण बालक भी यह नहीं जान पाया कि उसकी असली माता कौन-सी है? एक बार व्यापारी अपने परिवार सहित विदेश-यात्रा पर गया। दुर्भाग्यवश मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गई और उसके बाद दोनों स्त्रियों में विवाद हो गया। दोनों उस बालक के अपना पुत्र होने का दावा कर यह कहने लगीं की सेठ की संपत्ति उसकी है।

विवाद जब बढ़ा तो वे न्यायालय पहुँचीं। न्यायाधीश भी उलझन में पड़ गए कि अन्य किसी प्रकार की सूचना या साक्षी के अभाव में कैसे न्याय करें। स्वयं बालक भी यह बताने में असमर्थ था कि असली माँ कौन-सी है। कुछ ही देर में उसकी औत्पत्तिकी बुद्धि ने काम किया और उसने अपने अधीन कर्मचारियों को आदेश दिया–"पहले व्यापारी की संपत्ति को दोनों स्त्रियों में बराबर-बराबर बाँट दो और फिर एक आरी से बच्चे के दो बराबर टुकड़े कर दोनों स्त्रियों को दे दो।" यह आदेश सुन एक स्त्री तो मौन रही पर दूसरी तत्काल रोती हुई बोली–"नहीं ! नहीं ! बच्चे के टुकड़े न करें। यह मेरा नहीं, इसी का बच्चा है। कृपाकर इसे ही दे दें और मेरे हिस्से की संपत्ति भी इसी को दे दें। बच्चे के लालन-पालन में आवश्यकता पड़ेगी। मेरा स्नेह तो बच्चे को देखकर ही संतुष्ट हो जाएगा।"

न्यायाधीश ने उस स्त्री की स्नेह-विकल अवस्था को देख तत्काल समझ लिया कि असली माँ वही है। माँ अपने पुत्र की मृत्यु कभी किसी मूल्य पर सहन नहीं कर सकती। उसने न्यायानुसार पुत्र व संपत्ति उसे सौंपी और नकली को दण्ड दिया।

17. The Son—There lived a merchant in a town. He had two wives. One had a son and the other was barren. But the two of them took care of the child with same affection and love. Due to this uniform behaviour even the child was not aware that which of them was his true mother. Once the merchant went out on a foreign tour with his family. Unfortunately he died on the way. After his death there was a dispute between the two wives. Saying that the son belonged to her, they both claimed the merchants property.

When the differences increased they moved court. The judge also became confused as to how to decide in absence of any further information or evidence. Even the child was unable to tell which one was his real mother. A little later his *Autpattiki Buddhi* worked and he instructed his subordinate—"First of all divide all the property belonging to the merchant between the two women. Once this is done take a saw and slit the child in two and give one piece each to them." This strange order did not bring out any reaction from one of the

women, whereas the other broke into tears and said—"No! Not at all! Kindly don't slit the child. This is her son not mine. Please hand over the child to her. Also, give her my share of the wealth. She will need it to take proper care of the growing child. I will be content when I see the boy hale and hearty."

The judge saw this spontaneous flow of affection and care and at once understood that she was the real mother. At no cost a mother could tolerate killing of her son. Accordingly he released the son and the wealth to the real mother and punished the impostor.

गाथा ३ के उदाहरण
(STORIES OF VERSE-3)

१. मधु-छत्र–एक जुलाहे की पत्नी दुश्चरित्र थी। जुलाहा एक बार किसी कार्यवश दूसरे गाँव गया तो उसकी स्त्री ने किसी अन्य पुरुष से अवैध सम्बन्ध बना लिये। अपने प्रेमी से मिलने वह गाँव के बाहर जाल-वृक्षों के एक झुरमुट में जाती थी जहाँ एक दिशा में मधु-छत्र था। जुलाहा गाँव से लौट आया और उनके दिन सामान्य गति से बीतने लगे। स्त्री अवसर पा अपने प्रेमी से मिलने उसी जाल-वृक्षों के झुरमुट में जाया करती थी।

एक दिन जुलाहे को मधु की आवश्यकता पड़ी। जब वह मधु खरीदने बाजार जाने को हुआ तो उसकी पत्नी बोली–"मधु खरीदने की क्या आवश्यकता है, मैं तुम्हें एक विशाल छत्ता बता देती हूँ।" वह जुलाहे को लेकर जाल-वृक्षों के झुरमुट में गई और छत्ता दिखा दिया। जुलाहे ने छत्ता देखा और साथ ही उस निर्जन स्थल का भी भलीभाँति निरीक्षण किया। उसे अपनी औत्पत्तिकी बुद्धि से यह समझते देर न लगी कि इस निर्जन स्थल पर उसकी पत्नी के आने और इस स्थल को भली प्रकार पहचानने का अन्य कोई कारण नहीं हो सकता, वह अवश्य ही किसी अन्य व्यक्ति के प्रेम-पाश में बँधी है और यह उनका मिलन-स्थल है।

२. मुद्रिका–किसी नगर में एक पुरोहित रहता था। नगर में वह सत्यवादी और ईमानदार के रूप में प्रसिद्ध था। एक बार कोई मजदूर उसकी प्रसिद्धि सुनकर उसके पास अपनी वर्षों की जमा पूँजी एक हजार मुहरें एक थैली में बाँध उसके पास रखकर कमाई करने के लिए यात्रा पर निकल गया। बहुत समय बीतने पर वह लौटा और पुरोहित से थैली माँगने आया। पुरोहित ने उसे पहचानने से इन्कार कर दिया, बोला–"तू कौन है? किस धरोहर की बात कर रहा है?"

मजदूर यह सुनकर ठगा-सा रह गया। अपनी सारी पूँजी खो देने के दुःख ने उसे पागल-सा बना दिया और वह राजमार्ग पर–"मेरी हजार मोहरों की थैली" पुकारता-पुकारता घूमने लगा।

एक दिन उसने राज्य के मंत्री को रास्ते में जाते देखा तो उसी से माँग बैठा–"पुरोहित जी ! मेरी हजार मोहरों की थैली जो आपके पास धरोहर रख गया था, लौटा दीजिए।"

मंत्री उसकी हालत देखकर समझ गया कि दाल में कुछ काला है। उसने मजदूर को ढाढ़स बँधाई और अपने साथ राजा के पास ले गया। राजा ने जब सारी घटना सुनी तो पुरोहित को बुलवा भेजा। जब पुरोहित दरबार में आया तो राजा ने पूछा—"ब्राह्मण देवता, आप इस व्यक्ति की धरोहर लौटा क्यों नहीं देते?" पुरोहित ने राजा को भी वही उत्तर दिया—"महाराज ! मैं इस व्यक्ति को जानता भी नहीं और न ही इसकी कोई धरोहर मेरे पास है।"

पुरोहित के लौट जाने के बाद राजा ने मजदूर से सब-कुछ विस्तार से बताने को कहा। मजदूर ने शान्त चित्त अपनी थैली का आकार, रंग, पुरोहित के पास रखने का दिन और यहाँ तक कि पुरोहित ने उसे उठाकर कहाँ रखा यह भी बता दिया।

कुछ दिन बाद अवसर देख राजा ने पुरोहित को शतरंज खेलने बुलाया। खेल में मग्न पुरोहित को बातों में लगा राजा ने उससे अँगूठी बदल ली। कछ देर बाद लघुशंका के बहाने राजा गया और अपने एक विश्वासी सेवक को चुपचाप पुरोहित की अंगूठी देकर उसके घर जाने को कहा। वहाँ जाकर पुरोहित पत्नी को अँगूठी दिखाकर एक हजार मोहरों की अमुक रंग की थैली जो पुरोहित जी ने अमुक दिन अमुक स्थान पर रखी थी ले आने को कहा।

पुरोहित की अँगूठी देख उसकी पत्नी को विश्वास हो गया कि यह संदेश उसके पति का ही है। उसने झट से थैली निकालकर दे दी। राजा ने उस थैली को अपनी अनेक थैलियों के बीच रख दिया और उसी समय मजदूर को बुलाया। मजदूर ने अनेक थैलियों के बीच अपनी थैली को पहचानकर उठा लिया। राजा ने उसे सहर्ष जाने को कहा और पुरोहित को दण्ड दिया।

३. अंक—एक बार एक व्यक्ति ने धरोहर के रूप में एक साहूकार के पास एक हजार रुपये की एक नौली (थैली जो पूरे नाप की होती है और सिलाई कर दी जाती है) किसी साहूकार के पास रख दी और स्वयं यात्रा पर निकल गया। पीछे से साहूकार ने बड़ी सफाई से नौली के नीचे के भाग को काटकर उसमें से रुपये निकाल लिये और खोटे सिक्के (जो आकार में कुछ छोटे होते हैं) भरकर बराबर कर सिलाई कर दी। कुछ दिनों बाद नौली का मालिक लौटा तो साहूकार ने उसकी नौली उसे वापस दे दी। उस व्यक्ति ने जब अपने घर जाकर नौली को खोला तो अपने सिक्कों के स्थान पर नकली सिक्के देखकर घबराया। नौली और खोटे सिक्के लेकर वह सीधा न्यायाधीश के पास पहुँचा। न्यायाधीश ने सारी बात सुनकर उससे पूछा कि नौली में कितने रुपये रखे थे। उस व्यक्ति ने बताया—"एक हजार।" न्यायाधीश ने एक हजार रुपये मँगवाकर नौली में भरवाये और पाया कि जितने रुपये शेष बचे थे ठीक उतनी ही नौली काटी हुई थी। उसे उस व्यक्ति की सच्चाई पर विश्वास हो गया। साहूकार को बुलवाकर उस आदमी के रुपये वापस दिलवाए और साहूकार को दण्ड दिया।

४. नाणक—एक बार एक आदमी एक सेठ के पास एक हजार स्वर्ण-मुद्राएँ एक थैली में बंद कर अपने नाम की सील लगाकर धरोहर के रूप में रखकर विदेश चला गया। उसे वापस आने में कई वर्ष लग गए। इसी बीच सेठ ने बड़ी सफाई से सील हटाकर स्वर्ण-मुद्राएँ निकाल लीं और वैसी की वैसी पीतल की मुद्राएँ बनवाकर थैली में रखकर ज्यों की त्यों सील लगा दी।

जब उस थैली का मालिक लौटा तो सेठ ने वह थैली उसे वापस दे दी। थैली को पहचानकर और सील की जाँचकर वह व्यक्ति थैली ले गया। घर जाकर जब उसने थैली खोली तो पीतल की मुद्राएँ देखकर सिर पीट लिया। अपनी फरियाद लेकर वह न्यायाधीश के पास गया। न्यायाधीश ने सेठ को भी बुलवा लिया। थैली के मालिक से न्यायाधीश ने पूछा कि उसे थैली सेठ को दिये कितने वर्ष हो गये? उस आदमी ने उत्तर दिया कि पाँच वर्ष बीत गए हैं। सेठ ने भी इस बात का समर्थन किया। तब न्यायाधीश ने पीतल की मुद्राओं की परीक्षा की और पाया कि वे तो नई बनी हुई हैं, अधिक से अधिक एक वर्ष हुआ होगा। सेठ की चालाकी पकड़ी गई। न्यायाधीश ने स्वर्ण-मुद्राएँ उनके असली मालिक को दिलवा दीं और सेठ को दण्डित किया।

५. भिक्षु–एक बार एक आदमी ने किसी भिक्षु/संन्यासी के पास एक हजार मोहरें धरोहर के रूप में रखीं और वह यात्रा पर चला गया। कुछ दिनों बाद जब वह लौटा तो संन्यासी से अपनी मोहरें माँगीं। वह भिक्षु टालमटोल करने लगा। जब आज-कल करते कुछ दिन बीत गए तो उस आदमी को चिन्ता हुई और वह अपना धन किसी प्रकार भिक्षु से लेने के उपाय खोजने लगा।

वह इसी उधेड़बुन में था कि उसे कुछ जुआरी मिले। बातों ही बातों में जब उसने उनसे अपनी समस्या बताई तो उन्होंने उसे आश्वस्त किया कि वे उसकी मोहरों भिक्षु के पास से निकलवा देंगे। वे उसे कुछ समझाकर उस दिन तो चले गये। अगले दिन वे जुआरी गेरुए वस्त्र पहन कर संन्यासी का वेश बना भिक्षु के पास पहुँचे और बोले–"हमारे पास सोने की ये कुछ खूँटियाँ हैं, आप इन्हें अपने पास रख लें। हमें विदेश-भ्रमण के लिए जाना है, अतः हमारी समस्या यह है कि ये सोने की खूँटियाँ कहाँ रखें। आप महात्मा हैं, सत्यवादी हैं और धन के प्रति आपको मोह नहीं, अतः आपसे अच्छा व्यक्ति हमें मिल नहीं सकता।"

ये बातें हो ही रही थीं कि पूर्व संकेतानुसार वह व्यक्ति आ पहुँचा और बोला–"महात्मा जी ! वह एक हजार मोहरों वाली थैली जो मैं आपके पास विदेश जाने से पूर्व रख गया था, कृपया लौटा दें।"

भिक्षु ने सोचा कि यदि अभी वह मना करता है तो बात बढ़ेगी और ये संन्यासी इतनी बहुमूल्य खूँटियाँ मेरे पास नहीं रखेंगे। अतः उसने झट से अपनी सच्चाई का प्रभाव जमाने हेतु उस आदमी की मोहरें लौटा दीं। और वह प्रसन्न हो लौट गया। संन्यासियों के वेश में जुआरी भी किसी बहाने चलते बने। भिक्षु ठगा-सा देखता रह गया।

1. The Honey-comb—A weaver had an infidel wife. Once when the weaver had gone out of the village on some errand she established illicit relations with another person. To meet her lover she went to a thicket of *Jaal* trees outside the village. There was a honey-comb on one of the trees in this thicket. The weaver returned and the couple resumed there normal routine. Whenever she got an opportunity the wife went to the *Jaal* tree thicket for her love sojourns.

One day the weaver had need of some honey. When he was about to go to the market to buy honey, his wife said—"There is no need to buy honey. I will show you a large honey-comb." She took the weaver to the *Jaal* tree thicket and pointed at the honey-comb. The weaver saw the honey-comb and also carefully inspected the solitary place. With the help of his *Autpattiki Buddhi* he took no time to understand that there was no reason for her wife to come to this forlorn place and be familiar with it, but that she was in love with some person and this was there secret meeting place.

2. The Ring—In a town there lived a priest who was famous as a truthful and upright person. Hearing of his fame, once a labour came to him and deposited all his wealth amounting to one thousand gold coins in a bag and left the town in search of work. After a long period he returned and came to the priest to take back his bag of gold coins. The priest refused to recognise him and said—"Who are you ? What deposit you are talking about ?"

The labour was taken aback. Losing all his hard earned wealth made him insane. He started roaming around on the main street of the town uttering—"My bag of one thousand gold coins !"

One day he came across the prime minister of the kingdom. Taking him to be the priest he asked—"O revered one, please give me back my bag of one thousand gold coins I deposited with you."

Seeing his condition the minister at once understood that there was something black at the bottom. He reassured the labour and took him along to the king. When the king heard the story of the labour he summoned the priest. When the priest came to the court, the king asked—"Great Brahman, why don't you return the deposit this man made with you ?" The priest offered the same reply to the king—"Sire ! I don't even know this person, neither do I have any deposit from him."

When the priest left, the king asked the labour to tell his story in detail. Collecting his wits the labour told in details the size and colour of his bag; the date on which he had deposited it with the priest; and even where the priest had kept it after accepting.

A few days later finding an opportune moment, the king called the priest for a game of chess. While the priest was engrossed in the

game the king glibly talked the priest into exchanging the ring in his finger. After some time the king excused himself for relieving. He furtively instructed his personal attendant to go to the priest's house, show the priest's wife his ring, and tell her that the priest has asked him to fetch from her the bag of that particular colour filled with one thousand gold coins and placed at that particular place.

When the priest's wife saw his ring she believed that the message was from her husband only. She at once took out the bag and gave it to the king's attendant. The king placed that bag with a heap of his own bags and called the labour. From the heap of the bags the labour at once recognised and pointed at his own bag. The king was pleased to let him take his bag and punished the priest.

3. The Number—Once a person deposited a *noli* of one thousand rupees (*noli* is a cloth bag of exact volume of a specified number of coins and is stitched close after placing that number of coins in it) with a merchant and went out on tour. In the mean time the merchant skilfully cut out the bottom of the *noli*, replaced the rupee coins with counterfeits (which are slightly thinner), and stitched it back. A few days later the owner of the *noli* returned and the merchant returned his *noli* to him. When this person returned home and opened the *noli* he was disappointed to see the counterfeit coins. He at once went to the court with the *noli* and the coins. The judge after hearing out his story asked about how many rupees he had placed in the *noli*. The man informed that he had kept one thousand rupees in the *noli*. The judge called for one thousand rupees and filled them in the *noli*. He found that the number of coins left out from the *noli* matched the length cut out from the *noli*. He believed in the truthfulness of the person. He summoned the merchant and ordered him to give back the thousand rupees to the person. The merchant got a punishment as well.

4. Nanak—Once a person deposited one thousand gold coins in a sealed and signed bag with a merchant and went out on tour. He returned after many years. During this period the merchant skilfully removed the seal, replaced the gold coins with made to order brass replicas and sealed it back without leaving a sign.

When the owner of the bag returned, the merchant gave him back his bag. The man examined the bag and the seal and finding

everything intact accepted the delivery. When he reached home, opened the bag and found brass coins he cursed his luck. He filed his complaint with the court. The judge summoned the merchant also. With both parties present he asked the complainant about how many years had passed since he deposited the bag with the merchant ? The man informed that five years had passed. The merchant also confirmed this statement. Now the judge examined the brass coins and found that they had been made recently; at the most one year back. The merchant was caught in his deceit and was punished. The gold coins were returned to the rightful owner.

5. The Mendicant—Once a person deposited one thousand gold coins with a mendicant and went out on tour. A few days later he returned and asked for his coins from the mendicant who resorted to biding time. Even after a considerable time when the mendicant did not return the coins the man started searching for some way to recover his wealth.

While he was still thinking about it he came across some gamblers. During conversation when he told about his problem the gamblers assured him that they will help him recover his wealth from the mendicant. They gave him instructions and left. Next day they dressed themselves in ochre robes and disguised as mendicants went to that mendicant. They requested him—"We have these gold pegs which we want to deposit with you for safe keeping. We are going out of the town on a tour and our problem is that we have no place to keep these costly pegs. You are a saint, and a truthful individual and have no fondness for wealth. What better person can we find than you."

While the talks were going on the former depositor came there according to the plan. He said—"Revered once, please give me back my bag of one thousand gold coins that I had deposited with you before going on tour."

The mendicant thought that if he refused now, a scene would be created and these mendicants will not deposit their highly valuable pegs with me. He at once returned the gold coins to the man in order to impress the disguised mendicants with his honesty. The overjoyed man left for his home. Now the gamblers also left on some pretext. The mendicant realised that they had made a fool of him.

६. चेटक निधान—दो घनिष्ट मित्र एक बार नगर से बाहर जंगल में किसी कार्यवश गये। जंगल में एक स्थान पर वे गड्ढा खोद रहे थे कि अचानक उन्हें बहुत-सा गड़ा हुआ खजाना (निधान) मिला। इतना सोना देखकर दोनों मित्र बहुत प्रसन्न हुए। उसमें से एक बोला—"मित्र ! हम बड़े भाग्यवान हैं कि हमें अकस्मात् ही इतना बड़ा निधान मिल गया। किन्तु इसे हम आज नहीं कल अपने घर ले चलेंगे क्योंकि कल बड़ी शुभ तिथि है।" यह व्यक्ति बड़ा कपटी था और दूसरा सरल चित्त। वह बातों में आ गया और दोनों अपने-अपने घरों को लौट गये। कपटी मित्र रात को जंगल में पहुँचा और सारा धन निकाल उसके स्थान पर कोयला भर रख गया।

अगले दिन नियत समय पर दोनों मित्र वहाँ पहुँचे और खुदाई की। वहाँ धन के स्थान पर कोयले देख कपटी रोने लगा। बीच-बीच में वह कनखियों में अपने मित्र की ओर देखता जाता और कहता जाता—"हम कितने भाग्यहीन हैं कि भाग्य ने हमारा धन छीनकर कोयले दे दिये।" दूसरा मित्र सरल अवश्य था किन्तु मूर्ख नहीं। वह समझ गया कि उसके मित्र ने ही यह धूर्त्तता की है। उसने उसी समय निश्चय कर लिया कि इस धूर्त्त को सबक सिखाना है और तब अपने मित्र को सान्त्वना देते हुए बोला—"इतना दुःख मत करो मित्र ! जैसा भाग्य में होता है वही होता है। चलो घर लौटें।" और दोनों मित्र लौट आए।

सरल चित्त मित्र ने घर आकर एक अच्छे कलाकार से अपने धूर्त्त मित्र की बैठी हुई प्रतिमा बनवाई। मूर्ति को एक कमरे में रख उसने दो बन्दर पाल लिये। बंदरों को खाने को जो कुछ भी देता वह उस मूर्ति के कंधों पर, सिर पर या जंघाओं पर रख देता। बंदर उछलते-कूदते उस प्रतिमा पर चढ़ते और अपना भोजन कर लेते। कुछ ही दिनों में वे उस मूर्ति से इतने परिचित हो गए कि जब भी उन्हें कुछ खाना होता तो मूर्ति की गोद में और कंधों पर चढ़कर खेलने लगते और सरल मित्र उन्हें फट से भोजन दे देता।

जब उस मित्र को यह विश्वास हो गया कि अब वे बन्दर जो वह चाहता था वह काम सीख गए हैं तो उसने एक दिन अपने कपटी मित्र के दोनों लड़कों को अपने यहाँ भोजन पर आमंत्रित किया। कपटी मित्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने दोनों पुत्रों को भेज दिया। सरल मित्र ने बच्चों को बड़े स्नेह से भोजन कराया और एक अन्य स्थान पर ढेर से खिलौने देकर छुपा दिया।

संध्या समय जब कपटी मित्र अपने बच्चों को लेने आया तब तक सरल मित्र ने वह प्रतिमा हटवाकर उसके स्थान पर एक आसन बिछा दिया था। कपटी मित्र को उसी आसन पर बैठने को कहा और कुछ भोजन सामग्री लाकर उसके सामने रख दी। कपटी बैठा ही था कि दूसरे कमरे में से दो बन्दर आए और कपटी की गोद में कंधों पर चढ़कर खेलने लगे। ऐसा लगता था जैसे वे कपटी को भलीभाँति पहचानते थे। सरल चित्त मित्र उदास भाव से उन्हें खाने की चीजें देने लगा।

कपटी ने आश्चर्यपूर्वक पूछा—"मित्र ! क्या बात है ये दोनों बंदर तो मेरे पास ऐसे आकर खेल-खा रहे हैं जैसे मुझसे परिचित हों।"

सरल मित्र ने कहा—"क्या बताऊँ मित्र ! ये बंदर तुम्हें क्यों नहीं पहचानेंगे? ये तो तुम्हारे पुत्र ही हैं। दुर्भाग्यवश बन्दर बन गए हैं।"

कपटी को काटो तो खून नहीं। वह सामने से झट से उठा और अपने मित्र का हाथ पकड़कर आवेश भरे स्वर में बोला—"मित्र ! यह कैसा क्रूर मजाक कर रहे हो? कहीं आदमी भी बन्दर बनते हैं।"

"मित्र ! दुर्भाग्य तथा कर्मफल क्या नहीं कर सकते। जब दुर्भाग्यवश सोना कोयले में बदल सकता है तो आदमी बन्दर क्यों नहीं बन सकता। अवश्य ही आपके अशुभ कर्मों का फल है।"

सारी बात कपटी मित्र के समझ में आ गई। उसने सोचा, यदि झगडा करेगा तो बात राज तक पहुँचेगी। धन भी छिन जाएगा और लाभ भी नहीं मिलेगा। उसे सबक मिल गया। उसने तत्काल सारी बात बताई और क्षमा माँगकर धन का बँटबारा कर लिया। सरल मित्र ने उसके दोनों पुत्र उसे वापस दे दिये। औत्पत्तिक बुद्धि का यह एक और सुन्दर उदाहरण है।

७. शिक्षा (धनुर्विद्या)—एक बार एक धनुर्विद्या-विशेषज्ञ भ्रमण करते हुए एक नगर में पहुँचा। वहाँ जब लोगों को उसकी योग्यता का पता लगा तो अनेक धनाढ्यों के पुत्र उसके पास जाकर धनुर्विद्या सीखने लगे। विद्या सीखने के बाद उसके इन धनी शिष्यों ने दक्षिणा के रूप में उसे प्रचुर धन भेंट किया। जब लड़कों के अभिभावकों को यह समाचार मिला तो वे बिगड़ गए और सबने मिलकर निश्चय किया कि जब वह व्यक्ति इतना धन लेकर अपने घर को प्रस्थान करेगा तब रास्ते में उसे मार-पीटकर धन वापस ले लिया जायेगा।

इस दुरभिसन्धि का किसी प्रकार धनुर्विद्या-विशेषज्ञ को पता चल गया। उसने अपने ग्राम में रहने वाले बंधुओं को चुपचाप यह समाचार भेज दिया कि आगामी पूर्णिमा के दिन वह नदी में गोबर के पिण्ड बहाएगा जो बहते हुए कुछ समय बाद उसके गाँव के निकट पहुँच जायेंगे। उन्हें नदी में से निकालकर सँभालकर रख दिया जाए। और फिर उसने दक्षिणा में मिला सारा धन गीली गोबर में डाल बहुत से पिण्ड बना लिये और उन्हें सुखा लिया।

उचित अवसर देख उसने अपने सब शिष्यों को बुलाकर कहा—"हमारे कुल की परम्परा है कि जब शिष्यों की शिक्षा पूर्ण हो जाए तो एक शुभ तिथि को नदी पर स्नान कर मंत्रोच्चार सहित गोबर के सूखे पिण्ड नदी में प्रवाहित किए जाते हैं। इसका यह महत्त्व है कि गोबर समान अज्ञान को प्रवाहित किया जा रहा है। तुम लोगों की शिक्षा पूर्ण हो चुकी है अतः यह दीक्षान्त समारोह आगामी पूर्णिमा को किया जाएगा।"

पूर्णिमा के दिन संध्या समय आयोजन किया गया और अनेक नगरवासियों की उपस्थिति में मंत्रोच्चार सहित सभी गोबर के पिण्ड नदी में प्रवाहित कर दिये गये। योजनानुसार ये पिण्ड जब बहकर उस शिक्षक के गाँव पहुँचे तो उसके बन्धुओं ने नदी से चुनकर एक गठरी में बाँध सँभालकर रख दिये।

कुछ दिनों बाद शिक्षक ने अपने प्रस्थान के समय की घोषणा कर दी। उसकी विदाई के दिन उसके शिष्य तथा उत्सुकतावश उनके अभिभावक भी आए। उन सभी के सामने शिक्षक मात्र उन्हीं वस्त्रों में जो उसने पहने हुए थे, बिना किसी अन्य सामान या गठरी को हाथ में लिए सबसे विदा लेकर चल दिया। अभिभावकों को आश्चर्य हुआ कि वह जैसे आया था वैसे ही अकिंचन के समान जा रहा है। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि उसके पास कुछ नहीं है अतः राह में उसे लूटने-मारने का विचार छोड़ दिया।

८. अर्थशास्त्र (नीतिशास्त्र)–एक व्यक्ति के दो पत्नियाँ थीं। एक के एक पुत्र था और दूसरी बाँझ। दोनों ही समान रूप से बच्चे का लालन-पालन करती थीं अतः बालक को यह पता नहीं था कि उसकी असली माँ कौन है। एक बार वह वणिक् अपनी पत्नियों और पुत्र सहित अयोध्या नगरी में आया जहाँ सम्राट् मेघ (भगवान सुमतिनाथ के पिता) का राज्य था। यहाँ दुर्भाग्यवश उस वणिक् का देहान्त हो गया। दोनों पत्नियों में पुत्र को लेकर विवाद हो गया क्योंकि संपत्ति का स्वामित्व पुत्रवती माँ को मिलता है।

यह विवाद राजा मेघ के समक्ष पहुँचा। वे भी न्याय न कर सके। जब महारानी सुमंगला को पता चला तो उन्होंने दोनों स्त्रियों को बुलवाया और कहा–"मैं गर्भवती हूँ और कुछ माह बाद मेरे पुत्र जन्म लेगा। वही कुछ वर्ष का होने पर तुम्हारा न्याय करेगा। तब तक तुम सब यहीं आनन्द से रहो।"

वंध्या ने विचार किया–"यह तो अच्छा अवसर है। रानी के पुत्र को बड़ा होने में तो कुछ वर्ष लगेंगे तब तक राजसी ठाट का आनन्द क्यों न लिया जाए। जब न्याय होगा तब देखा जाएगा।" यह सोचकर उसने तत्काल अपनी स्वीकृति दे दी। जिसका पुत्र था वह इस असमंजस में पड़ी रही कि उसे पुत्र चाहिए, राजसी ठाट नहीं। पर महारानी को अपनी बात कह कैसे कुपित करें।

महारानी तत्काल समझ गईं कि उनका प्रस्ताव स्वीकार करने वाली बाँझ स्त्री है। उसे दण्ड दिया गया और पुत्र उसकी असली माता को सौंप दिया गया।

९. इच्छायमहं (जो तुम चाहो वह मुझे दो)–किसी नगर में एक सेठ रहता था। एक दिन उसकी अकाल मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी को उसका व्यवसाय सँभालने की बड़ी कठिनाई होने लगी। जो धन सेठ ने ब्याज पर दिया हुआ था वह किसी प्रकार वसूल नहीं हो रहा था। अन्ततः उसने सेठ के एक मित्र को बुलाया और कहा–"आप अनुग्रह कर मेरे पति का ब्याज पर लगा धन वसूल करने में मेरी सहायता करें।" सेठ का वह मित्र बड़ा स्वार्थी था। उसने सेठानी से कहा–"यदि आप मुझे उस धन में कुछ हिस्सा दें तो मैं सारा पैसा वसूल कर सकता हूँ।" सेठानी ने उत्तर दिया–"जो तुम चाहो, वह मुझे दो।" स्वार्थी मित्र को जैसे मुँहमाँगी मुराद मिल गई। उसने कुछ ही दिनों में सारा पैसा वसूल कर लिया। सारे धन के उसने दो भाग किए–एक बहुत अधिक और दूसरा बहुत कम। कम वाला भाग उसने सेठानी को दिया। सेठानी ने लेना स्वीकार नहीं किया और विवाद लेकर न्यायाधीश के पास पहुँची।

न्यायाधीश से सेठानी ने सारी बात बताई और कहा कि यह व्यक्ति अपने वायदे से मुकर रहा है। न्यायाधीश ने सारा धन वहाँ मँगाया और उस व्यक्ति की इच्छानुसार दो ढेरों में बाँट दिया। और उस व्यक्ति से पूछा–"तुम कौन-सा ढेर लेना चाहते हो।" उसने बड़े ढेर को दिखाते हुए कहा–"मैं तो यही ढेर लेना चाहता हूँ।" न्यायाधीश ने उसे समझाया–"बस इसी कारण यह ढेर तुम दोनों के बीच हुए अनुबंध के अनुसार सेठानी को दिया जाएगा क्योंकि जिस शर्त पर तुमने यह काम किया है वह स्पष्ट है–"जो तुम चाहो वह इसे दो।"

सेठ का मित्र अपनी मूर्खता पर पछताता हुआ छोटा ढेर लेकर चला गया। सेठानी अपना धन लेकर अपने घर लौट गई।

१०. **शत सहस्र (एक लाख)**–एक परिव्राजक बड़ा कुशाग्र बुद्धि था। वह जो बात एक बार सुन लेता था उसे अक्षरशः याद हो जाती थी। उसके पास चाँदी का एक बहुत बड़ा पात्र था जिसे वह खोटक कहता था। अपनी इस स्मृति-क्षमता के अभिमान में चूर एक दिन उसने अनेक उपस्थित लोगों के समक्ष प्रतिज्ञा की–"जो व्यक्ति मुझे ऐसी अश्रुत पूर्व बात सुनाएगा कि जो मैंने पूर्व में कभी न सुनी हो, उसे मैं अपना यह विशाल रजत खोटक दे दूँगा।" उसकी इस प्रतिज्ञा के समाचार सुन एक-एक कर अनेक व्यक्ति आए और उसे अनेक बातें कहीं। पर वह बात सुनकर अक्षरशः उसे दोहरा देता और कहता कि यह तो मैंने पहले ही सुनी हुई है।

परिव्राजक की यह चतुराई एक सिद्ध-पुत्र समझ गया। उसने मन में ठान ली कि वह परिव्राजक को उसी के जाल में फँसाकर सबक सिखायेगा। परिव्राजक की प्रसिद्धि और अनेक लोगों को उसे बात सुनाने आने का प्रसंग इतना रोचक हो चुका था कि अब यह प्रतियोगिता राजदरबार में होने लगी थी। सिद्ध-पुत्र एक दिन अवसर देख राजदरबार में पहुँचा और कहा कि वह उसे ऐसी बात बताएगा जो उसने पहले नहीं सुनी है। परिव्राजक मुस्कराकर बोला–"अवश्य ! तुम भी अपना कौशल दिखाओ।"

सिद्ध-पुत्र ने ऊँचे स्वर में कहा जिससे राजा सहित सभी दरबारी सुन सकें–

"तुज्झ पिया मह पिउणो, धारेइ अणूणगं सय सहस्सं।
जइ सुयपुव्वं दिज्जह, अह न सुयं खोरयं देसु॥"

अर्थात् "तुम्हारे पिता को मेरे पिता के एक लाख रुपये देने हैं। यदि यह बात तुमने पहले सुनी है तो अपने पिता का एक लाख रुपये का कर्जा चुका और यदि नहीं सुनी है तो खोटक मुझे दे दो।"

परिव्राजक यह श्लोक सुनकर ठगा-सा रह गया। अपने ही जाल में स्वयं फँस गया। उसे अपनी पराजय स्वीकार कर चाँदी का पात्र देना पड़ा।

6. Chetak Nidhan—Two close friends once went out of the town into a jungle for some work. While they were digging a hole at a spot

in the jungle they found a pile of hidden treasure. The friends were elated to see so much of gold. One of them proposed—"Friend, we are extremely lucky that we have suddenly come across such a large treasure. But we will carry it home tomorrow only, and not today. This is because tomorrow is a very auspicious day." This man was crafty and the other one a guileless. This sincere one believed what was said and they both returned home. The crafty one returned to the spot during the night, took out the treasure and replaced it with a heap of coal.

Next day, at the appointed time the two friends went into the jungle and started digging for the treasure. Seeing coal instead the crafty one started crying profusely. In between, he would glance at his friend and utter—"How ill fated we are that we have been deprived of the treasure and given coal instead. The sincere one, though simple, was not a fool. He realised that his friend had played a trick on him. He at once resolved to teach his friend a lesson. However, he said—"Friend, don't be so distressed, one only gets what he is destined to. Come let's go home." And the two friends left.

The sincere one, after returning home, called an expert sculptor and got a statue of his friend in sitting posture made. When ready, he placed the statue in a room. After this he got two pet monkeys. When he had to feed the monkeys he would place the eatables on the shoulders, head or thighs of the statue. The monkeys would playfully jump and perch on the statue to eat. Within a few days they became so familiar with the statue and its connection with the food that whenever they wanted to eat they would come and sit in the lap or shoulders of that replica of a human figure. The sincere one would at once feed them.

When he was confident that the monkeys had perfectly learnt what he wanted, the sincere one day invited the two young sons of his crafty friend for lunch. The crafty was pleased to send both his sons. The sincere one fed them with loving care and hid them at a secret place with a heap of toys.

In the evening, by the time the crafty came to fetch his sons, the sincere one had already removed the statue and spread a mattress in its place. He asked the crafty to sit on the mattress. He then brought some snacks and placed before his friend. As soon as the crafty sat

down, two monkeys came from another room. One sat in his lap and the other on his shoulders and started playing. It appeared as if they were closely familiar with the crafty. The sincere one started giving snacks to the monkeys with a gloom clearly visible on his face.

The crafty asked with surprise—"Friend, what is the matter ? These little monkeys came to me and are playfully eating as if they know me well."

The sincere one said—"I fail to find words, my friend ! Why won't these monkeys recognise you ? After all they are your sons. Cruel fate has turned them into monkeys."

The crafty turned white with shock. He stood up quickly, took hold of his friends hand and uttered in dismay—"Friend ! Is it a cruel joke ! How can human beings turn into monkeys ?"

"Friend, the ways of fate and karma are strange and powerful. When bad luck can turn gold into coal, why can't it turn humans into monkeys. It must be the fruition of your bad karmas."

The crafty understood everything. He thought that if he disputed, the matter would go to the king. Without gaining anything he would lose all his wealth. He had got his lesson. He at once told the actual story about the treasure, begged his friend's pardon and shared the treasure with his friend. The sincere one also returned the little boys. This is a good example of Autpattiki Buddhi.

7. Education (of archery)—Travelling around an expert archer once came to a town. The inhabitants of the town came to know of his expertise and many young boys from wealthy families came to him to learn archery. When their education was complete they gave their teacher a big purse of money as gift. When the guardians of these boys got this news they were annoyed. They all unanimously decided that when the archer leaves for his village, they will apprehend him, beat him up and recover all the money.

The archer somehow came to know of this conspiracy against him. He furtively sent a message to his friends in his village that on the coming fifteenth day of the bright half of this month he will throw some dung-balls in the river. These floating balls will reach their village, which was down river, after some time. These balls should be

picked out from the river and carefully stored till he came back. He then collected a heap of cow-dung and made balls from it concealing a portion of his wealth in each ball. After all his money was concealed in the balls he left them to dry.

At an opportune moment he called his students and said—"It is my family tradition that after the education of my students is complete, on an auspicious day after a dip in the holy river, dung-balls are thrown in the river with chanting of mantras. This signifies the throwing away of dung-like-ignorance. Your education is complete now, therefore we shall have this convocation function on the coming 15th of the bright half of the month.

On the fixed date the function was organised. In presence of the prominent citizens of the town all the dung-balls were thrown in the river with mantra chanting. As planned, the archer's friends in his village were waiting for the floating balls. They collected all the balls, tied them carefully into a bundle and stored the bundle at a secure place.

A few days later the archer announced his date of departure. When that day arrived all his students came to bid him farewell. The curious guardians also came. In their presence the archer bid everyone good bye and left as he was standing, dressed as when he had come. He carried nothing in his hand in which he could carry the presumed large purse of wealth. The guardians were surprised to see that he was going back as poor as he had come. They accepted what they saw, that he was carrying no wealth and dropped their idea of waylaying him.

8. Ethics—A person had two wives. One had a son and the other was barren. But the two of them took care of the child with same affection and love. Due to this uniform behaviour even the child was not aware that which of them was his true mother. Once that merchant came to Ayodhya, the city where king Megh (the father of *Bhagavan* Sumatinath) ruled. Unfortunately he died there. After his death there was a dispute between the two wives about the son because property rights belonged the real mother of the son.

The dispute finally reached king Megh. He also was unable to come to a conclusion. When queen Sumangala came to know of this she

called the two women and said—"I am pregnant and will give birth to a son after a few months. When he becomes major after some years he will decide about your case. Till then you all live here in my palace."

The barren woman thought—"This is a good opportunity. It will take many years for the queen's son to grow, why not enjoy the regal comforts of the palace." And she at once gave her consent. The real mother was in a quandary. She wanted the son not the regal comforts. But how to tell this to the queen; she might get angry.

The queen at once understood that the woman who had accepted her proposal was the barren one. She was punished. The son was given to the real mother.

9. "Give me, what you like"—There lived a merchant in a city. He suddenly died one day. It was difficult for his wife to manage the business he left. She could not even recover the money the merchant had loaned on interest. At last she called another merchant, who was a friend of her deceased husband and said—"I would request you to help me recover from the market the loans advanced by my husband." This friend was very selfish. He gave a proposal—"If you give me some cut from the recovery, I can recover all the loan. The lady replied—"Give me, what you like." The selfish man got what he wanted. Very soon he recovered all the money. He divided the money into two parts—one very large and the other very small. He gave the lesser amount to the lady who refused to take it and instead took the matter to the court.

The lady explained to the judge the terms of the agreement and said that the selfish friend was going against what he promised. The judge got the point. He called for the wealth and divided into two heaps as desired by the selfish friend. Now he asked the offender—"Tell me which of the heaps you like ?" The offender pointed at the large heap and said—"My lord, I like this one." The judge said—"According the contract you have confirmed, you have to give this lady what you like. You have just said that you like the larger heap therefore you have to give the larger heap to this lady."

The selfish friend was caught in his own trap. He cursed himself on his foolishness and took the smaller heap away. The lady returned home with her wealth.

10. A Hundred Thousand—There was a *parivrajak* (a type of monk) with exceptionally sharp memory. Whatever he listened once he remembered verbatim. He had a large silver pot which he called *Khotak*. Proud of his memory he one day declared before a large audience—"Whoever narrates something that I have not already heard will be rewarded with this large *Khotak*." Hearing of this challenge many persons came and told numerous stories. But after hearing any story told to him the *parivrajak* would repeat it verbatim and claim that he already knew it.

A witty person understood the clever trick the *parivrajak* was playing. He decided to teach the *parivrajak* a lesson by ensnaring him in his own trap. The fame of the *parivrajak* and the sessions of story telling became so popular that now the competition became a part of the king's court. At an opportune moment the witty person went to the court and said that he would recite a verse that the *parivrajak* can never have heard. The *parivrajak* smiled confidently and said—"Indeed ! Come, you also display your expertise."

The witty person recited in a loud voice so that everyone in the court, including the king, could hear clearly what he said—

"Your father owes my father a hundred thousand rupees.

If you have not heard of this give me the *Khotak*.

If you have, and you are honest,

Pay me back the hundred thousand rupees."

The *parivrajak* was taken aback. He was caught in his own trap. He had to accept his defeat and part with his silver *Khotak*.

●●

(२) वैनयिकी बुद्धि
2. VAINAYIKI BUDDHI

५० : *वेणइया बुद्धी–*

भरनित्थरण-समत्था, तिवग्ग-सुत्तत्थ-गहिय-पेयाला।
उभओ लोग फलवई, विणयसमुत्था हवई बुद्धी॥

अर्थ–वैनयिकी बुद्धि–विनय से उत्पन्न बुद्धि कार्य-भार को वहन करने में समर्थ होती है। वह त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का प्रतिपादन करने वाले सूत्र व अर्थ का सार ग्रहण करने वाली होती है तथा इहलोक और परलोक दोनों में फलदायी होती है।

निमित्ते-अत्थसत्थे अ, लेहे गणिए अ कूव अस्से य।
गद्दभ-लक्खण गंठी, अगए रहिए य गमिया य॥
सीआ साडी दीहं च तणं, अवसव्वयं च कुंचस्स।
निव्वोदए य गोणे, घोडग पडणं च रुक्खाओ॥

इसे स्पष्ट करने वाले उदाहरण इस प्रकार हैं–१. निमित्त, २. अर्थशास्त्र, ३. लेखन, ४. गणित, ५. कूप, ६. अश्व, ७. गर्दभ, ८. लक्षण, ९. ग्रन्थि, १०. अगड़, ११. रथिक, १२. गणिका, १३. शीताशाटी, १४. नीव्रोदक, तथा १५. गौ बलों की चोरी, घोड़े की मृत्यु तथा वृक्ष से गिरना।

50. Wisdom acquired humbly is capable of handling the responsibility of work at hand. It absorbs the essence of the text propagating the triplet (religion, wealth and mundane duties) and its meaning. It accrues benefits during this birth and the next. The examples that elaborate this definition are—1. Augury, 2. Economics, 3. Writing, 4. Mathematics, 5. The Well, 6. The Horse, 7. The Donkey, 8. The Signs, 9. The Knot, 10. *Agad*, 11. The Charioteer, 12. The Courtesan, 13. *Sheetashati*, 14. Rain-water, and 15. Theft of Cattle, Death of the Horse and Falling from a tree.

विवेचन–वैनयिकी बुद्धि के उदाहरणस्वरूप संकलित कथाएँ निम्न प्रकार हैं–

१. निमित्त–किसी नगर में एक सिद्ध-पुरुष रहता था। उसके दो शिष्य थे जिन पर गुरु का समान स्नेह था। वह दोनों को समान भाव से निमित्त शास्त्र का अध्ययन कराता था। दोनों में से एक शिष्य बहुत विनयशील था तथा गुरु की आज्ञा का यथावत् पालन करता था। गुरु उसे जो पाठ देते उसे ध्यानपूर्वक सुनता और निरन्तर उस पर चिन्तन-मनन करता। जिस विषय पर जो

शंका या प्रश्न मन में उठता उसका समाधान गुरु से प्राप्त कर लेता था। यह ज्ञान प्राप्त कर पारंगत हो गया। दूसरा शिष्य अविनीत था। न गुरु की बात पर ध्यान देता और न ही पाठ पर चिन्तन-मनन करता। गुरु से बार-बार प्रश्न पूछने में भी अपना अपमान समझता था। इस स्वभाव के कारण उसका अध्ययन भी दोषपूर्ण व अधूरा रह गया।

एक बार गुरु की आज्ञा से दोनों शिष्य किसी गाँव को जा रहे थे। मार्ग में उन्हें पैरों के बड़े-बड़े चिह्न दिखाई पड़े। अविनीत शिष्य ने दूसरे से कहा-"लगता है कि ये पद-चिह्न किसी हाथी के हैं।" विनीत शिष्य ने उत्तर दिया-"नहीं मित्र, ये पद-चिह्न हाथी के नहीं, हथिनी के हैं। वह हथिनी बाँई आँख से कानी है। यही नहीं हथिनी पर कोई रानी सवार है और वह सुहागिन तथा गर्भवती है। एक-दो दिन में ही वह पुत्र को जन्म देगी।"

मात्र पद-चिह्नों के आधार पर इतनी बातें सुनकर अविनीत शिष्य को विश्वास नहीं हुआ। वह बोला-"ये सब बातें तुम किस आधार पर कह रहे हो?" विनीत शिष्य ने कहा-"भाई, कुछ कदम आगे चलने पर तुम्हें सब-कुछ स्पष्ट समझ में आ जाएगा।" अविनीत रूठकर चुप हो गया। कुछ समय के पश्चात्त अपने गंतव्य स्थान पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि गाँव के बाहर एक विशाल सरोवर के किनारे किसी वैभव-सम्पन्न व्यक्ति का पड़ाव पड़ा है। तम्बुओं के एक ओर एक पेड़ से एक हथिनी बँधी है जिसकी बाँई आँख फूटी हुई है। दोनों शिष्य यह दृश्य देख ही रहे थे कि एक सुन्दर तम्बू से एक दासी निकली और पास ही खड़े एक राजपुरुष जैसे प्रभावशाली व्यक्ति के निकट जाकर बोली-"मंत्रिवर ! महाराज को जाकर बधाई दीजिए। महारानी ने राजकुमार को जन्म दिया है।"

यह सब देख-सुनकर विनीत शिष्य दूसरे से बोला-"देखा मित्र, मैंने तुम्हें जो कुछ बताया था वह सब सत्य निकला।" अविनीत कुंद मन से बोला-"हाँ ! तुम्हारा ज्ञान सही है।" ये बातें करते वे एक वृक्ष की छाया में विश्राम हेतु बैठ गए।

कुछ समय बाद एक वृद्धा स्त्री माथे पर पानी से भरा घड़ा लिए उधर से निकली। उसने दोनों युवकों को देखकर मन में सोचा-"ये दोनों विद्वान् ज्योतिषी दिखाई पड़ते हैं। इनसे पूछूँ कि मेरा विदेश गया हुआ पुत्र कब लौटेगा।" वह आगे बढ़ी और दोनों शिष्यों के निकट पहुँच अपनी जिज्ञासा उन्हें बताई। तभी उसके सिर से घड़ा गिर पड़ा और फूट गया। सारा पानी मिट्टी में विलीन हो गया। यह देखकर अविनीत शिष्य बोल उठा-"बुढ़िया ! जैसे यह घड़ा गिरकर टूट गया है वैसे ही तेरा पुत्र भी मृत्यु को प्राप्त हो चुका है।"

वृद्धा यह सुनकर दुःख से विह्वल हो उठी। पर तभी विनीत शिष्य बोल उठा-"मित्र ! ऐसा मत कहो। इसका पुत्र तो अपने घर पहुँच चुका है।" फिर वृद्धा की ओर देखकर उसने कहा-"माता, आप शीघ्र अपने घर पधारें, आपका पुत्र वहाँ प्रतीक्षा कर रहा है।"

वृद्धा आश्वस्त हो अपने घर की ओर चली। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि उसका पुत्र धूल भरे पाँव लिए चबूतरे पर बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। आनन्द विभोर हो उसने पुत्र को गले

से लगा लिया और तत्काल पुत्र सहित विनीत शिष्य के पास लौटी और उसे दक्षिणा तथा अनेक आशीर्वाद दिए।

अविनीत शिष्य ने जब देखा कि उसकी सभी बातें मिथ्या निकल रही हैं और दूसरे शिष्य की सत्य तो उसे बड़ा दुःख हुआ। अपनी भूल समझने के स्थान पर वह अपने गुरु के प्रति क्रोध से भर गया–"यह सब गुरूजी के पक्षपात के कारण हुआ है। उन्होंने मुझे भली प्रकार शिक्षा नहीं दी।" जब दोनों गुरु के पास लौटे तो विनीत शिष्य कृतज्ञ भाव से गुरु के चरणों में झुका। किन्तु अविनीत ज्यों का त्यों अकड़कर खड़ा रहा। गुरु ने जब प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो वह उलाहना भरे स्वर में बोला–"आपने मुझे अच्छी तरह शिक्षा प्रदान नहीं की। अतः मेरा ज्ञान अधूरा रह गया। इसे आपने मन लगाकर पढ़ाया। अतः इसका ज्ञान पूर्ण हो गया। आपको यह पक्षपात शोभा नहीं देता।"

गुरूजी चकित हो विनीत शिष्य से बोले–"वत्स ! क्या बात है? तुम्हारे गुरु-भाई के मन में ऐसे विचार क्यों उठे? मुझे विस्तार से सब बताओ।" शिष्य ने समस्त घटना-क्रम ज्यों का त्यों बता दिया।

तब गुरु ने प्रश्न किया–"तुमने जो सब बातें बताईं उनका क्या आधार था?"

शिष्य–"गुरुदेव ! आपकी कृपा से मैंने यह देखा कि पद-चिह्न हाथी के हैं किन्तु रास्ते में गिरे मूत्र की धार पद-चिह्नों से दूरी से अनुमान किया कि वह हाथी नहीं, हथिनी है। मार्ग के दाहिनी ओर के वृक्षों के फल व पत्ते खाए हुए थे और बायीं ओर के ज्यों के त्यों, अतः मैं यह समझ गया कि हथिनी बाएँ नेत्र से कानी है। हथिनी के पद-चिह्नों के साथ अनेक नर-नारियों के तथा अश्वों के पद-चिह्न भी राह पर थे अतः यह अनुमान किया कि अवश्य ही हथिनी पर कोई राजपुरुष सवार था। कुछ दूर पर हथिनी के बैठने और उस पर से उतरकर किसी के लघुशंका के लिए झाड़ी की ओर जाने के पद-चिह्न भी स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। झाड़ी में उलझे बाल रेशम के तंतुओं से यह अनुमान हुआ कि वह स्त्री अत्यन्त वैभवशाली तथा सुहागिन है अतः मैंने समझा कि वह अवश्य ही महारानी है। वह स्त्री लघुशंका के पश्चात् दाहिने हाथ को धरती पर टिकाकर उसके सहारे खड़ी हुई अतः मैं यह समझा कि वह गर्भवती है। दाहिना पैर अधिक भारी पड़ने के चिह्न से मैंने यह अनुमान किया कि उसका प्रसव काल निकट है। अन्य सभी निमित्त इस ओर इंगित कर रहे थे कि वह पुत्र को जन्म देगी।"

गुरु ने गर्व व संतोष से उसकी ओर देखा। उसने फिर कहा–"वृद्धा के प्रश्न करते ही घड़े के गिरकर फूट जाने से मैंने यह अनुमान किया कि जैसे मिट्टी से बना घड़ा फिर मिट्टी में मिल गया उसी प्रकार माता की कोख से जन्मा पुत्र पुनः माता से आ मिला है।" गुरु ने सब बात जान विनीत शिष्य की प्रशंसा की। अविनीत से गुरु ने समझाते हुए कहा–"तू न तो मेरी आज्ञा का पालन करता है, न पढ़ाए पाठ पर चिन्तन-मनन करता और न ही अपनी शंकाओं का समाधान करता। ऐसी स्थिति में तू सम्यग्ज्ञान का अधिकारी नहीं बन सकता। मैं तो तुम दोनों को

एक साथ बैठाकर एक ही पाठ पढ़ाता रहा हूँ। किन्तु विनय के अभाव में तेरा ज्ञान अपूर्ण रह गया। मेरा पक्षपात नहीं यह तो तेरे अविनय का दोष है।" अविनीत शिष्य लज्जित हुआ और पुनः मन लगाकर विनय के साथ अध्ययन करने लगा। (देखें चित्र १८)

२. **अर्थशास्त्र**--इसी प्रकार अर्थशास्त्र का ज्ञान भी विनय द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

३. **लेखन**--लेखन का अभ्यास भी विनयशीलता से ही हो सकता है।

४. **गणित**--गणित तथा अन्य सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त करना भी विनय से ही संभव होता है।

५. **कूप**--एक भूवेत्ता अपने शिक्षक के पास अत्यन्त विनयपूर्वक शिक्षा ग्रहण करता था। उसने शिक्षक के प्रत्येक पाठ को ध्यान से समझा और उसकी प्रत्येक आज्ञा को विनयपूर्वक मानकर विषय का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर वह एक चमत्कारिक भूवेत्ता बन गया।

एक बार किसी ग्रामीण ने उसे अपना खेत दिखाकर पूछा--"मेरे खेत में किस स्थान पर और कितना गहरा कुआँ खोदने से पानी निकलेगा?" भूवेत्ता ने अपनी विद्या से अनुमान लगा उसे स्थान व गहराई बताई। किसान ने कुआँ खोदा किन्तु पानी नहीं निकला। वह पुनः भूवेत्ता के पास गया। भूवेत्ता ने खेत पर आकर कुएँ का भलीभाँति सूक्ष्म निरीक्षण किया और कहा--"इसके भीतर पार्श्व भाग में अमुक स्थान पर पाँव की एड़ी से प्रहार करो।" किसान ने वैसा ही किया और उस स्थान से पानी का स्रोत फूट पड़ा। किसान ने भूवेत्ता को यथेष्ट भेंट दी और उसकी प्रशंसा की।

ऐसी विद्या वैनयिकी बुद्धि के द्वारा ही संभव है।

६. **अश्व**--एक बार बहुत-से व्यापारी अपने घोड़े बेचने द्वारका नगरी में आए। नगर के कई राजकुमारों ने पुष्ट और बड़े डीलडौल के अश्व खरीदे। किन्तु वासुदेव नाम के एक युवक ने, जो अश्व-परीक्षा में पारंगत था, एक दुबला-पतला घोड़ा खरीदा। आश्चर्य की बात यह थी कि जब भी घुड़दौड़ होती वासुदेव का दुबला-पतला घोड़ा ही दौड़ जीतता। इसका कारण वासुदेव की अश्व-परीक्षा में प्रवीणता थी। यह विद्या उसने अपने कलाचार्य से बड़े विनयपूर्वक सीखी थी। विनय द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है तथा ज्ञान व अनुभव का विस्तार होता है।

७. **गर्दभ**--किसी नगर में एक युवा राजा राज्य करता था। उसका मानना था कि युवावस्था ही श्रेष्ठ होती है और युवक में ही अधिक शक्ति और परिश्रम की क्षमता होती है। अपनी इस मान्यता के चलते उसने धीरे-धीरे अपनी सेना के समस्त अनुभवी एवं वृद्ध योद्धाओं को निकाल दिया और युवकों को भर्ती कर लिया।

एक बार वह अपनी सेना सहित किसी राज्य पर आक्रमण करने निकला। बीच में ही मार्ग भटककर एक बीहड़ में जा पहुँचा। बहुत खोजने पर भी वहाँ से बाहर निकलने का मार्ग नहीं मिला। उस बीहड़ में कहीं पीने का पानी भी नहीं मिला। प्यास के मारे सारी सेना छटपटाने लगी।

१८. चित्र परिचय | Illustration No. 18
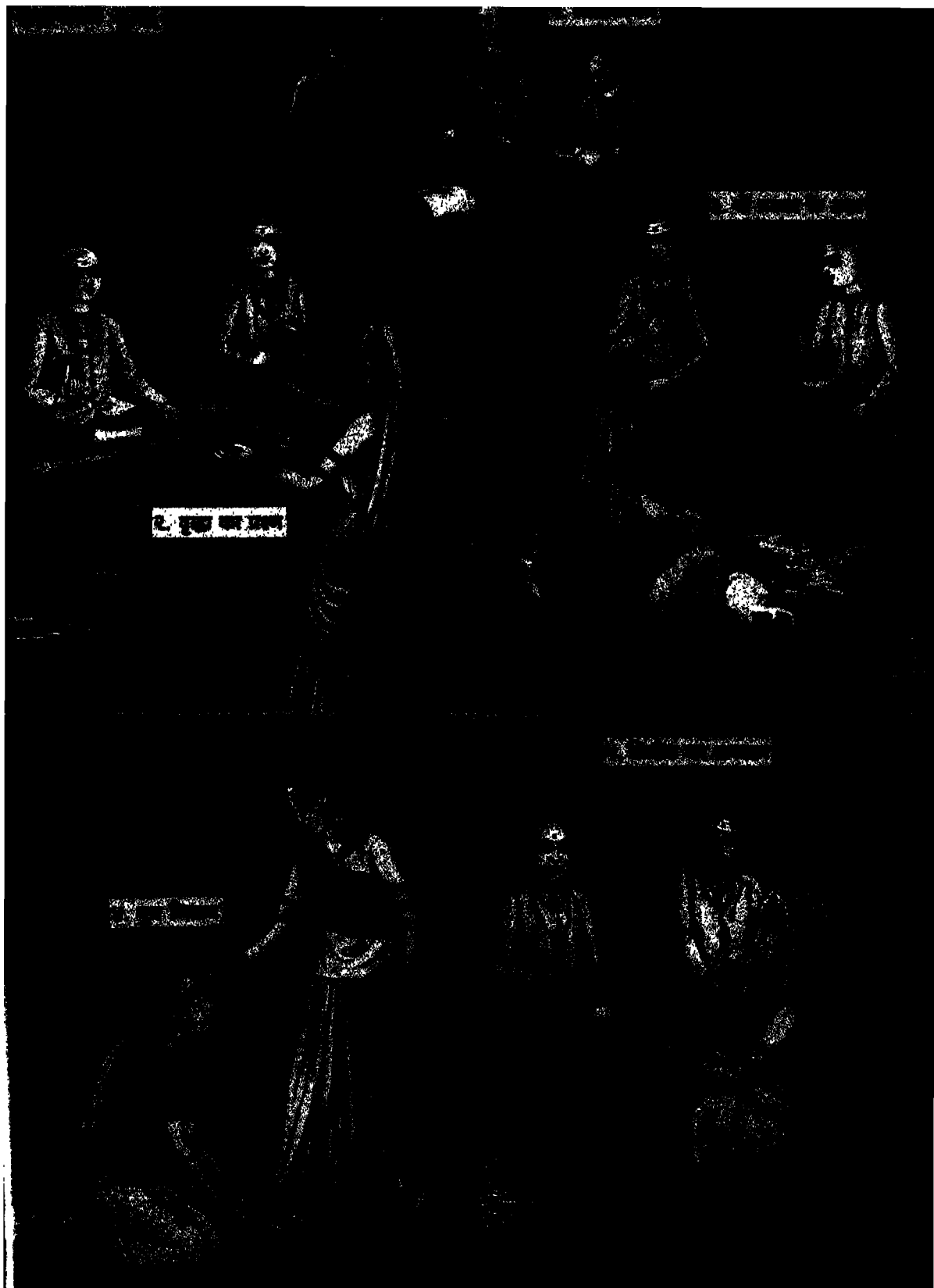
वैनयिकी बुद्धि के दृष्टान्त

१. विद्याध्ययन–दो छात्र गुरु के पास ज्योतिष-निमित्त विद्या का अध्ययन करते थे। एक विनीत था, दूसरा अविनीत।

२. वृद्धा का प्रश्न–दोनों एक बार किसी सरोवर के किनारे बैठे हैं। एक वृद्धा ने उनसे पूछा–मेरा पुत्र परदेश से कब तक लौटेगा?

३. दोनों का उत्तर–उसी समय वृद्धा का पानी भरा घड़ा गिर पड़ा, फूट गया। अविनीत शिष्य बोला–घड़ा फूटना अपशकुन है। तेरा पुत्र मर गया। वृद्धा दुःखी हुई। तब विनीत बोला–जा माता, तेरा पुत्र घर पर तैयार मिलेगा।

४. पुत्र-मिलन–वृद्धा घर आई तो पुत्र उसका इंतजार कर रहा था। उसने माता के चरण छुए।

५. विनीत का सन्मान–वृद्धा प्रसन्न होकर विनीत निमित्तज्ञ के लिए अनेक उपहार लेकर आई। दूसरा अविनीत छात्र यह देखकर बहुत दुःखी हुआ।

गुरु से विद्या समान पढ़ने पर भी विनय द्वारा प्राप्त विद्या फलदायी होती है तथा अविनीत का ज्ञान विपरीतगामी हो जाता है। (सूत्र ५० का दृष्टान्त)

EXAMPLES OF VAINAYIKI BUDDHI

1. *Vidyadhyayan*—Two students are studying astrology from a teacher. One was modest and the other immodest.

2. *Old woman's question*—The two students are sitting near a pond. An old lady asks them, when her son would return home?

3. *Answer*—The pitcher the lady carried slipped, fell and shattered. The immodest said—This is an ill omen. Your son has died. The lady became sad. Now the modest one said—Mother, go home, your son awaits.

4. *Meeting the son*—The old lady reached home and found her son waiting. He touched his mother's feet.

5. *Honouring the modest*—The lady was pleased and brought many gifts for the modest augur. The immodest one became sad.

Even after getting the same lessons from the teacher the knowledge acquired with modesty if fruitful. The knowledge of an immodest bears no fruits. (Example from 50)

सभी बेहाल हो गए। तभी एक सैनिक ने राजा से कहा–"हमें तो इस विपत्ति से उबरने का कोई मार्ग नहीं सूझता। कोई अनुभवी वयोवृद्ध हो तो संकट टाल सकता है।" राजा ने सेना में घोषणा करवाई कि "सेना में कोई अनुभवी व्यक्ति हो तो आकर सलाह दे।"

सौभाग्यवश सेना में एक वयोवृद्ध योद्धा वेश बदलकर आया हुआ था। उसे उसका पुत्र राजा के पास ले आया। राजा ने विनयपूर्वक कहा–"मेरी सेना को प्यास बुझाने के लिए जल उपलब्ध हो ऐसा कोई उपाय कीजिए।" वृद्ध सैनिक ने तनिक विचारकर कहा–"महाराज, सेना में माल ढोने वाले गधे हैं उन्हें खुला छोड़ दीजिए और सेना को उसी ओर ले चलिए जिधर गधे जाएँ। वे जहाँ रुककर धरती सूँघने लगें उस स्थान पर खोदने से जल प्राप्त हो जाएगा।" राजा ने वैसा ही किया और कुछ दूर जाकर जल प्राप्त हो गया। यह उस वृद्ध सैनिक की वैनयिकी बुद्धि का ही प्रताप था कि सेना का विपत्ति से निस्तार हुआ।

८. लक्षण–एक व्यापारी ने अपने घोड़ों की देखभाल के लिए एक व्यक्ति को नियुक्त किया और वेतन के रूप में उसे दो घोड़े देने को कहा। उस व्यक्ति ने वेतन स्वीकार कर लिया और घोड़ों की सार-सँभाल और रक्षा करने लगा। कुछ समय बीतने पर उसे व्यापारी की पुत्री से स्नेह हो गया। सेवक चतुर था। उसने कन्या से पूछा–"इन सब घोड़ों में कौन-सा घोड़ा श्रेष्ठ है?" लड़की ने उत्तर दिया–"यों तो सभी घोड़े उत्तम हैं किन्तु जो पत्थरों से भरे कुप्पे को वृक्ष से गिराने पर उसकी आवाज से भयभीत न हों वे सर्वश्रेष्ठ और लक्षण-सम्पन्न घोड़े हैं।"

लड़की के कथनानुसार सेवक ने सब घोड़ों की परीक्षा कर ली और दो श्रेष्ठ घोड़े उनमें से छाँट लिये। जब वेतन लेने का समय आया तो उसने व्यापारी से वे ही दोनों घोड़े माँग लिये। व्यापारी सोच में पड़ गया–"ये दोनों अश्व ही मेरे सभी घोड़ों में सर्वश्रेष्ठ और बहुमूल्य हैं। ये देने से तो मेरी बहुत हानि हो जाएगी।" उसने सेवक को समझाने की बहुत चेष्टा की, अन्य कोई भी दो अश्व लेने को कहा। पर सेवक टस से मस नहीं हुआ।

उलझन में भरा व्यापारी घर के भीतर अपनी पत्नी के पास गया और बोला–"यह सेवक तो बड़ा चतुर और बुद्धिमान् है। इसने अपने सर्वश्रेष्ठ घोड़े पसन्द कर लिए हैं। वेतन के रूप में वे अश्व लेने से अच्छा तो यह होगा कि उससे अपनी पुत्री का विवाह कर दें और सदा के लिए यहाँ रहने को विवश कर दें।"

व्यापारी की पत्नी यह सुनकर आगबबूला हो गई–"आपका माथा तो नहीं फिर गया है? एक नौकर को अपनी बेटी ब्याहोगे?"

व्यापारी ने समझाया–"यदि हमारे वे बहुमूल्य घोड़े चले गए तो हमारी बहुत हानि होगी। वे बहुमूल्य ही नहीं हमारे लिए शुभ भी हैं। फिर यह सेवक भी गुण-सम्पन्न है। इसे जामाता बना लेने से घोड़े भी बच जाएँगे और इनकी सार-सँभालकर इनमें वृद्धि करने वाला निजी व्यक्ति भी मिल जाएगा। ऐसा सुदर्शन व बुद्धिमान पति पाकर हमारी कन्या भी सुखी होगी और सदा हमारी आँखों के सामने रहेगी।" ये सब बातें सुनकर व्यापारी की पत्नी ने सहमति दे दी। व्यापारी ने

सेवक से अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और वे सुख से रहने लगे। वैनयिकी बुद्धि के सहारे व्यापारी ने अपने माल को जाने नहीं दिया।

(९) ग्रन्थि–पाटलीपुत्र में किसी समय मुरुण्ड नामक एक राजा था। किसी अन्य राजा ने एक बार तीन विचित्र वस्तुएँ भेजीं और उनका रहस्य जानने को कहा। वे वस्तुएँ थीं–एक सूत का टुकड़ा जिसका छोर नहीं था, एक लाठी का टुकड़ा जिसकी गाँठ दिखाई नहीं देती थी, और एक डिब्बा जिसका ढकना दिखाई नहीं देता था।

राजा ने ये वस्तुएँ सभी सभासदों को दिखाईं और उनका रहस्य खोजने को कहा। सभी आश्चर्य से इन वस्तुओं को घुमा-घुमा कर देखने के बाद चुप बैठ गये। राजा ने तब आचार्य पादलिप्त सूरि को सादर आमन्त्रित किया और पूछा–"भन्ते ! क्या आप इन वस्तुओं के रहस्य बता सकते हैं?" आचार्यश्री ने एक नजर तीनों वस्तुओं पर डाली और समझ गये कि इन तीनों पर बड़ी कारीगरी से वस्तुओं के ही रंग के लाख लगा कर संधियाँ व ग्रन्थियाँ बन्द की गईं हैं जिससे वे दिखाई नहीं पड़तीं। उन्होंने राजा से कहा कि–एक बर्तन में उबलता पानी मँगवाया जाये। जब पानी भरा बर्तन आया तो उन्होंने तीनों वस्तुएँ उसमें डाल दीं। तीनों पर लगी लाख निकल कर अलग हो गई। लाठी के टुकड़े का हल्का छोर ऊपर आ गया और गाँठ वाला पानी में डूबा रहा। सूत के टुकड़े का छोर दिखाई देने लगा। डिब्बे पर का लाख निकल जाने से उसका ढकना भी साफ दिखाई देने लगा। राजा और सभासदों ने आचार्यश्री की वैनयिकी बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

तब राजा ने आचार्य श्री से कहा कि वे कोई इस प्रकार की विचित्र वस्तु बतावें जो मित्र राजा को भेंट में भेजी जा सकती हों। आचार्यश्री ने एक तूंबा मँगाकर बड़ी सावधानी से कटवाया और उसमें कुछ रत्न भर कर पुनः काटे हिस्से को लाख से ऐसी सफाई से जोड़ दिया कि कोई चिन्ह दिखाई न दे। यह तूम्बा राजा ने मित्र राजा को भिजवा दिया और संदेश भेजा कि इस तूंबे को बिना तोड़े इसमें से रत्न निकाल लेवें। जब राजा को कुछ दिनों बाद यह समाचार मिला कि मित्र राजा के यहाँ कोई भी उस तूम्बे में से रत्न नहीं निकाल सका तो उन्होंने आचार्यश्री को सादर प्रशंसा सहित धन्यवाद दिया।

(१०) अगड–किसी नगर में एक राजा था। उसका जितना छोटा राज्य था उतनी ही छोटी सेना। एक बार पड़ोस के एक शक्तिशाली राजा ने उस पर आक्रमण कर नगर को चारों ओर से घेर लिया। राजा को और कोई उपाय न सूझा तो उसने नगर में घोषणा करवा दी कि जिसके पास भी कोई विष हो वह राजा के पास ले आये। कई लोग कई तरह के विष प्रचुर मात्रा में लेकर उपस्थित हो गये। राजा ने अपने गुप्तचरों द्वारा वह विष नगर के बाहर के उस कुएँ में डलवा दिया जो शत्रु सेना के लिए जल का एकमात्र स्रोत था।

इसके पश्चात एक वैद्य एक छोटी सी शीशी में विष लेकर आया। राजा उसे देख कर क्रोध में भर गया–"इतनी देर से आये और इतना सा विष लेकर?" वैद्य ने राजा को समझाया–"महाराज ! कृपा कर क्रोध न करें। यह सहस्रवेधी विष है। अभी तक जितना भी विष आपके

पास आया है उस सारे विष से जितने लोग मर सकेंगे उससे भी कहीं अधिक नर-संहार इस छोटी सी शीशी से हो जायेगा।" राजा ने आश्चर्यपूर्वक पूछा– "यह कैसे सँभव है? क्या आप इसका प्रमाण दे सकते हैं।"

वैद्य ने उसी समय एक वृद्ध हाथी लाने को कहा। हाथी आया, तो उसकी पूँछ से एक बाल उखाड़ा और उस स्थान पर सूई की नोंक से विष का संचार किया। विष जैसे-जैसे शरीर में फैलने लगा वैसे-वैसे हाथी के अंग शिथिल होने लगे। वैद्य ने कहा–"महाराज ! यह हाथी विषमय होता जा रहा है। इसका माँस जो भी खायेगा वह भी विषमय हो जायेगा। इसलिए इस विष को सहस्रवेधी कहते हैं।"

राजा को वैद्य की बात पर विश्वास हो गया। तभी हाथी को मरता देख राजा ने कहा– "वैद्यराज ! यह हाथी व्यर्थ ही मर रहा है। क्या इसका उपचार नहीं हो सकता?" वैद्य ने कहा– "अवश्य, जो विष की काट न जाने वह कैसा चिकित्सक।" और वैद्य ने हाथी के उसी रन्ध्र में किसी औषधि का संचार किया। देखते ही देखते हाथी स्वस्थ हो गया।

वैद्यराज का यह व्यापक ज्ञान उन्हें वैनयिकी बुद्धि की सहायता से ही प्राप्त हुआ था।

(११-१२) **रथिक एवं गणिका**–सारथी तथा गणिका के उदाहरण स्थूलभद्र की कथा में वर्णित हैं। (देखें पृ.–)

(१३) **शाटिका आदि**–किसी नगर में एक अत्यन्त लोभी राजा था। उसके राजकुमार एक विद्वान गुरु के पास शिक्षा प्राप्त करते थे। राजकुमार उदारमना व विनयशील थे। अतः आचार्य ने भी अपने इन शिष्यों को बहुत लगन से शिक्षा दी। विद्याध्ययन पूर्ण होने पर राजकुमारों ने अपने गुरु को प्रचुर धन दक्षिणा स्वरूप भेंट किया। राजा को किसी प्रकार यह समाचार मिला और उसने निश्चय किया कि विद्वान को मारकर उसका धन ले लेना चाहिए। राजकुमारों को इस बात की भनक लग गई। अपने गुरु आचार्य के प्रति गहरी श्रद्धा और स्नेह के कारण उन्होंने किसी प्रकार उनकी जान बचाने का निश्चय किया।

तीनों राजकुमार अपने आचार्य के पास गये। उस सयम वे भोजन से पूर्व स्नान की तैयारी कर रहे थे। शिष्यों का स्वागत कर उन्होंने सूखी धोती (शाटिका) मँगाई। एक राजकुमार ने कहा–"शाटिका गीली है।" तभी दूसरा बोला–"तिनका लम्बा है।" फिर तीसरे ने भी कहा– "पहले क्रौञ्च पक्षी दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा करता था अब वह बायीं ओर घूम रहा है।"

आचार्य ने जब कुमारों के मुँह से ये अटपटी बातें सुनी तो उनका माथा ठनक गया। उन्होंने विचार किया और समझ गये कि उनके धन के कारण कोई उनका शत्रु बन गया है और ये शिष्य उन्हें चेतावनी दे रहे हैं। यह समझते ही उन्होंने अपने शिष्यों से विदा ली और चुपचाप भोजन समय से पूर्व ही अपने गाँव की ओर चले गये। राजकुमारों की वैनयिकी बुद्धि ने उनके गुरु की जान बचायी।

(१४) नीव्रोदक (वर्षा का जल)–एक व्यापारी लम्बे समय से विदेश गया हुआ था। पीछे से उसकी पत्नी ने अपनी वासनापूर्ति हेतु अपनी सेविका द्वारा एक व्यक्ति को बुलवा लिया। उसे सजाने सँवारने के लिए उसने एक नाई को भी बुलावा भेजा। नाई ने आकर उस व्यक्ति के केश व नाखून काटे और भली प्रकार स्नानादि करवा कर सजा दिया।

संयोगवश उस रात मूसलाधार वर्षा हुई। जब उस लम्पट को प्यास लगी तो उसने छज्जे से गिरती वर्षा के पानी की धार से चुल्लू से पानी पी लिया। छज्जे के ऊपरी भाग पर मरे हुए साँप का शरीर पड़ा था। इस कारण पानी की वह धार विषमय हो गई थी। पानी पीते ही उस व्यक्ति की मृत्यु हो गई।

सेठानी घबरा गई और उसने तत्काल अपने नौकरों को बुलवा कर वह शव एक जनशून्य देवकुलिक में डलवाने को कहा। प्रातःकाल जब लोगों को शव का पता लगा और राजपुरुष उस व्यक्ति के मरने का कारण ढूँढ़ने लगे। उन्होंने देखा कि मृत व्यक्ति के नाखून और बाल तत्काल कटे हुए थे। अधिकारी ने झट से शहर के सभी नाइयों को बुलवाया और एक-एक कर सबको शव दिखाकर प्रश्न किया। एक नाई ने शव को पहचान लिया और बताया कि उसने अमुक वणिक पत्नी की दासी के बुलाने पर इस व्यक्ति को सजाया-सँवारा था। राजपुरुषों ने दासी को जा पकड़ा और उसने डर से सारी घटना बतादी। कर्मचारियों की वैनयिकी बुद्धि से समस्या का हल निकल गया।

(१५) बैल आदि–किसी गाँव में एक अत्यन्त भाग्यहीन व्यक्ति रहता था। वह जिस काम में हाथ डालता वही बिगड़ जाता था और वह संकट में पड़ जाता था। एक बार उसने अपने एक मित्र से हल चलाने के लिए बैलों की जोड़ी माँगी। काम पूरा होने के बाद जब वह बैल लौटाने आया तो मित्र भोजन कर रहा था। इसने बैलों को बाड़े में छोड़ा और यह समझ कर कि मित्र देख तो रहा ही है, विना कुछ कहे ही लौट आया। उसका दुर्भाग्य कि बैल किसी प्रकार बाड़े से निकल गये और उन्हें कोई चुरा कर ले गया। बैलों का मालिक बाड़े में बैल न देखकर इस पुण्यहीन के पास आया और अपने बैल वापस माँगने लगा। पुण्यहीन ने जब कहा कि वह बैलों को उसके सामने ही बाड़े में छोड़ आया था। तब बात बढ़ी और झगड़ा हो गया। बैलों का मालिक उसे साथ ले राजा से शिकायत करने नगर की ओर रवाना हो गया।

मार्ग में एक घुड़सवार सामने से आता हुआ मिला। अचानक उसका घोड़ा बिदक गया और सवार को गिराकर भागने लगा। घोड़े का मालिक चिल्लाया–"अरे कोई डण्डा मार कर घोड़े को रोको।"

उस पुण्यहीन व्यक्ति के हाथ में एक डण्डा था। उसने गिरे हुए घुड़सवार की सहायता के उद्देश्य से, जैसे ही घोड़ा उसके निकट पहुँचा, घोड़े के डण्डा दे मारा। दुर्भाग्यवश डण्डा घोड़े के मर्मस्थल पर लगा और तत्काल ही वह मर गया। घोड़े का स्वामी इस पर बहुत कुपित हुआ और पुण्यहीन को राजा से दण्ड दिलवाने के लिए वह भी साथ हो लिया। तीनों नगर की ओर चलने लगे।

जब तक वे नगर तक पहुँचे रात हो गई और नगर के द्वार बन्द हो गये। वे तीनों सुबह होने के इन्तजार में पास के एक घने पेड़ के नीचे सो गये। पुण्यहीन को कहाँ नींद आती थी। वह सोच में डूब गया-"भाग्य मेरा साथ नहीं देता। भला करने जाता हूँ और बुरा हो जाता है। ऐसे जीवन से तो मृत्यु भली। सभी विपत्तियों से छुटकारा मिल जायेगा।"

यह सोचकर उसने अपने दुपट्टे को पेड़ की डाल से बाँधा और गले में फंदा लगाकर लटक गया। भाग्यहीन को मृत्यु भी नहीं आई। दुपट्टा गला हुआ था अतः उसका बोझ नहीं सह सका और टूट गया। पेड़ के नीचे नटों का एक दल भी सोया हुआ था। पुण्यहीन उसी पर गिरा और उसके मुखिया की तत्काल मृत्यु हो गई। नटों में खलबली मच गई और अन्ततः वे भी राजा के पास जा पुण्यहीन को दण्ड दिलवाने के लिए साथ हो लिए।

राजदरबार में जब यह भीड़ पहुँची तो सभी चकित हो गये। राजा ने इतने लोगों के एक साथ आने का कारण पूछा तो सब अभियोगकर्ताओं ने अपने अपने अभियोग सुनाए। तब राजा ने पुण्यहीन की ओर देखा। उसने सभी अभियोगों को स्वीकार करते हुए कहा-"महाराज ! मैंने जानबूझ कर कोई अपराध नहीं किया। मैं इतना भाग्यहीन हूँ कि मेरे द्वारा किया प्रत्येक भला कार्य बुरा बन जाता है। ये सभी सच कह रहे हैं। आप जो भी दण्ड दें मुझे स्वीकार है।"

राजा बहुत विचारशील और न्यायप्रिय था। वह समझ गया कि उस भोले व्यक्ति का कोई दोष नहीं है। भाग्य के दोष के लिए उसे दण्ड देना उचित नहीं। उसे दया आई और उसने अपने गहन अनुभव और वैनयिकी बुद्धि का उपयोग कर बड़े चतुराई से फैसले सुनाए।

सबसे पहले उसने बैल वाले को बुलाकर कहा-"तुम्हें अपने बैल लेने हैं तो पहले अपनी आँखें निकाल कर इसे दे दो-क्योंकि तुमने अपनी आँखों से इसे बाड़े में बैल ले जाते हुए देखा था।"

इसके बाद घोड़े वाले को बुलाकर कहा-"अगर तुम्हे घोड़ा चाहिए तो पहले अपनी जीभ काट कर इसे दे दो जिसने इसे घोड़े को डण्डा मारने को कहा था। इसे दण्ड देना तब तक न्यायोचित नहीं जब तक तुम्हारी जीभ को दण्ड न मिले।"

अन्त में उसने नटों को बुलाया और कहा-"इस दीन व्यक्ति के पास कुछ भी नहीं जो तुम्हें दिलवाया जाये। तुम्हें बदला ही लेना है तो इसे उसी वृक्ष के नीचे सुला देते हैं। तुममें से जो अब मुखिया है वह गले में फंदा लगाकर उसी डाल से लटक जाये। वह इस व्यक्ति पर गिरेगा और यह मर जायेगा।" हिसाब बराबर हो जायेगा।

राजा के इस न्याय ने तीनों को निरुत्तर कर दिया और वे अपना सा मुँह लेकर चले गये। पुण्यहीन व्यक्ति राजा को धन्यवाद दे अपने स्थान को लौट गया।

Elaboration—The stories compiled as examples of vanayiki Buddhi are as follows :

1. Augury—In a town lived an expert augur. He had two disciples whom he liked equally. He taught them with same interest. One of the students was very modest and followed the teacher's instructions strictly. He listened to the lessons with keen attention and pondered over them regularly. Whenever there was some doubt, he put forth a question before the teacher and removed his doubt. Soon he acquired all knowledge and became an expert. The other student was immodest. He neither gave attention to what was taught nor did he ponder over the lessons. He found asking questions and removing doubts below his dignity. Due to this nature his education remained faulty and incomplete.

Once the two students, on some errand, set out to go to a nearby village. On the road they saw large foot prints. The immodest commented—"These appear to be foot prints of an elephant." The modest informed—"No friend, they are of a she-elephant and it is blind in the left eye. Not only this, some woman from the royal family is riding that she-elephant. The woman is married and pregnant and will give birth to a son within a day or two.

The immodest could not believe all these predictions based on mere foot prints. He asked—"On what basis do you say that ?" The modest replied—"After going some distance it will all be clear to you. The immodest was hurt and remained silent. Some time later they reached their destination. There they saw that on the banks of a lake was a camp site apparently of some rich person. On one side of the row of tents, stood a she-elephant blind in left eye. While the two young men were looking curiously at all this, a maid servant emerged out of a gorgeous tent and approached an impressive person with royal bearing and said—"Minister Sir ! Please go and congratulate the king. The queen has given birth to a son."

Getting all this information the modest said—"See friend, what I told has proved to be true." The immodest accepted grudgingly—"Yes, your knowledge is perfect." And they sat down under a tree to rest.

A little later an old woman with water filled pitcher on her head passed that way. When she saw two scholarly looking young men she thought—"They appear to be some learned augurs. Let me ask them when my son, who has gone away for work, will return." She took a few steps, came near the two young men, and put her quarry to them.

Just then the pitcher on her head fell down and shattered. The water spilled out and vanished in the sand.

Seeing all this the immodest said at once—"Old lady, as this pitcher has broken so is your son dead."

The old lady was engulfed in a wave of distress. Now the modest said—"Don't say that friend. Her son has already reached home." He turned to the old lady and said—"Mother, please rush back, your son awaits you there."

Reassured, the old lady left for her home. When she reached home, she saw that her son, with dust covered feet, was sitting at the gate and waiting for her. She embraced him with joy and at once traced back her steps to the young augur, taking along her son. She rewarded the modest and showered blessings on him.

When the immodest realised that all his predictions proved wrong and those of his friend proved to be right, he became very sad. However, instead of finding his own shortcomings he was filled with a deep anger for his teacher—"This is the result of my teacher's favouritism. He did not teach me properly." When the two students returned to their teacher the modest bowed before the teacher with gratitude. But the immodest just stood there without even greeting the teacher. When the teacher raised a questioning eye, he complained—"You have not taught me properly, therefore my knowledge is incomplete. Whereas you have taught this fellow with all sincerity so that his knowledge is complete. Such favouritism is not proper for a good teacher."

The teacher asked the modest with surprise—"Son, what is the matter ? Why your colleague feels like that ? Tell me everything in detail." The modest told the whole story exactly as it had happened.

The teacher asked again—"Now tell me about the grounds of your predictions."

The modest—"Sir, by your grace I observed carefully that the foot prints belonged to an elephant. However, the distance between the spot where it urinated and the foot prints made me deduce that it was a female, not male. When I looked at the trees on both sides of the path I found signs of leaves and fruits snatched only from the trees on the right hand side. The trees on the left were intact. This

told me that the she-elephant was blind in the left eye. With the foot prints of the elephant there were numerous other foot prints of men and women and foot prints of horses. This indicated that the person riding the elephant belonged to the royal family. A little further there were clear signs of the elephant squatting down and a lady getting down and going to a nearby clump of bushes to relieve herself. Some strands of silk and a few long hair indicated that the lady was married and extremely rich. Therefore I thought that she must be the queen. After urinating she got up leaving an imprint of her right palm on sand. This difficulty in getting up indicated that she was pregnant. Observing her foot prints carefully I gathered that she was favouring the left leg. Thus I knew that the delivery time was very near. Other signs indicated that she will give birth to a male child."

The teacher looked at him with pride and contentment. The student continued—"When the pitcher slipped and broke immediately after the old lady asked her question, I deduced that like the sand made pitcher returned to its origin, the son has also returned to his mother." On hearing all this the teacher praised the Modest. To the immodest he advised—"You do not follow my instructions, neither do you ponder over what you are taught and remove your doubts. That is the reason you cannot acquire right and perfect knowledge. I have been giving you the same lessons and at the same time. But as you are not humble and modest your knowledge is incomplete. This is not due to any partiality on my part. It is the fault of your own attitude that is wanting in modesty and sincerity." The immodest got ashamed of his behaviour and started his studies earnestly and humbly. (*See Illustration* 18)

2. Economics—In the same way the right and perfect knowledge of economics is acquired only if one is humble.

3. Writing—The right and perfect skill of writing is also acquired only if one is humble.

4. Mathematics—The right and perfect knowledge of mathematics and all other subjects is also acquired only if one is humble.

5. The Well—A water diviner very humbly studied with his teacher. He learned every lesson attentively and followed all

instructions sincerely. This way he acquired complete knowledge of the subject to become an accomplished water diviner.

Once a villager took him to his farm and asked where to dig for a well. The water diviner applied all his skill and marked the right spot. He also told the farmer about the depth at which water will be available. The farmer dug a well accordingly but no water oozed out. He again went to the water diviner, who came to the farm and inspected the well carefully. After some deliberation he indicated a spot at the bottom of the well and said—"Hit hard at this spot with your heel." The farmer did as told and a stream of water broke out from that spot. The farmer joyously praised the water diviner and rewarded him liberally. Such expertise is acquired with the help of *Vainayiki Buddhi*.

6. The Horse—Once many horse traders came to Dwarka to sell their horses. Many young princes in the city bought large and muscular horses. But a young man named Vasudev, an expert on horses, purchased a skinny looking horse that later won every race it entered. The reason for this was Vasudev's expertise of horses. He had very humbly acquired this knowledge from his teacher. Modesty sharpens intellect and helps widen experience and knowledge.

7. The Donkeys—There was a young king in a city who believed that youth is the best age and only a young man has ample power and capacity to work hard. Guided by this notion he gradually replaced all experienced and ageing warriors from his army with new and young recruits.

Once he marched his army to attack another kingdom. The contingent lost its way and ended up in an arid and forlorn area. All efforts to find a way out failed. Every single soldier was dying with thirst. In this hopeless predicament a soldier advised the king—"Sire ! We are unable to find a way out of this situation. Only some experienced old man could help us avoid the impending catastrophe." The king announced that if there was any experienced old person in the army his suggestion was solicited.

Luckily an elderly soldier, disguised as a young man, had joined the army. His son brought him to the king who courteously asked—"Please do something that my army gets water to drink." The elderly

soldier paused a little and then said—"Sire ! Let loose all the donkeys used for carrying supplies in the army. Let them roam around free and let our army follow where they lead. When they stop and start sniffing the ground, dig out the earth there. "The king accepted the advise and issued necessary instructions. Some distance farther the army found a good source of fresh water. With the help of the *Vainayiki Buddhi* of the experienced soldier the army came out of the painful situation.

8. The Attributes—A merchant appointed a servant to look after his horses and promised to give him two horses of his choice as remuneration. The young man accepted the terms and started working. During the course of his working he fell in love with the merchant's daughter. The servant was intelligent and clever. He asked the girl—"Which of the horses is the best ?" The girl explained—"Generally speaking all these horses are good and pedigreed. But the horses that are not disturbed even by the sound of stone filled drums thrown from tree tops are considered best and have all the attributes of the best horse.

Accordingly the servant examined all the horses in the stable and selected the two best horses. When it was time to take remuneration, he asked for those two horses. The merchant was in a fix—"These two are the best and the most valuable horses of the lot I have. Giving these horses would be a great loss to me." He tried to persuade the servant to take any two horses other than the two he had selected, but he refused to compromise.

The confused merchant went inside the house and told his wife—"This servant is very clever and intelligent. He has selected the best two of our horses. Rather than to lose all our wealth, it would be better to marry our daughter to him and force him to stay with us forever."

This infuriated the wife—"Have you gone mad ? You want to marry our dear daughter to a servant ?"

The merchant explained—"If we lose those two valuable horses we will incur a great and irreparable loss. The horses are not only immensely valuable but also auspicious for us. Moreover, the servant is a virtuous person. By making him our son-in-law we will save our horses and at the same time get a sincere man to take proper care of our horses and increase our stock. Getting such a handsome and

intelligent husband, our daughter will also be happy and shall remain with us always." At last the wife gave her consent and the merchant married his daughter to the servant. They lived happily ever after. The *Vainayiki Buddhi* helped the merchant save his wealth.

9. **The knot**—In Patliputra once there was a king named Murund. One day some other king sent three strange and puzzling things to him and asked him to provide a solution. The things were—an endless cotton thread, a bamboo stick without a knot, and a lidless box.

The king showed these things to all the members of his assembly and asked them to explain. Each member examined the three things carefully. After that expressing their surprise and showing their inability to provide any explanation they all returned to their respective seats. The king now invited *Padliptasuri* and asked—"*Bhante!* can you explain these strange things." *Acharyashri* carefully looked at the three things and understood that the joints and knots of the three objects were skilfully concealed by applying shellac of matching colour. He asked the king to arrange for a large pot filled with boiling water. When the pot was brought the three objects were placed in boiling water. The shellac cover melted away. The lighter end of the stick emerged out of water and its knots became visible. The end of the endless cord also became visible. In absence of the shellac covering the lid of the box also became clearly visible. The king and his courtiers warmly praised *Acharyashri* and his *Vainayiki Buddhi*.

Now the king requested *Acharyashri* that he should advise about some such strange and puzzling thing that could be sent to the friendly king in reciprocation. *Acharyashri* asked him to get a gourd fruit. Under his supervision the gourd was carefully cut in the middle and its hollow was filled with some gems. After that the two pieces were joined and the joint was skilfully covered with shellac of matching colour. The joint became invisible and the gourd looked fresh and natural as before. The king sent this gourd to his friend with a message that he should take out the gems within the gourd without breaking it. A few days later the king got the news that no one could take out the gems from the gourd. The king was pleased. He thanked and praised *Acharyashri*.

10. **Agad**—There was a king in a small city. As small was his city so was his army. Once a neighbouring and powerful king attacked

and laid siege around his city. When the king failed to find a way to save his town he made an announcement that whoever had whatever poison, he should bring it to the king. Numerous people brought numerous different types of poison in large quantities. The king, with the help of his spies, arranged to drop all this poison in the well outside the town, which was the only source of drinking water for the attacking army.

Once this was done a doctor came with a small bottle of poison. When the king saw this, he got angry—"You have come so late, doctor! and that too with this tiny bottle of poison?" The doctor explained—"Sire! Please don't get agitated. This is a highly toxic poison. This small bottle can kill much more people than all the poison you have collected till now."

Raising his eye brows the king asked—"How is it possible? Can you prove?"

The doctor requested for an old elephant to be brought there. When it was brought, the doctor plucked out a hair from its tail and applied the poison with the tip of a needle at that pore. As the poison spread into the elephant's body it started going limp. The doctor said—"Sire! The poison will slowly contaminate the whole body of this elephant. Whoever eats its flesh will also be poisoned. That is why this is called *Sahasrabedhi* (destroyer of one thousand) poison; in other words, a highly toxic poison."

The king believed what the doctor had said. Seeing the elephant fall, the king said—"Doctor, the poor elephant is dying just for nothing. Can you cure it with some anti-dote. The doctor said—"Why not. A doctor who does not know about an anti-dote of a poison he has administered, is no doctor." And he administered an anti-dote into the same pore. Soon the elephant regained its strength.

The doctor had gained this profound knowledge through his *Vainayiki Buddhi.*

11, 12. The Charioteer and The Courtesan—These examples are part of the story of Sthulbhadra. (see page -)

13. Sheetashati (etc.)—In a town there was a very greedy king. His sons studied with a great scholar. The princes were generous and modest. This inspired the teacher to teach them very sincerely. When

their education was complete the princes gave their teacher a large purse of money as gift. Some how the king came to know of this and thought of killing the scholar to get this purse. The conspiracy was revealed to the princes. Driven by their profound respect and love for their teacher the princes decided to secretly warn him to save his life.

All the three princes visited their teacher. When they arrived the teacher was preparing to take his bath before going to eat. He greeted his students and asked them to fetch a washed and dried *shatika* (or *sheetashati* or *dhoti*—about five meters length of cloth of one meter width wrapped around the lower half of the body by Indian male as part of his conventional dress). One of the princes said—"The *shatika* is damp." The second one said—"The straw is long." And third—"The curlew bird that was earlier moving in clock-wise direction is now moving in anti-clockwise direction."

When the teacher heard these irrelevant statements from his able students he smelled a rat. He pondered over and understood that his large purse has made someone his enemy and his students are secretly giving him a warning. He at once took leave of his students and furtively left for his village before the announced time of his departure. The *Vainayiki Buddhi* of the princes saved the life of their teacher.

14. Rain-water—A merchant had gone abroad since long. In his absence his wife asked her maid to invite a young man to satisfy her carnal desires. She also called a barber to improve the looks of the shabby young man. The barber gave him the full treatment—haircut, pedicure, manicure, bath, etc.—and made him attractive.

Coincidentally it rained heavily that night. Late into the night when the gigolo got thirsty he got up, went to the window, cupped his hands, and sipped the rain water falling in a stream from the balustrade. On the balustrade was lying a dead snake that made this stream of rain-water poisonous. Soon the young man died.

The lady panicked and at once called the servants of her confidence. She instructed them to throw the corpse in the forlorn ruins of a temple. Next day when some people saw the corpse and reported, the police started investigating. The officer in charge saw that the dead man had been freshly hair-dressed and manicured. He at once summoned all the barbers in the town and one by one asked

them to recognise the corpse. One of the barbers recognised the dead body and informed that he had done the haircut of that man when he was called by the maid of the merchant's wife. The police apprehended the maid and out of fear she revealed everything. With the help of *Vainayiki Buddhi* the officer solved the case.

15. Theft of cattle (etc.)—In a village once lived a very unlucky man. He spoiled whatever work he took in hand and always invited trouble. Once he asked for a pair of oxen from his friend for use in his plough. After completing his work when he went to return the oxen to his friend, the friend was taking his meals. He left the oxen in the yard and left without informing the friend, presuming that his friend had seen him returning the oxen. His bad luck that the oxen somehow came out of the yard and someone stole them. When the owner of the oxen did not find the oxen in the yard he came to this luckless man and wanted his oxen back. When the luckless told him that the oxen were returned to his yard before him, a dispute arose. The owner of oxen took the luckless along and left for the city to take the matter to the king.

On the way they saw a rider approaching them. All of a sudden the horse was startled. It threw the rider and galloped. The rider shouted—"Some one hit the horse with a staff and stop it."

The luckless had a staff in his hand. With the intention of extending a helping hand to the fallen rider the luckless stepped ahead and hit the approaching horse with his staff. Unfortunately the staff hit the horse at a delicate spot and it died on the spot. The owner of the horse got infuriated and joined the two in order to get the unfortunate man punished by the king. Now the three proceeded towards the city.

By the time they reached the city, it was already night time and the city gates were closed. To wait till morning the three slept under a dense tree near the gate. The luckless had no sleep in his eyes. He was deep in thoughts—"Luck does not favour me. I try to do good and in turns bad. Death is better than such miserable life. I will be rid of all troubles."

With these thoughts he got up, tied one end of his scarf to a branch of the tree and making a noose at the other end hung himself. Even

the death did not favour the unlucky. The rotten old scarf could not take his weight and was torn apart. Under the tree was also sleeping a team of acrobats. The luckless fell on them and their chief died on the spot. There was a commotion in the group of the acrobats and at last they also joined these three to get the luckless punished by the king.

When this crowd reached the king's assembly everyone was surprised. When the king asked about the cause of so many people coming together, every complainant lodged his complaint. Now the king looked at the luckless. Accepting all the charges the luckless said—"Sire, I did not do anything intentionally. I am so unlucky that anything I do with good intention turns bad. They all are telling the truth. Whatever punishment you decide for me, I am prepared to accept."

The king was very considerate and just. He could understand that the innocent man was not at fault. It is not right to punish him for the fault of fate. He felt pity for the luckless and drawing on his profound experience and *vainayiki buddhi* he very cleverly gave his judgement.

First of all he called the owner of the oxen and said—"If you want your oxen back first take out your eyes and give them to this man. This is because with these very eyes you saw this man taking the oxen into your yard."

After this he called the owner of the horse—"If you want your horse, first cut out your tongue and give it to him; because with the help of this very tongue you said to hit the horse with a staff. Punishing him is not justified as long as your tongue is not punished."

In the end he called the acrobats and said—"This poor man has nothing that he can be asked to give you. If at all you want to take revenge I will order him to sleep under the same tree. The chief, now among you, should tie a noose in his neck and hang from that very branch. He will fall on this man and this man will die. Thus the debt will be paid."

None of the three found words to challenge the king's judgement and they left as they had come. The luckless also returned after profusely thanking the king.

●●

(३) कर्मजा बुद्धि

(3) KARMAJA BUDDHI THE PRACTICAL WISDOM

५१ : *कम्मया बुद्धी–*

उवओगदिट्ठसारा कम्मपसंग-परिघोलणविसाला।

साहुक्कारफलवई कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी॥

हेरण्णिए करिसए, कोलिय डोए य मुत्ति घय पवए।

तुन्नाग वड्ढई य, पूइए घड-चित्तकारे य॥

अर्थ–कर्मजा बुद्धि–उपयोग से जिसका सार अर्थात् परमार्थ देखा जाता है, अभ्यास और विचार से जो विस्तार पाती है और जिससे प्रशंसा रूप साधुवाद का फल प्राप्त होता है उसे कर्मजा बुद्धि कहते हैं। इसके उदाहरण हैं–

(१) हैरण्यक (सुनार), (२) कृषक (किसान), (३) कौलिक (जुलाहा), (४) डोल-कडच्छी (तत्तक), (५) मोती, (६) घी, (७) प्लवक (नट), (८) तुण्णाग (दर्जी), (९) बढ़ई, (१०) अयूपिक (हलवाई), (११) घट (कुम्हार), तथा (१२) चित्रकार।

51. That which is judged by its use, that which develops with practice and analysis, and that which earns fruits of praise is called *karmaja buddhi* or practical wisdom. Its examples are—1. Goldsmith, 2. Farmer, 3. Weaver, 4. Wood engraver, 5. Pearl stringer, 6. Butter vendor, 7. Acrobat, 8. Tailor, 9. Carpenter, 10. Sweet maker (a specialist cook), 11. Potter, and 12. Painter.

विवेचन–अपनी-अपनी हस्तकला में निपुणता कुशाग्र बुद्धि तथा कार्य के निरन्तर अभ्यास से आती है। वही कर्मजा बुद्धि है। इसके उपयोग से इसकी सार्थकता का पता लगता है और प्रशंसा मिलती है। उदाहरण स्वरूप विभिन्न हस्तकलाओं में कुशल कारीगरों के निम्न उदाहरण हैं–

(१) सुनार–सुनार बहुत कुशल कलाकार होता है। वह अपने अनुभव-ज्ञान के सहारे अंधकार में भी स्पर्श मात्र से ही सोने-चाँदी का परीक्षण कर लेता है।

(२) किसान–एक चोर एक दिन किसी सेठ के घर चोरी करने गया। वहाँ उसने दीवार में सेंध लगाने के लिए ऐसी कलाकारी लगाई कि दीवार में कमल की आकृति बन गई। सूर्योदय होने पर लोगों ने जब वह कलापूर्ण सेंध देखी तो चोरी की बात भूल गये और चोर की कला की प्रशंसा करने लगे। लोगों की उसी भीड़ में चोर भी खड़ा था और अपनी कला निपुणता की प्रशंसा सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहा था। वहाँ एक किसान भी उसके पास ही खड़ा था। किसान ने

प्रशंसा करने के स्थान पर कहा—"भाइयो, इसमें इतनी प्रशंसा या आश्चर्य की क्या बात है? अपने कार्य में तो हर कोई कुशल माहिर होता है।"

चोर किसान की यह बात सुन आग-बबूला हो गया। कुछ दिनों बाद अवसर देख वह एक छुरा लेकर किसान को मारने उसके खेत में पहुँच गया। जब वह छुरा उठा किसान की ओर लपका तो पीछे हटते हुए किसान ने पूछा—"भाई, तुम कौन हो? मुझे क्यों मारना चाहते हो मुझसे क्या झगड़ा है?"

चोर ने उत्तर दिया—"तूने उस दिन मेरी लगाई हुई सेंध की प्रशंसा नहीं की थी।"

किसान समझ गया कि यह वही चोर है। वह सम्हलते हुए बोला—"भाई, मैंने तुम्हारी बुराई कहाँ की? मैंने तो यही कहा था कि जो व्यक्ति जिस कार्य को निरन्तर करता है उसमें वह अपने अभ्यास के कारण कुशल हो जाता है। यही सच है, अगर तुम्हें विश्वास न हो तो मैं अभी अपनी कला दिखा कर तुम्हें आश्वस्त कर सकता हूँ। देखो, मेरे हाथ में मूँग के ये दाने हैं। तुम कहो तो मैं इन सबको उलटे मुँह, सीधे मुँह या बगल से धरती पर गिरा दूँ।"

चोर को इस अनहोनी बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा—"उल्टे मुँह गिरा कर दिखावो।"

किसान ने तत्काल धरती पर एक चादर बिछाई और इस कुशलता से मूँग बिखेरे कि सभी दाने उल्टे मुँह गिरे। चोर ने झुककर ध्यान से देखा और बोला—"सच है ! तुम तो अपने कार्य में मुझसे भी कुशल हो।" और चोर प्रशंसा कर लौट गया।

(३) जुलाहा—"जुलाहा अपने हाथ में सूत के धागे लेकर ही यह बता देता है कि कितनी संख्या में कण्डों से कितना वस्त्र तैयार होगा।"

(४) तक्षक—वह बढ़ई जो काठ उकेर कर चम्मच कड़छी आदि बनाता है। वह अनुमान से ही बता सकता है कि किस कड़छी में किसी पदार्थ की कितनी मात्रा आ सकती है।

(५) मोती—सिद्धहस्त कुशल मणिकार (मोती पोने वाला) के लिए कहा जाता है कि वह मोतियों को इस प्रकार उछाल सकता है कि वे नीचे खड़े सूअर के बालों से पिरोये जायें।

(६) घी—कोई-कोई घी के व्यापारी भी अनुभव में इतने कुशल हो जाते हैं कि गाड़ी या रथ में बैठे-बैठे ही नीचे रखी कूँड़ियों में धार बाँधकर बिना एक बूँद इधर-उधर गिराये घी उंडेल देते हैं।

(७) नट—नटों की चतुराई तो जग-प्रसिद्ध है। वे रस्सी पर अनेकों प्रकार के खेल करते हैं किन्तु नीचे नहीं गिरते। लोग चकित हो एकटक देखते रह जाते हैं।

(८) दर्जी—कुशल दर्जी कपड़ों की सिलाई ऐसी सफाई से कर सकता है कि टांका दिखाई ही न दे।

(९) बढ़ई-लकड़ी पर इतनी सुन्दर आकृति उकेर सकता है कि वह जीवन्त लगे। वह लकड़ी के टुकड़ों में ऐसे जोड़ लगा सकता है कि खोजने पर भी दिखाई न पड़ें।

(१०) हलवाई-कुशल हलवाई अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बना सकता है। उसे नाप-तोल के बिना ही यह अनुमान हो जाता है कि किस पकवान में कितनी क्या चीज डलेगी। कुछ तो इतने कुशल बन जाते हैं देश-विदेश में उनकी तथा उनके बनाये व्यंजनों की प्रंशसा होती है और ख्याति फैल जाती है।

(११) कुम्हार-कुम्हार घड़े बनाने में इतना सिद्धहस्त हो जाता है कि तेजी से चलाते हुए चाक पर रखने को मिट्टी का उतना ही बड़ा पिण्ड उठाता है जिससे इच्छित आकार का घड़ा बन सके।

(१२) चित्रकार-निपुण चित्रकार अपनी तूलिका से फूल, पत्ते, वृक्ष, पहाड़, नदी, झरने, पशु, पक्षी या मनुष्य का ऐसा चित्र बना सकता है कि असली नकली का भेद पता चलना भी कठिन हो जाये। वह भंगिमाएँ, मुद्राएँ तथा भाव भी ऐसे चित्रित कर देता है कि चित्र जीवन्त हो उठे।

Elaboration—Expertise in any craft is acquired through sharp intelligence and regular practice. This is known as *karmaja buddhi* or practical wisdom. Its use and display conveys its utility and begets praise. Some examples of expert artisans skilled in their crafts are as follows—

1. Goldsmith—A skilled goldsmith is such an expert of his trade that he is experienced enough to examine gold or silver just by touch, even in the dark.

2. Farmer—A thief one night entered the house of a merchant for burglary. He used his expertise in making a hole in the wall and left a lotus shaped hole. In the morning when people saw this artistic hole in the wall they forgot about the theft and started praising the art of the thief. In the crowd was also standing the thief. He was enjoying the praise of his art. A farmer was also standing nearby. Instead of praising he said—"Brothers, what is there to praise about or be surprised at this? In his own trade everyone is an expert."

The thief was infuriated to hear this comment from the farmer. A few days later taking a dagger in his hand he went to kill the farmer at his farm. When he rushed at the farmer with raised dagger, the farmer stepped back and asked—"Brother, who are you? What

dispute you have with me? Why do you want to kill me?" The thief replied—"That day you did not praise the hole in the wall I had made."

The farmer now knew he was the same thief. Composing himself, he said—"Brother, I never berated you. I only said that when a person does some work regularly, because of his practice, he acquires an expertise in that particular work. This is true. If you don't believe, I can display my expertise and convince you. See here, I have some grains of lintel in my hand. If you want I can throw them on the ground in a manner that they all will rest on the ground either face up, face down, or sideways."

The thief could not believe this impossible. He said—"Throw them face down."

The farmer at once spread a sheet of cloth on the ground and threw a fistful of grains so skilfully that they all rested face down. The thief bent down to examine and said—"Indeed, You are more expert in your art then I am in mine." After praising the farmer profusely the thief went away.

3. Weaver—An expert weaver can tell just by feeling a yarn with his hand that how many spindles will produce how much cloth.

4. Wood engraver—The carpenter who engraves or chisels out a spoon out of a piece of wood is so experienced that he can tell that how much quantity of a particular substance could be scooped by a specific spoon.

5. Pearl stringer—It is said that an expert bead-stringer can drop pearls in such a manner that when they fall on a pig each one is strung in the pig's bristles.

6. Butter vendor—Some butter vendors acquire such expertise through their experience that while sitting in a cart they can pour butter oil in vessels placed on the ground without spilling even a drop.

7. Acrobat—The skills of acrobats are famous throughout the world. They perform numerous tricks on bamboo and ropes and never fall down. The audience looks spellbound.

8. Tailor—There are expert tailors who can stitch a dress in such a way that not a single stitch is visible.

9. Carpenter—An expert carpenter can engrave beautiful and lively motifs in wood. He can also join two pieces of wood so that the joint is invisible even on keen inspection.

10. Sweet maker (a specialist cook)—An expert cook can prepare a large variety of tasty dishes. He develops so keen a sense of quantity that while cooking he does not have to measure the ingredients before adding. Some of these cooks acquire so great an expertise that their dishes are praised far and near and they become famous.

11. Potter—A potter acquires such expertise in making pitchers that to place on the fast moving wheel, he picks up a lump of sand of exact quantity to finish the desired size of pitcher.

12. Painter—A skilful painter can make paintings of flowers, leaves, hills, a river, streams, animals, birds, and humans with his brush that it becomes difficult to distinguish real from the made. He copies the moods, gestures, and expressions so delicately that the painting looks life-like.

●●

(४) पारिणामिकी बुद्धि

(4) PARINAMIKI BUDDHI THE DEDUCTIVE KNOWLEDGE

५३ : *परिणामिया बुद्धी–*

अणुमाण-हेउ-दिट्ठंतसाहिआ, वय-विवाग-परिणामा।

हिय-निस्सेयस फलवई, बुद्धी परिणामिया नाम॥

अर्थ–पारिणामिकी बुद्धि–अनुमान, हेतु और दृष्टान्त से उद्देश्य पूर्ण करने वाली, आयु परिपक्व होने से पुष्ट होने वाली और लोकोपकार तथा मोक्ष रूपी फल प्रदान करने वाली बुद्धि को पारिणामिकी बुद्धि कहते हैं।

पारिणामिकी बुद्धि के निम्नलिखित उदाहरण हैं–

५४ : *अभए सिट्ठी कुमारे, देवी उदियोदए हवइ राया।*

साहू य नंदिसेणे, धणदत्ते सावग-अमच्चे॥

खमए अमच्चपुत्ते चाणक्के चेव थूलभद्दे य।

नासिक्क सुंदरीनंदे, वइरे परिणामिया बुद्धीए॥

चलणाहण आमंडे, मणो य सप्पे य खग्गिथूभिंदे।

परिणामिय-बुद्धीए, एवमाई उदाहरणा॥

से त्तं अस्सुयनिस्सियं।

(१) अभयकुमार, (२) सेठ, (३) कुमार, (४) देवी, (५) उदितोदय (६) साधु और नन्दिघोष, (७) धनदत्त, (८) श्रावक (९) अमात्य, (१०) क्षपक, (११) अमात्य पुत्र, (१२) चाणक्य, (१३) स्थूलभद्र, (१४) नासिक का सुन्दरीनन्द, (१५) वज्रस्वामी, (१६) चरणाहत, (१७) आंवला, (१८) मणि, (१९) सर्प, (२०) गेंडा, और (२१) स्तूप-भेदन।

इस प्रकार अश्रुत निश्रित मतिज्ञान का वर्णन पूर्ण हुआ।

53. That which leads to the goal with the help of inference, reason, and example; matures and enhances with age; and yields fruits of public welfare and liberation is called *parinamiki buddhi* or deductive knowledge.

Following are the examples of *parinamiki buddhi*—

1. Abhaya Kumar, 2. The merchant, 3. The prince, 4. The goddess, 5. *Uditodaya,* 6. The monk and Nandighosh, 7. Dhanadatt, 8. *Shravak,* 9. The minister, 10. *Kshapak,* 11. The minister's son, 12. Chanakya, 13. Sthulibhadra, 14. Sundarinand of Nasik, 15. Vajra Swami, 16. *Charanahat,* 17. *Amla,* 18. The Bead, 19. The snake, 20. The rhinoceros, and 21. Breaking of the dome.

This concludes the description of *ashrut nishrit mati jnana*.

विवेचन–(१) अभयकुमार–उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत ने एक बार अपने साढू राजगृह के राजा श्रेणिक के पास एक दूत से यह सन्देश भिजवाया–"यदि अपना भला चाहते हो तो अद्वितीय बंकचूड़ हार, सेचनक हाथी, अभयकुमार और रानी चेलना को तत्काल मेरे पास भिजवा दो।"

संदेश पाकर राजा श्रेणिक क्रोध से तमतमा उठे और दूत से कहा–"दूत अवध्य होता है इस कारण तुम्हें दण्ड नहीं देता। जाओ अपने महाराज से कहो कि यदि वे अपनी कुशल क्षेम चाहते हैं तो अग्निरथ, अनलगिरि हाथी, वज्र-जंघ दूत तथा रानी शिवा देवी को मेरे पास तत्काल भिजवा देवें।"

अपने संदेश का यह उत्तर पाकर कुपित हो चण्डप्रद्योत ने अपनी विशाल सेना सहित चढ़ाई कर दी और कुछ ही दिनों में राजगृह पर घेरा डाल दिया। राजा श्रेणिक ने भी युद्ध की पूरी तैयारी करली। किन्तु पारिणामिकी बुद्धि के धनी उनके पुत्र अभयकुमार ने विनती की–"महाराज, कृपा कर अभी युद्ध आरम्भ करने का आदेश न दें। मैं किसी कूटनीति से बिना युद्ध किये ही चण्डप्रद्योत को पराजित करने का उपाय करता हूँ।" राजा को अपने बुद्धिमान पुत्र पर पूर्ण विश्वास था। अतः उसने इस प्रस्ताव को सहमति दे दी।

रात्रि के समय अभयकुमार ने अपने गुप्तचरों के द्वारा चुपचाप चण्डप्रद्योत की सेना के प्रमुख सेनानायकों के डेरों के निकट अच्छी मात्रा में धन गड़वा दिया। जैसे ही यह काम पूरा हुआ अभयकुमार स्वयं चण्डप्रद्योत से चुपचाप मिलने पहुँचा और अभिवादन कर बोला–"मौसा जी ! इस बार तो आप बुरी तरह कूटनीति की चाल में फँस गये। आप तो राजगृह को जीतने के सपने देख रहे हैं और महाराज श्रेणिक ने आपके प्रमुख सेनानियों को धन देकर आपको बन्दी बना उनके समक्ष प्रस्तुत करने को तैयार कर लिया है। सुबह होते ही आप बन्दी बना दिये जायेंगे। आप मेरे मौसा हैं अतः मैं आपको धोखे से अपमानित होते कैसे देख सकता हूँ? कोई उपाय कीजिये।"

चण्डप्रद्योत बात सुनकर चौकन्ना हो गया। उसने अभयकुमार से पूछा–"मैं तुम्हारी बात पर कैसे विश्वास करूँ?"

अभयकुमार–"आप मेरी बात पर विश्वास न करें। अपनी आँखों से चलकर देखें।" रात में ही चण्डप्रद्योत काली चादर ओढ़ घुमते हुए अभयकुमार के साथ अपने प्रमुख सेनानायकों के खेमों की ओर गया और अभयकुमार ने गड़ा हुआ धन निकाल कर दिखा दिया। चण्डप्रद्योत को अब अभयकुमार की बात पर पूरा विश्वास हो गया। वह चुपचाप एक घोड़े पर सवार हो बिना किसी से कुछ कहे उज्जयिनी की ओर प्रस्थान कर गया।

प्रातःकाल जब सेनानायक मंत्रणा हेतु चण्डप्रद्योत के डेरे पर आये तो उन्होंने देखा कि वहाँ न तो राजा है न उसका घोड़ा। खोज करने पर पता चला कि राजा के घोड़े के निशान उनके उज्जयिनी की ओर जाने का इंगित कर रहे हैं। अपने राजा के इस अप्रत्याशित कार्य से हतोत्साह सेनानायक पूरी सेना सहित उज्जयिनी को लौट गये।

उज्जयिनी पहुँच करके राजा से मिलने महल में गये। पहले तो राजा ने उनसे मिलने को मना कर दिया। बहुत अनुनय विनय के बाद राजा उनसे मिला और वे कुछ कहते इससे पहले ही उन्हें रिश्वत लेने एवं विश्वासघात करने के लिए बहुत फटकारना आरम्भ कर दिया। सेनापति ने राजा के ये तेवर देख विनम्र स्वर में कहा–"महाराज ! आपने यह कैसे विश्वास कर लिया कि हम आपको धोखा दे सकते हैं? पीढ़ियों से आपकी सेवा में हैं। अनेक युद्ध लड़े हैं। हम सभी देश भक्त हैं। आपके साथ विश्वासघात करने का कोई कारण नहीं है। यह उस धूर्त अभयकुमार की कूटनीति का प्रहार था। उसने आपको विश्वास में ले अपने राज्य को युद्ध से साफ-साफ बचा दिया।"

चण्डप्रद्योत की आँखें खुल गईं। अभयकुमार के प्रति उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने तत्काल राज्य में घोषणा करवा दी कि जो कोई भी अभयकुमार को बन्दी बनाकर उज्जयिनी ले आयेगा उसे बहुमूल्य पुरस्कार दिया जायेगा। अभयकुमार की कुशाग्रता और चतुराई की ख्याति इतनी व्यापक थी कि किसी का साहस नहीं हुआ कि यह बीड़ा उठाले। राजा के मंत्री, सेनानायक, चतुर व्यवसायी कोई भी अभयकुमार को बन्दी बनाने को तैयार नहीं हुए।

कुछ दिन बीतने पर एक गणिका ने यह बीड़ा इस शर्त पर उठाया कि उसे आवश्यक व्यय के लिए यथेष्ट धन दिया जाये। राजा तत्काल तैयार हो गया। गणिका अपने साथ कुछ अन्य स्त्रियों को लेकर श्राविकाओं का वेष धारण कर राजगृह गई। वहाँ कुछ दिनों तक खूब धर्मध्यान का आडम्बर फैलाया। नियमित रूप से धर्मस्थलों तथा धर्मसभाओं में जाने लगी। जब उसकी प्रतिष्ठा एक परम धार्मिक श्राविका के रूप में जम गई तब उसने योजना बना अभयकुमार को आमन्त्रित किया। अभयकुमार ने साधर्मी जानकर ख्याति प्राप्त श्राविका का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। गणिका ने भोजन में नशीली दवा मिला दी। अभयकुमार भोजन ग्रहण करते ही मूर्च्छित हो गया। गणिका इसी अवसर की उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रही थी। उसने तत्काल मूर्च्छित अभयकुमार को बन्दी बना रथ में डलवाया और उज्जयिनी के लिए रवाना हो गई।

अभयकुमार को जब उसने चण्डप्रद्योत के सम्मुख बन्दी के रूप में प्रस्तुत किया तो उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। उसने अभयकुमार का परिहास करते हुए कहा—"क्यों बेटा ! धोखेबाजी का फल मिल गया? किस चतुराई से मैंने तुझे पकड़वाकर यहाँ मँगाया है।" अभयकुमार ने निस्संकोच उत्तर दिया—"मौसा जी ! आपने तो मुझे मूर्च्छित दशा में रथ में डलवाकर मँगवाया है और मैं आपको कभी पूर्ण जागृत अवस्था में यातना देता हुआ रथ पर बैठाकर राजगृह ले जाऊँगा। सावधान रहें।"

चण्डप्रद्योत ने अभयकुमार की इस चेतावनी को परिहास समझ कर टाल दिया। अभयकुमार महल में अपनी मौसी के पास आनन्दपूर्वक समय बिताने लगा। कुछ दिन बाद जब ये सारी बातें विस्मृत हो चलीं तब उसने एक ऐसे व्यक्ति को खोज निकाला जिसका डीलडौल शकल और आवाज ठीक महाराज चण्डप्रद्योत से मिलती थी। उस व्यक्ति को यथेष्ट धन का लालच दे अपने पास रख लिया और अपनी योजना समझा दी। एक दो दिन बाद उसे राजा के से कपड़े पहनाए, रथ पर बैठाया और डण्डे मारता हुआ उज्जयिनी की सड़कों से होता नगर द्वार की ओर ले जाने लगा। योजनानुसार वह आदमी ऊँचे स्वर में चींख-पुकार करने लगा—"अरे, अभयकुमार मुझे डण्डे मार रहा है। कोई छुड़ाओ, कोई बचाओ।" लोगों के कानों में जब अपने राजा का स्वर पड़ा तो वे दौड़े। रथ के निकट आये तब भी अभयकुमार ने डण्डे मारना बन्द नहीं किया। जब लोग गौर से देखने लगे और कुछ पूछने को हुए—तभी दोनों ताली बजाकर हँसने लगे। लोगों ने देखा कि पिटने वाला व्यक्ति उनका राजा नहीं कोई, बहुरूपिया लगता है। वे भी हँसते हुए चले गये।

अभयकुमार प्रतिदिन यह नाटक अलग-अलग समय करता। सारे नगर में अभयकुमार के इस नाटक से लोग परिचित हो गये और ध्यान देना बंद कर दिया। यहाँ तक कि सैनिक व पहरेदार भी उस रथ को देख और चिल्लाने की आवाज सुन हँसकर दूर से ही देखते रहते।

जब अभयकुमार आश्वस्त हो गया कि अब कोई उसे रोकने-टोकने वाला नहीं है तब एक दिन अवसर देख सन्ध्या के समय राजा चण्डप्रद्योत को रस्सी से बाँध रथ में डाला और डण्डे मारता हुआ उज्जयिनी के राजमार्ग पर रवाना हो गया। चण्डप्रद्योत चिल्लाता ही रहा। उसकी आवाज सुन नगरवासी दूर खड़े इसे अभयकुमार का नाटक समझकर हँसते और मुँह फेर लेते। कोई भी अपने असली राजा को बचाने नहीं आया। अभयकुमार इस बार नगर द्वार पहुँचकर लौटा नहीं। उसने नगर से बाहर निकलते ही रथ को और तीव्रगति से हाँकना आरम्भ किया और राजगृह की ओर बढ़ गया।

राजा श्रेणिक के सम्मुख बन्दी चण्डप्रद्योत को ला खड़ा किया और सारी कहानी सुनाई। चण्डप्रद्योत ने लज्जित हो राजा श्रेणिक से क्षमा माँगी और दोनों साढू गले मिले। सभी ने अभयकुमार की चतुराई और कुशाग्र बुद्धि की प्रशंसा की।

(२) सेठ—एक सेठ ने अपनी दुश्चरित्र पत्नी से क्षुब्ध हो श्रमण दीक्षा ले ली। कालान्तर में उसका योग्य पुत्र उस प्रदेश का राजा बन गया। कुछ समय बाद वे मुनि विहार करते हुए पुनः

उसी नगर में आये। राजा ने मुनि हुए अपने पिता को उसी नगर में चातुर्मास करने का आग्रह किया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। विद्वान मुनि के प्रवचनों से वहां का जन समुदाय बहुत प्रभावित हुआ। जिनशासन के विरोधी कतिपय समुदायों को यह बात सहन नहीं हुई और उन्होंने मुनि को बदनाम करने के लिए एक षड्यन्त्र रचा।

जब चातुर्मास काल सम्पन्न हुआ और मुनिराज विहार की तैयारी करने लगे तो विरोधियों की योजनानुसार एक गर्भवती दासी ने आकर मुनिराज से कहा—"हे मुनिवर ! मैं गर्भवती हूँ और शीघ्र ही आपके बच्चे को जन्म देने वाली हूँ। ऐसे समय में आप मुझे छोड़ कर चले जायेंगे तो मेरा सहारा कौन होगा?"

मुनि समझ गये कि यह किसी विरोधी का षड्यन्त्र है और ऐसी स्थिति में यदि तत्काल प्रस्थान किया तो मेरा और धर्म संघ दोनों का अहित होगा। वे एक शक्ति सम्पन्न साधक भी थे। उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग किया और दासी से बोले—"यदि यह गर्भस्थ जीव मेरा है तो तुम यथासमय स्वाभाविक प्रसव करोगी। किन्तु यदि ऐसा नहीं है तो यथासमय तुम्हारा प्रसव नहीं होगा और शिशु को तुम्हारा पेट चीर कर निकलना होगा।"

दासी आसन्न-प्रसवा तो थी ही। कुछ दिन बीतने पर भी उसे प्रसव नहीं हुआ। धीरे-धीरे उसकी पीड़ा बढ़ने लगी। उसके स्वजन उसे ऐसी दयनीय अवस्था में मुनिराज के पास ले गये। वह मुनिराज को वन्दना कर कातर स्वर में बोली—"श्रमण-श्रेष्ठ ! आपके विरोधियों के षड्यन्त्र में भागी बन मैंने आप पर झूठा लांछन लगाया था। मुझे अपने किए का दण्ड मिल गया। मुझे क्षमा करें तथा कृपा कर इस कष्ट से मुक्ति दिलावें।"

मुनि सरल व निष्कलुष मन के थे। उन्होंने तत्काल दासी को क्षमा कर दिया और अपनी शक्ति का प्रभाव हटा दिया। मुनिराज की कीर्ति चहुँ और फैल गई।

(३) कुमार—एक राजकुमार को बालपन से ही मोदक अति प्रिय थे। एक बार किसी उत्सव के अवसर पर उसने बहुत स्वादिष्ट भोजन बनवाया जिसमें मोदक भी थे। अपने मित्रों सहित जब वह भोजन करने लगा तो स्वाद के मारे सामर्थ्य से अधिक मोदक खा गया। परिणामस्वरूप उसे अजीर्ण हो गया। पीड़ा और अपचजनित दुर्गन्ध असहनीय हो उठी। तभी उसके मन में विचार उठे—"इतने स्वादिष्ट और सुगंधित पदार्थ शरीर के संसर्ग से दुर्गन्धमय उच्छिष्ट बन गए। यह शरीर स्वयं उच्छिष्ट पदार्थों से बना है और इसके सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु अन्ततः अशुचि बन जाती है। धिक्कार है ऐसे शरीर को जिसके थोड़े से सुख के लिए मनुष्य इतने पाप करता है।" अशुचि के प्रति विरक्ति की यह भावना धीरे-धीरे शुभ परिणामों में बदल गई और उसे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। ऐसी भावना की प्रेरक राजकुमार की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(४) देवी—प्राचीन समय की बात है पुष्पभद्र नामक नगर में पुष्पकेतु नाम का राजा था। संयोग से उसकी रानी का नाम पुष्पवती था, पुत्र का नाम पुष्पचूल तथा पुत्री का पुष्पचूला।

पुत्र-पुत्री जब तक युवा हुए दुर्भाग्यवश रानी पुष्पवती का देहान्त हो गया। उसने पुष्पवती नामक देवी के रूप में जन्म लिया।

देवी रूप में उसने अवधिज्ञान प्रयोग से अपने पति, पुत्र-पुत्री और पूर्व-परिवार को देखा तो उसे विचार आया कि यदि पुत्री पुष्पचूला आत्म-कल्याण का पथ अपनाले तो बहुत अच्छा हो। यह सोचकर उसने अपनी दैविक ऋद्धि द्वारा पुष्पचूला को स्वप्न में नरक की यातना के दारुण दृश्य स्पष्ट रूप से दिखाये। स्वप्न देख पुष्पचूला को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने सांसारिक सुखों का त्यागकर संयम ग्रहण कर लिया। दीक्षा लेकर मुनिधर्म का शुद्ध पालन करते हुए उसने घोर तप व ध्यान आदि द्वारा घातिकर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त में जन्म-मरण से छुटकारा प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया। देवी की पारिणामिकी बुद्धि के प्रभाव से एक आत्मा ने सिद्ध गति प्राप्त की।

(५) उदितोदय–पुरिमतालपुर नामक एक नगर के राजा का नाम उदितोदय था। उसकी रानी थी श्रीकान्ता। दोनों बड़े धार्मिक विचारों के थे और श्रावक धर्म के आचार नियमों का पालन करते हुए सुख से रहते थे। एक दिन एक परिव्राजिका उनके अन्तःपुर में आई और उसने शौच मूलक धर्म का उपदेश दिया। महारानी ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया तो वह क्रुद्ध हो वहाँ से चली गई। अपमानित सी हुई परिव्राजिका ने बदला लेने के उद्देश्य से वाराणसी के राजा धर्म रुचि के पास जा कर रानी श्रीकान्ता के रूप यौवन की प्रशंसा की और धर्मरुचि को उसे प्राप्त करने के लिए उकसाया।

धर्मरुचि ने पुरिमताल पर चढ़ाई कर नगर को चारों ओर से घेर लिया। रात को राजा उदितोदय ने विचार किया कि अगर युद्ध करूँगा तो भीषण नर-संहार होगा और असंख्य निरपराध प्राणी व्यर्थ मारे जायेंगे। इस घोर हिंसा से बचने के लिए उपाय ढूँढ़ने के लिए उसने वैश्रमण देव की आराधना करने का निश्चय किया और अष्टमभक्त (तीन दिन का उपवास) तप आरम्भ कर दिया। व्रत सम्पन्न होने पर वैश्रमण देव प्रकट हुआ और उदितोदय ने उसे अपनी समस्या बताकर नरसंहार टालने का उपाय बताने को कहा। देवता राजा की अनुकम्पा भावना से प्रभावित हुआ और उसने तत्काल अपनी शक्ति के प्रभाव से पुरिमताल नगर को किसी अन्य स्थान पर स्थापित कर दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा धर्मरुचि उठा तो यह देखकर आश्चर्य चकित रह गया कि जहाँ उसने घेरा डाल रखा था वहाँ से पुरिमताल नगर ही अदृश्य हो चुका था। वह निराश हो अपनी सेना लेकर लौट गया और एक भीषण नर-संहार होते-होते बच गया।

(६) साधु और नन्दिषेण–राजगृह के सम्राट श्रेणिक के एक पुत्र का नाम था नन्दिषेण। उसके युवा होने पर महाराज श्रेणिक ने अनेक सुन्दर व गुणवती राज कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया।

एक बार ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान महावीर राजगृह नगर में पधारे। राजा श्रेणिक सपरिवार भगवान के दर्शन करने गया। राजकुमार नन्दिषेण भी अपनी पत्नियों के साथ राजपरिवार में सम्मिलित था। उसने जब भगवान महावीर का प्रवचन सुना तो उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। माता-पिता की अनुमति ले उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। कुशाग्र बुद्धि वाले नन्दिषेण मुनि ने शीघ्र ही गुरुजनों से अंग शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा धर्म-प्रचार हेतु उपदेश देने लगे। कुछ समय बीतने पर भगवान महावीर से आज्ञा लेकर अपनी शिष्य-मण्डली सहित वे राजगृह से प्रस्थान कर गये।

बहुत काल तक अनेक ग्रामों व नगरों में विचरने के पश्चात् एक दिन मुनि नन्दिषेण को आभास हुआ कि उनका एक शिष्य सांसारिक सुखों की ओर आकृष्ट हो गया है। कुछ विचार कर उन्होंने राजगृह की ओर प्रयाण किया। जब वे राजगृह पहुँचे तो राजा श्रेणिक अत्यन्त हर्षित हुए और पूरे परिवार सहित मुनिवर के दर्शन हेतु आये। उनके साथ मुनि नन्दिषेण की पूर्व पत्नियाँ भी थीं।

नन्दिषेण के विचलित शिष्य ने जब अपने गुरु की अत्यन्त रूपवती पूर्व-पत्नियों को देखा तो वह चौंक उठा और आत्म-ग्लानि से भर गया। उसने सोचा—"मेरे गुरु ने तो अप्सराओं जैसी पत्नियों और राजसी ठाट को त्याग कर मुनि-धर्म ग्रहण किया है और पूरी निष्ठा से उसका पालन कर रहे हैं और मैं इससे कहीं क्षुद्र सामान्य गृहस्थ जीवन को पुनः स्वीकार करने को लालायित हो रहा हूँ। धिक्कार है मुझे, जो वमन किये का पुनः सेवन करना चाहता है।" मन के इस संवेग भावोदय ने उसे प्रायश्चित्त कर संयम मार्ग पर दृढ़ होने को प्रेरित किया।

Elaboration—1. Abhaya Kumar—Chandpradyot, the king of Ujjaini, one day sent an emissary to his brother-in-law (husband of his wife's sister), king Shrenik of Rajagriha, with a message—"If you want to live in peace at once send the unique *Bunkchood* necklace, *Sechanak* elephant, Abhaya Kumar and queen Chelna to me."

King Shrenik was infuriated to get this message and said—"An emissary enjoys immunity, so I am not giving you any punishment. Go back and tell your king that if he wants to live in peace he should send the Fire-chariot, *Analgiri* elephant, Vajrajangha the emissary, and queen Shiva Devi to me at once."

This answer added fuel to the fire. Chandpradyot attacked Rajagriha with his large army and soon laid a siege around the city. King Shrenik also made all necessary preparations. But his son Abhaya Kumar, who was endowed with *Parinamiki Buddhi*, requested—"Sire, please don't jump into the war at once. Chandpradyot could be defeated by intrigue without fighting a war.

Kindly leave this job to me and rest assured." The king had full confidence in his son's wisdom, therefore he accepted this proposal.

Abhaya Kumar arranged, stealthily, through his spies, to bury gold, gems and jewels around the camps of various commanders of Chandpradyot's army. After this he himself furtively went to meet Chandpradyot and after greeting said—"Uncle, this time you are seriously caught in a political intrigue. You are dreaming of conquering Rajagriha and king Shrenik has bought allegiance of your prominent commanders by paying enough wealth. They are prepared to capture you and produce you before king Shrenik. Come morning you will be apprehended. You are my uncle; how can I see you insulted by such conspiracy? Please do something."

Hearing this Chandpradyot became alert. He asked Abhaya Kumar—"Why should I believe you?"

Abhaya Kumar—"You need not believe me. Come see with your own eyes." And in the dark of the night Chandpradyot covered himself in a black sheet and accompanied Abhaya Kumar to the camps of his commanders. Abhaya Kumar dug out the buried wealth. No doubt remained in the king's mind about the treachery of his commanders. He rode a horse and secretly returned to Ujjaini the same night.

In the morning the commanders were surprised not to find their king. Even his horse was not there. When they searched for him they found the hoof prints of the king's horse pointed in the direction of Ujjaini. Disturbed by this unexpected behaviour of their king they broke camp and started for Ujjaini.

When the army reached Ujjaini the commanders went to the palace to see the king. At first he refused to meet them. After much persuasion he finally agreed to meet them. Before they could say a word he started reprimanding them for their treachery and accepting bribe. The commander-in-chief of his army replied humbly—"Sire! How could you believe that we could deceive you. For generations we are serving the state. We all love our country. There is no reason to betray you. It appears to be a conspiracy cooked by that crafty prince Abhaya Kumar. He took you into confidence and saved his state cleverly from a war."

This opened the eyes of Chandpradyot.. His anger for Abhaya Kumar saw no bounds. He immediately made an announcement that the person who brings prince Abhaya Kumar of Rajagriha to Ujjaini as a prisoner will be richly rewarded. The fame of Abhaya Kumar's sharp intelligence and cleverness was so wide spread that no one could muster enough courage to accept this challenge. The ministers, commanders, clever merchants, no one was ready to apprehend Abhaya Kumar.

A few days later a courtesan took up the challenge on the condition that she be given enough cash to cover her expenses. The king agreed at once. She took along a few other women and dressed as *Shravikas* they all reached Rajagriha.

This group started regularly visiting religious places and attending to discourses of ascetics to impress upon the people that they are very devout *shravikas*. When they earned the desired reputation the courtesan planned and invited Abhaya Kumar to her place of stay. Considering her to be a co-religionist and a famed *shravika,* Abhaya Kumar accepted the invitation. The courtesan drugged the food offered to Abhaya Kumar. As soon as Abhaya Kumar ate his food he became unconscious. The courtesan was eagerly waiting for this. Abhaya Kumar was immediately tied up and carried to a chariot. The courtesan brought the victim to Ujjaini.

When Abhaya Kumar was produced as a prisoner before king Chandpradyot his joy saw no bounds. He ridiculed, "Why? Son, you got paid for your deceit. How cunningly I got you apprehended and brought here."

Abhaya Kumar reacted without hesitation, "Uncle, you caught me and brought me here when I was unconscious. Please beware, I will one day take you to Rajagriha on a chariot when you are wide awake and that too torturing you on the way.

Chandpradyot took it to be a joke and did not pay any attention. Abhaya Kumar went to his aunt in the palace and lived happily. A few days later, when all these incidents were forgotten, he searched and found out a man who matched king Chandpradyot in appearance, body size and speech. He promised the man enough money and explained his plan. The man stayed with him. After a couple of days Abhaya Kumar dressed his accomplice as the king,

took him in the chariot and beating him with a stick went around the streets of Ujjaini. As coached, the man moaned and wailed and shouted—"See, Abhaya Kumar is beating me with a stick, some one save me, help me!" When the townspeople heard their king calling for help, they rushed. Even when they came near the chariot Abhaya Kumar did not stop beating the man. When some of the people looked carefully and were about to ask questions the two in the chariot started clapping and laughing. The masses realised that the man being beaten was not their king but some impostor. They also laughed and dispersed.

Every day Abhaya Kumar repeated this act at different hours during the day. For almost everyone in the city this act became so common that they stopped paying attention to it. So much so that even the guards laughed from a distance when they saw the chariot and heard the sounds of wailing and shouting.

When Abhaya Kumar was confident that there was no one to stop or check him, finding an opportune moment one evening he caught king Chandpradyot and tied his limbs. Putting the prisoner in a chariot, Abhaya Kumar drove through the streets of Ujjaini, continuously beating the prisoner with a stick. Chandpradyot kept shouting non-stop. The citizens heard these shouts from a distance and considering it to be Abhaya Kumar's play, laughed and turned away. No one came forward to the rescue of their real king. This time Abhaya Kumar did not return back from the city gate. As soon as the chariot was out of Ujjaini he increased its speed and moved towards Rajagriha.

Abhaya Kumar brought his prisoner before king Shrenik and narrated his story. Chandpradyot felt ashamed and repentant. He begged Shrenik's pardon and the two royal relatives embraced each other. All present hailed Abhaya Kumar's wit and wisdom.

2. The merchant—Disturbed with the questionable character of his wife, a merchant got initiated as an ascetic. Years later his able son became the king of that state. After this, once during his wanderings, the ascetic happened to come to the same town. The king requested his ascetic father to spend his monsoon stay in the town and he accepted. The discourses of the scholarly ascetic highly impressed the masses. Some people belonging to other religious sects

could not tolerate this and they framed a conspiracy to defame the ascetic.

When the monsoon stay came to an end and the ascetic started preparing to depart, according to the plan of opponents, a pregnant maid came to the ascetic and said—"O ascetic, I am pregnant and will give birth to your child soon. At such a time if you depart leaving me alone who will look after me?"

The ascetic could understand that this was part of some conspiracy by some opponents. If he left in this situation it will be detrimental for him as well as the religious organisation. He was an accomplished spiritualist with unusual powers as well. He used his hidden power on the maid and said to her—"If your pregnancy is by me you will have a timely delivery. But if it is not so, you will not be able to give birth to the child normally, it will have to be taken out by cutting open your stomach."

The maid was in her full months. She failed to give birth even when few days passed after the expected date. Slowly her pain increased. In this miserable condition her family members took her to the ascetic. Paying her homage to the ascetic she said moaning with pain—"O great ascetic, joining the conspiracy fetched by your adversaries I put a false blame on you. I got the punishment for my deeds. Please forgive me and deliver me from this terrible pain."

The ascetic was simple and pure hearted. He at once pardoned the maid and withdrew his spell. The fame of the ascetic spread all around.

3. The prince—A prince was very fond of *modaks* (*laddu,* ball shaped sweet) since his childhood. Once on some ceremonial occasion he got prepared very tasty food, of course, including modaks. When he took his meal with his friends, he could not control himself and ate much more modaks than he could digest. As a consequence he had indigestion. The pain and stench due to indigestion became intolerable. In this condition he started thinking—"Such tasty and fragrant things turned into stinking excreta as soon as they came in contact with the body. This body is made of filth and anything that comes in contact with the body ultimately turns into filth. Curse this body the pleasures of which inspire man to indulge in so much sin."

This feeling of revulsion for filth gradually transcended into pious attitude and finally lead to *Kewal-jnana*. It was the *parinamiki buddhi* that was instrumental in inspiring this turn of attitude.

4. The goddess—In ancient times in a city named Pushpabhadra there was a king named Pushpaketu. The names of his wife, son and daughter were Pushpavati, Pushpachul and Pushpachula respectively. By the time the son and the daughter were young unfortunately queen Pushpavati died and she reincarnated as a goddess.

As a goddess, when she saw her husband, son, daughter and other members of the family with the help of her *Avadhi-jnana* she thought if her daughter Pushpachula takes the spiritual path it will benefit her. With these thoughts she used her divine powers and vividly showed Pushpachula in her dream the horrifying scenes of agonising tortures of the hell. This dream infused a feelings of detachment in the mind of Pushpachula and renouncing the mundane pleasures she turned into an ascetic. As ascetic she strictly followed the ascetic code of conduct and indulged in harsh penance and deep meditation to destroy the vitiating karmas and attain *Kewal-jnana*. In the end getting liberated from the cycles of rebirth she attained moksha. The *parinamiki buddhi* of a goddess was instrumental in a soul's attaining the status of *Siddha*.

5. Uditodaya—The name of the king of a city named Purimtal was Uditodaya. His queen's name was Shrikanta. The royal couple was very religious and lived happily following the codes of *Shravak* conduct. One day a *parivrajika* (a type of female mendicant) came to the palace and preached the religion based on physical cleansing. When the queen gave no heed to her *preaching* she got angry and left. Considering it to be her insult the *parivrajika*, in order to take revenge, went to king Dharmaruchi of Varanasi, praised the beauty of queen Shrikanta and instigated Dharmaruchi to get her.

Dharmaruchi marched on Purimtal and laid a siege on the city. During the night king Uditodaya thought that if he fought a war there will be a horrible man slaughter and innumerable innocent lives will be lost for nothing. In order to find a way to avoid this terrible violence he decided to worship Vaishraman god and started a three day fast. As soon as the penance was over, Vaishraman god

appeared. King Uditodaya told him about his problem and asked for some way to avoid the impending man slaughter. The god was impressed by the king's compassion and he at once moved the city to a distant area with his divine power.

Next morning when king Dharmaruchi got up he was astonished to see that Purimtal city had disappeared from the area of siege. With disappointment he retreated and a terrible man slaughter was avoided.

6. The monk and Nandisen—Emperor Shrenik of Rajagriha had a son named Nandishen. When he got matured king Shrenik married him to many beautiful and virtuous princesses.

Wandering from one village to another, once *Bhagavan* Mahavir came to Rajagriha. King Shrenik went with his family to pay homage to *Bhagavan* Mahavir. Nandishen and his wives were also in the group. When he listened to the discourse of *Bhagavan* Mahavir a feeling of detachment arose in him. After seeking permission from his parents he got initiated into the religious order. Intelligent Nandishen soon absorbed all the knowledge of *Angas* with the help of his teachers and started preaching to contribute to the spread of religion. A few days later he sought permission from *Bhagavan* Mahavir and left Rajagriha.

For a long time he continued his itinerant way. One day ascetic Nandishen felt that one of his disciples was attracted towards mundane comforts. After due consideration he decided to go to Rajagriha. When king Shrenik was informed of his arrival he was much pleased and came to pay homage to the ascetic. All the members of his family came with him and that included the former wives of ascetic Nandishen.

When the wavering disciple of Nandishen saw the astonishingly beautiful former wives of his guru he got awakened and was filled with self reproach. He thought—"My guru has become ascetic after renouncing royal grandeur and divinely beautiful wives, and is following the codes of conduct with absolute sincerity. And I am wavering under the attraction of ordinary mundane life, insignificant in comparison. Curse me, who is ready to eat again what I vomited. This deeply agitated state of mind inspired him to do atonement and be firm on the spiritual path.

(७) धनदत्त—श्रेष्ठि धनदत्त की कथा के लिए देखें—सचित्र ज्ञाता धर्मकथांगसूत्र भाग २, अठारहवाँ अध्ययन।

(८) श्रावक—एक व्यक्ति ने अन्तर में धर्म प्रेरणा जगने पर श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये जिनमें स्वदार-संतोष व्रत भी एक था। अनेक वर्षों तक वह इन नियमों पर स्थिर रहा किन्तु संयोगवश एक बार अपनी पत्नी की एक सखी को देखकर वह उसकी सुन्दरता पर आसक्त हो गया। उसे प्राप्त करने की इच्छा बलवती होती गई और सहज लज्जा के कारण वह उसे बता भी नहीं सका। मन ही मन दुःखी रहने के कारण उसका स्वास्थ्य बिगड़ता चला गया। उसकी चिन्तित पत्नी ने एक दिन बहुत आग्रह कर उसके मन की व्यथा जान ली।

श्राविका बहुत बुद्धिमान व धैर्यवान थी। उसने शान्तिपूर्वक विचार किया—"यदि मेरे पति के मन में ये कलुषित विचार बने रहे तो दुर्बलतावश एक दिन वह प्राण त्याग देगा और ऐसे विचारों के फलस्वरूप उसे दुर्गति प्राप्त होगी। अतः कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि यह अपने कुत्सित विचारों का त्याग कर पुनः सन्मार्ग पर स्थित हो जाये।" यह विचार कर उसने एक योजना बनाई और अपने पति से कहा—"स्वामी, मैंने अपनी सखी से बात की है। वह आज रात्रि आपके पास आयेगी। किन्तु वह कुलीन है, उजाले में आते लज्जा का अनुभव करती है। अतः वह अँधेरे में ही आयेगी और उजाला होने से पूर्व ही चली जायेगी।" श्रावक आश्वस्त हो गया।

श्राविका अपनी योजनानुसार अपनी सखी के पास गई और उसके वे वस्त्राभूषण माँग लाई जिन्हें पहनकर उसकी सखी उसके घर आई थी। रात के अँधेरे में उसने सखि के वे वस्त्र पहने और अपने पति के पास चली गई। प्रातः होने से पूर्व ही वह वहाँ से चली आई और पुनः अपने सामान्य वस्त्राभूषण पहन लिये।

प्रातः उसका पति उठकर पत्नी के पास आया और घोर ग्लानि तथा पश्चात्ताप करने लगा—"मैंने बड़ा अनर्थ किया है। अपने स्वीकार किए व्रत को तोड़ने का महापाप कर बैठा।" पति को सच्चे हृदय से पश्चात्ताप करते देख श्राविका ने सारी बात बताकर पति को आश्वस्त किया और श्रावक-व्रतों के पालन में पुनः स्थिर हो जाने का उपदेश दिया। श्रावक का हृदय-परिवर्तन हो गया और उसने अपने गुरु के पास जाकर प्रायश्चित्त कर पुनः व्रत धारण किए। पारिणामिकी बुद्धि-सम्पन्न श्राविका ने पति को पुनः धर्म में स्थिर कर दिया।

(९) अमात्य—बहुत पुरानी बात है, काम्पिल्यपुर नगर पर ब्रह्म नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी चुलनी ने एक रात चक्रवर्ती के जन्मसूचक स्वप्न देखे और यथासमय एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त रखा गया। ब्रह्मदत्त की बाल्यावस्था में ही राजा ब्रह्म का देहान्त हो गया। अपने अन्त समय में राजा ब्रह्म ने अपने मित्र एक पड़ौसी राजा दीर्घपृष्ठ को अपने पुत्र के वयस्क होने तक राज्य-शासन सँभालने का दायित्व सौंप दिया था। राजा ब्रह्म की मृत्यु के पश्चात् दीर्घपृष्ठ तथा चुलनी दोनों में प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो गये। राजा ब्रह्म का धनु नामक

एक अमात्य था जो बहुत योग्य, बुद्धिमान व राजभक्त था। कुमार ब्रह्मदत्त की देख-रेख व शिक्षा आदि के सभी प्रबन्ध वही करता था। जब कुमार युवक हुआ तो अमात्य धनु ने सावधानी से रानी चूलनी व दीर्घपृष्ठ के अनुचित सम्बन्धों के विषय में बताया और राज्य पर भविष्य में आने वाले खतरे का संकेत दिया। ब्रह्मदत्त क्रोध से तमतमा गया किन्तु अमात्य ने उसे क्रोध नहीं, चतुराई से काम लेने को कहा।

ब्रह्मदत्त ने अमात्य से मंत्रणा कर पहले तो अपनी माता को चेतावनी देने का निश्चय किया। एक दिन वह एक कोयल तथा एक कौआ को एक ही पिंजड़े में डाल अपनी माता के पास ले गया और क्रोध भरे स्वर में बोला–"इन पक्षियों के समान जो भी वर्ण संकरत्व का दोषी होगा उन्हें मैं दण्डित करूँगा।"

रानी यह बात सुनकर आशंकित हो गई और दीर्घपृष्ठ से सब कुछ बता दिया। दीर्घपृष्ठ ने उसे यह कहकर आश्वस्त कर दिया कि बालक की बात पर ध्यान देना ठीक नहीं।

कुछ दिनों बाद एक उत्तम हथिनी तथा एक विद्रुप हाथी को साथ देखकर ब्रह्मदत्त ने अपनी माता चूलनी रानी और दीर्घपृष्ठ दोनों को दिखाते हुए कटाक्ष किया–"ऐसे बेमेल के अनुचित सम्बन्ध करने वाले को मृत्युदण्ड दिया जायेगा।"

एक बार फिर उसने इस प्रकार की धमकी एक बगुले और हंसिनी को दिखाकर दी।

तीसरी धमकी सुनकर दीर्घपृष्ठ भी आशंकित हो उठा। उसने और रानी चूलनी ने अपने वासना व्यापार को निष्कंटक करने के लिए एक षड्यन्त्र रचा। उन्होंने योजना बनाई कि गुप्त रूप से एक सुन्दर लाक्षागृह बनावे तथा ब्रह्मदत्त का विवाह कर उसे सपत्नीक उसे लाक्षागृह में रहने भेज देवे। सुहागरात के दिन ही उस लाक्षागृह में आग लगवाकर ब्रह्मदत्त को सपत्नीक जला दिया जाये। कामांध रानी भी पुत्र-हत्या के लिए तैयार हो गई।

अमात्य धनु को अपने गुप्तचरों से इस योजना का पता चल गया। वह दीर्घपृष्ठ के पास गया और बोला–"देव ! मैं वृद्ध हो चला हूँ। अब राजकाज मेरे वश का नहीं। मैं अपना शेष जीवन भगवद्-भजन तथा दान-पुण्य कर बिताना चाहता हूँ। मुझे अवकाश देने की कृपा करें।" इस प्रकार आज्ञा ले वह नगर के बाहर गंगा-तट पर एक विशाल डेरा बनाकर भजन कीर्तन करने लगा और वहीं दानशाला खुलवा दी। इसी स्थान से उसने गुप्त रूप से एक सुरंग खुदवाना चालू कर दी जो बन रहे लाक्षागृह के नीचे खुलनी थी।

कुछ दिनों में जब लाक्षागृह बनकर तैयार हुआ तब तक धनु की सुरंग भी बनकर तैयार हो गई। दीर्घपृष्ठ तथा चूलनी ने ब्रह्मदत्त का विवाह राजा पुष्पचूल की कन्या से कर दिया। नव-दम्पति को सभी सहायता उपलब्ध कराने का दायित्व महामंत्री धनु ने पुत्र वरधनु को, जो अब अमात्य था, को सौंप दिया। वरधनु और ब्रह्मदत्त बालसखा भी थे। सुहागरात के लिए नवदम्पति को वरधनु ने लाक्षागृह में ले जाकर ठहरा दिया। अर्ध रात्रि के समय दीर्घपृष्ठ के गुप्तचरों ने लाक्षागृह में आग लगा दी। ब्रह्मदत्त ने अपने नये महल की दीवारों को पिघलते देखा

तो दौड़कर वरधनु के कक्ष में गया और बोला-"मित्र ! महल को आग लग गई है और इसकी दीवारें तो पिघल रही हैं।" वरधनु ने कहा-"मित्र, चिन्ता न करो।" और वह नव-दम्पति को साथ ले सुरंग के रास्ते अमात्य धनु के डेरे पर पहुँच गया।

अमात्य धनु ने विस्तार से रानी और दीर्घपृष्ठ के षड्यन्त्र के विषय में बताया। अमात्य ने ब्रह्मदत्त तथा वरधनु को किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाने को कहा। अमात्य की पारिणामिकी बुद्धि ने ब्रह्मदत्त की प्राण-रक्षा की।

7. Dhanadatt—For the story of merchant Dhanadatt see chapter 18 of Illustrated Jnata Sutra, Part II.

8. Shravak—Inspired towards religious life a man accepted the twelve vows of a *shravak.* One of the vows was to be content with his own wife. For many years he remained firm in his vows. However, once he happened to see a friend of his wife and got infatuated with her beauty. The desire to get that woman kept on increasing and his natural modesty did not allow him to reveal it. This disturbed state of mind had a telling effect on his health. His worried wife one day got to know the cause of his pain after much persuasion.

She was very intelligent and patient. She quietly thought—"If my husband continues to be tortured by these base thoughts he will one day lose his life. As a consequence of his despicable attitude he will have a bad rebirth. Therefore, I should do something so that he comes out of his present state of mind and regains the spiritual path." With these thoughts she made a plan and accordingly said to her husband—"My lord, I have talked to my friend. She will come to you tonight. But she belongs to a respectable family and feels shy to come openly in the light. Therefore she will come only when it is dark and return back before the dawn." The *shravak* was relieved.

The *shravika,* according to her plan, went to her friends house and brought from her the dress and the ornaments she was wearing when she had last come to the former's house. In the darkness of the night she put on her friend's dress and ornaments and went to her husband. Before the dawn she returned to her room and changed to her normal dress.

In the morning her husband got up and came to her. He was filled with deep remorse and started repenting—"I have indulged in a despicable act. I have committed the great sin of breaking the vow I

accepted." When the wife saw that her husband was genuinely repenting she told him everything and reassured him. She also inspired him to once again be firm on his resolve of observing the vows of a *shravak*. The *shravak* underwent a change of heart. He went to his guru and after due repentance took the vows once again. Endowed with *parinamiki buddhi* the *shravika* re-established her husband on the religious path.

9. The minister—In ancient times a city named Kampilyapur had a king named Brahma. His queen Chulni one night saw dreams that augur the birth of a Chakravarti and in due course gave birth to a son. The prince was named Brahmadatt. King Brahma died when Brahmadatt was still an infant. At the time of his death king Brahma had given the responsibility of managing the affairs of the state to a friend Deerghaprishta, king of a neighbouring kingdom, till his son became major. After the death of king Brahma, Deerghaprishta and Chulni fell in love. King Brahma had a minister named Dhanu who was very able, wise and faithful. It was he who looked after the up bringing and education of the prince. When the prince matured, minister Dhanu discreetly told him about the illicit relationship between Deerghaprishta and Chulni and warned him about the impending danger to the kingdom. Brahmadatt was infuriated. But minister Dhanu advised him to resort to cunning rather than anger.

In consultation of minister Dhanu, Brahmadatt first decided to warn his mother. One day he put a crow and a cuckoo in the same cage and took it to her mother. Showing the birds he said in anger filled voice—"I will punish those who are found guilty of cross-breeding like these birds."

The queen was filled with fear and told everything to Deerghaprishta. He reassured her saying that she should not give heed to a child's comments.

Some days later pointing at a beautiful female elephant of good breed and an ugly elephant cohabiting together Brahmadatt told both Chulni and Deerghaprishta—"If I find some one having such illicit and mismatching relationship I will punish them with death."

He once again gave similar warning showing a swan and a stork.

After the third warning Deerghaprishta also became apprehensive. In order to remove this impediment to their lascivious

activities Chulni and Deerghaprishta cooked up a conspiracy. They planned to secretly construct a beautiful house of shellac and send Brahmadatt to live in that house after his marriage. On the honeymoon night the house was to be set to fire burning the newly wedded couple. Blinded by her lust the queen also agreed to kill her own son.

Minister Dhanu came to know of this plan through his spies. He went to Deerghaprishta and said—"Sire, now that I have grown old and unfit to look after the affairs of the state, I want to spend rest of my life indulging in religious worship and charitable activities. Kindly grant me leave." Thus, getting permission from Deerghaprishta he went outside the city. On the banks of the Ganges he raised a large tent and started devotional activities including singing of hymns. There only, he opened a house of charity. Under the cover of these activities he secretly started digging an underground tunnel that was to open inside the house of shellac under construction.

A few days later when the house of shellac was ready, minister Dhanu's tunnel was also ready. Deerghaprishta and Chulni married Brahmadatt to the daughter of king Pushpachool. Minister Dhanu gave the responsibility of making all necessary arrangements for the comforts of the newly wedded couple to his son Vardhanu, who was now a minister. Vardhanu took the new couple to the house of shellac for their honeymoon. At midnight the spies of Deerghaprishta set the house to fire. When Brahmadatt saw the walls of his new palace melting, he rushed to Vardhanu's room and said—"Friend, the palace is on fire and its walls are melting." Vardhanu reassured him—"Friend, don't worry." And he took the new couple to minister Dhanu's camp through the tunnel.

Minister Dhanu explained the prince in details about the conspiracy of the queen and Deerghaprishta and advised Brahmadatt and Vardhanu to go to some safe place. The *parinamiki buddhi* of the minister saved the life of Brahmadatt.

(१०) क्षपक–एक बार एक वयोवृद्ध तपस्वी मुनि भिक्षा के लिए अपने शिष्य के साथ जा रहे थे। लौटते समय अनजाने में उनके पैर के नीचे दबकर एक मेंढक मर गया। शिष्य ने यह देखा तो उसने गुरु से प्रतिक्रमण करने के लिए कहा। तपस्वी ने ध्यान नहीं दिया। सन्ध्या

प्रतिक्रमण के समय शिष्य ने पुनः उन्हें प्रायश्चित्त के लिए याद दिलाया। इस पर तपस्वी क्रुद्ध हो गया और शिष्य को मारने के लिए झपटा। अंधकार में शिष्य तो दिखाई नहीं दिया, उसका सिर एक खम्मे से टकरा गया। चोट इतनी गहरी लगी कि उसी क्षण उसकी मृत्यु हो गई। अपनी कठोर तपस्या के फलस्वरूप उसका पुनर्जन्म ज्योतिष्क देव के रूप में हुआ। देवलोक की आयुष्य पूर्ण कर वह तीव्र कषायजनित कर्मों के फलस्वरूप दृष्टि-विष सर्प के रूप में जन्मा। सर्प के रूप में उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और पूर्वजन्मों के विषय में सभी कुछ स्मरण हो आया। अपने दुष्कर्म के विषय में जान वह घोर पश्चात्ताप से भर उठा और उनका हृदय परिवर्तन हो गया। इस आशंका से कि उसके दृष्टि-विष से किसी की मृत्यु न हो जाये, उसने अपने बिल से निकलना ही बन्द कर दिया।

समीप के ही राज्य में एक राजकुमार की सर्प-दंश से मृत्यु हो गई। दुःख और क्रोध से पीड़ित राजा ने आस-पास के सभी साँपों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारने की आज्ञा दे दी। राज्यभर के सपेरे इस काम में जुट गये। एक सपेरा इस दृष्टि-विष सर्प के बिल के निकट भी पहुँचा और बिल में कोई औषधि डाल दी। औषधि से पीड़ित हो साँप को बाहर निकलना पड़ा किन्तु यह विचारकर कि उसकी दृष्टि अन्त समय में भी किसी पर पड़ेगी तो वह मर जायेगा, वह साँप पूँछ के बल निकलने लगा। सपेरा राह देख रहा था—जैसे-जैसे साँप का शरीर बाहर निकलता गया सपेरा उसके टुकड़े करता गया। इस तीव्र वेदना को भी वह साँप प्राणान्त होने तक समतापूर्वक सहता रहा। पुण्य कर्मों के बंधन होने से वह उसी राजा के घर में पुत्ररूप में जन्मा। उसका नाम नागदत्त रखा गया।

पूर्वजन्म के उत्तम संस्कार लेकर जन्मा नागदत्त बाल्यावस्था में ही विरक्त हो गृहस्थ जीवन त्यागकर मुनि बन गया। अपने विनय, सरलता, सेवा एवं क्षमा जैसे विशिष्ट गुणों के कारण वह देवों के लिए भी वन्दनीय बन गया। उसकी यह महिमा देख अन्य मुनि उससे ईर्ष्या रखने लगे। मुनि नागदत्त को अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण भूख अधिक लगती थी और वह अधिक समय तक भूखा न रह सकने के कारण उपवास भी नहीं कर सकता था।

एक दिन जब अन्य सभी मुनि उपवास कर रहे थे उसने भी उपवास करने की चेष्टा की। पर जब वह भूखा नहीं रह सका तो अपने लिए आहार लेकर आया। मुनि आचार के अनुरूप अपना लाया आहार उसने अन्य मुनियों को दिखाया और आहार करने की अनुमति चाही। एक मुनि ने उसे भुखमरा कहकर उसके आहार में थूक दिया। नागदत्त में समता और क्षमाभाव कूट-कूटकर भरे थे। इस घटना पर भी उसे रोष अथवा अन्य किसी भी प्रकार की तीव्र प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह स्वयं अपनी ही दुर्बलता की आलोचना करता ध्यान-मग्न हो गया। इस उपशान्त वृत्ति के फलस्वरूप उसके परिणामों की विशुद्धता बढ़ती गई और उसे वहीं केवलज्ञान प्राप्त हो गया। देवता कैवल्य महोत्सव मनाने आये। यह चमत्कार देख वहाँ उपस्थित सभी मुनियों को अपने किए दुर्व्यवहार पर घोर पश्चात्ताप हुआ और वे भी आत्म-आलोचना करते-करते ध्यान-मग्न हो गये। उन्हें भी कैवल्य प्राप्त हो गया।

नागदत्त पारिणामिकी बुद्धि के कारण ही विपरीत परिस्थितियों में भी सदा समभाव रखने में सफल हुआ और अन्ततः अपना ही नहीं, अन्य आत्माओं का भी कल्याण कर सका।

(११) अमात्यपुत्र—काम्पिल्यपुर के राजकुमार ब्रह्मदत्त की उनके अमात्य धनु की पारिणामिकी बुद्धि के प्रभाव से लाक्षागृह से बच निकलने की कथा "अमात्य" शीर्षक में दी जा चुकी है। यह दृष्टान्त उसी के बाद की घटना है।

वरधनु तथा कुमार ब्रह्मदत्त घूमते-घामते जंगल में आगे बढ़ रहे थे। ब्रह्मदत्त को प्यास लगी तो वरधनु उसे एक पेड़ के नीचे बैठाकर पानी की खोज में गया। उधर दीर्घपृष्ठ को जब यह ज्ञात हुआ कि कुमार ब्रह्मदत्त लाक्षागृह से बचकर भाग निकला है तो उसने चारों ओर राजकुमार की खोज में सैनिक दौड़ा दिये। पानी की खोज में गये वरधनु को ऐसे ही सैनिकों की एक टोली ने देख लिया और उसे पकड़कर कुमार का पता पूछने लगे। वरधनु ने चिल्लाकर कहा—"अरे सैनिको, मुझे छोड़ दो मैं नहीं जानता ब्रह्मदत्त कहाँ है।"

ये शब्द जैसे ही कुमार के कानों में पड़े वह समझ गया कि वरधनु उसे सावधान करने के लिए ही चिल्ला रहा है। कुमार तत्काल अपने घोड़े पर सवार हुआ और चुपचाप वहाँ से खिसक लिया। उधर सैनिकों ने वरधनु के चीखने-चिल्लाने की परवाह किए बिना उसे पीटना आरम्भ कर दिया। चतुर वरधनु अचानक निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा। सैनिक उसे मृत समझ वहाँ से आगे बढ़ गये। कुछ देर बाद वरधनु उठा और राजकुमार की खोज में निकल पड़ा। बहुत खोजने पर भी उसे राजकुमार कहीं नहीं मिला किन्तु उसे निर्जीवन और संजीवन नाम की दो वन्य औषधियाँ प्राप्त हो गईं।

वरधनु निराश हो नगर की ओर लौटा। नगर के बाहर उसे एक चाण्डाल मिला जिसने उसे बताया कि उसके परिवार के सभी सदस्यों को राजा ने बंदी बना लिया है। अपने परिवार को छुड़ाने के लिए वरधनु ने एक योजना बनाई और चाण्डाल को भली-भाँति समझाकर निर्जीवन औषधि देकर भेज दिया। चाण्डाल औषधि लेकर बन्दीगृह में वरधनु के परिवार वालों से मिलने गया। औषधि उन्हें दी और वरधनु का संदेश कह दिया। परिवार के सभी सदस्यों ने औषधि को अपने नेत्रों पर लगाया और उसके प्रभाव से मृत जैसे होकर गिर पड़े।

राजा को ये समाचार मिले। उसने चाण्डाल को बुलाया और सभी मृत शरीरों को श्मशान में ले जाकर जला देने को कहा। वरधनु की योजना सफल हो गई। चाण्डाल उसके परिवार के सदस्यों के मृत जैसे शरीर गाड़ी में डालकर श्मशान में ले गया और वरधनु द्वारा बताये स्थान पर सुरक्षित रख दिया। वरधनु को सूचना मिलने पर वह वहाँ आया और संजीवनी औषधि को सब मृत जैसे शरीरों की आँखों पर लगा दिया। कुछ ही देर में सभी स्वस्थ होकर उठ बैठे। वरधनु ने उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध किया और पुनः ब्रह्मदत्त की खोज में निकल गया।

गहरे जंगल में उसने कुमार को खोज निकाला। इसके बाद दोनों मित्रों ने अपने बुद्धि-बल और शौर्य से सेना एकत्र की और अनेक राज्यों को जीता। अनेक कन्याओं से ब्रह्मदत्त ने विवाह

भी किया। धीरे-धीरे उसने अपने राज्य का विस्तार किया और दीर्घपृष्ठ का संहार कर षट्खण्ड पृथ्वी का अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बन गया।

(१२) **चाणक्य**—पाटलिपुत्र नगर के राजा का नाम नन्द था। एक बार किसी बात पर रुष्ट होकर उसने चाणक्य नाम के एक ज्ञानी ब्राह्मण को पाटलिपुत्र नगर से बाहर निकाल दिया। चाणक्य ने संन्यासी वेश धारण किया और स्थान-स्थान पर घूमने लगा। एक दिन वह मौर्य प्रदेश में पहुँचा। नगर में घूमते हुए उसने देखा कि एक भवन के बाहर एक क्षत्रिय वेशधारी व्यक्ति उदास बैठा है। चाणक्य ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में उसकी उदासी का कारण पूछा। क्षत्रिय ने कहा—"मेरी पत्नी गर्भवती है और उसे यह दोहद उत्पन्न हुआ है कि चन्द्रमा को उदरस्थ कर लूँ। मैं यह इच्छा कैसे पूरी कर सकता हूँ? फलस्वरूप वह दिन प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही है। मुझे यह डर खाये जा रहा है कि कहीं उसका प्राणान्त न हो जाये।" चाणक्य ने उसे आश्वासन दिया कि आगामी पूर्णिमा को उसकी पत्नी की इच्छा पूर्ण हो जायेगी।

नगर के बाहर एक उपयुक्त स्थान देखकर चाणक्य ने एक तम्बू गड़वाया। तम्बू की छत में उसने उचित आकार का एक छेद करवा दिया। पूर्णिमा की रात प्रथम प्रहर में चाणक्य ने उस क्षत्रिय को सपत्नीक आमन्त्रित किया। जब क्षत्रिय-दम्पति तम्बू में पहुँचे तो चाणक्य ने पारदर्शी पेय पदार्थ से भरी एक थाली क्षत्रिय महिला के सामने धरती पर ऐसे स्थान पर रखी जहाँ छेद में से चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ सके। कुछ देर में जैसे ही चन्द्रमा आकाश में उस छेद के ऊपर पहुँचा थाली में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगा। चाणक्य झट से बोल उठा—"बहन ! चन्द्रमा अब थाली में उतर आया है, तुम सावधानी से थाली उठाकर उसे पी जाओ।"

वह क्षत्रियाणी थाली में चन्द्र-बिम्ब देख प्रसन्न हुई और थाली उठाकर पेय पदार्थ पीने लगी। इसी बीच चाणक्य ने तम्बू के छेद को पहले से लटकाये एक पर्दे को रस्सी से खींचकर बन्द कर दिया। क्षत्रियाणी ने जब थाली में रहा पेय पूरा पीकर थाली धरती पर रखी तो देखा कि उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब नहीं था। उसे विश्वास हो गया कि उसने चन्द्रमा को उदरस्थ कर लिया है। वह अपार हर्ष से खिल उठी। धीरे-धीरे उसके स्वास्थ्य में सुधार हो गया और यथासमय उसने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम चन्द्रगुप्त रखा गया। यही बालक बड़ा होकर चाणक्य की सहायता से नन्दों का नाश कर मगध सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य बना। चाणक्य अपार पारिणामिकी बुद्धि का धनी था।

10. Kshapak—Once an elderly ascetic, who indulged in harsh austerities, was going with his disciple to seek alms. On the way back a frog was crushed to death under his feet. When the disciple saw this he requested his guru to do *pratikraman* (atonement). The ascetic did not pay any attention. At the time of the evening *pratikraman* (critical review) the disciple again reminded him for

atonement. This time the ascetic got furious and rushed to hit the disciple. In darkness he did not find the disciple and instead collided with a pillar. He suffered a fatal head injury and died on the spot. As a result of his harsh austerities he reincarnated as a Jyotishk god. After completing his life-span as a god, as a result of the karmas acquired due to his intense passion, he took rebirth as a serpent with venomous vision. As a serpent he acquired *jati-smaran-jnana* and he recalled all about his earlier births. He was filled with deep remorse for his misdeeds and underwent a change of heart. With the apprehension that some one could die under the spell of his venomous vision, he stopped coming out of his hole.

In a nearby kingdom a prince died of snake-bite. Driven by his sorrow and anger the king issued orders to search and kill all the snakes in the area. All the snake charmers in the state took to the task. One of the snake charmers arrived at the hole of this serpent and poured some potion in the hole. Tormented by the medicine, the serpent had to come out of the hole. Concerned about the deadly effect of his venomous vision even in his near fatal condition, the serpent started slithering backwards from the hole. The snake charmer was waiting outside. As the serpent slithered out he started cutting it into pieces. Till he died, the serpent kept on tolerating even this acute agony with equanimity. The acquisition of meritorious karmas resulted in his reincarnating as the son of the same king. He was named Naagdatt.

Inheriting pious attitude from his earlier birth, even as a child Naagdatt got detached, renounced the mundane life and became an ascetic. Due to his unique virtues like modesty, simplicity, care for others and clemency he became an object of worship even for gods. His glory made other ascetics jealous of him. Due to the attitude inherited from his earlier birth, ascetic Naagdatt was ravenous. As he could not remain hungry for long he also could not observe fasts.

One day when other ascetics were observing a fast he also tried to follow suit. But when he could not tolerate the pangs of hunger he went out to seek alms. According to the ascetic code, he showed what he had brought to other ascetics and sought there permission to eat. One ascetic spit in his food saying that he was a starving glutton. Naagdatt abounded in equanimity and clemency. Even this incident

failed to make him angry or react sharply. Criticising his own weakness he started meditating. As a result of this extremely calm attitude the purity of his thoughts and feelings went on increasing and he acquired *Kewal-jnana* there itself. Gods descended to celebrate the occasion. When the ascetics present there witnessed this miracle they gravely repented their misbehaviour. While doing self-reproach they also transcended into deep meditation and acquired *Kewal-jnana*.

With the help of his *parinamiki buddhi* Naagdatt succeeded in maintaining his equanimity even in adverse circumstances and in the end was able to benefit not only himself but others as well.

11. The minister's son—The story of getting away of prince Brahmadatt form the house of shellac with the help of the Parinamiki Buddhi of minister Dhanu has been given under the title—The Minister. This example narrates an incident following that.

Vardhanu and prince Brahmadatt were walking ahead into the jungle when the prince got thirsty. Vardhanu left him sitting under a tree and went in search of water. At the other end, when Deerghaprishta came to know that prince Brahmadatt had escaped from the house of shellac unscathed, he sent his soldiers in all directions in search of the prince. One group of these soldiers found Vardhanu who had gone in search of water. They caught him and enquired about the prince. Vardhanu shouted loudly—"Soldiers! Leave me alone. I don't know where Brahmadatt is."

As soon as the prince heard this he understood that Vardhanu is shouting in order to give him a warning. The prince at once rode his horse and stealthily left the place. The soldiers started beating Vardhanu without paying any attention to his shrieks. Clever Vardhanu suddenly became limp and fell on the ground. Considering him to be dead the soldiers proceeded ahead. After sometime Vardhanu got up and left in search of the prince. Even after all his efforts he could not find the prince, however he found two herbal medicines—*nirjeevani* (which made one unconscious) and *sanjeevani* (which made one regain consciousness).

Disappointed, Vardhanu returned to the city. Outside the city he met a *chandal* who informed that the king had imprisoned all the members of his family. Vardhanu made a plan to get the members of his family released. He gave necessary instructions to the *chandal* in details and gave him the *nirjeevani* medicine. The *chandal* went into the prison to meet the members of Vardhanu's family. He gave them the medicine and Vardhanu's message. All the family members applied the medicine over their eyes and lay unconscious and appeared dead.

When the king got this news he called the *chandal* and asked him take all the dead bodies to the cremation ground and cremate them. Vardhanu's plan was a success. The *chandal* placed the bodies of Vardhanu's family members into a cart and took them to the cremation ground. As instructed by Vardhanu he placed the bodies carefully at a safe place. When he got the information, Vardhanu came there and applied the *sanjeevani* medicine over the eyes of the limp bodies. Soon they all regained consciousness. Vardhanu made proper arrangements for their security and again left in search of Brahmadatt.

Deep in the jungle he traced the prince. After this, the two friends raised an army through their intelligence and courage and conquered many kingdoms. Brahmadatt also married many a princesses. Gradually he expanded his empire and after destroying Deerghaprishta became Chakravarti, the emperor of the six continents.

12. Chanakya—The name of the king of Patliputra city was Nand. Once he got angry on a scholarly Brahman named Chanakya and exiled him from Patliputra. Chanakya dressed himself as a mendicant and started wandering from one place to another. One day he reached the Maurya state. While wandering in the city he saw that a man dressed as a warrior was sitting outside a house in gloom. Chanakya sympathetically asked him the reason for his sadness. The warrior said—"My wife is pregnant. She has this strange *dohad* (pregnancy-desire) of swallowing the moon. How can I fulfil this strange desire. Consequently she is getting weaker and weaker every passing day. I am afraid that this might end in her death." Chanakya assured him that coming full moon night her desire will be fulfilled.

Finding a suitable place outside the town Chanakya raised a tent. In the roof of this pavilion, he made a hole of calculated size. During the first quarter of the full moon night Chanakya invited the *kshatriya* with his wife. When the couple entered the tent, Chanakya placed a large flat plate filled with a transparent liquid before the pregnant women on a marked place on the ground where the moon would reflect through the hole in the tent in the plate. Some time later when the moon was in line with the plate and the hole, it became visible in the plate. Chanakya at once said—"Sister, now the moon has descended in the plate. Please carefully lift the plate and swallow it with the liquid."

The lady was pleased to see the reflection of the moon in the plate. She carefully picked up the plate and started drinking the liquid. In the mean time Chanakya drew a pre-arranged curtain over the hole with the help of a string. When the lady finished the liquid in the plate she put it back on the ground and saw that there was no moon in the plate. She was convinced that she had swallowed the moon. She beamed with joy. Slowly her health improved and in due course she gave birth to a brilliant child. The child was named Chandragupta. This same child grew into a valorous young man and with the help of Chanakya destroyed the Nand dynasty to become famous as Chandragupta Maurya, the Magadh Emperor. Chanakya was endowed with unlimited Parinamiki Buddhi.

(१३) स्थूलिभद्र–पाटलिपुत्र के नन्द राजा का मंत्री शकटार बहुत बुद्धिमान व चतुर था। उसके स्थूलिभद्र तथा श्रियक नाम के दो पुत्र तथा यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, सेणा, वेणा और रेणा नाम की सात पुत्रियाँ थीं। शकटार के ये सभी पुत्र-पुत्रियाँ अद्भुत कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न थे। सातों पुत्रियों की स्मृति तो आश्चर्यजनक रूप से कुशाग्र थी। सबसे बड़ी पुत्री यक्षा जो बात एक बार सुन लेती थी वह उसको ज्यों की त्यों अक्षरशः याद हो जाती थी। दूसरी को दो बार सुनने पर, तीसरी को तीन बार सुनने पर और इसी प्रकार सातवीं को सात बार सुनने पर पूरी बात याद हो जाती थी।

पाटलिपुत्र में ही वररुचि नाम का एक विद्वान किन्तु दरिद्र ब्राह्मण रहता था। वह प्रतिदिन १०८ श्लोकों की नवीन रचना कर राज-दरबार में महाराज नन्द की स्तुति किया करता था। स्तुति सुनकर नन्द अपने मंत्री शकटार का मन्तव्य जानने के लिए उसकी ओर देखता था। शकटार प्रशंसा करे तो वररुचि को उचित पुरस्कार दिया जा सके। गंभीर प्रकृति का मंत्री किन्तु शकटार मौन ही रहता और वररुचि खाली हाथ घर लौट जाता। घर पहुँचते ही पत्नी ताने देती

कि कुछ कमाओगे नहीं तो घर कैसे चलेगा। दुःखी वररुचि एक दिन शकटार के घर गया। शकटार की पत्नी से उसने व्यथा-कथा कही। शकटार की पत्नी ने उसे आश्वासन दिया कि वह अपने पति को समझायेगी।

रात शकटार के घर लौटने पर उसकी पत्नी ने कहा-"स्वामी ! पंडित वररुचि प्रतिदिन १०८ श्लोकों से राजा की स्तुति करता है। क्या वे श्लोक सुन्दर नहीं होते या आपको अच्छे नहीं लगते? यदि अच्छे लगते हों तो आप गरीब पण्डित की प्रशंसा कर उसका उत्साह क्यों नहीं बढ़ाते?"

शकटार ने उत्तर दिया-"वह दंभी है, इसलिए।" पत्नी ने आग्रह किया-"आपके प्रशंसा भरे दो शब्दों से किसी एक गरीब ब्राह्मण का भला होता है तो कहने में क्या हानि है?" पत्नी की बात सुनकर शकटार निरुत्तर हो गया।

दूसरे दिन जब दरबार में वररुचि ने राजा की स्तुति की तब शकटार को अपनी पत्नी की बात याद हो आई और उसने बरबस इतना भर कहा-"उत्तम है।" राजा जैसे इसकी राह ही देख रहा हो, उसने तत्काल वररुचि को १०८ स्वर्ण-मुद्राएँ दिलवा दीं। वररुचि आज प्रसन्न मन अपने घर लौटा।

वररुचि के चले जाने के बाद शकटार ने राजा से कहा-"महाराज ! आपने व्यर्थ ही स्वर्ण-मुद्राएँ दीं। वह तो पुराने प्रचलित श्लोकों को अपनी रचना बताकर आपकी स्तुति करता है।" राजा ने चकित हो पूछा-"क्या आपके पास इसका कोई प्रमाण है?" शकटार ने तुरन्त कहा-"महाराज ! मेरा अविश्वास न करें? वह जो श्लोक सुनाता है वे तो मैं नित्य अपनी पुत्रियों को बोलते सुनता हूँ। आपकी आज्ञा हो तो कल ही राज्यसभा में सिद्ध कर दूँगा।" राजा ने अनुमति दे दी-"ठीक है, कल उन्हें राजसभा में बुलाओ"।

दूसरे दिन शकटार अपनी सातों कन्याओं को राज्यसभा में ले गया। यथासमय वररुचि आया और उसने राजा के सम्मान में नव-रचित स्तुति सुनाई। जैसे ही स्तुति पूरी हुई शकटार ने अपनी ज्येष्ठ कन्या यक्षा को इशारा किया। वह उठकर आगे बढ़ी और वररुचि द्वारा रचित स्तुति को अक्षरशः सुना दिया। फिर शकटार ने अपनी दूसरी कन्या को इशारा किया। वह अब इसी स्तुति को दो बार सुन चुकी थी, उसे याद हो गई। वह आगे बढ़ी और उसने भी स्तुति को दोहरा दिया। इस प्रकार सातों कन्याओं ने बारी-बारी जब वररुचि की स्तुति को दोहरा दिया तो राजा को शकटार की बातों पर विश्वास हो गया। उसने क्रोधित हो वररुचि को दरबार में पुनः आने के लिए मना कर दिया।

वररुचि समझ गया कि यह सब शकटार की दुरभिसन्धि है। उसने शकटार से बदला लेने का निश्चय कर लिया। उसने बड़ी चतुराई से गंगा के किनारे एक तख्ता इस प्रकार लगाया कि उसका एक छोर जल के भीतर रहे और दूसरा जल के बाहर। एक विशेष स्थान पर हल्का-सा
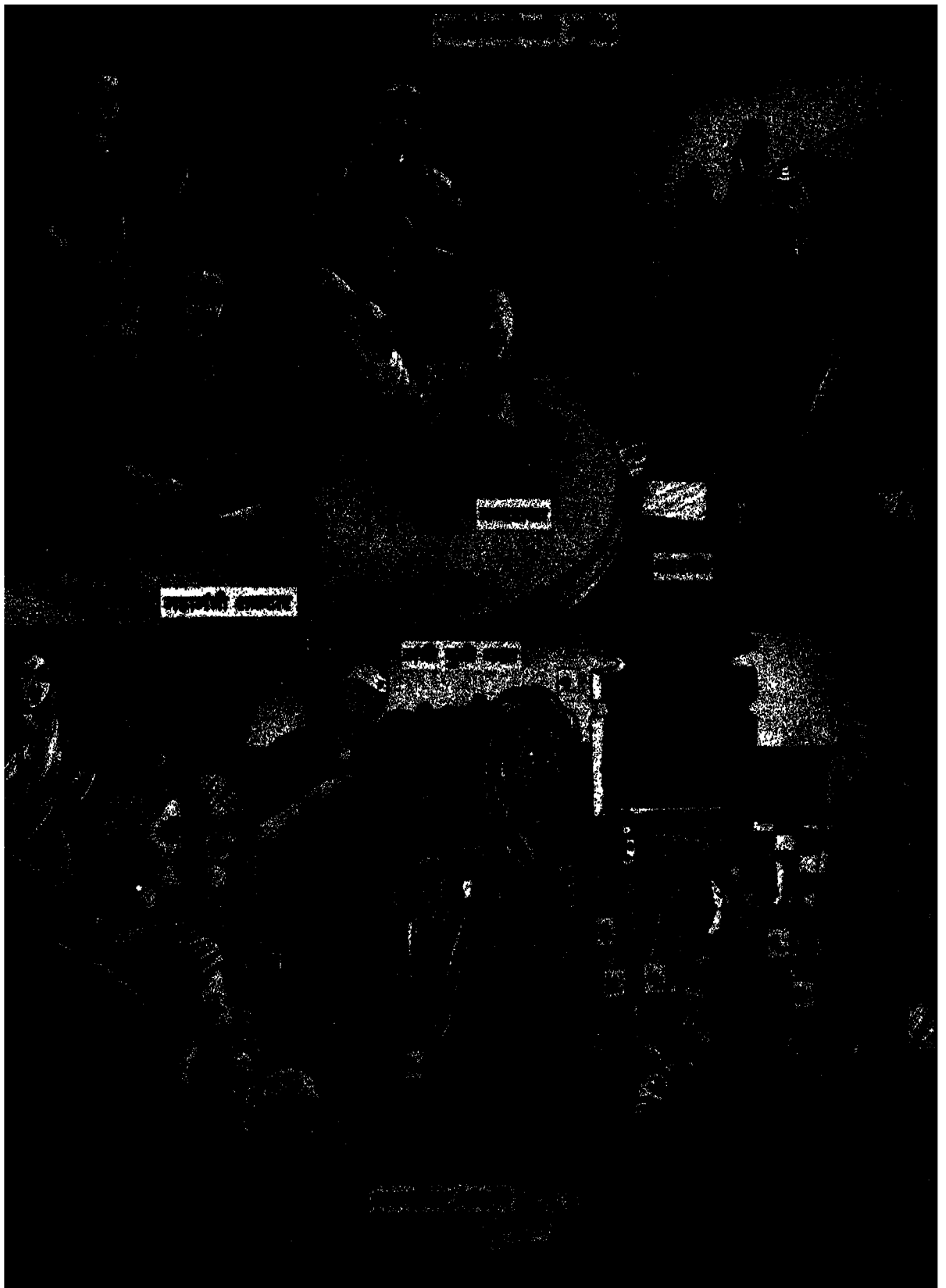
पारिणामिकी बुद्धि का दृष्टान्त

१. वररुचि और मंत्री शकटार–राजा नन्द की सभा में पण्डित वररुचि नित्य ही नये-नये श्लोक सुनाकर उसकी स्तुति करता है। परन्तु महामंत्री शकटार ने कभी भी उसकी काव्य रचना की प्रशंसा नहीं की, इस कारण नन्द राजा ने उसे कुछ भी पुरस्कार नहीं दिया।

२. वररुचि का अपमान–महामंत्री शकटार ने बताया–वररुचि पुराने श्लोक बोलता है वे तो मेरी सातों पुत्रियों को कण्ठस्थ हैं। परीक्षा के लिए राजसभा में वररुचि के सामने ही उसके बोले श्लोकों को महामंत्री की पुत्री–यक्षा खड़ी होकर सुना रही है। अन्य छहों पुत्रियाँ बैठी हैं। (सूत्र ५२ की कथा)

EXAMPLE OF PARINAMIKI BUDDHI

1. *Vararuchi and Minister Shakatar*—In the assembly of King Nand, Pandit Vararuchi recites new verses everyday in his honour. But prime-minister Shakatar never praised his poetry, therefore King Nand did not give him any reward.

2. *Insult of Vararuchi*—Shakatar said that Vararuchi recited old verses. His seven daughters can recite from memory all what he claims as his own. To test this, the seven daughters are called in the assembly. Yaksha the eldest recites Vararuchi's verses in his presence. The other six are waiting their turn. (52)

दबाव देने पर जल में रखा छोर ऊपर उठकर जल की सतह पर आ जाये। जल-मग्न छोर पर उसने स्वर्ण-मुद्राओं से भरी एक थैली रख दी और दूसरे छोर पर स्वयं बैठकर गंगा-स्तुति करने लगा। स्तुति पूर्ण होने पर उसने झुककर गंगा को प्रणाम करने के बहाने तख्ते को दबाया। तत्काल तख्ते का जल-मग्न छोर स्वर्ण-मुद्राओं के थैले सहित ऊपर उछल गया। आस-पास खड़े लोगों ने आश्चर्य से देखा तो वररुचि बोला-"महाराज मुझे पुरस्कृत नहीं करते तो क्या हुआ, माँ गंगा तो पुरस्कृत करती हैं।"

सारे नगर में यह बात फैल गई। जब राजा ने यह अद्भुत समाचार सुना तो उसने शकटार को बुलाकर पूछा। शकटार ने कहा-"किंवदन्ती पर विश्वास करने से पूर्व अपनी आँखों से देख लेना चाहिए। आपकी आज्ञा हो तो प्रातःकाल हम स्वयं यह चमत्कार देखें।"

राजा को यह सुझाव दे शकटार अपने निवास को लौटा और एक गुप्तचर को बुलाकर कहा कि रात को नदी के किनारे छुपकर बैठ जावे। वररुचि मुद्राओं की थैली नदी में रखने आएगा। जब वह थैली रखकर लौट जावे तब चुपके से नदी में जा वहाँ से थैली उठा लावे। सेवक ने देर रात गए वररुचि की थैली लाकर शकटार को दे दी।

प्रातःकाल नित्य की भाँति वररुचि ने गंगा-स्तुति की ओर झुककर तख्ते को दबाया। तख्ता ऊपर तो उठ गया पर उस पर रखी थैली नहीं थी। वररुचि आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगा। तभी राजा के साथ खड़े शकटार ने कटाक्ष करते हुए कहा-"पंडितवर ! रात को गंगा में छुपाई आपकी थैली तो मेरे पास आ गई।"

राजा तथा उपस्थित जनसमूह के समक्ष अपनी पोल खुल जाने से वररुचि बहुत लज्जित हुआ। सिर झुकाए वह वहाँ से चला गया किन्तु शकटार के प्रति उसका क्रोध और द्वेष भी बढ़ गया। उसने शकटार का नाश करने की ठान ली। कुछ दिनों बाद उसने अपने शिष्यों को एक श्लोक याद कराया और घूम-घूमकर सारे नगर में प्रचार करने लगा-

"तं न विजाणेइ लोओ, जं सकडालो करिस्सइ।
नन्दराउं मारेवि करि, सिरियउं रज्जे ठवेस्सइ॥"

(लोग यह नहीं जानते कि शकटार क्या करेगा? वह नन्द राजा को मारकर अपने पुत्र श्रीयक को राज-सिंहासन पर स्थापित करेगा।)

वररुचि के शिष्यों ने इतना प्रचार किया कि जनता ही नहीं राजा नन्द को भी यह विश्वास हो गया कि शकटार यह षड्यंत्र रच रहा है। एक दिन जब शकटार के अभिवादन करने पर राजा ने कुपित भाव से मुँह फेर लिया तो शकटार समझ गया कि राजा के मन में संदेह घर कर चुका है।

शकटार चिन्तन करता अपने घर लौटा और पुत्र श्रीयक को पास बुलाकर कहा-"पुत्र! राजा नन्द वररुचि द्वारा फैलाई भ्रान्ति के जाल में फँस गया है और उसका क्रोध मुझे ही नहीं,

अपने पूर्ण परिवार के नाश का निमित्त बन सकता है। मैंने भली प्रकार सोच-विचारकर निर्णय लिया है कि अपना बलिदान दे परिवार के भविष्य को सुरक्षित और सुदृढ़ करूँ। कल राज-दरबार में जाकर जब मैं राजा को प्रणाम करने झुकूँगा तब तालपुट विष अपने मुँह में रख लूँगा। राजा जब क्रोध से मुँह फेरने लगे तब तुम तलवार निकाल एक ही वार में मेरा सिर धड़ से अलग कर देना। मेरी मृत्यु तो विष से हो जाएगी और तुम राजा के प्रिय पात्र बन जाओगे।"

श्रीयक ने दूसरे दिन अपने पिता की आज्ञा का अन्तरसः पालन किया। जैसे ही शकटार का सिर धड़ से अलग हुआ राजा ठगा-सा रह गया। उसने श्रीयक से कहा-"श्रीयक ! यह क्या? तुमने अपने पिता की हत्या कर डाली।"

श्रीयक ने तत्काल उत्तर दिया-"महाराज ! जिस व्यक्ति से आप खिन्न हों उसे आपका स्वामी-भक्त सेवक कैसे सह सकता है? जिसे देखने मात्र से आपको अरुचि हो, उसका इस संसार में क्या काम?"

अपने पुराने अमात्य की मृत्यु से राजा को तनिक दुःख तो हुआ पर वह श्रीयक की अपूर्व स्वामी-भक्ति से बहुत प्रभावित हुआ। उसने श्रीयक से कहा-"श्रीयक ! अब अमात्य पद तुम स्वीकार करो।"

श्रीयक-"महाराज ! अपने बड़े भाई स्थूलिभद्र के रहते मैं अमात्य नहीं बन सकता। वे बारह वर्ष से गणिका कोशा के यहाँ निवास करते हैं। उन्हें बुलाया जाए, वे ही इस पद के अधिकारी हैं।"

राजा ने श्रीयक की बात स्वीकार कर ली और अपने सेवकों को आदेश दिया कि स्थूलिभद्र को कोशा गणिका के यहाँ से ससम्मान ले आवें, उन्हें अमात्य पद दिया जाएगा।

राज्य-कर्मचारी कोशा गणिका के निवास पर जाकर स्थूलिभद्र से मिले और उन्हें पूरे समाचार बता राजा की आज्ञा सुनाई। स्थूलिभद्र उस समय दरबार में चले आए। राजा ने अमात्य का आसन दिखाते हुए कहा-"स्थूलिभद्र ! तुम्हारे पिता, अमात्य शकटार का निधन हो गया है। अब यह आसन तुम सँभालो।"

स्थूलिभद्र सोच में डूब गए। पिता के वियोग का दुःख तो था ही उस पर यह सोच भी कि पिता की मृत्यु का कारण स्वयं वही व्यक्ति था जो अब उसे अमात्य पद प्रदान कर रहा है। ऐसे अस्थिर चित्त व्यक्ति का विश्वास कैसे किया जा सकता है? और अन्ततः ऐसा पद तथा धन भी तो अस्थिर ही है। ऐसी अस्थायी वस्तुओं के पीछे भाग से क्या लाभ?

विचार की शृंखला आगे बढ़ती गई और स्थूलिभद्र संसार से विरक्त हो गया। उसने राजा से क्षमा माँगी और दरबार से निकल आचार्य संभूतिविजय के पास जा श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली। राजा ने श्रीयक को अमात्य बना दिया।

मुनि स्थूलिभद्र अपने आचार्य के साथ स्थान-स्थान पर विचरण करते रहे और ज्ञान-साधना में मग्न हो गए। बहुत समय बाद एक बार फिर आचार्य संभूतिविजय पाटलिपुत्र आए और वहीं

चातुर्मास किया। आचार्य के स्थूलिभद्र के अतिरिक्त तीन अन्य मेधावी शिष्य भी थे। चारों शिष्यों ने अपनी वैराग्य-साधना के स्तर की परीक्षा हेतु चार भिन्न स्थानों पर चार माह तक एकाकी रहने की आज्ञा ली। एक सिंह की गुफा में रहने चला गया, दूसरा एक भयानक विषधर सर्प के बिल के निकट तथा तीसरा एक कुएँ की पाल पर। स्थूलिभद्र ने अपने लिए कोशा वेश्या का घर चुना।

गणिका कोशा स्थूलिभद्र को एक बार पुनः अपने घर आया देख आनन्द विभोर हो गई। उसने स्थूलिभद्र को अपनी रंगशाला में ठहरा दिया और समस्त सुविधाओं का प्रबन्ध कर दिया। स्थूलिभद्र अपनी ध्यान-साधना में लग गए।

गणिका कोशा की काम-उत्तेजना पैदा करने वाली प्रवृत्तियाँ अपने चरम पर थीं। उसने अपने सौन्दर्य तथा कला से ध्यान-मग्न स्थूलिभद्र को लुभाने की चेष्टाएँ आरंभ कर दीं। स्थूलिभद्र सांसारिक भोगों के क्षणिक आनन्द से भलीभाँति परिचित थे तथा उनकी अन्ततः दुःखों की लम्बी शृंखला में परिणत हो जाने की अवश्यंभावी प्रक्रिया से भी। अक्षय सुख के मार्ग पर चल पड़ा वह साधक कोशा की लाख चेष्टाओं के बाद भी अडिग, अविचल रहा। स्थूलिभद्र की शांत ध्यान-मुद्रा से निकली शान्त ऊर्जा ने अन्ततः कोशा को विकार-मुक्त कर दिया। स्थूलिभद्र ने कोशा को उपदेश दिया और वह व्रत धारण कर श्राविका बन गई।

चातुर्मास समाप्त होने पर चारों साधक गुरुदेव के पास लौटे और एक-एक कर प्रणाम किया। गुरुदेव ने प्रशंसा करते हुए प्रथम तीनों को कहा-"तुम दुष्कर साधना में सफल हुए।" जब स्थूलिभद्र ने गुरु को नतमस्तक हो प्रणाम किया तो गुरु ने कहा-"तुमने अति दुष्कर साधना में सफलता प्राप्त की है।"

गुरु द्वारा स्थूलिभद्र की विशेष प्रशंसा करने पर अन्य तीनों शिष्यों में ईर्ष्या जाग उठी और वे अपने को स्थूलिभद्र के समान सिद्ध करने का अवसर खोजने लगे।

आगामी चातुर्मास आरम्भ होने के समय वह अवसर आया। जिस शिष्य ने सिंह की गुफा में चातुर्मास किया था उसने गुरु के निकट जा कोशा वेश्या की चित्रशाला में वर्षाकाल बिताने की अनुमति माँगी। गुरु के आज्ञा न देने पर भी वह हठपूर्वक कोशा के यहाँ चला आया। कोशा ने भी उसे रहने की अनुमति दे दी। कुछ ही दिनों में वह मुनि अपनी साधना भूल बैठा और कोशा के रूप-लावण्य पर मोहित हो गया। जब उसने कोशा से अपना प्रणय-निवेदन किया तो कोशा को दुःख हुआ। कोशा ने मुनि को सन्मार्ग पर लाने का निर्णय कर उसे कहा-"मुनिराज ! मैं गणिका हूँ। मुझसे प्रेम-निवेदन करने से पहले आपको मुझे एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ देनी होंगी।"

मुनि ने कोशा की बात सुनी तो सोच में पड़ गया। उसने पूछा-"मैं तो संसार-त्यागी भिक्षु हूँ। मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है।" कोशा ने उत्तर दिया-"नेपाल-नरेश प्रत्येक साधु को एक रत्नकंबल प्रदान करता है। उसका मूल्य एक लाख मुद्रा है। तुम नेपाल जाकर वह कंबल ले आओ।"

काम के वशीभूत व्यक्ति हित-अनहित सब भूल जाता है और कुछ भी करने को तत्पर हो उठता है। मुनि भी अपनी साधना और संयम भूल नेपाल यात्रा पर चल दिया। अनेक कष्ट भोगता हुआ वह नेपाल-नरेश के पास पहुँचा और रत्नकंबल लेकर प्रसन्नचित्त हो लौटने लगा। मार्ग में डकैतों ने मारपीट कर वह कंबल छीन लिया। मुनि की काम-पिपासा तब भी शान्त नहीं हुई। वह मार्ग के कष्टों की परवाह न करते हुए वापस नेपाल गया और फिर एक कंबल माँग लाया। इस बार वह कंबल उसने एक पोले डंडे के भीतर छुपा लिया। राह के कष्ट झेलता, चोर-डकैतों से बचता अन्ततः क्षीण व दुर्बल शरीर लिये वह कोशा के पास पहुँचा।

अपनी मनोकामना पूरी होने की आशा लिए उसने कंबल कोशा के हाथ में थमा दिया। कोशा उसके जर्जर शरीर को देख मुस्कराई और उस बहुमूल्य कंबल को पैर पोंछकर गंदगी के ढेर पर फेंक दिया।

मुनि ने हड़बड़ाकर कहा-"यह क्या किया कोशा? कितने कष्ट सहकर मैं यह कंबल तुम्हारे लिए लेकर आया और तुमने इसे गंदगी के ढेर पर फेंक दिया।"

कोशा ने गंभीर स्वर में कहा-"मुनिराज ! मैंने यह सब तुम्हें सन्मार्ग पर लाने के लिए किया है। तुम अपने मार्ग से भटक गए थे। रत्नकंबल अवश्य ही बहुमूल्य है, किन्तु साधना से अर्जित किया संयम तो अनमोल है। सारे संसार का सुख-वैभव भी उसके सामने नगण्य है। तुमने अपने स्व-अर्जित ऐसे अनमोल धन को काम-भोगरूपी कीचड़ में डालने की मन में ठान ली थी। जागो और समझने की चेष्टा करो कि जिसे गर्हित और हेय जानकर तुम त्याग चुके थे उसे पुनः ग्रहण करने को लालायित क्यों हो रहे हो?"

"स्थूलिभद्रः स्थूलिभद्रः स एकोऽखिल साधुषु।
युक्तं दुष्कर-दुष्करकारको गुरुणा जगे॥"

कोशा की बात सुनकर मुनि की आँखें खुल गईं। वह हठात् बोल उठा-"वास्तव में दुष्कर से दुष्कर साधना करने वाले स्थूलिभद्र मुनियों में अद्वितीय है। गुरुदेव ने जो कहा था वह सत्य है।"

अपने संयम स्खलन की पीड़ा लिए, विचारों में डूबा वह मुनि अपने गुरुदेव के पास लौटा। उनसे अपने पतन की सारी कथा कही और पश्चात्ताप करते हुए प्रायश्चित्त किया। अपनी आलोचना करते हुए उसने बार-बार स्थूलिभद्र की प्रशंसा करते हुए कहा-"अपनी ओर आकर्षित और अनुरक्त वेश्या, षट्रस भोजन, मनोहारी महल, स्वस्थ शरीर, विकसित यौवन और वर्षाकाल इतनी अनुकूलताओं के होते हुए भी जिसने कामदेव को जीत लिया और वेश्या को प्रतिबोध दे धर्ममार्ग पर ले आया ऐसे स्थूलिभद्र मुनि को मैं प्रणाम करता हूँ।"

इस प्रकार अपनी पारिणामिनी बुद्धि के बल पर स्थूलिभद्र ने मंत्रिपद तप प्राप्त भोगों को, धन-वैभव को त्यागकर आत्म-कल्याण किया-अतः वे प्रशंसा के पात्र हैं।

13. Sthulibhadra—Shaktar, the prime minister of the Nand king of Patliputra, was a very intelligent and clever person. He had two sons named Sthulibhadra and Shreyak, and seven daughters named Yaksha, Yakshadatta, Bhuta, Bhutadatta, Sena, Vena and Rena. All these sons and daughters of Shaktar were astonishingly sharp. Each of the seven daughters had a unique and sharp memory. The eldest daughter, Yaksha could remember verbatim anything told to her just once. The second daughter memorized when she heard a thing twice, the third when she heard thrice, and so on, the seventh when she heard seven times.

In Patliputra also lived a learned but poor Brahman named Vararuchi. He wrote 108 new verses everyday in honour of king Nand and recited them in the king's assembly. After listening to the recital the king looked at his minister Shaktar for his opinion. If Shaktar approved, Vararuchi could be rewarded. Serious tempered Shaktar remained silent every time and Vararuchi returned empty handed. When he reached home his wife taunted him that if he did not earn, how could she run the household. Dejected Vararuchi one day went to Shaktar's house and reported his sad story to Shaktar's wife. The lady assured him that she would persuade her husband to change his attitude

During the night, after Shaktar returned home, his wife said—"My Lord, Brahman Vararuchi recites 108 new verses everyday in honour of the king. Are they not good or just not to your liking? If you, in fact, like his work why don't you praise the poor Brahman and encourage his creativity?"

Shaktar replied—"He is conceited." The wife insisted—"If just two words of praise may benefit a poor Brahman, what is the harm?" Shaktar was silenced by these words from his wife.

Next day when Vararuchi recited his panegyric in honour of the king, Shaktar recalled his wife's words and uttered involuntarily—"Good!" As if the king was waiting for this, he at once ordered for a reward of 108 gold coins to Vararuchi. This day Vararuchi returned to his house happy.

After Vararuchi left, Shaktar told the king—"Sire! You gave him gold coins for nothing. This man plagiarizes from old texts to recite in

your praise." The king asked with surprise—"Do you have any proof of this?" Shaktar at once said—"The verses he recites are the same as I hear my daughters recite every morning. If you so desire, I can prove this tomorrow in the assembly." The king granted permission—"All right, call them to the assembly tomorrow."

Next morning Shaktar took all his seven daughters to the assembly. As usual, Vararuchi came and recited his new panegyric. As soon as the recital concluded Shaktar gestured at his eldest daughter, Yaksha. She got up, stepped forward and repeated Vararuchi's poem verbatim. Now Shaktar gestured at his second daughter. By now she had listened to the poetry twice and memorized. She also stepped ahead and repeated the poem. This way, one after the other, all the seven daughters of Shaktar repeated Vararuchi's poetry. The king now believed what Shaktar had told him. He got angry and told Vararuchi never to come to the assembly again.

Vararuchi could well understand that this was Shaktar's conspiracy. He resolved to take revenge from Shaktar. He cleverly fixed a wooden plank on the banks of the Ganges in such a way that its one end was submerged in water and the other was on the shore. If a little pressure was applied on a specific spot on the plank the submerged portion rose to the surface of water. He placed a bag full of gold coins on the submerged portion and sitting on the other end started singing hymns for goddess Ganga. When the hymns concluded he bowed down to pay homage to the goddess and furtively pressed the plank. At once the other end surfaced with the bag full of gold coins. People standing around saw all this and looked at Vararuchi in surprise. Vararuchi commented—"What if the king does not reward me, mother Ganges does so."

The news spread in the town like wild fire. When the king came to know of this astonishing incident he called and asked Shaktar about it. Shaktar said—"It is better to see with one's own eyes before believing in hearsay. If you permit, come morning we may go and witness the miracle ourselves."

After giving this advise to the king, Shaktar returned to his residence and called one of his spies. He gave him instructions to go

to the river bank in the evening and hide himself. Vararuchi will come to place the bag full of gold coins in the river. When Vararuchi returns back after doing so he should stealthily enter the river, pick up the bag, and bring it to Shaktar. The spy followed these instructions and brought Vararuchi's bag to Shaktar late in the night.

In the morning Vararuchi proceeded as usual, but when he pressed the plank it surfaced without the bag of coins. Vararuchi looked around in surprise. Now Shaktar, who was standing there with the king, taunted—"Learned Pundit ! The bag you hid in the river during the night has reached me."

Vararuchi felt ashamed when he was exposed before this large crowd. He at once left, but his anger and animosity for Shaktar increased. He resolved to destroy Shaktar. A few days later he made his disciples memorize a verse and asked them to spread it around the town. It read—"People don't know what Shaktar is going to do. He will kill king Nand and put his son Shreyak on the throne."

Vararuchi's disciples publicized so much that not only the public but the king was also convinced that indeed Shaktar had cooked up this conspiracy. One day when Shaktar offered his respects to the king, he turned his face with anger. Shaktar at once understood that the king was drawn into the trap of mistrust.

Worried and contemplating, Shaktar returned home. He called his son Shreyak and said—"Son ! King Nand has been caught in the net of misinformation spread by Vararuchi. The fire of his anger will engulf not only me but the whole family and lead to our destruction. I have seriously thought over the problem and come to the conclusion that I will sacrifice myself in order to ensure a strong and secure future for my family. Tomorrow when I go to the king's assembly and bow down to greet the king I will put *taalput-vish* (a deadly poison) in my mouth. When the king turns his face with aversion you should draw out your sword and behead me with one blow. I will already be dead due to the poison and you will become a confidante of the king."

Next day Shreyak exactly followed his father's instructions. When Shaktar was beheaded the king was taken aback. He asked Shreyak—"What is this, Shreyak? You have assassinated your own father."

Shreyak replied at once—"Sire, how can your faithful servant tolerate a person you are angry with? He is no more needed on this earth, whom you are averse even to look at.

The king became a little sad at the death of his old minister, but at the same time he was highly impressed by the unique display of loyalty by Shreyak. He asked Shreyak—"Now you should accept the post of prime minister, Shreyak."

Shreyak—"Sire, I cannot be the prime minister while my elder brother Sthulibhadra is still there. For last twelve years he is living with courtesan Kosha. He should be summoned, he is the rightful incumbent to this post."

The king's messenger went and met Sthulibhadra at the residence of courtesan Kosha and gave him all the news including the king's order.

Sthulibhadra came to the assembly. The king pointed at the empty seat of the prime minister and said—"Sthulibhadra, your father, prime minister Shaktar has left for his heavenly abode. Now you should take this seat."

Sthulibhadra was lost into his reverie. He was filled with conflicting thoughts—a deep sorrow at the death of his father; offer of a high seat by the man who was the cause of his father's death; how can one believe a man with such wavering mind? And in the final reckoning this post and wealth all are ephemeral. What is the use of running after such transient things?

The train of thoughts continued and Sthulibhadra ended up getting detached from mundane life. Begging leave of the king, Sthulibhadra went to *acharya* Sambhootivijaya and got initiated as an ascetic. The king appointed Shreyak as his prime minister.

Ascetic Sthulibhadra commenced his itinerant ascetic life moving around with his *acharya* and immersed himself into pursuit of knowledge. After a lapse of a long period *acharya* Sambhootivijaya once again came to Patliputra for a monsoon stay. The *acharya* had three other brilliant disciples besides Sthulibhadra. The four disciples sought permission to spend the period of four months in solitude at places of their choice for the purpose of testing the level of

their ascetic practices. One of them went to live inside the cave of a lion, another near the hole of a highly poisonous serpent, and still another on the parapet of a well. Sthulibhadra selected the house of courtesan Kosha for his stay.

Kosha was filled with joy when she saw Sthulibhadra once again in her house. She made arrangements for his stay in her dance chamber and provided all comforts. Sthulibhadra commenced his spiritual practices.

The efforts of evoking feelings of lust and excitement were at their best. She started all out efforts to divert attention of meditating Sthulibhadra using her beauty and art. Sthulibhadra was well aware of the transitory nature of the pleasures derived out of mundane indulgences. He also knew about the inevitable process of their ultimate conversion into a long chain of sorrows. In spite of the all out efforts by Kosha this practicer of the path of eternal bliss remained unmoved and unwavering. Instead, the tranquil radiations emanating from Sthulibhadra in the serene meditating posture finally cleansed Kosha's aberrations. Sthulibhadra gave sermon to Kosha and accepting the vows she became a *shravika*.

At the end of the monsoon stay the four practicers returned to the guru and paid their respects one by one. In praise of the first three the *acharya* said—"You have been successful in tough spiritual practices." When Sthulibhadra bowed, the guru said in praise—"You have accomplished a very high degree of spiritual perfection."

This special praise for Sthulibhadra made the other three jealous and they looked for an opportunity to prove themselves equal to Sthulibhadra.

That opportunity came at the beginning of the next monsoon stay. The disciple who had spent the last monsoon-stay in a lion's cave approached the *acharya* and sought permission to spend this monsoon stay in Kosha's chamber. Even after the *acharya's* refusal he was obstinate enough to go to Kosha who was considerate enough to give him permission to stay. In a few days the ascetic forgot all his vows and practices and got infatuated with the beauty and charm of Kosha. When he expressed his desire to Kosha she was sad. Kosha decided to bring him back to the right path and said—"Great ascetic,

I am a courtesan. Even to qualify to express your carnal desire for me you have to pay one hundred thousand gold coins to me."

When he heard this, the ascetic became thoughtful. He said—"I am a mendicant who has renounced the world. I don't have even a single penny with me." Kosha said—"The king of Nepal gives a gem studded shawl to every visiting mendicant. Its price is one hundred thousand gold coins. You may go to Nepal and bring that shawl for me."

A man consumed by lust forgets what is good or bad for him and is prepared to do anything. The ascetic forgot all about his discipline and practices and left for Nepal. After a lot of hardships and suffering he reached Nepal and got the shawl from him. On the way back some bandits deprived him of the shawl. He was still not free of his obsession. Not caring for the hardships, he once again returned to Nepal and begged another shawl from the king. This time he concealed the shawl in a hollow staff. Avoiding bandits and suffering all hardships when he at last reached Kosha he was extremely weak and emaciated.

With the hope that his desire at last is going to be fulfilled, he handed over the shawl to Kosha. Kosha smiled at his emaciated body, wiped her feet with the shawl and threw it on a heap of trash.

The perplexed ascetic uttered—"What have you done Kosha? I brought this shawl for you after suffering so much pain and you have thrown it on a heap of trash?"

Kosha said serenely—"Great ascetic, I did all this to bring you back to the right path. You have strayed from your path. Indeed, the gem studded shawl is highly valuable, but the discipline acquired through practices is priceless. All the pleasure and grandeur in the world is insignificant before it. You had decided to throw away that self earned immense wealth on the heap of the trash that is carnal indulgence. Regain your rationality and try to understand why you have become eager to accept again what you abandoned considering it to be despicable and base?"

Kosha's statement opened the ascetic's eyes. He involuntarily uttered—"Sthulibhadra, who does harshest of the harsh spiritual

practices, is indeed, unique among ascetics. What gurudev had said is true."

Tortured by the pain of his fall, the thoughtful ascetic returned to his guru. He narrated the story of his downfall to his teacher and repented for and atoned his sins. Criticizing himself and praising Sthulibhadra he said—"I bow before and offer my respect to ascetic Sthulibhadra who; in spite of all the enticements like an attracted and infatuated courtesan, rich food, attractive palace, healthy body, blooming youth and monsoon season, won over the god of love and put the courtesan on the spiritual path by his sermon."

Thus with the help of his *Parinamiki Buddhi,* Sthulibhadra abandoned the post of prime minister, mundane pleasures, wealth and grandeur to attain spiritual bliss. He is worthy of all praise.

(१४) नासिकपुर का सुन्दरीनन्द–नासिकपुर में नन्द नामक एक सेठ रहता था। उसकी अत्यन्त रूपवती स्त्री का नाम सुन्दरी था। सेठ उसमें इतना अनुरक्त था कि पलभर को भी उसे अपनी आँखों से ओझल नहीं करता था। पत्नी के प्रति ऐसी आसक्ति के कारण लोग उसे सुन्दरीनन्द ही कहने लगे।

सेठ का एक छोटा भाई था जो संसार से विरक्त हो मुनि बन गया था। उसे जब ज्ञात हुआ कि उसका भाई अपनी पत्नी के प्रेम में सभी कुछ भूला बैठा है तो वह अपने भाई को प्रतिबोध देने के उद्देश्य से नासिकपुर आया। मुनि के आगमन का समाचार सुन नगरवासी उपदेश सुनने के लिए आए किन्तु सुन्दरीनन्द नहीं आया।

प्रवचन समाप्त करने के पश्चात् मुनि आहार-गवेषणा हेतु निकले और घूमते-घूमते अपने भाई के घर आ पहुँचे। अपनी आँखों से अपने भाई की स्थिति देख मुनि के मन में विचार आया–जब तक इसे इससे अधिक प्रलोभन नहीं मिलेगा, इसकी आसक्ति कम नहीं होगी। यह विचार कर उन्होंने अपनी वैक्रियलब्धि से एक सामान्य स्त्री बनाई और सेठ से पूछा–"क्या यह सुन्दरी जैसी है?"

सेठ ने उत्तर दिया–"नहीं ! यह तो उससे आधी सुन्दर भी नहीं लगती।"

तब मुनि ने एक विद्याधरी बनाई और पूछा–"यह कैसी लगी?"

सेठ ने कहा–"हाँ ! यह सुन्दरी जैसी है।"

तीसरी बार मुनि ने एक देवी की रचना की और पुनः वही प्रश्न किया।

इस बार सेठ ने प्रभावित होकर कहा–"सचमुच, यह तो सुन्दरी से भी अधिक सुन्दर है।"

मुनि ने समझाते हुए कहा–"यदि तुम थोड़ा भी धर्माचार करो तो ऐसी अनेक सुन्दरियाँ तुम्हें सहज ही प्राप्त हो सकेंगी।"

मुनि के ये प्रतिबोधयुक्त वचन सुनकर सेठ समझ गया कि उनका मूल उद्देश्य क्या था। विचारों की धारा मुड़ चली और धीरे-धीरे उसकी अपनी पत्नी में आसक्ति कम होने लगी। कुछ काल बीतने पर उसने संयम ग्रहण किया और आत्म-कल्याण के मार्ग पर बढ़ गया।

मुनि ने अपनी पारिणामिकी बुद्धि का उपयोग कर भाई को विषयासक्ति से मुक्त कराया।

(१५) वज्र स्वामी–अवन्ती प्रदेश में तुम्बवन नाम का एक सन्निवेश था। उस सन्निवेश में धनगिरि नाम का एक श्रेष्ठिपुत्र रहता था। धनपाल सेठ की पुत्री सुनन्दा के साथ उसका विवाह हुआ था। विवाह के बाद धनगिरि के मन में संयम ग्रहण करने की अभिलाषा जाग उठी थी किन्तु सुनन्दा ने अनुनय-विनय कर किसी प्रकार उसे रोक लिया था। कुछ समय पश्चात् सुनन्दा गर्भवती हुई और देवलोक से च्यवकर एक भव्य आत्मा उसके गर्भ में आई।

सुनन्दा को गर्भवती जान धनगिरि ने कहा–"अब तुम जिस पुत्र को जन्म दोगी उसके सहारे जीवन-यापन कर सकोगी। अब मैं बिना विलम्ब के दीक्षा ग्रहण करूँगा। मुझे रोको मत।"

पति की ऐसी तीव्र इच्छा के आगे सुनन्दा को झुकना पड़ा। उसने धनगिरि को दीक्षा की स्वीकृति दे दी। धनगिरि आचार्य सिंहगिरि के पास गए और दीक्षा ग्रहण कर ली। सुनन्दा के भाई आर्य समित भी आर्य सिंहगिरि के शिष्य थे। कुछ दिनों बाद आर्य सिंहगिरि तुम्बवन से प्रस्थान कर ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

सुनन्दा ने यथासमय एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। जब उसका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था तब एक महिला उसे देख करुणा भरे स्वर में बोली–"इस बालक का पिता मुनि न होकर आज इसके पास होता तो कितना अच्छा होता।"

यह बात जब बच्चे के कान में पड़ी तो उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वह विचार करने लगा–"मेरे पिताजी ने तो आत्म-कल्याण का मार्ग अपना लिया है। मुझे भी कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे मैं भी संसार के बंधनों से मुक्त हो सकूँ और मेरी माँ भी मुक्ति के मार्ग पर बढ़ सके।" इन विचारों के आने पर बालक ने रात-दिन रोना आरम्भ कर दिया। उसका रोना बंद करने के लिए उसकी माँ ने तथा सभी स्वजनों ने अनेक उपाय किए पर किसी को भी सफलता नहीं मिली। सुनन्दा बालक के इस रुदन से तंग आ गई।

संयोगवश आर्य सिंहगिरि अपने शिष्यों सहित विहार करते हुए पुनः तुम्बवन पधारे। आहार का समय होने पर मुनि आर्यसमित और धनगिरि नगर की ओर जाने को प्रस्तुत हुए। आचार्य से आज्ञा माँगी तो शुभ शकुन देखकर उन्होंने कहा–"आज तुम्हें महान् लाभ प्राप्त होगा अतः भिक्षा में जो कुछ मिले ले आना।"

आहार की गवेषणा करते दोनों मुनि जब सुनन्दा के द्वार पर पहुँचे तब वह अपने रोते पुत्र को चुप करने की चेष्टा कर रही थी। मुनि धनगिरि ने आहार पात्र आगे किया। यह देख सुनन्दा के मन में एक विचार कौंध गया। उसने बालक को पात्र में रख दिया और बोली–"महाराज ! अपने बालक को अब आप ही सँभालें। मैं तो इससे तंग आ चुकी हूँ।" आसपास खड़े सभी लोग आश्चर्य से देख रहे थे। मुनि ने सबके सामने ही भिक्षा ग्रहण की और बिना कुछ बोले धीरे-धीरे लौट गए। सभी को और भी अधिक आश्चर्य तब हुआ जब मुनि के पात्र में पड़ा बालक उनके वहाँ से पलटते ही चुप हो गया।

आचार्य सिंहगिरि के पास पहुँचने पर जब उन्होंने इतनी भारी झोली देखी तो बोले–"यह वज्र जैसी भारी क्या वस्तु भिक्षा में ले आए?" धनगिरि ने झोली से बालक सहित पात्र निकाला और गुरु के सामने रख दिया। गुरु उस तेजस्वी बालक को देखकर चकित भी हुए और प्रसन्न भी। उन्होंने कहा–"यह बालक भविष्य में जिनशासन का आधार बनेगा। इसका नाम आज से वज्र है।"

बालक नन्हा था अतः उसके पालन-पोषण का दायित्व संघ को सौंप दिया गया। शिशु वज्र जैसे-जैसे बड़ा होने लगा उसकी प्रतिभा और तेजस्विता और भी बढ़ती गई। कुछ समय बाद सुनन्दा ने संघ से अपना पुत्र वापस माँगा। संघ ने उसे यह कहकर बालक को देने से मना कर दिया कि वह किसी अन्य की अमानत है। सुनन्दा निराश हो लौट आई और अवसर की प्रतीक्षा करने लगी। आखिर एक दिन उसे अवसर प्राप्त हुआ जब एक बार फिर आचार्य सिंहगिरि अपने शिष्यों सहित तुम्बवन पधारे। उनके आने का समाचार सुनते ही सुनन्दा उनके पास पहुँची और अपना पुत्र लौटाने को कहा। आचार्य के मना कर देने पर वह दुःखी मन से राजा के पास पहुँची। राजा ने उसकी बात सुनी और सोच-समझकर निर्णय सुनाया–"एक ओर बच्चे की माँ और दूसरी ओर मुनि बने उसके पिता को बैठाया जाय। बच्चा दोनों में से जिसके पास चला जाए उसे ही रखने का अधिकार होगा।"

दूसरे दिन राजसभा में आवश्यक प्रबन्ध किया गया। सुनन्दा बच्चों को लुभाने वाले खिलौने और ललचाने वाली अनेक खाद्य वस्तुएँ लेकर एक ओर बैठी। ये वस्तुएँ दिखा-दिखाकर राजसभा के बीच में बैठे अपने पुत्र को अपने पास आने का संकेत करती रही।

बालक ने मन में सोचा–"यदि मैं माता के पास नहीं गया तभी वह मेरा मोह त्याग आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने को प्रेरित होगी। इससे हम दोनों का ही कल्याण होगा।" यह विचार कर वह अपने स्थान से हिला भी नहीं।

तब उसके पिता मुनि धनगिरि ने उसे संबोधित कर कहा–

"जइसि कयज्झवसाओ, धम्मज्झयमूसिअं इमं वइर !
गिण्ह लहु रयहरणं, कम्म-रयपमज्जणं धीर !!"

अर्थात् "हे वज्र ! यदि तुमने पक्का निश्चय कर लिया है तो धर्म-साधना के चिह्नभूत और कर्मरज को दूर करने वाले इस रजोहरण को ग्रहण करो।"

ये शब्द सुनते ही बालक वज्र तत्काल अपने पिता के पास गया और रजोहरण उठा लिया। यह देख राजा ने तत्काल बालक आचार्य सिंहगिरि को सौंप दिया। उन्होंने भी उसी समय संघ तथा राजा से अनुमति लेकर उसे दीक्षित कर दिया।

सुनन्दा को भी संसार से विराग हो गया। उसने सोचा—"जब मेरे भाई, पति और पुत्र सभी सांसारिक सम्बन्धों को तोड़ दीक्षा ले चुके हैं तो मैं अकेली घर में रहकर क्या करूँगी?" उसने भी संयम ग्रहण किया और आत्म-कल्याण की राह पर चल पड़ी।

यथासमय अपने शिष्य-समुदाय सहित आचार्य सिंहगिरि ने भी प्रस्थान किया। वज्र मुनि अत्यन्त मेधावी थे। जब आचार्य अन्य मुनियों को वाचना देते तब वे एकाग्रचित्त हो सुनते रहते। इस प्रकार सुन-सुनकर ही उन्होंने क्रमशः ग्यारह अंगों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

एक दिन आचार्य उपाश्रय से बाहर गए हुए थे। अन्य मुनि आहार के लिए भिक्षाटन को गए थे। बालक वज्र मुनि ने खेल-खेल में संतों के वस्त्रादि को एक पंक्ति में सजा दिया और स्वयं उनके बीच बैठ गए। वस्त्रों को अपना शिष्य मान उन्होंने वाचना देना आरंभ किया। जब आचार्य उपाश्रय में लौट रहे थे तो उन्होंने वाचना के स्वर सुने; वे निकट आकर ध्यान से सुना और वज्र मुनि की आवाज को पहचान लिया। वाचना शैली और बालक के अद्‌भुत ज्ञान को देख वे आश्चर्यचकित हो गए। वे विभोर हो आगे बढ़े और वज्र मुनि के पास पहुँचे। वज्र मुनि ने उठकर उन्हें विनयपूर्वक वन्दना की और फिर सभी उपकरणों को यथास्थान रख दिया।

कुछ समय बाद आचार्य सिंहगिरि कुछ दिनों के लिए अन्य प्रदेश की ओर विहार कर गये और जाते समय वाचना का दायित्व वज्र मुनि को सौंप गए। बालक वज्र मुनि आगमों के सूक्ष्मतम रहस्यों को इतनी सहज ग्राह्य शैली में समझाते कि मंद बुद्धि मुनियों को भी समझने में असुविधा नहीं होती थी। उन्होंने शास्त्रों की विस्तृत व्याख्या के द्वारा मुनियों के द्वारा पूर्व में प्राप्त ज्ञान में रही शंकाओं का भी समाधान कर दिया। सबके मन में उनके प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न हो गई और वे विनयपूर्वक उनसे वाचना लेते रहे।

जब आचार्य सिंहगिरि लौटे तो मुनियों ने उनसे कहा—"गुरुदेव ! वज्र मुनि की वाचना शैली अति उत्तम है कृपया यह कार्य सदा के लिए उन्हें ही सौंप दें।" आचार्य यह सुनकर सन्तुष्ट व प्रसन्न हुए और बोले—"वज्र मुनि के प्रति आपका स्नेह व सद्‌भाव देख मैं सन्तुष्ट हुआ। मैंने इनकी योग्यता व कुशलता से परिचित कराने के लिए ही यह उत्तरदायित्व इन्हें देकर विहार किया था।" और तब यह विचार कर कि गुरु द्वारा ज्ञान ग्रहण किए बिना कोई वाचना गुरु नहीं बन सकता, आचार्य सिंहगिरि ने वज्र मुनि को अपना समस्त ज्ञान स्वयं प्रदान किया।

गाँव-गाँव विहार करते आचार्य सिंहगिरि एक बार दशपुर नगर पहुँचे। उस समय अवन्ती नगरी में वृद्धावस्था के कारण आचार्य भद्रगुप्त स्थिरवास कर रहे थे। आचार्य सिंहगिरि ने अपने

दो अन्य शिष्यों सहित वज्र मुनि को उनकी सेवा में भेज दिया। वज्र मुनि ने आचार्य भद्रगुप्त के पास रहकर विनयपूर्वक उनसे दस पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया। आचार्य सिंहगिरि ने अपना अन्त समय निकट जानकर वज्र मुनि को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

आचार्य वज्र मुनि ने दीर्घकाल तक स्थान-स्थान पर विचरण कर अपने तेजस्वी व्यक्तित्व, अगाध शास्त्रज्ञान और अनेक लब्धियों से व्यापक धर्म-प्रभावना की। यह सब उनकी पारिणामिकी बुद्धि के सहारे ही संभव हुआ।

14. Sundarinand of Nasikpur—In Nasikpur lived a merchant named Nand. The name of his extremely beautiful wife was Sundari. The merchant was so infatuated with her that he would not let her away from his eyes even for a moment. Because of this deep attachment with his wife people started calling him Sundarinand.

The merchant had a younger brother who got detached from the world and became an ascetic. When he came to know that his brother neglected everything due to his fondness for his wife, he came to Nasikpur to enlighten his brother. Getting the news of the ascetic's arrival all the townspeople came to attend the discourse but for Sundarinand.

After the discourse the ascetic went out in search of food. Wandering around he arrived at his brother's house. When he saw the condition of his brother with his own eyes, he thought—"As long as he is not drawn to something better he will not be free of his infatuation." With this idea he created an ordinary woman with the help of his *vaikriyalabdhi* (the special power to transform material things) and asked the merchant—"Is she as beautiful as Sundari?"

The merchant replied—"No, she is not even half as beautiful as Sundari."

Now the ascetic created a lower goddess and asked—"How about this?"

Merchant—"Yes, she is like Sundari."

Third time the ascetic created a goddess and repeated the same question.

This time the merchant was impressed—"Indeed! She is more beautiful than Sundari."

Now the ascetic conveyed his message—"If you indulge even a little bit in religious activities, you will get many such beautiful women without any special effort."

These words opened the merchant's eyes. He could now grasp the basic purpose behind the ascetic's antics. His attitude underwent a change and gradually his infatuation for his wife reduced. Later he became an ascetic and stepped on the path of purification of the soul.

The ascetic applied his *parinamiki buddhi* and freed his brother from carnal attachments.

15. Vajra Swami—In the Avanti state there was a town named Tumbavan. There lived a young merchant named Dhangiri who was married to Sunanda, the daughter of merchant Dhanpal. A few days after the marriage, Dhangiri had a desire to become an ascetic, but somehow Sunanda dissuaded him from doing so. Sometime later Sunanda became pregnant and a pious soul descended into her womb.

When Dhangiri became aware of this he said—"Now you will be able to spend your life with the support of the son you expect. Please don't block my spiritual progress."

Sunanda had to yield before such strong inclination of her husband to renounce the world. She gave her consent to Dhangiri to become an ascetic. Dhangiri went to *acharya* Simhagiri and got initiated. Sunanda's brother, Arya Samit was also an ascetic disciple of *acharya* Simhagiri. Soon after this event, *acharya* Simhagiri left Tumbavan and resumed his itinerant way.

In due course Sunanda gave birth to a brilliant son. When his birth was celebrated a lady looked at him and uttered—"How good it would be if the father of this child was with him instead of being an ascetic."

When these words entered the ears of the infant he acquired *Jati-smaran jnana*. He thought—"My father has accepted the path of spiritual uplift. I should also do something so that I also get free of the worldly ties and my mother also takes to the path of liberation." These thoughts inspired him to start crying day and night. To make him stop crying his mother and other relatives made all possible

efforts but in vain. In the end Sunanda got irritated with this continuous crying of the child.

Coincidentally just a few days later *acharya* Simhagiri once again arrived at Tumbavan with his disciples. Arya Samit and Dhangiri prepared to proceed for alms collection in the town. When they sought permission from the *acharya,* he saw the auspicious signs and commented—"A great boon awaits you. Bring whatever you get as alms."

Searching for food, when the two ascetics arrived at Sunanda's house, she was trying to stop her infant son from crying. Ascetic Dhangiri extended his alms pot. Seeing this, Sunanda was struck with an idea. She at once put the infant in the pot and said—"Revered one, now you look after your son. I am fed up." The onlookers looked agape. The ascetic accepted the alms in presence of all these people, put the pot in his alms bag and left without a word. Every one present was surprised when the child stopped crying as soon as the ascetic turned to leave.

When the ascetics arrived before *acharya* Simhagiri and he saw the unusually heavy alms bag, he commented—"What is this *vajra* (hard and heavy rock) like thing you got as alms." Dhangiri brought out the pot with the infant and placed it before his guru. The *acharya* was pleasantly surprised to see the radiant child and said—"This boy will be a boon to the Jain organization. I name him Vajra."

The child was very young, therefore the responsibility of his care was given to the *sangh.* As child Vajra grew so grew his talent and brilliance. After sometime had passed, Sunanda sought her child back from the *sangh.* The elders of the *sangh* refused on the ground that the boy belonged to some other person. Sunanda returned dejected and started waiting for some opportunity. At last the opportunity came her way when *acharya* Simhagiri once again came to Tumbavan. As soon as Sunanda got the news of his arrival she went to the *acharya* and asked him to return her son. When the *acharya* also refused, she approached the king with a heavy heart. The king listened to her complaint and after careful consideration issued instructions—"On one side should sit the mother and on the other the ascetic father. The child should be left on his own. To whichever of the two the child goes, will be considered the rightful guardian of the child."

Next day all necessary arrangements were made in the court. Sunanda sat on one side with numerous attractive toys and also some eatables to entice the child. Showing these things to the child sitting at the center of the assembly she gestured the child to come to her.

The child thought—"Only when I do not go to my mother will she be inspired to detach herself from her love for me and proceed on the spiritual path. This will benefit us both." With these thoughts he did not move from where he was sitting.

Now his father, ascetic Dhangiri, addressed him—"O Vajra, if you are firm in your resolution, accept this *rajoharan* (special broom carried by Jain ascetics), the symbol of spiritual practice and remover of the sand of karma."

Hearing these words child Vajra at once went to his father and picked the *rajoharan* up. The king, who witnessed all this, immediately gave the child to *acharya* Simhagiri. After seeking permission from the *sangh* and the king, *acharya* Simhagiri formally initiated him as an ascetic.

Sunanda also got detached. She thought—"When my brother, husband and son all have broken all worldly ties and become ascetics, what will I do in my house all alone?" She also got initiated and accepted the spiritual path.

In due course *acharya* Simhagiri left the town with his disciples. Ascetic Vajra was highly talented. When the *acharya* read the scriptures to his disciples, Vajra listened very attentively. Just by hearing this way he gradually acquired complete knowledge of the eleven *Angas*.

One day the *acharya* had gone out of the *upashraya*. Other ascetics were also away for alms collection. Child ascetic Vajra playfully arranged the clothes of ascetics in a row and he himself sat in the middle facing the row. Considering the heaps of clothes to be his disciple he started giving discourse of the *Angas* to them. When the *acharya* was returning into the *upashraya* he heard the sound of reading of the *Angas*. As he approached nearer he could recognize the voice of ascetic Vajra. He was astonished at the perfect style of reading and the unprecedented knowledge of the child. Cherishing the perfection of reading he arrived near ascetic Vajra. The child

ascetic got up and greeted him humbly and respectfully. He then replaced all the belongings of the ascetics at their proper places.

Some days later *acharya* Simhagiri left for other places for some days. While leaving he gave the responsibility of giving reading of the *Angas* to ascetic Vajra. The child ascetic explained even the most subtle and difficult topics from *Agams* in such a simple and easily understandable style that even comparatively dull ascetics faced hardly any difficulty in grasping the meaning. With the help of the detailed explanations of the scriptures he even removed doubts of the ascetics in their previously learned lessons. All the ascetics developed a very high degree of respect for him and they continued to get their lessons from him with due modesty.

When *acharya* Simhagiri returned, the ascetics requested—"*Gurudev,* ascetic Vajra's style of giving lessons of the *Agams* is extremely good. Please entrust him with this responsibility permanently." The *acharya* was happy and contented to hear this. He said—"I am pleased to know about the feelings of goodwill and affection for ascetic Vajra. Only to acquaint you with his ability and expertise I had given this task to him and left on my tour." And then, realizing that without formally getting knowledge from a guru no one can be appointed a teacher of the *Agams, acharya* Simhagiri himself gave all his knowledge to ascetic Vajra.

During his wanderings from one village to other, *acharya* Simhagiri once came to Dashpur city. At that time *acharya* Bhadragupta, due to his old age, had abandoned his itinerant way and was residing permanently in Avanti city. *Acharya* Simhagiri sent ascetic Vajra and two other disciples for studies under *acharya* Bhadragupta. With all humbleness ascetic Vajra served his new guru and acquired the knowledge of ten *Purvas*. When *acharya* Simhagiri found that his end was near he installed ascetic Vajra to the position of *acharya*.

Acharya Vajra wandered around a large area for a long time and with the help of his impressive personality, endless scriptural knowledge and many special powers, worked successfully for an extensive spread of religion. All this became possible with the help of his *parinamiki buddhi*.

(१६) चरणाहत–किसी नगर में एक युवा राजा राज्य करता था। उसे अपरिपक्व जानकर कुछ युवक उससे लाभ उठाने के उद्देश्य से उसके पास आए और उसे परामर्श दिया–"महाराज ! आप तरुण हैं अतः आपको अपने राज्य-कार्यों के संचालन के लिए भी तरुणों को ही रखना चाहिए। ऐसे लोग अपनी शक्ति व योग्यता से कुशलतापूर्वक व्यवस्था सँभाल सकेंगे। वृद्धजन शारीरिक दृष्टि अशक्त होने के कारण कोई भी कार्य ठीक से नहीं कर पाते।

यद्यपि राजा अल्पायु तो था पर साथ ही अत्यन्त बुद्धिमान भी। उसने युवकों की बुद्धिमत्ता की परीक्षा लेने के विचार से एक प्रश्न किया–"यदि मेरे मस्तक पर कोई अपने पैरों से प्रहार करे तो उसे क्या दंड दिया जाना चाहिए?"

युवकों ने तत्काल कहा–"ऐसे व्यक्ति के टुकड़े-टुकड़े कर देने चाहिए।"

तब राजा ने यही प्रश्न दरबार के अनुभवी वृद्धों से पूछा। उन्होंने सोच-समझकर उत्तर दिया–"महाराज ! आपको उसे प्यार करना चाहिए और वस्त्राभूषणों से पुरस्कृत करना चाहिए।"

यह उत्तर सुन वे तरुण क्रोध से लाल हो गए। राजा ने उन्हें शान्त करते हुए वृद्धजनों से अपनी बात का अर्थ समझाने के लिए कहा। एक वृद्ध सभासद ने खड़े होकर कहा–"महाराज ! निश्चय ही आपके मस्तक पर पैरों से प्रहार करने वाला आपके शिशु पुत्र को छोड़ और कौन हो सकता है? शिशु राजपुत्र की शैशवता पूर्ण क्रीड़ा के लिए उसे दण्ड नहीं स्नेह दिया जाता है।"

वृद्ध की बात सुन युवक अपने अज्ञान पर बहुत लज्जित हुए। राजा ने प्रसन्न हो वृद्ध दरबारियों को पुरस्कृत किया और युवाओं से कहा–"राज्य-कार्य में केवल शक्ति ही नहीं, बुद्धि और अनुभव की भी आवश्यकता होती है।" वृद्धों ने अपनी पारिणामिकी बुद्धि से राजा को संतुष्ट कर दिया।

(१७) आँवला–एक कुम्हार ने पीली मिट्टी का एक आँवला बनाया। एक व्यक्ति को मूर्ख समझ उसे वह आँवला बेचने के विचार से उसके हाथ में दिया। आँवला हाथ में ले उस व्यक्ति ने विचार किया–"यह देखने में तो आँवले जैसा है किन्तु कठोर है। और फिर यह आँवलों की ऋतु भी नहीं है।" अपनी पारिणामिकी बुद्धि के सहारे उसने आँवले की कृत्रिमता को पहचान लिया और फेंककर उसकी ठगाई में नहीं फँसा।

(१८) मणि–किसी जंगल में एक मणिधर साँप रहता था। रात्रि समय में वह पेड़ पर चढ़कर पक्षियों के बच्चों को खा जाता था। एक बार जब वह वृक्ष पर चढ़ा तो अपने शरीर को सँभाल न सका और वृक्ष से नीचे गिर पड़ा। गिरते समय उसकी मणि पेड़ की डालों में अटक गई। वृक्ष के ठीक नीचे एक कुँआ था। पेड़ में अटकी मणि के प्रकाश में उसका पानी लाल दिखाई देने लगा। प्रातःकाल कोई एक बालक खेलता हुआ उधर आ निकला। कौतूहलवश उसने कुएँ में झाँका तो उसे लाल पानी दिखाई दिया। घर लौटकर उसने यह बात अपने पिता को बताई और लाल पानी दिखाने उसे साथ ले आया। पिता अनुभवी और पारिणामिकी बुद्धि-सम्पन्न था। उसने

कुएँ में झाँका और समझ गया कि पानी का लाल रंग किसी चमकीली वस्तु के प्रतिबिम्ब के कारण है। उसने पेड़ पर चढ़कर वह मूल्यवान मणि ढूँढ़ ली और घर ले आया।

(१९) सर्प–श्रमण भगवान महावीर ने अपने प्रथम चातुर्मास के पश्चात् अस्थिक ग्राम से श्वेताम्बिका नगरी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में दक्षिण वाचाला सन्निवेश पड़ता था और फिर उत्तर वाचाला सन्निवेश। उत्तर वाचाला के लिए दो मार्ग थे। एक मार्ग घूमकर जाता था तथा दूसरा कनकखल आश्रम के बीच से निकलता था। यह आश्रम किसी समय हरा-भरा था पर अब वीरान पड़ा था। भगवान महावीर इसी बीहड़ सुनसान कँटीले मार्ग पर जाने को तत्पर हुए।

तभी कुछ दूर पर भेड़-बकरियाँ चराते ग्वालों ने पुकारा–"भन्ते ! रुकिए, यह राह बड़ी भयानक है। इस पर एक दृष्टिविष काला नाग रहता है। उसकी जहरीली फुँफकार से पेड़-पौधे भी भस्म हो जाते हैं। इधर से नहीं, दूसरी राह से जाइए।"

ग्वालों की यह भयभरी पुकार भगवान महावीर के कानों में पड़ी किन्तु वे स्मितभावपूर्वक अभय मुद्रा में हाथ उठाये आगे बढ़ गए। धीर गंभीर गति से चलते हुए वे उस नाग की बाँबी के निकट पहुँचे। बाँबी के निकट ही एक उजड़ा-सा देवालय था। वे उसी की छाया में कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ हो गए।

कुछ ही देर में फुंकारता हुआ विशालकाय नाग अपनी बाँबी से बाहर निकला। आज बहुत समय पश्चात् कोई मनुष्य उसे दिखाई दिया और वह भी आँखें मूँदे निश्चल निर्भय खड़ा हुआ। नाग को बहुत आश्चर्य हुआ। अपनी जहरीली लाल आँखों से उसने भगवान महावीर को देखा। उसकी विषमयी आँखों से ज्वालाएँ भी निकलने लगीं। वह भयंकर फुंकारें करने लगा। परन्तु भगवान महावीर पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने कई बार अपनी विषैली दृष्टि से भगवान महावीर को देखा पर वे ज्यों के त्यों निश्चल खड़े रहे।

अपने प्रयास निष्फल जाते देख नाग क्रोध से आग-बबूला हो गया और आगे सरक भगवान महावीर के पैर के अंगूठे को डस लिया। भगवान महावीर पर इसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। नाग का क्रोध और भी बढ़ गया और उसने फिर दो बार भगवान महावीर को डसा। यह भी व्यर्थ गया। तभी उसने देखा कि भगवान महावीर के अंगूठे से रक्त के स्थान पर दूध की धार बही जा रही है।

अपनी असफलता से भ्रमित-सा हुआ नाग विचार करने लगा। उसके क्रोध का स्थान भय ने ले लिया। भगवान महावीर ने देखा कि नागराज को उद्‌बोधन देने का अवसर आ गया है। वे शांत-गम्भीर स्वर में बोले–"चंडकौशिक ! समझो ! शांत हो जाओ और अपने पूर्वजन्म को याद करो। क्रोध का शमन करो।"

भगवान महावीर से नाग की दृष्टि मिली तो उसके मन में एक अपूर्व शान्ति फैल गई। वह विचारों में गहरा खो गया। चण्डकौशिक शब्द उसे परिचित-सा लगा। उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। पूर्व जीवन की घटनाएँ एक-एक कर उसकी स्मृति में उभरने लगीं–

दो जन्म पहले वह एक तेजस्वी श्रमण था। एक-एक मास का उपवास करके रूखे-सूखे भोजन से पारणा करता था। एक बार मासखमण का पारणा करने के लिए भिक्षाटन को जा रहा था। उसका शिष्य भी पीछे-पीछे चल रहा था। उसके पाँव से दबकर एक छोटा मेंढक मर गया। गुरु को इसका भान नहीं हुआ किन्तु शिष्य ने देख लिया। यह सोचकर कि गुरु को इसका आभास नहीं है शिष्य ने विनयपूर्वक कहा–"गुरुदेव ! आपके पाँव के नीचे अनजाने ही एक मेंढक आ गया है और उसकी विराधना हो गई। कृपया प्रायश्चित्त कर लीजिए।" गुरु को शिष्य की बात अप्रिय लगी। उसने शिष्य को झिड़क दिया।

शिष्य यह सोचकर चुप हो गया कि मार्ग में चलते-चलते मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था। दोनों अपने स्थान पर लौट आए। संध्या को जब प्रतिक्रमण का समय हुआ तो उचित अवसर जान शिष्य ने पुनः वही बात दोहराई। गुरु क्रोध से पागल हो गया और शिष्य को मारने दौड़ा। उपाश्रय में अंधेरा था। गुरुजी एक खंभे में टकराए और गिर पड़े। उनका सिर फट गया और तत्काल मृत्यु हो गई। क्रोध के उग्र परिणामों में ही मरकर वे ज्योतिष्क देव बने।

ज्योतिष्क देव का आयुष्य पूर्ण कर वह कनकखल आश्रम के कुलपति के पुत्ररूप में जन्मा। उसका नाम कौशिक रखा गया। उग्र स्वभावी होने के कारण सभी उसे चण्डकौशिक कहने लगे। एक बार आश्रम के उद्यान में श्वेताम्बी नगरी के कुछ किशोर घूमने आए। रंग-बिरंगे फूलों को देख वे तोड़ने लगे। चण्डकौशिक ने उन्हें मना किया। बालक राज-परिवार के थे, बेरोकटोक मनमानी करते रहे। साथ ही वे चण्डकौशिक को धमकी भी देने लगे। तब चण्डकौशिक आग-बबूला हो गया और हाथ में कुल्हाड़ी लिए उन्हें मारने के लिये दौड़ा। चपल बालक और तरुण तो भाग गए, बूढ़ा चण्डकौशिक दौड़ता हुआ एक गहरे गड्ढे में गिर पड़ा। कुल्हाड़ी से स्वयं के ही सिर में चोट लगी और खून बहने लगा। क्रोध के उग्र परिणामों में मरकर इस जन्म में दृष्टिविष नाग बना।

पिछले दो जन्मों के चित्र नागराज की स्मृति में उभरने लगे और उसे उग्र क्रोध के कटु फलों का आभास हुआ। उसका हृदय पश्चात्ताप से पिघलने लगा। उसकी अंतश्चेतना जाग गई। मन शान्त हो गया। उसने शांत मूर्ति भगवान महावीर के चरणों का स्पर्श किया और मन ही मन संकल्प किया–"प्रभु ! अब मैं जीवनभर किसी की ओर दृष्टि उठाकर नहीं देखूँगा, न कुछ खाऊँगा, न पीऊँगा।" और शांत हुआ वह नाग अपने बिल में मुँह डाल निश्चल हो पड़ा रहा।

दूसरे दिन ग्वालों ने दूर से देखा, महाश्रमण तो नाग की बाँबी के निकट ध्यानस्थ खड़े हैं। आश्चर्यचकित हो वे कुछ निकट आए। झाँककर देखा तो नाग बाँबी में मुँह दिये शांत पड़ा दिखाई दिया। भीड़ एकत्र हो गई। कुछ लोगों ने लकड़ी, पत्थर फेंके तो बूढ़ों ने कहा– "नाग देवता है, मारना नहीं। पूजा करो।" तो लोगों ने दूध, खीर आदि लाकर चढ़ाना आरंभ कर दिया। इस बीच नाग शांत हो सभी कुछ सहता रहा। निश्चल पड़ा रहा। खीर आदि की गंध से चींटियों के झुंड आ गए और नाग के शरीर को भी काटने लगे। पूर्व जीवन के

दुष्कृत्यों के पाप को धोने का संकल्प लिए वह नाग पन्द्रह दिन तक सभी कुछ समभाव से सहन करता रहा, जब तक उसका शरीर छलनी नहीं हो गया और प्राणान्त नहीं हो गया। चण्डकौशिक का पुनर्जन्म सहस्रार नामक देवलोक में हुआ। पारिणामिकी बुद्धि के बल से नाग ने अपना जन्म सुधार लिया।

(२०) गैंडा—एक व्यक्ति ने मुनियों का धर्मोपदेश सुनकर अपनी युवावस्था में श्रावक व्रत धारण किए किन्तु उनका ठीक से पालन नहीं कर सका। कुछ समय बाद वह रोगग्रस्त हो गया और अपने भंग किए व्रतों की आलोचना करने से पहले ही मर गया। धर्म से पतित होने के फलस्वरूप अगले जन्म में एक जंगल में वह गैंडे के रूप में उत्पन्न हुआ। क्रूर स्वभाव के कारण वह जंगल के अन्य जीवों को मारता और यदि कोई मनुष्य उधर आता तो उसे भी मार डालता था।

एक बार कुछ मुनि उस जंगल से जा रहे थे। गैंडे ने ज्यों ही उन्हें देखा क्रोध से ग्रस्त हो मारने दौड़ा। मुनियों के तपोतेज तथा अहिंसक वृत्ति के प्रभाव से गैंडा उन तक नहीं पहुँच पाया। अपने उद्देश्य में असफल होने से वह विचार में पड़ गया और अपने शक्तिहीन हो जाने का कारण खोजने लगा। धीरे-धीरे उसका क्रोध शान्त हो गया। ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के परिणाम स्वरूप उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। अपने पूर्वभव को जानकर उसे बहुत ग्लानि हुई। पश्चात्ताप हुआ। उसने उसी समय अनशन कर लिया और शुभ विचारों में लीन हो गया। आयुष्य पूरी होने पर उसने देवलोक में जन्म लिया।

पारिणामिकी बुद्धि के कारण गैंडे ने अपना बिगड़ा हुआ जीवन सुधार लिया।

16. Charanahat (The kicked one)—In a city ruled a young king. Considering him to be immature, some young individuals came to him and in order to gain favours, advised him—"Sire, you are young, therefore you should appoint only young men to direct the affairs of the state. Being energetic and able, such persons will successfully handle the administration." The elderly persons can hardly do any thing efficiently and properly due to their physical weakness."

Although the king was young, he was very intelligent. In order to test the wisdom of these young people he put before them a question—"How should I punish someone who kicks at my head with his feet?"

The young people were ready with a reply—"He should be cut to pieces."

Now the king put the same question before his elderly and experienced ministers, they pondered over the question and replied—"Sire, you should shower your affection and gifts on him."

The young men turned red with anger. The king pacified them and asked the ministers to explain their statement. One of the elderly ministers stood up and said—"Sire, who else but your infant son can possibly kick you in your head? The playful activities of an infant prince are rewarded with love and gifts, not punishment."

This explanation from the elders made the youth ashamed at their ignorance. The happy king rewarded the elderly ministers. He said to the young men—"In the affairs of the state energy is not the only requirement; intelligence and experience are also needed." The elders satisfied the king with their *parinamiki buddhi*.

17. Anvala—A potter made an *anvala* (a citrus fruit) with yellow sand. Considering a person to be ignorant, he tried to sell the *anvala* and gave it in his hand. Taking the fruit in his hand the man thought—"It looks to be *anvala* but it is very hard. And this is not the season for this fruit." With the help of his *parinamiki buddhi* he understood that it was just a model. He threw it on the ground and was not caught in the trap.

18. The Bead—In a jungle lived a gem bearing snake. During the night it slithered up a tree and fed on the chics of birds. Once when it was slithering up the tree it lost balance and fell from the tree. During this fall its gem got stuck into the branches of the tree. Exactly under the tree was a well. Due to the radiant reflection of the gem the water in the well started appearing red. In the morning a boy came there while playing around. With curiosity he looked into the well and found the water red. When he returned home he told his father about a well with red water and brought along his father to show the strange water. The father was experienced and was endowed with *parinamiki buddhi*. Wen he looked into the well, he at once understood that the red color of the water was just due to the reflection of some shining red thing. He climbed the tree and after searching found the radiant gem and brought it home.

19. The serpent—After his first monsoon stay at Asthik village *Shraman Bhagavan* Mahavir left for Shvetambika city. On the way were South Vachal and North Vachal areas. There were two ways to reach North Vachal; one was roundabout and the other, passing through the Kanak Khal Ashram. This hermitage was once full of

greenery but desolate now. Mahavir chose this forlorn and difficult path.

When he was about to step on that path, some cowherds shouted—"O ascetic! stop. Do not go that way. It is a dangerous trail. There is a terrible black serpent that has poison in its eyes. Its poisonous hissing destroys even plants. Take the other trail not this."

Mahavir heard this panicky call of the cowherds but with a smile he raised his open palm in assurance and stepped ahead. Walking firmly he arrived near the snake-hole. Close to the snake-hole was a dilapidated temple. Mahavir stood in meditation in the *kayotsarga* posture in the shade of this temple.

After sometime the giant black serpent came out of its hole hissing fiercely. It had set its eyes on a human being after a long time. The man was standing firm and fearless with closed eyes. The serpent was surprised. It looked at Mahavir with its poisonous red eyes. Like flames from a ball of fire its poisonous eyes emitted waves of venom. It hissed awesomely. But all this had no effect on Mahavir. Many a times it attacked Mahavir with its poisonous gaze but Mahavir was still unmoved.

This failure infuriated the serpent. Slithering ahead it sank its fangs in Mahavir's toe and injected all the venom. Even this had no effect on Mahavir. This added fuel to the fire and the serpent bit Mahavir twice again. Even this was wasted. Suddenly the serpent saw that from the spots where it had bitten, instead of blood, milk was oozing out.

Confused by his failure, the serpent was lost in its thoughts. Fear replaced its anger. Mahavir decided that it was time to preach the serpent. He uttered in his deep and serene voice—"O Chandakaushik, open your inner eyes. Be calm and remember your past life. Rise above the anger."

When the serpent met Mahavir's gaze it felt as if a wave of peace had engulfed it. It was lost deep in its thoughts. The address—Chandakaushik appeared to be known to him. It entered the state of *Jati-smaran jnana*. Incidents of its past births surfaced—

Two births before he was a *shraman* ascetic. He used to do month long fasts and eat only dry food. Once he was going to collect alms for

his breakfast. A disciple was following him. A small frog got crushed under his feet and he was unaware of this. The disciple saw this and humbly said—"Master, it seems that a frog has been crushed under your feet inadvertently. Please do atonement." He found the comment unpleasant and reprimanded the disciple.

The disciple remained silent, thinking that he should not have passed any comment while walking. They returned to their place of stay. In the evening when it was time for doing *pratikraman*, considering it to be the proper time, the disciple once again conveyed his advise. The guru turned mad with anger and rushed to hit the disciple. It was dark in the *upashraya*. The guru collided with a pillar and fell. His skull was fractured and he died on the spot. As he died with anger filled attitude he reincarnated as a Jyotishk god.

Completing his life-span as a god he reincarnated as the son of the rector of the Kanak Khal hermitage. He was named Kaushik. As he was extremely angry by nature, every one started calling him Chandakaushik. Once some boys from Shvetambi city came to visit the hermitage garden. While roaming around they started plucking the colourful and pretty flowers. Chandakaushik warned them not to do so but, as they belonged to the royal family, they did not care for what he said. They even misbehaved with Chandakaushik. He got infuriated, picked up an axe and ran after the boys. The quick and agile boys evaded him and ran away. Chandakaushik chased them but slipped and fell into a ditch. He was injured by the axe and bled to death. Due to extreme anger at the time of death he reincarnated as a giant serpent with venomous gaze.

The incidents of last two births flashed in the memory of the serpent and it realized about the consequences of extreme anger. The feeling of repentance melted its heart. Its inner self became awake. Its mind became tranquil. It touched the pious feet of *Bhagavan* Mahavir and resolved silently—"*Prabhu*, since this moment I will never look at anyone all my life. I will not eat anything. I will not drink also." And the now peaceful serpent put its mouth in the hole and lay still.

Next day the cowherds looked curiously from a distance. They saw the great *shraman* standing in meditation near the snake-hole. Slowly they came near and saw that the serpent was lying nearby

with its mouth in the hole. A crowd gathered. When some of them started throwing stones and pieces of wood, the elders said—"No, this is a serpent god. do not kill but worship." People started worshipping the snake god by offering milk and sweets. The serpent tolerated all this and remained immobile. Swarms of ants were attracted by the smell of sweets and milk. They started stinging the serpent. With the resolve to cleanse its soul of the sins of the earlier births, the serpent tolerated all these afflictions with equanimity for fifteen days. By then his body was almost completely perforated and it died. Chandakaushik reincarnated as a god in the *Sahasrar Kalp*. With the help of *parinamiki buddhi* the serpent got an excellent rebirth.

20. The rhinocerous—After listening to the sermons of ascetics a man accepted the *shravak* vows but could not properly observe them. Later he fell sick and died before atoning for the sins. As a consequence of this fall from the religious conduct he reincarnated as a rhinocerous in a jungle. Because of his cruel nature it killed other animals in the jungle. If any human being happened to come into that jungle it killed them as well.

Once some ascetics were passing through that jungle. The moment the rhino saw them it rushed to kill. The aura of their penance and attitude of *ahimsa* did not allow him to reach them. Failure in his desired act forced him to think about the reasons of this weakness. Gradually his anger was pacified. As a consequence of destruction and suppression of the knowledge veiling karmas he acquired *Jati-smaran jnana*. Knowing about his earlier birth he was filled with self reproach. He started repenting, resolved to fast till death and indulged in pious thoughts. When he died he reincarnated as a god. With the help of *parinamiki buddhi* the rhino recovered from his fall.

(२१) स्तूप-भेदन–राजा श्रेणिक के पुत्रों में कुणिक और विहल्लकुमार भी थे। राजा श्रेणिक ने अपने जीवनकाल में ही सेचनक हाथी और वङ्कचूड़ हार दोनों विहल्लकुमार को दे दिये थे तथा कूणिक मगध का राजा बन गया था।

विहल्लकुमार प्रतिदिन अपनी रानियों के साथ हाथी पर बैठकर जलक्रीड़ा के लिए गंगा-तट पर जाता था। सेचनक हाथी रानियों को अपनी सूँड़ पर उठाकर अनेक प्रकार से उनका मनोरंजन करता था। जनता विहल्लकुमार तथा उनकी रानियों की सराहना करती थी और चर्चा करती थी कि राज्य-लक्ष्मी का सच्चा उपभोग तो विहल्लकुमार ही करता है।

राजा कूणिक की रानी पद्मावती के मन में यह सब सुनकर ईर्ष्या की जलन उत्पन्न हो गई। उसने अपने पति से कहा-"यदि सेचनक हाथी और वह प्रसिद्ध हार मेरे पास नहीं है तो मैं नाममात्र की ही रानी हूँ। आप मुझे ये दोनों वस्तुएँ लाकर दीजिये।" कूणिक ने पहले तो इन बातों पर ध्यान नहीं दिया, पर रानी के बार-बार आग्रह करने पर दोनों वस्तुएँ लाने को तत्पर हुआ। उसने विहल्लकुमार से दोनों वस्तुएँ देने को कहा। विहल्लकुमार ने उत्तर दिया-"यदि आप ये दोनों वस्तुएँ लेना ही चाहते हैं तो आपको राज्य में मुझे मेरा हिस्सा देना पड़ेगा।" कूणिक इसके लिए तैयार नहीं था अतः उसने बलपूर्वक दोनों वस्तुएँ लेने का विचार किया। विहल्ल को इस बात का पता चला तो वह अपने परिवार सहित सेचनक हाथी व वङ्कचूड हार लेकर अपने नाना राजा (चेटक) चेडा के पास विशाला नगरी को चला गया।

विहल्लकुमार के इस व्यवहार पर राजा कूणिक को बहुत क्रोध आया। उसने राजा चेडा के पास दूत भेजकर कहलाया-"राज्य की सभी श्रेष्ठ वस्तुएँ राजा की संपत्ति होती हैं अतः वे हार तथा सेचनक हाथी सहित विहल्लकुमार को परिवार सहित वापस भिजवा दें अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाएँ।"

राजा चेटक भी कोई सामान्य सामन्त नहीं थे। वे भी महान् योद्धा व न्याय के पक्षधर थे। उन्होंने दूत के हाथ उत्तर भिजवाया-"जिस प्रकार कूणिक मेरा दोहिता है उसी प्रकार विहल्लकुमार भी। विहल्ल को राजा श्रेणिक ने अपने जीवनकाल में ये दोनों वस्तुएँ प्रदान की थीं। इस कारण वे उसी की हैं। फिर भी यदि कूणिक उन्हें लेना चाहता है तो उसे अपना आधा राज्य विहल्ल को देना होगा। वैसा न कर यदि वह युद्ध ही चाहता है तो मैं भी युद्ध के लिए तैयार हूँ।"

दूत ने राजा चेडा का उत्तर शब्दशः कूणिक को सुना दिया। कूणिक के क्रोध का कोई पार नहीं रहा। वह अपने कालकुमार आदि अन्य भाइयों तथा विशाल सेना लेकर विशाला नगरी की ओर कूच कर दिया। राजा चेडा भी अपने सहयोगी अन्य अनेक गण-राजाओं को साथ ले कूणिक का सामना करने के लिए युद्ध-स्थल की ओर बढ़ गया।

अन्त में दोनों पक्षों में भीषण युद्ध हुआ और लाखों व्यक्ति काल के ग्रास बन गए। इस युद्ध में राजा चेडा हार गया। वह बची हुई सेना सहित विशाला नगरी में चला आया और नगरी के विशाल परकोटे के सभी द्वार बन्द कर लिये। कूणिक ने कई स्थानों से परकोटे को तोड़ नगर में प्रवेश करने की चेष्टा की पर उसे सफलता नहीं मिली। इसी बीच आकाशवाणी हुई-"यदि कूलबालक नाम का साधु मागधिका वेश्या के मोह जाल में फँसे, तब वह जो उपाय बताये उस अनुसार कूणिक विशाला नगरी का परकोटा ध्वस्त कर नगर पर अपना अधिकार कर सकता है।"

यह आकाशवाणी सुन कूणिक आश्चर्यचकित हुआ। फिर भी उस पर विश्वास कर कूणिक ने तत्काल राज-सेवकों को मागधिका गणिका की खोज करने की आज्ञा दी। गुप्तचरों ने मागधिका

को खोज लिया। मागधिका के आने पर राजा ने उसे सारी योजना बताई और वह तत्काल राजाज्ञानुसार कूलबालक मुनि की खोज में निकल गई।

कूलबालक एक अतीव क्रोधी प्रकृति का और दुष्ट-बुद्धि श्रमण था। जब वह अपने गुरु के साथ रहता था तो उनके कहे वचनों का गलत अर्थ लगाकर उन पर क्रोध करता रहता था। एक बार वह अपने गुरु के साथ किसी पहाड़ी मार्ग पर चल रहा था कि किसी बात पर क्रोध आते ही उसने गुरुजी को मारने के लिए एक भारी-भरकम चट्टान पीछे से उनकी ओर लुढ़का दी। अपनी ओर पत्थर आते देख गुरु उससे बचने के लिए मार्ग से हट गए। शिष्य के ऐसे घृणित कार्य पर वे कुपित हो गए और शाप दिया–"दुष्ट ! तू कितना नीच है, किसी को मार डालने जैसा कार्य भी तू कर सकता है। जा ! तेरा पतन किसी स्त्री के कारण होगा।"

गुरु के वचनों के विरुद्ध चलना और उन्हें झूठा सिद्ध करने का प्रयत्न करना तो कूलबालक का जैसा स्वभाव ही था। गुरु की इस बात को भी झूठा सिद्ध करने के लिए वह एक निर्जन प्रदेश में चला गया। वहीं एक नदी के किनारे ध्यानस्थ हो वह तपस्या करने में जुट गया। आहार के लिए भी कभी गाँव में नहीं जाता। संयोगवश कभी कोई यात्री उस ओर निकल आता तो उसी से कुछ आहार प्राप्त कर अपना जीवन निर्वाह कर लेता था। एक बार नदी में जोर से बाढ़ आई। कूलबालक को उसमें बह जाने का भय लगा, किन्तु उसकी उग्र तपस्या का प्रभाव ऐसा हुआ कि नदी का बहाव दूसरी ओर स्वतः मुड़ गया। इसी आश्चर्यजनक घटना के कारण लोग उसे कूलबालक नाम से पुकारने लगे।

मागधिका वेश्या ने पहले तो कूलबालक के स्थान का पता लगाया और तब वह एक ढोंगी श्राविका का रूप धरकर उसी नदी के निकट रहने लगी। अपनी सेवा-भक्ति के द्वारा उसने कूलबालक को प्रभावित किया और आहार लेने का आग्रह किया। जब वह साधु भिक्षा लेने मागधिका के स्थान पर गया तो उसने आहार में विरेचक औषधि मिला दी। साधु को अतिसार की व्याधि लग गई। बीमारी की हालत में वेश्या उसकी सेवा-सुश्रूषा करने लगी। वेश्या के निरन्तर स्पर्श से साधु का मन विचलित हो गया। साधु की यह मनःस्थिति अपने अनुकूल जानकर वेश्या उसे राजा कूणिक के पास ले गई।

कूणिक ने कूलबालक मुनि को प्रसन्न करके पूछा–"विशाला नगरी का यह दृढ़ और विशाल परकोटा कैसे तोड़ा जा सकता है इसका उपाय बताइए?"

कूलबालक मुनि ने कुछ सोचकर उत्तर दिया–"महाराज ! मैं नैमित्तिक का वेश धरकर नगर में प्रवेश करूँगा। उचित अवसर पर मैं परकोटे पर से सफेद वस्त्र हिलाकर संकेत दूँगा। जैसे ही आपको संकेत मिले आप अपनी सेना लेकर कुछ दूर पीछे की ओर हट जाइयेगा। जिससे लोगों को मेरी बात का विश्वास हो जायेगा।"

कूणिक के हाँ कहने पर वह नैमित्तिक का वेश धरकर सरलता से विशाला नगरी में प्रवेश कर गया। एक नैमित्तिक को आया देख नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति उसके पास आए और पूछा–

"महाराज ! राजा कूणिक ने हमारी नगरी को घेर लिया है। इस संकट से उबरने का कोई उपाय बताइए।" कूलबालक ने अपने विद्याबल से पहले ही जान लिया था कि नगरी में जो स्तूप बना हुआ है उसके प्रभाव से परकोटा अभेद्य बना रहता है। स्तूप धराशायी हो जाने पर परकोटा आसानी से भेदा जा सकेगा। अतः उसने छलपूर्वक नगरवासियों से कहा-"बन्धुओ ! तुम्हारी नगरी में उस स्थान पर जो स्तूप विद्यमान है वही इस संकट का मूल है। वह स्तूप जब तक नहीं गिरा दिया जाता तब तक तुम्हें इस संकट से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसे गिरा दोगे तो कूणिक वापस लौट जाएगा।"

सरल प्रकृति नागरिक नैमित्तिक के कपट जाल में फँस गए। उन्होंने स्तूप तोड़ना आरंभ कर दिया। कार्यारम्भ कर नैमित्तिक किसी बहाने परकोटे पर जा पहुँचा और सफेद वस्त्र हिलाकर संकेत दिया। कूणिक पूर्व योजनानुसार सेना सहित पीछे हटने लगा। नैमित्तिक ने नगरवासियों के विश्वास को दृढ़ करने के लिए बताया-"देखो स्तूप तोड़ना आरंभ होने के साथ ही कूणिक की सेनाएँ पीछे हटने लगी हैं।" नगरवासियों को यह देख नैमित्तिक की बात पर पूर्ण विश्वास हो गया और वे बड़े उत्साह से स्तूप तोड़ने लग गये। कुछ ही समय में स्तूप धराशायी हो गया। स्तूप के अपने स्थान से हटते ही उसका दिव्य प्रभाव भी समाप्त हो गया। कूणिक तो इसी की राह देख रहा था। उसने तत्काल सेनाएँ आगे बढ़ाईं और परकोटे को तोड़कर विशाला पर अपना अधिकार कर लिया। वेश्या ने अपनी पारिणामिकी बुद्धि से कूलबालक को भ्रष्ट किया और कूलबालक ने अपनी पारिणामिकी बुद्धि का दुरुपयोग कर वैशाली का स्तूप-भेदन करवाया।

इस प्रकार अश्रुत निश्रित मतिज्ञान का वर्णन पूर्ण हुआ।

21. Breaking of the dome—Princes Kunik and Vihalla were among the sons of king Shrenik. During his life time king Shrenik had given the Sechanak elephant and Vankchud necklace to Vihalla, and Kunik had become the king of Magadh.

Vihalla used to go every day to the banks of the Ganges with his wives, riding Sechanak elephant. The elephant playfully lifted the queens with its trunk and entertained them. The public praised Vihalla and his queens and commented that it was Vihalla who truly enjoyed the royal wealth.

King Kunik's wife, queen Padmavati, burned with jealousy when she heard all this. She said to her husband—"As long as I do not own Sechanak elephant and Vankchud necklace, I am queen only for namesake. You should get these for me." At first Kunik did not pay any attention. But with continued nagging from his wife he at last agreed to get them for her. He asked Vihalla to give the two things. Vihalla replied—"If you want to have the two things you will have to

share your kingdom with me." Kunik was not prepared for this therefore he decided to use force. When Vihalla came to know of this he took his family, the necklace and Sechanak elephant and went to his maternal grand father, king Cheda (Chetak) in Vaishali city.

This act of Vihalla infuriated king Kunik. He sent a messenger to king Cheda with a message—"All the best things in a state rightfully belong to the king. Therefore please arrange to return prince Vihalla and his family with Sechanak elephant and Vankchud necklace. If not, be prepared to face war."

King Chetak was not some minor ruler. He was also a great warrior and favoured justice. He sent his reply with the same messenger—"As Kunik is my grandson so is Vihalla. King Shrenik had given these two things to Vihalla during his life time. Therefore, they rightfully belong to him. Still, if Kunik wants these things he will have to give half his kingdom to Vihalla. If he disagrees and wants a war I am ready."

The messenger repeated the words of king Cheda before Kunik whose anger saw no bounds. He at once marched for Vaishali with his large army and brothers including Kaal Kumar. King Cheda also, with his associate kings and many heads of republics, marched towards the battle field to face Kunik.

The two armies clashed and in the ensuing battle hundreds of thousands died. King Cheda was defeated in this war. With his remaining army he retreated into the fortified Vaishali city and closed all the gates in the immense city wall. Kunik tried to breach the wall at many places to enter the city but did not succeed. During these efforts one day there was a divine pronouncement—"When ascetic Koolbalak is beguiled by courtesan Magadhika and tells the way to breach the walls Kunik should follow the method and then only he can conquer Vaishali."

Kunik was astonished at this divine pronouncement. Still, he believed it and ordered for the search of courtesan Magadhika. His spies soon traced Magadhika's whereabouts. When the courtesan came, the king explained her his plan. According to the king's order she at once went in search of ascetic Koolbalak.

Koolbalak was an extremely short tempered and evil ascetic. When he lived with his guru he always misinterpreted what his guru said and quarrelled with him. One day he was going along with his guru on a hilly track when he got angry with his guru on some point. At once, in order to kill his guru,he pushed a large rock from behind the old man. When the guru saw the boulder coming at him he evaded it and saved himself. This despicable act of the disciple angered the guru and he cursed and cast a spell—"Scoundrel! You are so mean that you can resort to killing some one. Go! I curse you that a woman will be the cause of your downfall."

It was the second nature of Koolbalak to go against the words of his guru and try to prove him wrong. In order to prove even these words of the guru wrong, he went at a desolate place and started meditation on the banks of a river. He did not even go into the village to beg food. He lived on any food provided by any passerby, if at all there was such an opportunity. Once the river was in spate. Koolbalak was afraid that he would be swept away. But the effect of his harsh penance was such that the river changed its bed on its own. It was this astonishing event that gave him his popular name Koolbalak.

First of all Magadhika found out about the place where Koolbalak lived. After that she disguised herself as a *shravika* and started living near the river. She impressed Koolbalak with her devotion and services and requested him to accept food from her. When the ascetic came to her cottage for food she mixed some strong purgative in the food and served. The ascetic got acute dysentery. During his sickness the courtesan nursed him. With constant touch of the female body the ascetic was drawn towards her. Finding him in a mental state that suited her purpose Magadhika brought him to king Kunik.

Kunik first pleased the ascetic with his devout behaviour and then asked—"Great ascetic, please show me the way to breach this immense and surrounding wall around Vaishali."

Koolbalak thought for sometime and then replied—"King, I will disguise myself as an augur and enter the city. At the proper time I will give a message by furling a white flag from the parapet. As soon as you see this flag you should retreat a short distance with your army. This will infuse confidence for me in the minds of the citizens.

After Kunik agreed, Koolbalak disguised himself as an augur and easily entered the city. Seeing an augur the prominent citizens of Vaishali approached him and asked—"Sir, king Kunik has surrounded our city. Please tell us how to come out of this predicament." Koolbalak, with the help of his special powers and knowledge, already knew that the *stupa* (a dome shaped religious structure) at the center of the city cast a protective shield on the walls. The moment the *stupa* was demolished the wall could be breached easily. As such, he said to the citizens of Vaishali deceitfully—"Brothers, the *stupa* at the center of the city is the root cause of this problem. As long as that *stupa* is not demolished you cannot be freed from this trouble. When you demolish it Kunik will retreat on his own."

The simple and ignorant citizens were caught in the ascetics trap. They started demolishing the *stupa*. Getting this work started Koolbalak went to the parapet on some pretext and raised a white flag. Following the plan Kunik started retreating with his army. When the citizens saw this, they believed what the augur had said and resumed the demolition work with renewed enthusiasm. Soon the *stupa* was completely demolished and with it ended the divine protection. Kunik was waiting for this moment. He at once launched his attack and breaking the fortification conquered Vaishali. The courtesan used her *parinamiki buddhi* to cause the downfall of the ascetic and Koolbalak misused his *parinamiki buddhi* to demolish the stupa.

This concludes the description of *ashrut nishrit mati-jnana.*

श्रुतनिश्रित मतिज्ञान
SHRUT NISHRIT MATI-JNANA

५३ : *से किं तं सुयनिस्सियं ?*

सुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–

(१) उग्गहे, (२) ईहा, (३) अवाओ, (४) धारणा।

अर्थ–प्रश्न–यह श्रुतनिश्रित मतिज्ञान क्या है?

उत्तर–श्रुतनिश्रित मतिज्ञान चार प्रकार का है, यथा–(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय, और (४) धारणा।

53. Question—What is this *shrut nishrit mati-jnana*?

Answer—*Shrut nishrit mati-jnana* is said to be of four types—*(1) Avagraha, (2) Iha, (3) Avaya, and (4) Dharana.*

विवेचन–अवग्रह–जैन आगमों में उपयोग के दो भेद बताए गए हैं–साकार उपयोग तथा अनाकार उपयोग। इन्हें ही ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग भी कहा है। दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग का पूर्वभावी है अतः यहाँ उसका उल्लेख भी किया है। किसी पदार्थ के साथ इन्द्रिय तथा नो-इन्द्रिय (मन) आदि का यथोचित आंशिक संबंध होने पर उसके अस्तित्व को अर्थात् सत्ता मात्र को समझ पाने वाला सामान्य बोध इसे दर्शन कहते हैं। इसके तत्काल बाद मनुष्यत्व, जीवत्व, द्रव्यत्व आदि सामान्ययुक्त वस्तु को समझ पाने वाला ज्ञान उत्पन्न होता है। इसी को अवग्रह कहते हैं।[1] सरल शब्दों में विशेष्य-विशेषण आदि कल्पनाओं से रहित होने वाला सामान्य ज्ञान अवग्रह कहलाता है।

ईहा–अवग्रह के पश्चात् और अवाय से पूर्व विषय के प्रति उत्पन्न हुई उस ज्ञानात्मक (जानने की) चेष्टा को ईहा कहते हैं, जो ग्रहीत अर्थ की पर्यालोचना करे। सामान्य शब्दों में अवग्रह द्वारा ग्रहण किए हुए सामान्य विषय को विशेष रूप से जानने की जिज्ञासा को ईहा कहते हैं।[2] अवग्रह में सत् व असत् दोनों प्रकार के विषय का ग्रहण होता है। उसका विश्लेषण कर असत् को छोड़कर सत् को ग्रहण करने का कार्य ईहा का है।

अवाय–ईहा क्रिया के फलस्वरूप जो निर्णय होता है उसे अवाय कहते हैं।[3] निश्चय तथा निर्णय अवाय के ही अन्य नाम हैं अर्थात् निश्चयात्मक अथवा निर्णयात्मक ज्ञान को अवाय कहा जाता है।

---

१. विषय-विषयि-सन्निपातानन्तरसमुद्भूत-सत्तामात्रगोचर दर्शनाज्जातमाद्यम्। अवान्तर सामान्याकारविशिष्ट वस्तु ग्रहणमवग्रहः।

२. अवग्रहीतार्थ विशेषाकांक्षणमीहा।

३. ईहित विशेष निर्णयोऽवायः।
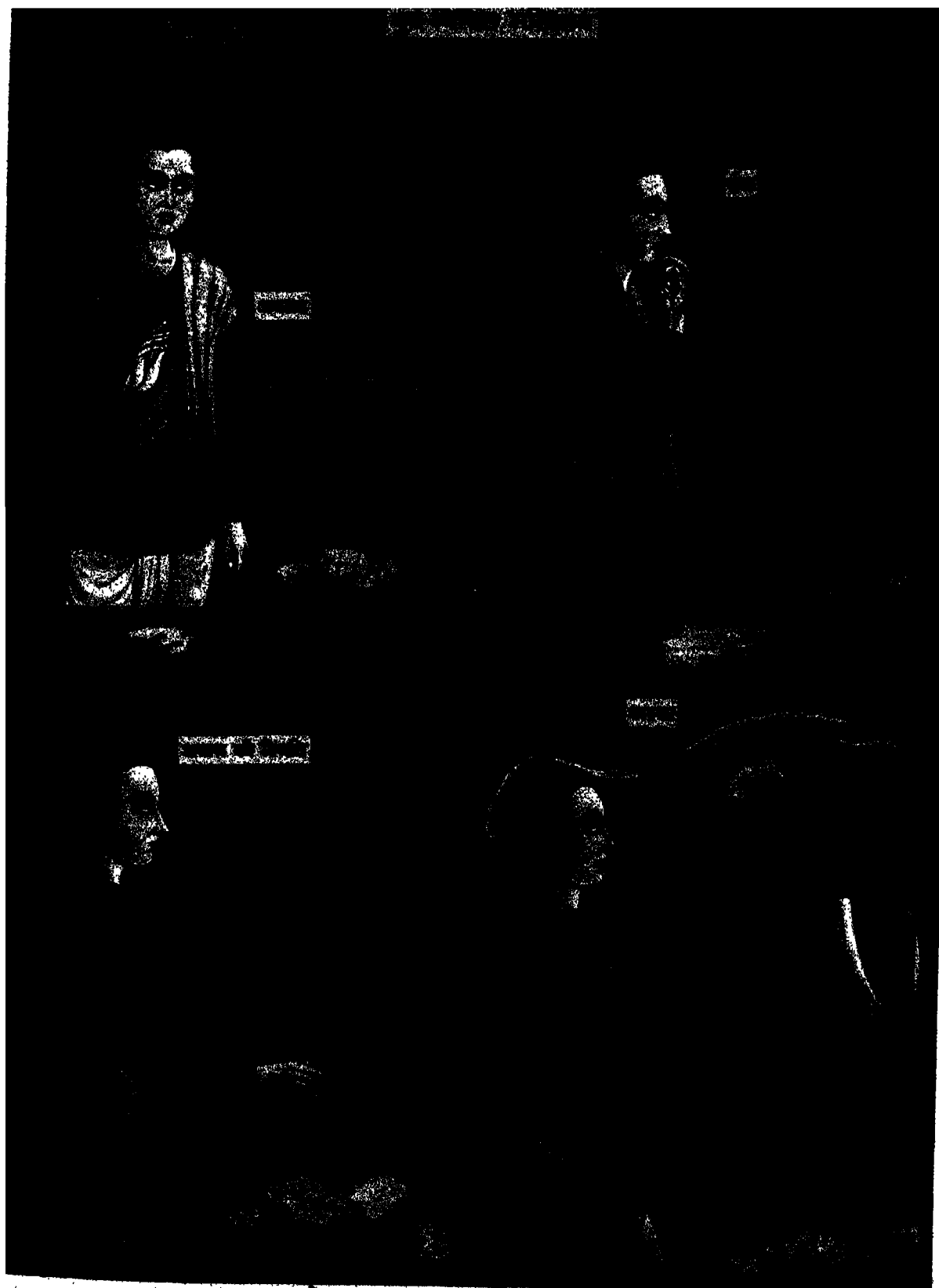
श्रुत-निश्रित मतिज्ञान के चार भेद

१. अवग्रह-(उदाहरण) घने जंगल में दूर खड़ा व्यक्ति बहुत दूर एक छाया रूप आकृति को देखता है। आकृति देखकर उसे सामान्य बोध होता है-कुछ है।

२. ईहा-फिर कुछ देर देखने के बाद वह विचार करता है-यह क्या है? क्या होना चाहिए?

३. अपाय-दूर की छाया आकृति अधिक स्पष्ट होती है और वह सोचता है यह स्थूलकाय आकृति कोई हाथी होना चाहिए। निर्णय की यह स्थिति अपाय है।

४. धारणा-अब तक आकृति बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी है और यह निश्चय स्थिर हो गया कि यह हाथी है। यह स्थिर निर्णय धारणा है। (सूत्र ५३ से ६0 तक)

FOUR TYPES OF SHRUT NISHRIT MATI-JNANA

1. *Avagraha*—(example) In a dense jungle a man sees a hazy shape from a distance. He gets aware of some presence only.

2. *Iha*—After looking at it for sometime he thinks—What is this? What can it be?

3. *Avaya*—The hazy shape gets clearer, and he thinks this large shape should be an elephant. This state of arriving at some conclusion is avaya.

4. *Dharana*—Now the shape is absolutely clear and it is certain that it is an elephant. This conclusive decision is dharana. (53-60)

धारणा—निर्णीत अर्थ को मस्तिष्क में स्थिर करना, धारण करने का नाम धारणा है।[1] निश्चय अल्पकाल तक स्थिर रहता है फिर ध्यान बँट जाने से अथवा विषयान्तर से वह लुप्त हो जाता है। परन्तु उससे ऐसे संस्कार जम जाते हैं जिनसे भविष्य में निमित्त का संयोग मिलने पर वह निश्चित्त विषय याद हो जाता है। ऐसे स्थापित निश्चय को भी धारणा कहते हैं। धारणा के तीन स्तर बताए हैं—

(१) अविच्युति—अवाय में केन्द्रित उपयोग से च्युत या चलित न होना। अथवा ईहा द्वारा प्राप्त निश्चय पर दृढ़ रहना। इस अविच्युति धारणा का अधिकतम काल अन्तर्मुहूर्त्त होता है। छद्मस्थ का कोई भी उपयोग अन्तर्मुहुर्त्त से अधिक काल तक एक विषय पर स्थिर नहीं रहता।

(२) वासना—अविच्युति से उत्पन्न संस्कार जब मन में स्थिर हो जाते हैं तो उन्हें वासना कहते हैं। निश्चय या दृढ़ रहना जब स्वभाव बन जाए तब उसे वासना कह सकते हैं। ये संस्कार संख्यात तथा असंख्यात काल तक रह सकते हैं।

(३) स्मृति—वासना उत्पन्न हो जाने के पश्चात् जब किसी पदार्थ को देखने से अथवा किसी अन्य निमित्त से संस्कार प्रबुद्ध होने के फलस्वरूप जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे स्मृति कहते हैं।

श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के ये चारों भेद इसी निश्चित क्रम से होते हैं। अर्थात् सबसे पहले अवग्रह फिर ईहा होती है। ईहा के बाद अवाय होता है और अवाय के बाद धारणा होती है। यह परम्परा एक-दूसरे से सम्बद्ध है।

Elaboration—Avagrah—In Jain Agams there are said to be two types of *upayog* (indulgence)—with form and formless. These two have also been called *darshanopayog* (indulgence in perception) and *jnanopayog* (indulgence in knowledge). *Darshanopayog* precedes *jnanopayog;* that is why it has also been mentioned here. To generally know about the existence of a thing through its required partial contact with sense organs and mind is called *darshan* or perception. Immediately after this is born the knowledge that understands the thing more specifically, recognizing if it is human, matter or something else. This is called *avagrah.* In simpler terms the simple knowledge devoid of any specific adjectives or other concepts is called *avagrah.*

Iha—The effort, by way of analyzing the perceived information, to intelligently know the subject, that follows *avagrah* and

---

१. स एव दृढतमावस्थापन्नो धारणा।—वादिदेव सूरि प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार परि. २

precedes *avaya* is called *iha*. Generally speaking, the desire to know the superficially perceived subject during *avagrah,* in greater detail is called *iha*. During *avagrah* reality and unreality or true and false both are received. The process of analyzing that information, reject the unreal and accept the real is accomplished by *iha*.

Avaya—The decision arrived at through the activity of *iha* is called *avaya*. Decision and certainty are other names of *avaya*. This means that the decisive or certain knowledge is called *avaya*.

Dharana—To accept or absorb, into the mind or the memory, the so decided meaning is called *dharana*. A decision stays only momentarily. It vanishes the moment the attention is diverted or the subject is changed. But it sticks into the memory as *samskar* (attitude, here the key that activates the specific memory) and surfaces when it is triggered by some coincidence. Such reality, firmly established into memory is also known as *dharana*. There are said to be three levels of *dharana*—

1. Avichyuti—Not to be diverted from the indulgence directed to *avaya*. In other words to be firm on the decision arrived at by *iha*. The maximum duration of this undivided *dharana* is *antarmuhurt*. Any indulgence of a *chhadmasth* does not stick to one subject for more than *antarmuhurt*.

2. Vasana—When the knowledge acquired in the state of *avichyuti* is fixed into the memory as *samskar* it is called *vasana*. When to be firm or to be decisive becomes a habit it may be called *vasana*. These *samskars* may last for countable or uncountable period.

3. Smriti—After *vasana* is acquired, by seeing an object or by some other coincidence the knowledge surfacing as a consequence of profound *samskar* is known as *smriti*.

These four categories of *shrut nishrit mati-jnana* occur essentially in this sequence. Which means that first of all *avagrah* comes into play, then comes *iha*, after *iha* comes *avaya* and after *avaya* comes *dharana*. This sequence is inter-related.

अवग्रह
AVAGRAH

५४ : *से किं तं उग्गहे?*

उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थुग्गहे य वंजणुग्गहे य।

अर्थ—प्रश्न—यह अवग्रह कितने प्रकार का है?

उत्तर—अवग्रह दो प्रकार का बताया गया है—(१) अर्थावग्रह, और (२) व्यंजनावग्रह।

54. Question—What is this *avagrah*?

Answer—*Avagrah* is said to be of two types—
(1) *Arthavagrah*, and (2) *Vyanjanavagrah*.

विवेचन—अर्थ से अभिप्राय है वस्तु अथवा द्रव्य। तथा व्यंजन से अभिप्राय है पर्याय (द्रव्य की अवस्था विशेष) तथा गुणों से। यद्यपि सूत्र में प्रथम अर्थावग्रह तथा फिर व्यंजनावग्रह का उल्लेख है, तथापि उनकी उत्पत्ति का क्रम इससे ठीक विपरीत होता है। पहले व्यंजनावग्रह होता है और फिर अर्थावग्रह।

व्यंजन शब्द का अर्थ है जिसके द्वारा व्यक्त किया जाए अथवा जो व्यक्त हो। उस व्यक्त का ग्रहण द्रव्येन्द्रियों से तथा भावेन्द्रियों से होता है। द्रव्येन्द्रियाँ औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर के "अंगोपाङ्ग नामकर्म" के उदय से प्राप्त होती हैं तथा भावेन्द्रियाँ ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से। साथ ही ये दोनों परस्पर एक दूसरे पर निर्भर रहती हैं। जिस श्रेणी के जीवों में जितनी इन्द्रियाँ होती हैं वे उनके द्वारा उतना ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ एकेन्द्रिय जीव केवल स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा ही अवग्रह कर सकता है। जबकि पंचेन्द्रिय जीव पाँचों इन्द्रियों से। यह व्यंजनावग्रह दर्शनोपयोग के तत्काल पश्चात् होता है। यह मन्दगति अथवा धीरे-धीरे होने वाला है, बिना किसी पूर्व अभ्यास के सहज होता है तथा क्षयोपशम की मंदता में होता है। इसका काल असंख्यात समय है। इसके तीन अंग होते हैं—(१) उपकरणेन्द्रिय, (२) उपकरणेन्द्रिय का अपने ग्राह्य विषय के साथ संयोग, और (३) विषय से व्यक्त होने वाला शब्दादि।

व्यंजनावग्रह के अंत में अर्थावग्रह होता है अर्थात् व्यंजनावग्रह जब पर्यायों तथा गुणों को ग्रहण कर लेता है तब उन पर्यायों तथा गुणों पर आधारित उस द्रव्य अथवा वस्तु-विशेष का अपेक्षाकृत पूर्ण किन्तु सामान्य ज्ञान होता है। व्यंजनावग्रह की अपेक्षा अर्थावग्रह पटुक्रमी अथवा शीघ्र होने वाला होता है, यह अभ्यास द्वारा होता है तथा इसमें क्षयोपशम की अपेक्षाकृत अधिकता रहती है।

यद्यपि मात्र व्यंजनावग्रह के द्वारा ज्ञान संभावित नहीं है किन्तु उसके अन्त में होने वाले अर्थावग्रह के ज्ञानरूप होने से वह ज्ञान का कारण तो है ही। इसी कारण उपचार से इसे भी ज्ञान माना गया है। व्यंजनावग्रह में यदि लेश मात्र भी ज्ञान न हो तो उसकी पूर्णता में अर्थावग्रह (जो ज्ञानरूप है) होना कैसा संभव होगा? अतः अनुमान किया जा सकता है कि व्यंजनावग्रह में भी अव्यक्त ज्ञानांश अवश्य होता है किन्तु अति सूक्ष्म होने के कारण वह प्रतीति में नहीं आता।

Elaboration—*Arth* means a thing or a substance and *vyanjan* means variations or properties (a specific state of *dravya*). Although here first *arthavagrah* is mentioned and then *vyanjanavagrah* but they occur in the reverse order. First comes *vyanjanavagrah* and then *arthavagrah*.

Vyanjan means that which is the means of expression, or that which is expressed. And this expression is perceived by the physical and mental sense organs. The physical sense organs are acquired by fruition of the *angopang-nam-karma* (the karma that is responsible for the major and minor parts of the body) related to *Audarik, Vaikriya* and *Aharak* bodies. The mental sense organs are acquired by the *kshayopasham* of knowledge veiling and perception veiling karmas. Also these both are interdependent. Beings can acquire knowledge in proportion of the number of sense organs they have. For example a one sensed being can receive (*avagrah*) knowledge only through touch, whereas a five sensed being can do so though all the five senses. This *vyanjanavagrah* comes immediately after *darshanopayog* (indulgence in perception). This process is slow and natural and does not require any preceding practice. It occurs when the intensity of *kshayopasham* is low. Its duration is uncountable units of *samaya*. It has three divisions—(1) *Upakaranendriya* (physical sense organ), (2) The union of the sense organ with its subject, and (3) The resultant information expressed as sound, word etc.

When *vyanjanavagrah* is complete then comes *arthavagrah*. When *vyanjanavagrah* receives the variations and attributes, then based on this information is born a superficial but comparatively complete knowledge about that specific thing or subject. As compared to *vyanjanavagrah, arthavagrah* is faster, it requires practice, and there is a comparatively higher degree of *kshayopasham*.

Although knowledge cannot be acquired only with the help of *vyanjanavagrah*, but as at its conclusion comes *arthavagrah*, which is a form of knowledge, it certainly is a means of knowledge. That is why, causally it is accepted as knowledge. If there is a total absence of knowledge in *vyanjanavagrah* how on maturing could it turn into *arthavagrah* which is knowledge. Therefore it can be inferred that no matter how infinitesimal it is, there certainly is a fraction of knowledge existing in *vyanjanavagrah*. However, as it is infinitesimal it is not expressible.

व्यंजनावग्रह के चार भेद
FOUR CATEGORIES OF VYANJANAVAGRAH

५५ : *से किं तं वंजणुग्गहे?*

वंजणुग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-(१) सोइंदिअवंजणुग्गहे, (२) घाणिंदियवंजणुग्गहे, (३) जिब्भिंदियवंजणुग्गहे, (४) फासिंदियवंजणुग्गहे, से तं वंजणुग्गहे।

अर्थ-प्रश्न-इस व्यंजनावग्रह के कितने भेद हैं?

उत्तर-व्यंजनावग्रह चार प्रकार का कहा गया है-(१) श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, (२) घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, (३) जिह्वेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, (४) स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह।

55. Question—Of how many types is this *vyanjanavagrah*?

Answer—*Vyanjanavagrah* is said to be of four types—

(1) *Shrotrendriya vyanjanavagrah*, (2) *Ghranendriya vyanjanavagrah*, (3) *Jihvendriya vyanjanavagrah*, and (4) *Sparshanendriya vyanjanavagrah*.

विवेचन-व्यंजनावग्रह का यहाँ स्वरूप बताया है जब तक रसनेन्द्रिय (जीभ) से रस का बद्ध स्पर्श नहीं होता तब तक उसके द्वारा अवग्रह नहीं हो सकता। स्वाद का ग्रहण तभी होता है जब रस का जीभ से सीधा अथवा घनिष्ट संस्पर्श हो। यही स्थिति स्पर्शन तथा घ्राण इन्द्रियों की है। श्रोत्रेन्द्रिय को ऐसे सीधे या घनिष्ट स्पर्श की आवश्यकता नहीं होती। वह सामान्य स्पर्श मात्र से अवग्रह क्रिया कर लेती है। इन चारों इन्द्रियों को प्राप्यकारी इन्द्रियाँ कहते हैं। इन पर विषय द्वारा किया अनुग्रह उपघात (परस्पर सम्पर्क) होता है।

इसके विपरीत मन एवं चक्षु अपने विषय को दूर से ही ग्रहण कर लेते हैं। नेत्र स्पर्श किए अंजन अथवा रजकण को स्वयं नहीं देख सकते किन्तु दूर रही प्रत्येक वस्तु को देख सकते हैं। इसी प्रकार मन अपने निकट स्पर्श में रहे शरीर के भीतरी अवयवों को स्वयं नहीं जान सकता किन्तु दूर रही वस्तु का चिन्तन स्वस्थान में रहकर कर सकता है। इस कारण इन दोनों को अप्राप्यकारी इन्द्रियाँ कहते हैं। इन पर विषय द्वारा किया अनुग्रह उपघात (सम्पर्क) नहीं होता।

Elaboration—The process of *vyanjanavagrah* has been explained here. As long as there is no intimate contact of tongue with the object of taste it cannot receive the experience of taste. Taste is received or experienced only when the *ras* (the particles that are responsible for imparting taste) are in direct and intimate contact with tongue. The same is true for the sense organs of touch and smell. The sense organ of hearing (*Shrotrendriya*) does not require such intimate and direct contact. It accomplishes the reception through simple or a mere fleeting touch. These four sense organs are called receptive sense organs. The conveyance of information to these sense organs by the thing or subject is through mutual contact.

As against this, mind and eyes receive information of their subject from a distance. The eyes cannot see any particles that are directly touching it but can see everything which is away from them. The mind also cannot know things coming in close contact with it, like the inner organs of the body, but can know things stationed away from it. That is why these two organs are called the non-receptive sense organs. The conveyance of information to these two by the thing or subject is not through mutual contact.

अर्थावग्रह के छह प्रकार
SIX CATEGORIES OF ARTHAVAGRAH

५६ : *से किं तं अत्थुग्गहे?*

अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–(१) सोइंदियअत्थुग्गहे,

(२) चक्खिंदियअत्थुग्गहे, (३) घाणिंदियअत्थुग्गहे, (४) जिब्भिंदियअत्थुग्गहे,

(५) फासिंदियअत्थुग्गहे, (६) नोइंदियअत्थुग्गहे।

अर्थ—प्रश्न—इस अर्थावग्रह के कितने भेद हैं?

उत्तर–अर्थावग्रह छह प्रकार का बताया गया है–(१) श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, (२) चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह, (३) घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, (४) जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह, (५) स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह, तथा (६) नो-इन्द्रिय अर्थावग्रह।

56. Question—What are the types of this *arthavagrah*?

Answer—Arthavagrah is said to be of six types—(1) *Shrotrendriya arthavagrah,* (2) *Chakshurindriya arthavagrah,* (3) *Ghranendriya arthavagrah,* (4) *Jihvendriya arthavagrah,* (5) *Sparshanendriya arthavagrah, and* (6) *No-indriya arthavagrah.*

विवेचन–रूपादि का जो सामान्य मात्र ग्रहण होता है वही अर्थावग्रह है। जैसे एक छोटी-सी चिनगारी को सत् प्रयत्न से प्रकाश-पुँज में परिवर्तन किया जा सकता है वैसे ही सामान्य बोध होने पर जिज्ञासा, चिन्तन, मनन, अनुप्रेक्षा, विमर्श आदि द्वारा उसका विराट् रूप बनाया जा सकता है। अर्थ की जो प्रथम धूमिल-सी झलक मिलती है वही अर्थावग्रह है। यह पाँचों इन्द्रियों तथा मन के माध्यम से होता है।

मन को नो-इन्द्रिय कहा जाता है। मन के दो भेद हैं। एक द्रव्य मन और दूसरा भाव मन। मनःपर्याप्ति नामकर्म के उदय से जीव में वह शक्ति उत्पन्न होती है जिसके द्वारा मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके द्रव्य मन की रचना की जाती है। जैसे योग्य आहार आदि से देह पुष्ट होती है वैसे ही मनोवर्गणा के नए-नए पुद्गलों को ग्रहण करने से मन अपने कार्य का सामर्थ्य बढ़ाता है। अपनी कार्यक्षमता के लिए पुद्गल पर निर्भर होने के कारण वह द्रव्य मन कहलाता है।

द्रव्य मन की क्रिया के फलस्वरूप जीव का मनन रूप जो परिणाम है वह भाव मन कहलाता है। द्रव्य मन के बिना भाव मन का अस्तित्व नहीं होता किन्तु भाव मन से रहित द्रव्य मन का अस्तित्व बना रह सकता है। सामान्यतया मन इन्द्रियों का सहयोगी बना रहता है। जब वह इन्द्रियों की सहायता के बिना स्वतंत्र कार्य करता है तब नोइन्द्रिय अर्थावग्रह घटित होता है।

Elaboration—The superficial perception of form etc. is *arthavagrah*. As a tiny spark can be turned into a source of light with right effort, in the same way simple knowledge can be turned into voluminous knowledge with the help of curiosity, thinking, contemplation, meditation, examination etc. The fleeting glance of information one gets is *arthavagrah*. This is accomplished through five sense organs and mind.

Mind is called *No-indriya*. It has two divisions. One is *dravya* man or physical mind (brain) and the other is *bhava man* or the thinking

mind (mind). With the fruition of the *manah-paryapti namakarma* (the karma responsible for a fully developed mind) a being acquires the power to absorb the manovargana pudgals (particles of mental category or mentite particles) and create the physical organ that is called brain. As the body becomes healthy by nutrition so does the brain by absorbing fresh mentite particles, thereby it increases its capacity. As it is dependent on matter for its capacity it is called physical mind.

The mental activity produced by this physical activity of the brain is called the *bhava man* or the mind. Mind cannot exist without brain but brain can exist without mind. Generally mind works in association with the sense organs. When it works independently without any help from the sense organs then *No-indriya arthavagrah* takes place.

अर्थावग्रह के पाँच नाम
FIVE NAMES OF ARTHAVAGRAH

५७ : *तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा, णाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा–*

१. ओगेण्हणया, २. उवधारणया, ३. सवणया, ४. अवलंबणया, ५. मेहा, से त्तं उग्गहे।

अर्थ–उस अर्थावग्रह के एक अर्थ वाले, अनेक स्वर वाले (दीर्घ, ह्रस्व आदि) अनेक व्यंजन वाले (क, ख आदि व्यंजन हैं) ये पाँच नाम होते हैं। यथा–(१) अवग्रहणता, (२) उपधारणता, (३) श्रवणता, (४) अवलम्बनता, और (५) मेधा।

यही वह अवग्रह का स्वरूप है।

57. That *arthavagrah* has five names having one meaning, many inflections (long, short etc.), and many consonants (b, c, d, and so on)—(1) *Avagrahanata,* (2) *Updharanata,* (3) *Shravanata,* (4) *Avalambanata, and* (5) *Medha.*

This concludes the description of *avagrah.*

विवेचन–प्रथम समय में आत्मा के समक्ष आए हुए शब्द, रूप आदि पुद्गलों का ग्रहण अवग्रह है। इसके एकार्थक किन्तु भिन्न व्यंजनों सहित और भिन्न उच्चारण वाले पाँच नाम बताए हैं। ये पर्यायान्तर नाम भी कहलाते हैं।

(१) अवग्रहणता–जिसके द्वारा शब्दादि पुद्‌गल ग्रहण होते हैं वह व्यंजन-अवग्रह अन्तमुहूर्त्त काल का होता है। उस काल के प्रथम समय में जो अव्यक्त आभास ग्रहण किया जाता है वह अवग्रहण कहलाता है।

(२) उपधारणता–व्यंजन-अवग्रह के शेष समयों में प्रत्येक समय में नए-नए ऐन्द्रियक पुद्‌गलों को ग्रहण करने की क्रिया तथा पूर्व में गृहीत का धारण किए रहना उपधारणता कहलाता है। अन्य शब्दों में इस ज्ञान-व्यापार के विभिन्न समयों को जोड़ता हुआ अव्यक्त से व्यक्त की ओर ले जाने वाले अवग्रह को उपधारणता कहते हैं।

(३) श्रवणता–जो अवग्रह श्रोत्रेन्द्रिय से हो उसे श्रवणता कहते हैं।

(४) अवलम्बनता–अर्थ का ग्रहण करना अवलम्बनता है। अतः जो अवग्रह सामान्य ज्ञान से विशेष की ओर ले जाकर ईहा, अवाय और धारणा तक पहुँचाने वाला हो उसे अवलम्बनता कहते हैं।

(५) मेधा–सामान्य और विशेष दोनों को ग्रहण करने वाले अवग्रह को मेधा कहते हैं।

प्रथम दो भेद व्यंजन-अवग्रह से संबंधित हैं। तीसरा श्रोत्रेन्द्रिय अथवा शब्द से संबंधित है और चौथा तथा पाँचवाँ नियमतः ईहा, अवाय तथा धारणा तक पहुँचाने वाले हैं। कुछ ज्ञानधारा केवल अवग्रह तक ही रह जाती है और कुछ उससे आगे बढ़ने वाली होती है।

Elaboration—The receiving of the particles of sound, form etc. in the first *samaya* is *avagrah.* It is said to have five names having one meaning, different pronunciations, and many consonants. These are also called paryayantar names (names of slight variations in attributes but still falling in the same broad category).

(1) Avagrahanata—The *vyanjanavagrah* that receives the particles of sound etc. lasts for *antarmuhurt* (less than forty eight minutes). The inexpressible indications received during the first *samaya* of this period is called *avagrahanata.*

(2) Updharanata—During the remaining period of *vyanjanavagrah,* every passing *samaya* new particles are received and the already received are contained. This process is called *upadharanata.* In other words during this process of acquisition of knowledge, the *avagrah* that joins different *samayas* into a continuity and transforms the inexpressible into expressible is called *upadharanata.*

(3) Shravanata—The *avagrah* that is accomplished through the sense organ of hearing is called *shravanata.*

(4) **Avalambanata**—The receiving of the meaning is called *avalambanata*. This means that the *avagrah* that leads to *dharana* through *iha* and *avaya* is *avalambanata*.

(5) **Medha**—The *avagrah* that receives the general as well as the particular or the simple as well as detailed is called *medha*.

The first two are related to *vyanjanavagrah*. Third is related to word or sound. The fourth and fifth, as a rule lead to *iha, avaya* and *dharana*. The flow of knowledge in some cases remains only up to *avagrah*, and in others it is progressive.

ईहा के छह प्रकार
SIX TYPES OF IHA

५८ : से किं तं ईहा? ईहा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) सोइंदिय-ईहा (२) चक्खिंदिय-ईहा, (३) घाणिंदिय-ईहा, (४) जिब्भिंदिय-ईहा, (५) फासिंदिय-ईहा, (६) नोइंदिय-ईहा।

तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा– (१) आभोगणया, (२) मग्गणया, (३) गवेसणया, (४) चिंता, (५) वीमंसा, से तं ईहा।

अर्थ–प्रश्न–यह ईहा कितने प्रकार की होती है?

उत्तर–यह ईहा छह प्रकार की होती है जैसे–(१) श्रोत्रेन्द्रिय ईहा, (२) चक्षुरिन्द्रिय ईहा, (३) घ्राणेन्द्रिय ईहा, (४) जिह्वेन्द्रिय ईहा, (५) स्पर्शनेन्द्रिय ईहा, तथा (६) नोइन्द्रिय ईहा।

इसके एक अर्थ वाले, अनेक घोष वाले तथा अनेक व्यंजन वाले पाँच नाम होते हैं। यथा–(१) आभोगनता, (२) मार्गणता, (३) व्यतिरेक, (४) चिन्ता, तथा (५) विमर्श।

यह ईहा का स्वरूप बताया है।

58. Question—What are the types of this iha?

Answer—Iha is said to be of six types—(1) *Shrotrendriya iha*, (2) *Chakshurindriya iha*, (3) *Ghranendriya iha*, (4) *Jihvendriya iha*, (5) *Sparshanendriya iha, and* (6) *No-indriya iha*.

It has five names having one meaning, many inflections and many consonants—(1) *Aabhoganata,* (2) *Marganata,* (3) *Gaveshanata,* (4) *Chinta, and* (5) *Vimarsh.*

This concludes the description of iha.

विवेचन–ईहा के उपरोक्त छह भेद अर्थावग्रह के समान ही इन्द्रिय आश्रित हैं।

इसके पाँच पर्यायान्तर नाम इस प्रकार हैं–

(१) आभोगनता–अर्थावग्रह के पश्चात् वस्तु के यथार्थ अर्थ विशेष की दिशा में प्रेरित पर्यालोचना को आभोगनता कहते हैं।

(२) मार्गणता–अन्वय–(सम्बद्ध) अनुकूल तथा व्यतिरेक–(विरोधी अथवा विपरीत) कर्मों (गुणों) द्वारा पदार्थ को समझने की क्रिया को मार्गणता (अनुसंधान) कहते हैं।

(३) गवेषणता–व्यतिरेक–(विरोधी) को छोड़ अन्वय–(अनुकूल) धर्म के साथ पदार्थ के पर्यालोचन करने को गवेषणता कहते हैं।

(४) चिन्ता–स्वधर्म (निज स्वभाव) पर आधारित यथार्थ अर्थ का विशिष्ट क्षयोपशम द्वारा बार-बार चिन्तन करने को चिन्ता कहते हैं।

(५) विमर्श–उपरोक्त क्रियाओं में स्पष्ट हुए यथाभूत अर्थ की ओर प्रेरित विरोधाभासों को त्याग कर और सम्बद्ध अनुकूल धर्म को बिना त्यागे विचार करने को नाम विमर्श है।

Elaboration—The said six types of *iha,* like those of *arthavagrah,* are based on the sense organs. The five *paryayantar* names are as follows—

(1) Aabhoganata—The analysis directed at the real meaning of a thing after the process of *arthavagrah* is complete, is called *aabhoganata.*

(2) Marganata—The process of understanding a thing through supporting and contradicting attributes is called *marganata* or exploration.

(3) Gaveshanata—The process of understanding a thing by rejecting the contradicting attributes and accepting the supportive attributes is called *gaveshanata.*

(4) Chinta—To contemplate repeatedly the true meaning based on the inherent attributes of a thing through intense *kshayopasham* is called *chinta.*

(5) **Vimarsh**—To think about the inherent meaning arrived at through above mentioned processes, rejecting the contradictions and accepting related supportive attributes, is called *vimarsh.*

अवाय के छह प्रकार
SIX TYPES OF AVAYA

५९ : से किं तं अवाए? अवाए छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा–

(१) सोइंदियअवाए, (२) चक्खिंदियअवाए, (३) घाणिंदियअवाए,

(४) जिब्भिंदियअवाए, (५) फासिंदियअवाए, (६) नोइंदियअवाए।

तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा, नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा– (१) आउट्टणया, (२) पच्चाउट्टणया, (३) अवाए, (४) बुद्धी, (५) विण्णाणे। से तं अवाए।

अर्थ–प्रश्न–यह अवाय कितने प्रकार का बताया है?

उत्तर–अवाय छह प्रकार का बताया है। यथा–(१) श्रोत्रेन्द्रिय अवाय, (२) चक्षुरिन्द्रिय अवाय, (३) घ्राणेन्द्रिय अवाय, (४) रसनेन्द्रिय अवाय, (५) स्पर्शनेन्द्रिय अवाय तथा (६) नोइन्द्रिय अवाय।

इसके एक अर्थ वाले, अनेक घोष वाले तथा अनेक व्यंजन वाले पाँच नाम होते हैं। यथा–(१) आव्रर्तनता, (२) प्रत्यावर्तनता, (३) अवाय, (४) बुद्धि, तथा (५) विज्ञान। यह अवाय का स्वरूप कहा गया है।

59. Question—What are the types of this *avaya*?

Answer—*Avaya* is said to be of six types—

(1) *Shrotrendriya avaya,* (2) *Chakshurindriya avaya,* (3) *Ghranendriya avaya,* (4) *Jihvendriya avaya,* (5) *Sparshanendriya avaya, and* (6) *No-indriya avaya.*

It has five names having one meaning, many inflections, and many consonants—(1) *Aavartanata,* (2) *Pratyavartanata,* (3) *Avaya,* (4) *Buddhi, and* (5) *Vijnana.*

This concludes the description of *avaya.*

विवेचन—अवाय के उपरोक्त छह भेद अर्थावग्रह के समान ही इन्द्रिय आश्रित हैं।

इसके पाँच पर्यायान्तर नाम इस प्रकार हैं—

(१) आवर्तनता—ईहा के पश्चात् निश्चय की ओर बढ़ने वाले बोधरूप परिणाम से पदार्थों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना आवर्तनता कहलाता है।

(२) प्रत्यावर्तनता—आवर्तनता से प्राप्त बोध के पश्चात् ईहा द्वारा ही अर्थों के विशिष्ट ज्ञान-प्राप्ति को प्रत्यावर्तनता कहते हैं।

(३) अवाय—पदार्थों का सम्यक् प्रकार से निश्चय करना अवाय है।

(४) बुद्धि—निश्चयात्मक ज्ञान को बुद्धि कहते हैं।

(५) विज्ञान—निश्चय किए हुए विशिष्टतर ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।

अवाय या निश्चयात्मक ज्ञान के यदि हम पाँच भाग करें तो वह क्रमशः उत्तरोत्तर स्पष्ट, स्पष्टतर और स्पष्टतम बढ़ता ही जाता है। बुद्धि और विज्ञान से ही पदार्थों का सम्यक्तया निश्चय होता है।

Elaboration—The said six types of *avaya,* like those of *arthavagrah,* are based on the sense organs. The five *paryayantar* names are as follows—

(1) Aavartanata—To acquire specialized knowledge of things after completion of *iha* with the intellectual effort in the direction of certainty is called *avartanata.*

(2) Pratyavartanata—To acquire specialized knowledge of the meanings after gaining the knowledge of things through *aavartanata,* with the help of *iha* only is called *pratyavartanata.*

(3) Avaya—The perfect knowledge of things from all angles is called *avaya.*

(4) Buddhi—When the perfection is with greater clarity it is called buddhi.

(5) Vijnana—To acquire specialized perfection of knowledge is called *vijnana.*

These five names of *avaya* or ascertained knowledge are in fact five levels where the clarity and perfection of knowledge gradually increases. With the help of *buddhi* and *vijnana* the perfect and irrefutable knowledge of things is made possible.

धारणा
DHARANA

६० : *से किं तं धारणा?*

धारणा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा– (१) सोइंदिय-धारणा, (२) चक्खिंदिया-धारणा, (३) घाणिंदिय-धारणा, (४) जिब्भिंदिय-धारणा, (५) फासिंदिय-धारणा, (६) नोइंदिय-धारणा।

तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा, नाणावंजणा, पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा– (१) धारणा, (२) साधारणा, (३) ठवणा, (४) पइट्ठा, (५) कोट्ठे।

से त्तं धारणा।

अर्थ–प्रश्न–यह धारणा कितने प्रकार की कही है?

उत्तर–धारणा छह प्रकार की कही हैं। यथा–(१) श्रोत्रेन्द्रिय धारणा, (२) चक्षुरिन्द्रिय धारणा, (३) घ्राणेन्द्रिय धारणा, (४) रसनेन्द्रिय धारणा, (५) स्पर्शनेन्द्रिय धारणा तथा (६) नोइन्द्रिय धारणा।

इसके एक अर्थ वाले, अनेक घोष वाले तथा अनेक व्यंजन वाले पाँच नाम हैं। यथा–

(१) धारणा, (२) साधारणा, (३) स्थापना, (४) प्रतिष्ठा, और (५) कोष्ठ। यह धारणा का स्वरूप बताया है।

60. Question—What is this *dharana*?

Answer—Dharana is said to be of six types—

1) Shrotrendriya dharana, 2) Chaksurindriya dharana, 3) Ghranendriya dharana, 4) Jihvendriya dharana, 5) Sparshanendriya dharana, 6) No-indriya dharana.

It has five names having one meaning, many inflections, and many consonants—*1) Dharana, 2) Sadharana, 3) Sthapana, 4) Pratishtha, and 5) Koshth.*

This concludes the description of *dharana*.

विवेचन–धारणा के भी अर्थावग्रह के समान इन्द्रियों पर आधारित छह भेद हैं। इसके पर्यायान्तर से पाँच नाम इस प्रकार हैं–

(१) **धारणा**–कम से कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक असंख्यात काल बीत जाने पर भी योग्य निमित्त मिलने पर जो स्मृति जाग उठे, उसे धारणा कहते हैं।

(२) साधारणा–जाने हुए अर्थ को बिना भूले अन्तर्मुहूर्त तक धारण किए रखने को साधारणा कहते हैं।

(३) स्थापना–निश्चय रूप में जाने हुए अर्थ को हृदय में स्थापित करने को स्थापना कहते हैं। इसी का अन्य नाम वासना या संस्कार है।

(४) प्रतिष्ठा–अवाय के द्वारा जाने हुए अर्थों को भेद, प्रभेद सहित मन में स्थापित करने को प्रतिष्ठा कहते हैं।

(५) कोष्ठ–सूत्र और अर्थ को मन में सुरक्षित व एक कोष्ठक की तरह धारण करने को कोष्ठ कहते हैं। जैसे कोठे में रखा हुआ धान नष्ट नहीं होता, सुरक्षित रहता है।

अवग्रह, अवाय आदि के रूप में ज्ञान के क्रमिक विकास व स्पष्ट बोध का क्रम बताया गया है, यद्यपि ध्येय एक ही रहता है किन्तु उसकी स्पष्टता क्रमशः बढ़ती जाती है। जिसे विभिन्न नामों से प्रकट किया गया है।

Elaboration—The said six types of *dharama,* like those of *arthavagrah,* are based on the sense organs. The five *paryayantar* names are as follows—

(1) Dharana—It is the memory that surfaces with proper coincidence after a minimum period of *antarmuhurt* (less than 48 minutes) and a maximum of uncountable period of time.

(2) Sadharana—It is to retain in memory, without forgetting, the absorbed meaning or information for *antarmuhurt* (less than 48 minutes).

(3) Sthapana—It is to put to memory the ascertained information. This is also known as *vasana* or *samsakar.*

(4) Pratishtha—is to put into memory the information with divisions and sub-divisions known through *avaya.*

(5) Koshth—It is to keep the text and its meaning safe and secure into memory. *Koshth* means a bin or vault, and things like grain kept in them remains safe.

The sequence of acquisition and gradual development of knowledge has been explained in the form of *avagrah, avaya* etc. Although the subject is the same, its clarity gradually increases. These levels of clarity have been given different names for a better understanding.

अवग्रह आदि का काल परिमाण
THE DURATION

६१ : *(१) उग्गहे इक्कसमइए, (२) अंतोमुहुत्तिआ ईहा, (३) अंतोमुहुत्तिए अवाए, (४) धारणा संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं।*

अर्थ-(१) अवग्रह का काल परिमाण केवल एक समय होता है। (२) ईहा का काल परिमाण अन्तमुहूर्त्त होता है। (३) अवाय का काल परिमाण अन्तर्मुहूर्त्त होता है। (४) धारणा का काल परिमाण संख्यात काल अथवा असंख्यात काल दोनों होता है।

61. (1) The duration of *avagrah* is only one *samaya.* (2) The duration of *iha* is *antarmuhurt* (less than 48 minutes). (3) The duration of *avaya* is *antarmuhurt* (less than 48 minutes). (4) The duration of *dharana* is both countable and uncountable period of time.

विवेचन-ज्ञान की प्रथम अवस्था अवग्रह है। अवग्रह मात्र एक समय का होता है फिर ईहा में बदल जाता है। ईहा अन्तर्मुहूर्त्त तक रहती है और तब अवाय में विकसित हो जाती है। अवाय भी अन्तर्मुहूर्त्त तक रहता है। इसके पश्चात् भी यदि उपयोग उसी में लगा रहे तो वह अवाय नहीं, अविच्युत्ति धारणा कहलाता है। धारणा जीव की आयु के अनुसार संख्यात अथवा असंख्यात काल तक होती है। अर्थात् किसी संज्ञी जीव की आयु असंख्यात काल हो तो धारणा असंख्यात काल तक रहती है। अविच्युति धारणा वासना को दृढ़ करती है।

Elaboration—The first level of knowledge (acquiring of -) is *avagrah.* It lasts only for one *samaya* and then turns into *iha.* The duration of *iha* is *antarmuhurt* (less than 48 minutes) after which it develops into *avaya* which also lasts for *antarmuhurt* (less than 48 minutes). Now if attention or indulgence in it continues it is called *avichyuti dharana* (irreversible reception) and not *avaya.* Depending on the age of the being *dharana* can last for countable or uncountable period of time. In other words if the life span of a sentient being is countable years the duration of *dharana* is also countable years. This *avichyuti dharana* strengthens *vasana.*

व्यंजनावग्रह : प्रतिबोधक का दृष्टान्त
VYANJANAVAGRAH EXAMPLE OF THE CALLER

६२ : *एवं अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियनाणस्स वंजणुग्गहस्स परूवणं करिस्सामि। पडिबोहगदिट्ठंतेण मल्लगदिट्ठंतेण य।*

से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं?

पडिबोहगदिट्ठंतेणं, से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिबोहिज्जा—'अमुगा ! अमुगत्ति !!'

तत्थ चोयगे पन्नवगं एवं वयासी—किं एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? दुसमय-पविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? जाव दससमय-पविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति?

एवं वदंतं चोयगं पण्णवए एवं वयासी—नो एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, जाव नो दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति नो संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति? असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति,

से तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं।

सूत्र—अर्थ—उपरोक्त अट्ठाइस प्रकार के आभिनिबोधिक-मतिज्ञान के व्यंजनावग्रह आदि की प्रतिबोधक तथा मल्लक के उदाहरणों से प्ररूपणा करूँगा। (पूर्वोक्त चार प्रकार का व्यंजनावग्रह, छह प्रकार का अर्थावग्रह, छह प्रकार की ईहा, छह प्रकार का अवाय और छह प्रकार की धारणा)

प्रश्न—प्रतिबोधक के उदाहरण से व्यंजनावग्रह का स्वरूप किस प्रकार है?

उत्तर—प्रतिबोधक का दृष्टान्त इस प्रकार है—जैसे किसी नाम के किसी सोए हुए व्यक्ति को कोई इस प्रकार पुकारे—"हे अमुक ! हे अमुक !"

शिष्य ने गुरु से पूछा—"तब क्या उसके कानों में एक समय में प्रवेश पाए पुद्गल ग्रहण किए जाते हैं, दो समय के, यावत् दस समय के या संख्यात अथवा असंख्यात समय में प्रवेश पाए पुद्गल ग्रहण किए जाते हैं?"

तब गुरु ने शिष्य को समाधान दिया—"एक समय में प्रविष्ट हुए पुद्गल ग्रहण नहीं किए जाते, न दो समय के यावत् दस समय के और न संख्यात समय में प्रविष्ट हुए पुद्गल ग्रहण होते हैं, केवल असंख्यात समयों में प्रविष्ट हुए पुद्गल ही ग्रहण किए जाते हैं। यह प्रतिबोधक के दृष्टान्त से व्यंजनावग्रह के स्वरूप का वर्णन हुआ। (देखें चित्र २१)

62. I will establish the said twenty eight divisions of *abhinibodhik mati-jnana* (four *vyanjanavagrah*, six *arthavagrah*,

six *iha,* six *avaya* and six *dharana)* with the example of *pratibodhak* (the caller) and *mallak* (the earthen bowl).

Question—What is this example of the caller about *Vyanjanavagrah*?

Answer—The example of the caller is like this —

When a caller calls a sleeping person with some name like this—"Hey someone! Hey someone!"

The disciple asks the guru—"Then does his ears receive the particles entering the ears for one *samaya,* two *samaya* and so on up to ten *samaya,* or those entering for countable and uncountable *samayas*?"

The guru explains—"The particles entering the ears in one *samaya* are not received, neither are those entering in two to ten *samaya* or even countable number of *samayas.* Only those entering the ears in uncountable number of *samayas* are received.

This conclude s the description of *vyanjanavagrah* with the help of the example of the caller.

विवेचन–जैन कालगणना के अनुसार 'समय' शब्द काल के पारम्परिक अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता। वहाँ 'समय' काल की सूक्ष्मतम अविभाज्य इकाई का नाम है। सामान्य मापदण्ड पर इसका काल समझने के लिए बताया गया है कि एक बार पलक झपकने में जितना समय लगता है वह असंख्यात समयों के बराबर होता है। अतः एक समय से संख्यात समय तक जो पुद्‌गल कान में प्रविष्ट होते हैं वे किसी भी ज्ञान के अव्यक्त अंशों के प्रेरक होते हैं। व्यक्त अंश के प्रेरक वे पुद्‌गल बनते हैं जो असंख्यात समयों तक प्रविष्ट होते रहते हैं।

व्यंजनावग्रह का कम से कम कालमान एक आवलिका के असंख्येय भाग मात्र होता है और अधिक से अधिक पृथक्त्व (२ से लेकर ९ तक की संख्या) श्वास निश्वास प्रमाण–स्वस्थ व्यक्ति की नब्ज की एक धड़कन के बराबर होते हैं।

चायक का अर्थ है प्रेरक। प्रज्ञापक–कथन करने वाले गुरु के लिए है।

Elaboration—In the Jain system of measurement of time the word 'samaya' is not used in its traditional meaning (*samaya* = time). Here it means the smallest indivisible unit of time. Broadly speaking it is explained as—the time taken in a wink is equivalent to

uncountable number of *samayas*. Accordingly the particles entering ears for one to countable number of *samayas* convey only the inexpressible parts of any information. An expressible knowledge is carried into the ears by those particles that continue to enter the ears for uncountable number of *samayas*.

The minimum duration of *vyanjanavagrah* is only inexpressible fraction of one *avalika* and maximum being *prithaktva* breath (inhalation + exhalation) (this is approximately equal to the duration of a single pulse of healthy human being).

मल्लक का दृष्टान्त
EXAMPLE OF THE BOWL

६३ : *से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं?*

से जहानामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदुं पक्खेविज्जा, से नट्ठे, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि नट्ठे, एवं पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उदगबिंदू जे णं तंसि मल्लगंसि ठाहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं भरिहिति, होही से उदगबिंदू जेणं मल्लगं पवाहेहिति।

एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं-पक्खिप्पमाणेहिं अणन्तेहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरिअं होइ, ताहे 'हुं' ति करेइ, तो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सद्दाइ, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ णं धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं, असंखिज्जं वा कालं।

अर्थ—और वह मल्लक का दृष्टान्त किस प्रकार है?

उत्तर—मल्लक का दृष्टान्त—जैसे कोई पुरुष कुम्हार के अलाव से कोरा प्याला उठावे और उसमें एक बूँद पानी डाले तो वह बूँद नष्ट हो जाती है। तब फिर एक बूँद डाले तो वह भी नष्ट हो जाती है। इस प्रकार निरन्तर बूँदें डालते रहने पर एक बूँद वह होगी जो उसे गीला कर देगी, एक बूँद वह होगी जो उसमें ठहर जाएगी, फिर एक बूँद ऐसी होगी जो पात्र को भर देगी और एक बूँद ऐसी होगी जो प्याले से छलक पड़ेगी।

इसीप्रकार बार-बार डालते रहने पर वह व्यंजन अनन्त पुद्गलों से पूरित होता है। तब वह पुरुष 'हुंकार' करता है किन्तु वह निश्चयपूर्वक यह नहीं जानता कि वह शब्द किसका

है। फिर वह ईहा में प्रवेश करता है और तभी जान पाता है कि वह शब्द किसका है। फिर वह अवाय में प्रवेश करता है और उस सूचना को ज्ञानरूप में परिणत करता है फिर वह धारणा में प्रवेश करता है और उस ज्ञान को संख्यात या असंख्यात काल तक के लिए धारण करता है।

63. Question—What is this example of *mallak* (the bowl)?

Answer—The example of the caller is like this —

If a man lifts a fresh earthen bowl from a potter's kiln and pours a drop of water in it, the drop disappears (soaked into the bowl). He then adds another drop and that too disappears. This way when he keeps on adding drops there will be one drop that will make the bowl wet, one drop that will stay a drop, one drop that will fill the pot, and one drop that will spill out.

In the same way by adding continuously when that *vyanjan* (consonant or sound) is filled with (formed by) infinite particles, then the person utters 'ya', but he is not certain about the source of that sound. After this he enters the state of *iha* and then only he knows about the source of sound. Then he enters the state of *avaya* and converts that information into knowledge. After this he enters the state of *dharana* and absorbs the knowledge in his memory for countable or uncountable period of time.

विवेचन—व्यंजनावग्रह का एक ओर सटीक उदाहरण है यह। मिट्टी का कोरा प्याला जब तक पूरा गीला नहीं हो जाता तब तक पानी सोखता रहता है। ऐसे प्याले में जब बूँद-बूँद पानी डाला जाए तो प्रत्येक बूँद सोखी जाने से नष्ट होती रहती है। यह क्रम तब तक चलता है जब तक पात्र को पूरी तरह गीला कर देने वाली अन्तिम बूँद नहीं डाली जाती। इसके बाद वाली बूँद ही उस पात्र में बूँद रूप में ठहरती है। बूँद डालने का क्रम चलता रहे तो पात्र धीरे-धीरे भरने लगता है और एक बूँद ऐसी पड़ती है जो पात्र को पूरा भर देती है। इसके बाद वाली बूँद पात्र से छलक जाती है।

इसी प्रकार पुकार से निकली ध्वनि के पुद्गल एक-एक समय में कान में प्रवेश पाते हैं और श्रोत्रेन्द्रिय में टकराते रहते हैं। असंख्यात समय तक यह क्रिया चलते रहने पर कान इन पुद्गलों से परिव्याप्त हो जाते हैं तब उस पुरुष का व्यंजनावग्रह पूर्ण होता है और वह 'हुंकार' करता है। इससे पूर्व जब तक वे पुद्गल प्रवेश पाते रहते हैं तब तक उसे अव्यक्त ज्ञान होता रहता है यह क्रिया ही व्यंजनावग्रह है।
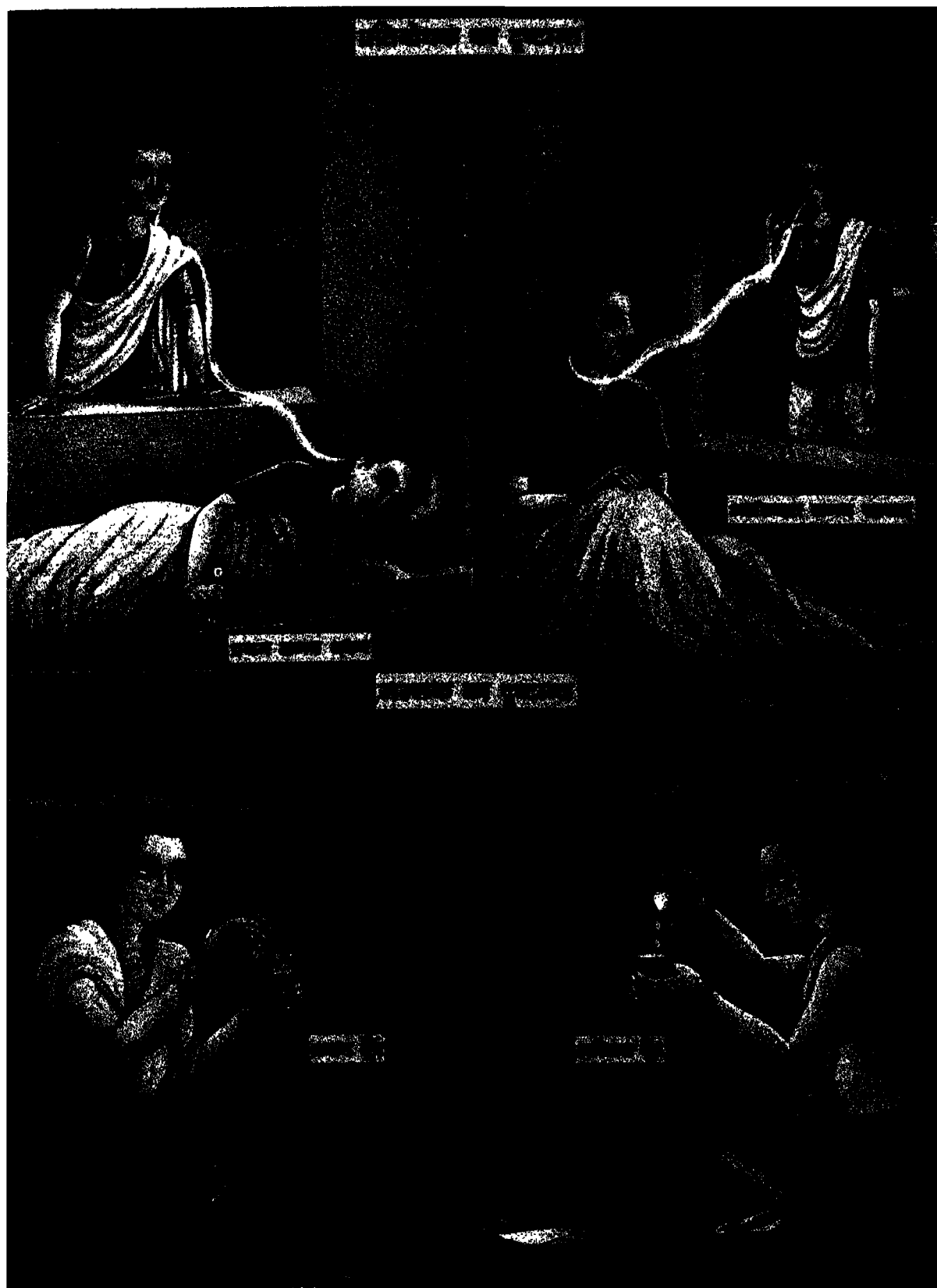
व्यंजनावग्रह : दो दृष्टान्त

१. प्रतिबोधक का दृष्टान्त–कोई व्यक्ति दूर से किसी को नाम लेकर पुकारता है–"ओ भाई" यह शब्द ध्वनियाँ उसके कानों में आकर गिरती हैं। तब सर्वप्रथम उसके भीतर अव्यक्त ज्ञान होता है . . . .

२. बार-बार शब्द ध्वनियाँ कानों में टकराने से कानों में शब्द भर जाते हैं तो वह जाग उठता है, कौन है यह?

इस प्रकार क्रमशः असंख्यात समय के बाद वह प्रतिबुद्ध हो उठता है।

१. मल्लक का दृष्टान्त–एक व्यक्ति कुम्हार के आवे से एक सिकोरा लेता है। उसमें एक-एक बूँद पानी टपकाता है। पानी की बूँद गिरते ही सूख जाती है। बूँद-बूँद गिरते-गिरते सिकोरा गीला होता है। फिर सिकोरा भर जाता है और आखिरी बूँद वह होती है जब सिकोरा भरने के बाद पानी बाहर गिरने लगता है। इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय की मन्द क्षमता के कारण क्रमशः असंख्यात समय पश्चात् ही व्यंजनावग्रह–शब्द को ग्रहण कर पाता है। चित्रानुसार एक प्रथम स्थिति, एक अन्तिम स्थिति समझें। (सूत्र ६३ का वर्णन पढ़ें)

VYANJANAVAGRAH : TWO EXAMPLES

1. *The example of pratibodhak*—Some one calls from a distance—"Hey, brother." These sound waves enter his ears and he first of all acquires inexpressible knowledge. . .

2. With repeated striking of these waves his ears are filled with the sound and he is awakened. The first question is—Who is this?. . . . This process continues and after uncountable samayas he acquires the knowledge.

1. *The example of mallak*—A man picks up a bowl from a potter's kiln. He pours water into it drop by drop. The drop vanishes the moment it touches the bowl. With this drop by drop pouring the bowl becomes wet, then it is filled, and at last the drops spill out of it. In the same way due to the low capacity of the organ of hearing, it receives the sound only after uncountable samayas. The illustrations depict the first and the last stages. (63)

हुंकार करने के समय उसे यह भान नहीं होता कि शब्द क्या है किसका है? ध्वनि पुद्गलों के प्रवेश की क्रिया निरन्तर चलती रहने पर उसकी सुप्त अवस्था भंग होती है और मन में प्रश्न उठते हैं कि यह शब्द कैसा? यह ईहा में प्रवेश की स्थिति है जिसमें एक के बाद एक अनेक प्रश्न उठते हैं जैसे–यह शब्द किसने किया? इस शब्द का इंगित क्या है? आदि। इस ऊहापोह से जब वह ऐसे प्रश्नों के उत्तर निश्चित रूप में जान लेता है तब वह अवाय की स्थिति में होता है। निश्चय कर लेने के पश्चात् वह उस शब्द को स्मृति में धारण कर लेता है। इसे ही धारणा कहते हैं। (देखें चित्र २१)

ये दोनों दृष्टान्त श्रोत्रेन्द्रिय के संबंध में ही है। यही बात अन्य इन्द्रियों के संबंध में भी जाननी चाहिए। श्रोत्रेन्द्रिय को महत्त्व इस कारण दिया गया है कि आत्मोत्थान तथा ज्ञान विकास के मार्ग में अन्य इन्द्रियों से अधिक श्रोत्रेन्द्रिय का घनिष्ट संबंध है क्योंकि वह श्रुतज्ञान मे ही प्रेरित है।

Elaboration—This is another appropriate example of vyanjanavagrah. As long as a fresh earthen pot is not completely wet or saturated, it keeps on soaking water. In such bowl when water is poured drop by drop, every drop is absorbed and lost. This continues till the last drop that makes the bowl saturated with water is dropped. The next drop remains as a drop in that pot. When this drop by drop pouring continues, slowly the pot gets filled and there is one last drop that fills the pot to the brim. The next drop spills out.

In the same way the particles of sound produced by calling a name keep on entering the ears every *samaya* and striking the organ of hearing. When this activity continues for uncountable *samayas* the ears are saturated with these particles and then the reception of the consonant is complete and he utters—'ya'. Before this moment, as long as the particles continue to enter his ears he has inexpressible knowledge. This activity is called *vyanjanavagrah*.

At the moment of saying yes he is not aware of the sound or its source. The particles of sound when further continue to enter his ears his state of sleep is broken, a question arises in his mind that what was that sound? This is the point of entry into the iha state where one after another many questions arise. For example—who produced this sound? what does it indicate?, etc. When in this state of contemplation he knows the answers with certainty he is in the state of *avaya*. After making certain that the answers are correct he absorbs that sound into memory. This activity is called *dharana*.

These two examples are about the sense organ of hearing only. The same is true for the other sense organs. The importance given to the organ of hearing is due to the fact that the organ of hearing is more closely associated with the path of spiritual uplift and development of knowledge which is inspired by the *Shrut-jnana* (the knowledge acquired through hearing or the verbal knowledge or the scriptural knowledge).

अवग्रहादि के छह उदाहरण
SIX EXAMPLES OF AVAGRAH AND OTHERS

६४ : *से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा, तेणं 'सद्दो' त्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ, 'के वेस सद्दाइ'? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ 'अमुगे एस सद्दे।' तओ णं अवायं पविसइ, तओ से अवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं।*

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा, तेणं 'रूवं' ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ 'के वेसरूवं' ति? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ 'अमुगे एस रूवेत्ति' तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं भवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ, संखेज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घाइज्जा, तेणं 'गंधे' त्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ 'के वेस गंधे' त्ति? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ 'अमुगे एस गंधे।' तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रसं आसाइज्जा, तेणं 'रसो' त्ति उग्गहिए नो चेव णं जाणइ 'के वेस रसे' त्ति? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ 'अमुगे एस रसे।' तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं–असंखिज्जं वा कालं।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं फासं पडिसंवेइज्जा, तेणं 'फासे' त्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ 'के वेस फासओ' त्ति? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ 'अमुगे एस फासे'। तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पासिज्जा, तेणं 'सुमिणे' त्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ 'के वेस सुमिणे' त्ति? तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ 'अमुगे एस सुमिणे'। तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं होइ, तओ धारणं पविसइ, तओ धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं।

से त्तं मल्लगदिट्ठंतेणं।

अर्थ–(१) जैसे यथा नामक कोई पुरुष अव्यक्त (अस्पष्ट) शब्द सुनकर "कोई शब्द है" इस प्रकार ग्रहण करता है किन्तु यह नहीं जानता कि यह शब्द किसका है अथवा क्या है? फिर वह ईहा में प्रवेश करता है और तब यह जान पाता है कि वह अमुक शब्द है। फिर वह अवाय में प्रवेश करता है और तब उसे उपगत हो जाता है (निश्चित सूचना आत्मसात होती है)। फिर वह धारणा में प्रवेश करता है और संख्यात अथवा असंख्यात काल तक उस सूचना को स्मृति में धारण किए रखता है।

(२) जैसे यथा नामक कोई पुरुष अव्यक्त (अस्पष्ट) रूप को देखकर "कोई रूप है" इस प्रकार ग्रहण करता है किन्तु यह नहीं जानता कि यह रूप किसका है अथवा क्या है? फिर वह ईहा में प्रवेश करता है और तब यह जान पाता है कि वह अमुक रूप है। फिर वह अवाय में प्रवेश करता है और तब उसे उपगत हो जाता है। फिर वह धारणा में प्रवेश करता है और संख्यात अथवा असंख्यात काल तक उस सूचना को स्मृति में धारण किए रखता है।

(३) जैसे यथा नामक कोई पुरुष अव्यक्त (अस्पष्ट) गंध को सूँघ कर "कोई गंध है" इस प्रकार ग्रहण करता है, किन्तु यह नहीं जानता कि यह गंध किसकी है अथवा क्या है? फिर वह ईहा में प्रवेश करता है और तब यह जान पाता है कि वह अमुक गंध है। फिर वह अवाय में प्रवेश करता है और तब उसे उपगत हो जाता है। फिर वह धारणा में प्रवेश करता है और संख्यात अथबा असंख्यात काल तक उस सूचना को स्मृति में धारण किए रखता है।

(४) जैसे यथा नामक कोई पुरुष अव्यक्त (अस्पष्ट) रस का स्वाद ग्रहण कर "कोई रस है" इस प्रकार ग्रहण करता है किन्तु यह नहीं जान पाता कि यह रस किसका है? अथवा क्या है? फिर वह ईहा में प्रवेश करता है और तब वह जान पाता है कि वह अमुक रस है। फिर वह अवाय में प्रवेश करता है और तब उसे उपगत हो जाता है। फिर वह धारणा में प्रवेश करता है और संख्यात अथवा असंख्यात काल तक उस सूचना को स्मृति में धारण किये करता है।

(५) जैसे यथा नामक कोई पुरुष अव्यक्त (अस्पष्ट) स्पर्श होने पर "कोई स्पर्श है" इस प्रकार ग्रहण करता है किन्तु यह नहीं जान सकता कि यह स्पर्श किसका है अथवा क्या है? फिर वह ईहा में प्रवेश करता है और तब वह जान पाता है कि वह अमुक स्पर्श है। फिर वह अवाय में प्रवेश करता है और तब उसे उपगत हो जाता है। फिर वह धारणा में प्रवेश करता है और संख्यात अथवा असंख्यात काल तक उस सूचना को स्मृति में धारण करता है।

(६) जैसे यथा नामक कोई पुरुष कोई अव्यक्त (अस्पष्ट) स्वप्न देखकर "यह स्वप्न है" इस प्रकार ग्रहण करता है किन्तु यह नहीं जानता कि यह स्वप्न किसका है अथवा क्या है? फिर वह ईहा में प्रवेश करता है और तब वह जान पाता है कि वह अमुक स्वप्न है। फिर वह अवाय में प्रवेश करता है और तब उसे उपगत हो जाता है। फिर वह धारणा में प्रवेश करता है और संख्यात अथवा असंख्यात कालतक उस सूचना को स्मृति में धारण करता है।

64. I. A person with some name hears an indistinct sound. He receives it as 'some sound' but is not aware of the exact sound or its source. He then enters the state of *iha* and then only he knows what sound it is. After this, he enters *avaya* and understands the information. Now he enters *dharana* and absorbs the information into his memory for countable or uncountable period of time.

II. A person with some name sees an indistinct form. He receives it as 'some form' but is not aware of the exact form or its source. He then enters the state of *iha* and then only he knows what form it is. After this he enters *avaya* and understands the information. Now he enters *dharana* and absorbs the information into his memory for countable or uncountable period of time.

III. A person with some name smells an indistinct odour. He receives it as 'some odour' but is not aware of the exact odour or its source. He then enters the state of *iha* and then only he knows what odour it is. After this he enters *avaya* and understands the information. Now he enters *dharana* and absorbs the information into his memory for countable or uncountable period of time.

IV. A person with some name gets an indistinct taste. He receives it as 'some taste' but is not aware of the exact taste or its source. He then enters the state of *iha* and then only he knows what taste it is. After this he enters *avaya* and understands the information. Now he enters *dharana* and absorbs the information into his memory for countable or uncountable period of time.

V. A person with some name gets an indistinct touch. He receives it as 'some touch' but is not aware of the exact touch or its source. He then enters the state of *iha* and then only he knows what touch it is. After this he enters *avaya* and understands the information. Now he enters *dharana* and absorbs the information into his memory for countable or uncountable period of time.

VI. A person with some name sees an indistinct dream. He receives it as 'some dream' but is not aware of the exact dream or its source. He then enters the state of *iha* and then only he knows what dream it is. After this he enters *avaya* and understands the information. Now he enters *dharana* and absorbs the information into his memory for countable or uncountable period of time.

विवेचन—उपरोक्त विवरण के अनुसार व्यंजनावग्रह चक्षु तथा मन को छोड़ अन्य इन्द्रियों में होता है। इन दोनों में अर्थावग्रह होता है। नोइन्द्रिय का अर्थ मन है, जिसकी क्रिया मनन या चिन्तन है। इसके संबंध में अवग्रह को स्पष्ट करने के लिए स्वप्न का उदाहरण दिया है। स्वप्न में द्रव्येन्द्रियाँ निष्क्रिय होती हैं जो भी अनुभूति होती है वह सब मन के द्वारा। जागृत होने पर स्वप्न में अनुभूत सभी क्रियाओं को वह अवग्रह, ईहा अवाय और धारणा तक ले जाता है। यह आवश्यक नहीं कि स्वप्न में देखी हुई सभी बातों को वह धारणा तक ले ही जाए। कुछ बातें अवग्रह तक, कुछ ईहा और कुछ अवाय तक ही रह जाती हैं।

वृत्तिकार आचार्य श्री मलयगिरि ने मल्लक के दृष्टान्तों से व्यंजनावग्रह का स्पष्टीकरण करते हुए प्रसंगवश मतिज्ञान के भेदों का विस्तृत वर्णन भी दिया है। मतिज्ञान के अवग्रह आदि २८ भेद होते हैं। व्यंजनावग्रह—४, अर्थावग्रह—६, ईहा—६, अवाय—६, धारणा—६। इनमें से प्रत्येक के [illegible] १२-१२ भेद होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ३३६ भेद होते हैं।

पाँच इन्द्रियों तथा मन। इन छह निमित्तों द्वारा होने वाला मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय व धारणा रूप २४ भेद होते हैं। इनके विषय की विविधता तथा क्षयोपशम के स्तरानुसार प्रत्येक बारह-बारह प्रकार के क्षमतारूपी भेद होते हैं। बारह भेदों का विवरण इस प्रकार है–

(१) बहुग्राही–संख्या तथा परिमाण दोनों अपेक्षाओं से अधिक ग्रहण करने को बहुग्राही क्षमता कहते हैं। वस्तु के अनेक पर्यायों को जानना, अधिक परिमाण वाले द्रव्य अथवा विषय को जानना आदि इसमें सम्मिलित हैं।

(२) अल्पग्राही–किसी एक ही विषय को या द्रव्य के एक ही पर्याय को अल्प मात्रा में जानने की क्षमता को अल्पग्राही कहते हैं।

(३) बहुविधग्राही–किसी एक वस्तु, द्रव्य या विषय को अनेक प्रकार से जानने की क्षमता को बहुविधग्राही कहते हैं। उदाहरणार्थ वस्तु का आकार-प्रकार, रंग-रूप, लम्बाई-चौड़ाई आदि को विभिन्न स्तरों से समझना।

(४) अल्पविधग्राही–किसी वस्तु, द्रव्य या विषय को अल्प प्रकार से जानने की क्षमता को अल्पविधग्राही कहते हैं।

(५) क्षिप्रग्राही–किसी वक्ता या लेखक के भावों को शीघ्र ही किसी भी इन्द्रिय या मन के द्वारा जान लेना, तथा स्पर्श द्वारा अन्धकार में भी किसी व्यक्ति या वस्तु को पहचान लेने की क्षमता को क्षिप्रग्राही कहते हैं।

(६) अक्षिप्रग्राही–क्षयोपशम की मंदता अथवा विक्षिप्त उपयोग के कारण किसी भी इन्द्रिय या मन के विषय को अनभ्यस्त अवस्था में कुछ विलम्ब से जानने की क्षमता को अक्षिप्रग्राही कहते हैं।

(७) अनिश्रितग्राही–बिना किसी हेतु या निमित्त के उपयोग की एकाग्रता अथवा स्वप्रेरणा से वस्तु के गुण व पर्याय को जानने की क्षमता को अनिश्रितग्राही कहते हैं।

(८) निश्रितग्राही–किसी हेतु, निमित्त, युक्ति आदि के द्वारा वस्तु के गुण पर्याय को जानने की क्षमता को निश्रितग्राही कहते हैं।

(९) असंदिग्धग्राही–किसी वस्तु के गुण व पर्याय को संदेह रहित होकर जानने की क्षमता को असंदिग्धग्राही कहते हैं।

(१०) संदिग्धग्राही–किसी वस्तु के गुण व पर्याय को संदेह सहित जानने की क्षमता को संदिग्धग्राही कहते हैं।

(११) ध्रुवग्राही–किसी वस्तु या विषय को उचित-निमित्त मिलने पर निश्चित रूप से नियमतः जानने तथा चिरकाल तक धारण करने की क्षमता को ध्रुवग्राही कहते हैं।

(१२) अध्रुवग्राही–किसी वस्तु या विषय को उचित निमित्त मिलने पर भी न जान पाने अथवा जान लेने पर भी चिरकाल तक धारण न करने की क्षमता को अध्रुवग्राही कहते हैं।

बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिश्रित, असंदिग्ध तथा ध्रुव इन क्षमताओं के कारणरूप हैं–उपयोग की एकाग्रता, अभ्यस्तता तथा विशिष्ट क्षयोपशम। अल्प, अल्पविध, अक्षिप्र, निश्रित, संदिग्ध तथा अध्रुव इन क्षमताओं के कारण रूप है उपयोग की विक्षिप्तता, अनभ्यस्तता तथा क्षयोपशम की मंदता।

मतिज्ञान के ये ३३६ भेद स्थूल दृष्टि से होते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से तो इसके अनन्त भेद हैं।

मतिज्ञान के उपरोक्त चार मुख्य विभाजन क्रमबद्ध हैं। ज्ञान सदा ही अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा इसी क्रम में पूर्ण होता है। अपूर्ण रहने की स्थिति में भी वह इसी क्रम से स्तरानुसार अपूर्ण रह जाता है। कभी वह अवग्रह तक कभी ईहा तक तो कभी अवाय तक ही रह जाता है। अवग्रह में आया हुआ विषय प्रयास से विकसित किया जाता है। धारणा शक्ति जितनी दृढ़ हो ज्ञान उतना ही विकास पाता है।

Elaboration—According to the above mentioned details *vyanjanavagrah* is a process involving all sense organs except eyes and mind. These two have *arthavagrah*. *No-indriya* means mind, and its activity is thinking or contemplating. To clarify *avagrah* in its context the example used is dream. While dreaming, the physical sense organs are generally inactive. All the experiences are done by mind which when awake takes the dream experiences to *avagrah, iha, avaya* and *dharana*. It is not necessary that it take all the things seen in a dream up to the level of *dharana*. Some things remain only up to *avagrah*, others up to *iha* and still others upto *avaya*.

Acharya Malayagiri, the commentator *(in vritti)*, while clarifying *vyanjanavagrah* with the help of the example of *mallak*, has also given detailed description of *mati-jnana*. There are 28 categories of *mati-jnana* (four *vyanjanavagrah*, six *arthavagrah*, six *iha*, six *avaya*, and six *dharana*). Of these, each has 12 sub-categories with reference to capacity, taking the total to 336.

The *mati-jnana* acquired through six means—five sense organs and mind—has twenty four categories based on *avagrah, iha, avaya*, and *dharana*. Each of these have 12 divisions in terms of capacity depending upon variations in subjects and levels of *kshayopasham*. These twelve divisions are as follows —

1. **Bahugrahi**—This is the capacity to absorb more in terms of numbers and volume. To know many modes and forms of a thing, to know about a thing or subject of larger volume, etc. are included in this.

2. **Alpagrahi**—This is the capacity to know only one mode of a thing or subject and that too to a minute degree.

3. **Bahuvidhagrahi**—This is the capacity to know a thing, substance, or subject in many ways. For example, to understand the type, form, shape, colour, length, breadth, etc. from varied perspectives.

4. **Alpavidhagrahi**—This is the capacity to know a thing, substance, or subject in fewer ways.

5. **Kshipragrahi**—This is the capacity to know the thoughts of a speaker or a writer through any sense organ or mind; also to recognize a thing or a person by a mere touch, in the dark.

6. **Akshipragrahi**—This is the capacity to know any subject of any sense organ or mind with slow speed in an unpracticed state caused by lower degree of *kshayopasham* or diverted attention.

7. **Anishritgrahi**—This is the capacity to know the properties and variations of a thing merely through focussed attention or inspiration even in absence of any cause or a medium.

8. **Nishritgrahi**—This is the capacity to know the properties and variations of a thing only with the help of some cause, medium, reason, etc.

9. **Asandigdhagrahi**—This is the capacity to know the properties and variations of a thing without any ambiguity.

10. **Sandigdhagrahi**—This is the capacity to know the properties and variations of a thing with ambiguity.

11. **Dhruvagrahi**—This is the capacity to know a thing or a subject on getting proper medium in a proper way with certainty and to retain the information always.

12. **Adhruvagrahi**—This is the absence of capacity to know a thing even after getting proper medium or to retain the information always, if known.

The inspiring causes of *Bahu, Bahuvidha, Kshipra, Anishrit, Asandigdha,* and *Dhruva,* these six capacities are focussing of attention, practice, and higher degree of *kshayopasham.* The inspiring causes of *Alpa, Alpavidha, Akshipra, Nishrit, Sandigdha,* and *Adhruva,* these six capacities are wavering attention, absence of practice, and lower degree of *kshayopasham.*

These are the 336 broad divisions of mati-jnana. The minute divisions are infinite.

The above said four main divisions of *mati-jnana* are sequential. Knowledge becomes complete in this order—*avagrah, iha, avaya,* and *dharana.* Even when incomplete it follows the same sequence. Some times the progress is terminated at *avagrah*, some times at *iha,* and some times at *avaya.* The subject in the state of *avagrah* develops only with an effort. The development of knowledge is in proportion to the capacity of *dharana.*

मतिज्ञान का विषय वर्णन
THE SUBJECTS OF MATI-JNANA

६५ : *तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ।*

(१) तत्थ दव्वओ णं आभिणिबोहिअनाणी आएसेणं सव्वाइं दव्वाइं जाणइ, न पासइ।

(२) खेत्तओ णं आभिणिबोहिअनाणी आएसेणं सव्वं खेत्तं जाणइ, न पासइ।

(३) कालओ णं आभिणिबोहिअनाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ, न पासइ।

(४) भावओ णं आभिणिबोहिअनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ, न पासइ।

अर्थ—वह आभिनिबोधिक मतिज्ञान संक्षेप में चार प्रकार का बताया है—(१) द्रव्य विषयक, (२) क्षेत्र विषयक, (३) काल विषयक, और (४) भाव विषयक।

(१) द्रव्य विषयक मतिज्ञान से मतिज्ञानी सामान्य रूप से सर्व द्रव्यों को जानता है किन्तु देखता नहीं।

(२) क्षेत्र विषयक मतिज्ञान से वह सर्व क्षेत्र को जानता है किन्तु देखता नहीं।

(३) काल विषयक मतिज्ञान से वह तीनों कालों को जानता है किन्तु देखता नहीं।

(४) भाव विषयक मतिज्ञान से वह उन भावों को जानता है किन्तु देखता नहीं।

65. In brief this *abhinibodhik mati-jnana* is said to be of four types—1. about substance, 2. about area, 3. about time, and 4. about modes.

1. With the help of *mati-jnana* about substance a *mati jnani* generally knows all substances but does not see them.

2. With the help of *mati-jnana* about area a *mati jnani* generally knows all areas but does not see them.

3. With the help of *mati-jnana* about time a *mati jnani* generally knows all the three divisions of time—past, present, and futures—but does not see them.

4. With the help of *mati-jnana* about modes a *mati jnani* generally knows all modes but does not see them.

विवेचन—सूत्र में आदेश शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ भेद अथवा प्रकार है। किसी वस्तु को किसी प्रकार से जानने का अर्थ है उसको विभिन्न प्रकारों के सतही रूप से जानना। प्रत्येक प्रकार को उसकी पूर्ण गहराई से जानना विशिष्ट रूप से जानना अथवा गहराई में जानना होता है। यहाँ यह "सामान्य रूप" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हैं।

Elaboration—In these sentences the word '*adesh*' has been used, which means types or categories. To know some thing in some ways means to know it superficially in various ways. To know it in depth means to know all its aspects every way. Here it has been used in the sense of 'generally'.

आभिनिबोधिक ज्ञान विषय का उपसंहार
CONCLUSION

६६ : *उग्गह ईहाऽवाओ य, धारणा एवं हुंति चत्तारि।*
आभिणिबोहियनाणस्स, भेयवत्थू समासेणं॥

अर्थ—आभिनिबोधिक मतिज्ञान के संक्षेप में चार क्रमबद्ध विभाजन होते हैं अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

६७ : *अत्थाणं उग्गहणम्मि, उग्गहो तह वियालणे ईहा।*
ववसायम्मि अवाओ, धरणं पुण धारणं बिंति॥

अर्थ—६७—अर्थों के अवग्रहण (प्रथम बोध) को अवग्रह उनके पर्यालोचन—विचारणा को ईहा, निश्चयात्मक निर्णय को अवाय तथा उपयोग की अविच्युति, (स्थिरता) स्मृति और वासना को धारणा कहते हैं।

६८ : *उग्गह इक्कं समयं, ईहावाया मुहूत्तमद्धं तु।*
कालमसंखं संखं च, धारणा होइ नायव्वा॥

अर्थ—६८—अवग्रह का काल परिमाण एक समय, ईहा और अवाय का काल प्रमाण अर्द्धमुहूर्त तथा धारणा का संख्यात व असंख्यात काल पर्यन्त जानना चाहिए।

६९ : *पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु।*
गंधं रसं च फासं च, बद्ध-पुट्ठं वियागरे॥

अर्थ—६९—श्रोत्रेन्द्रिय को जो छूता है वही शब्द सुनाई देता है किन्तु रूप बिना नेत्र से छूए ही देखा जाता है। गन्ध, रस और स्पर्श को बद्ध स्पृष्ट अर्थात् प्रगाढ़ सम्पर्क के द्वारा जाना जाता है।

७० : *भासा-समसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ।*
वीसेणी पुण सद्दं, सुणेइ नियमा पराघाए।

अर्थ—७०—बोलने वाले के द्वारा उच्चारित भाषा के पुद्गल समूह को समश्रेणी में स्थित श्रोता मिश्रितरूप से सुनता है। विश्रेणि में स्थित श्रोता नियमतः पराघात होने पर ही सुन पाता है।

66. In brief there are four sequential divisions of *abhinibodhik mati-jnana—avagrah, iha, avaya,* and *dharana.*

67. The first encounter with or the reception of meaning (information) is called *avagrah.* The analysis of the received information is *iha.* The ascertaining decision is *avaya.* The stability of indulgence (*avichyuti*) in that is memory *(smriti),* and involvement in or attachment *(vasana)* with it is *dharana.*

68. The duration of *avagrah* is one *samaya,* that of *iha* and *avaya* is *antarmuhurt* (less than 48 minutes), and that of *dharana* is both countable and uncountable period of time.

69. Sound is heard through a fleeting contact with organ of hearing but form is seen without contact. Smell, taste are experienced by intimate contact.

70. The bunch of particles of sound uttered by a speaker are heard by a listener at the same level in the transferred form. A listener at a different level, as a rule, hears only when there is a shift in the level of transference.

विवेचन—कोई व्यक्ति जब किसी शब्द का उच्चारण करता है तो वह भाषा वर्गणा के पुद्गलों को शब्द या वचन और फिर वचनरूप में परिणत कर प्रसारित कर देता है। ये पुद्गल आकाश की विभिन्न दिशाओं में रही विभिन्न श्रेणियों में आगे बढ़ते हैं। किन्तु यह आगे बढ़ने की क्रिया आकाश में रहे अन्य भाषा वर्गणा के पुद्गलों से टकराते रहने के माध्यम में होती है। जिस श्रेणी में ये पुद्गल प्रवाहित हो रहे हैं उस श्रेणी में रहा श्रोता यह टकराई हुई अर्थात् मिश्रित रूप वाली भाषा ही सुनता है।

सामान्यतया ये भाषा वर्गणा के पुद्गल श्रेणी विशेष में ही आगे बढ़ते हैं। किन्तु परस्पर टकराने के कारण कुछ पुद्गलों का श्रेणी परिवर्तन हो जाता है; इसे पराघात कहते हैं। विश्रेणी में रहा श्रोता केवल पराघात होने पर ही सुनता है अन्यथा नहीं।

Elaboration—When a person utters some sound he transforms the particles of sound in words and then speech and transmits them. These particles proceed in different directions at different levels in space. But this act of progression is facilitated by collision with other particles of sound present in space. A listener located at the same level at which these particles are moving only hears this collided or transferred sound (mixed form of sound). Generally these sound particles proceed only at a specific level. But the collision with other particles makes some particles shift into another level. This is called *paraghat* or shift of level. A listener at different level hears only when this shift occurs, otherwise not.

७१ : *ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।*
सन्ना-सई-मई-पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं॥
से त्तं आभिणिबोहियनाणपरोक्खं, से त्तं मइनाणं॥

अर्थ—ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति, प्रज्ञा व बुद्धि ये सब शब्द आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायवाची नाम हैं। मतिज्ञान की चर्चा पूर्ण हुई।

71. *Iha, apoh, vimarsh, margana, gaveshana, sanjna, smriti, mati, prajna, and buddhi* are all synonyms of *abhinibodhik jnana.*

This concludes the description of *mati-jnana.*

विवेचन—मतिज्ञान के पर्यायवाची शब्द हैं—

(१) ईहा—उपयुक्त अर्थ की विचारणा।

(२) अपोह—निश्चय करना।

(३) विमर्श—ईहा और अवाय के बीच होने वाली विचार क्रिया।

(४) मार्गणा—अन्वय (सम्बन्ध) धर्मों की खोज करना।

(५) गवेषणा—व्यतिरेक विपरीत धर्मों से तुलना करना।

(६) संज्ञा—अतीत में अनुभूत तथा वर्तमान में अनुभव की जाने वाली वस्तु के बीच एकता की खोज करना।

(७) स्मृति—अतीत में अनुभव की हुई वस्तु का स्मरण।

(८) प्रज्ञा—विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न क्षमता द्वारा यथावस्थित वस्तुगत धर्म का पर्यालोचन करना।

(९) मति—जो ज्ञान वर्तमान विषय का ग्राहक हो।

(१०) बुद्धि—अवाय का अंतिम परिणाम।

विशेष—जातिस्मरणज्ञान, जो मतिज्ञान का ही एकरूप है, के द्वारा अधिकतम संज्ञी के रूप में हुए नौ सौ भवों की जानकारी हो सकती है। जब मतिज्ञान की पूर्णता हो जाती है तब वह नियमतः अप्रतिपाती हो जाता है। उसके होने पर केवलज्ञान निश्चित है। किन्तु जघन्य-मध्यम (निम्नतम तथा मध्यम) मतिज्ञानी को केवलज्ञान हो भी सकता है और नहीं भी।

Elaboration—The synonyms of *mati-jnana* are—

1. *Iha*—the conceiving of the proper meaning.

2. *Apoh*—to ascertain.

3. *Vimarsh*—the intervening thought process between *iha* and *avaya*.

4. *Margana*—the search for supporting values.

5. *Gaveshana*—the comparison with opposing values.

6. *Sanjna*—to find similarities between the experiences of the past and the thing being experienced now.

7. *Smriti*—to recall the thing experienced in the past.

8. *Prajna*—to analyze and understand the inherent properties of a thing with the help of the capacity born out of special *kshayopasham.*

9. *Mati*—the knowledge that perceives the subject presently under consideration or observation.

10. *Buddhi*—The ultimate development of *avaya.*

Special—With the help of *jatismaran jnana,* which is a form of *mati-jnana,* one can know a maximum number of 900 earlier births as a sentient being. When the *mati-jnana* reaches its full capacity it becomes *apratipati* or indestructible. Once this state is reached *Kewal-jnana* is inevitable. But a person having minimum or middle level of *mati-jnana* may or may not attain *Kewal-jnana.*
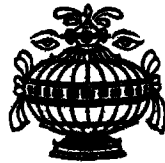
श्रुतज्ञान

SHRUT-JNANA

७२ : से किं तं सुयनाणपरोक्खं?

सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पन्नत्तं, तं जहा-(१) अक्खरसुयं, (२) अणक्खर-सुयं, (३) सण्णि-सुयं, (४) असण्णि-सुयं, (५) सम्मसुयं, (६) मिच्छसुयं, (७) साइयं, (८) अणाइयं, (९) सपज्जवसियं, (१०) अपज्जवसियं, (११) गमियं, (१२) अगमियं, (१३) अंगपविट्ठं, (१४) अणंगपविट्ठं।

अर्थ-प्रश्न-यह श्रुतज्ञान-परोक्ष, कितने प्रकार का है?

उत्तर-श्रुतज्ञान-परोक्षके चौदह भेद इस प्रकार हैं-

(१) अक्षरश्रुत, (२) अनक्षरश्रुत, (३) संज्ञिश्रुत, (४) असंज्ञिश्रुत, (५) सम्यक्श्रुत, (६) मिथ्याश्रुत, (७) सादिकश्रुत, (८) अनादिकश्रुत, (९) सपर्यवसितश्रुत, (१०) अपर्यवसितश्रुत, (११) गमिकश्रुत, (१२) अगमिकश्रुत, (१३) अंगप्रविष्टश्रुत तथा (१४) अनंगप्रविष्टश्रुत।

72. Question—What are the types of this *shrut-jnana paroksh*?

Answer—*Shrut-jnana paroksh* is said to be of fourteen types—*1. Akshar shrut, 2. Anakshar shrut, 3. Sanjni shrut, 4. Asanjni shrut, 5. Samyak shrut, 6. Mithya shrut, 7. Sadik shrut, 8. anadik shrut, 9. Saparyavasit shrut, 10. Aparyavasit shrut, 11. Gamik shrut, 12. Agamik shrut, 13. Angapravisht shrut, and 14. Anangapravisht shrut.*

विवेचन-मतिज्ञान के समान ही श्रुतज्ञान भी परोक्ष ज्ञान है। मतिज्ञान होने पर श्रुतज्ञान होता है अथवा मतिपूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है अतः इसका वर्णन मतिज्ञान के पश्चात् किया है।

वास्तव में प्रथम दो भेद मुख्य हैं। अक्षरश्रुत तथा अनक्षरश्रुत। इन दोनों में अन्य भेद समाविष्ट हो जाते हैं। किन्तु सामान्य बुद्धि धारक व्यक्तियों के लाभ के लिए इनका विस्तार कर १४ भेद कर दिये गए हैं।

Elaboration—Like *mati-jnana*, *shrut-jnana* is also indirect knowledge. *Shrut-jnana* is acquired after having *mati-jnana*. In other words *shrut-jnana* can be acquired only with the help of *mati-jnana*. Therefore it has been mentioned after *mati-jnana*.

Out of tnese 14 types the first two are the main categories. These two combine within them all the other categories. However, to make it easy to understand for common man these have been expanded into 14.

अक्षरश्रुत का विस्तार
AKSHAR SHRUT

७३ : से किं तं अक्खरसुअं?

अक्खरसुअं तिविहं पन्नत्तं, तं जहा–(१) सन्नक्खरं, (२) वंजणक्खरं, (३) लद्धिअक्खरं।

(१) से किं तं सन्नक्खरं? अक्खरस्स संठाणागिई, से तं सन्नक्खरं।

(२) से किं तं वंजणक्खरं? वंजणक्खरं अक्खरस्स वंजणाभिलावो, से तं वंजणक्खरं।

(३) से किं तं लद्धिअक्खरं? लद्धि-अक्खरं अक्खर-लद्धियस्स लद्धिअक्खरं समुप्पज्जइ, तं जहा–सोइन्दिय-लद्धि-अक्खरं, चक्खिंदिय-लद्धि-अक्खरं, घाणिंदिय-लद्धि-अक्खरं, रसणिंदिय-लद्धि-अक्खरं, नोइंदिय-लद्धि-अक्खरं।

से तं लद्धि-अक्खरं, से तं अक्खरसुअं।

अर्थ–प्रश्न–यह अक्षर श्रुत क्या है कितने प्रकार का है?

उत्तर–अक्षरश्रुत तीन प्रकार का बताया है–(१) संज्ञा अक्षर, (२) व्यंजन अक्षर, (३) लब्धि अक्षर।

प्रश्न–संज्ञा अक्षर क्या है

उत्तर–अक्षर का संस्थान आकृति आदि संज्ञा अक्षर है।

प्रश्न–व्यंजन अक्षर क्या है?

उत्तर–अर्थात् जो मुख से उच्चारित हो वह व्यंजन अक्षर है।

प्रश्न–लब्धि अक्षर क्या है?

उत्तर–अक्षरलब्धि वाले जीव को लब्धि अक्षर उत्पन्न होता है। जैसे श्रोत्रेन्द्रियलब्धि अक्षर, चक्षुरिन्द्रियलब्धि अक्षर, घ्राणेन्द्रियलब्धि अक्षर, रसनेन्द्रिय लब्धि अक्षर, स्पर्शनेन्द्रियलब्धि अक्षर तथा नोइन्द्रियलब्धि अक्षर।

73. Question—What is this *akshar shrut*?

Answer—*Akshar shrut* is said to be of three types—1) *Sanjna akshar*, 2) *Vyanjana akshar*, and 3) *Labdhi akshar*.

Question—What is this *Sanjna akshar*?

Answer—The shape or structure of *akshar* (letter) is *sanjna akshar*.

Question—What is this *Vyanjana akshar*?

Answer—That which is pronounced vocally is *vyanjana akshar*.

Question—What is this *Labdhi akshar*?

Answer—A being with the *akshar labdhi* (vocal power) is capable of acquiring the knowledge called *labdhi akshar*. For example *Shrotrendriya labdhi akshar, Chaksurindriya labdhi akshar, Ghranendriya labdhi akshar, Jihvendriya labdhi akshar, Sparshanendriya labdhi akshar, and No-indriya labdhi akshar*.

विवेचन—जिसका क्षय न हो वह अक्षर होता है। ज्ञान जीव का शाश्वत स्वभाव है। ज्ञान का अस्तित्व समाप्त हो जाए तो जीव का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। जीव का अक्षय गुण होने के कारण ज्ञान का पर्यायवाची शब्द है अक्षर। यह भाव की अभिव्यक्ति के लिए जो रूप लेता है उसे भी अक्षर ही कहते हैं। अक्षरश्रुत के तीन भेद इसी आधार पर किए गए हैं।

(१) संज्ञाक्षर—अक्षर की संज्ञा जिसे दी गई हो वह संज्ञाक्षर है। अन्य शब्दों में जिस आकृति या रूप से जो अक्षर विशेष पहचाना जाता है उसे संज्ञाक्षर कहते हैं। विभिन्न लिपियों के विभिन्न ध्वनियों के परिचायक चिह्नों को अर्थात् वर्णाक्षरों को संज्ञाक्षर कहते हैं। जैसे—अ, आ, क, ख आदि।

(२) व्यंजनाक्षर—अक्षर का अर्थमय ध्वनिरूप व्यंजनाक्षर है। जब हम कोई अक्षर या अक्षर समूह उच्चारित करते हैं तो शब्द और वाक्यों का निर्माण होता है और इन वाक्यों के संगठित रूप से भावों की अभिव्यक्ति होती है जो अनेक रूप में संकलित की जा सकती है; जैसे लेख, नाटक, कविता, ग्रन्थ आदि। संक्षेप में लिपि आदि संज्ञाक्षर है तथा पुस्तक आदि व्यंजनाक्षर है।

(३) लब्धि अक्षर—अक्षर का भावरूप लब्धि-अक्षर है। ध्वनि सुनकर अथवा रूप देखकर उसमें निहित अर्थ को अनुभवपूर्वक समझना ही भावरूप अथवा ज्ञानरूप है। अन्य शब्दों में—शब्द ग्रहण होने के पश्चात् इन्द्रिय और मन के निमित्त से जो शब्दार्थ के पर्यालोचन के अनुसार ज्ञान उत्पन्न होता है उसे लब्ध्यक्षर कहते हैं।

स्थूल रूप से ऐसा लगता है कि लब्धि अक्षर केवल संज्ञी जीवों को ही होता है। किन्तु वस्तुतः इन्द्रिय के अभाव में भी भाव का अभाव नहीं होता। विकलेन्द्रिय व असंज्ञी जीवों को भी क्षयोपशम भाव होता है। अतः उन्हें भी भावश्रुत की प्राप्ति होती है चाहे वह अव्यक्त ही हो। ऐसे जीवों में भी आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुन संज्ञा, तथा परिग्रह संज्ञा होती है। संज्ञा का अर्थ है तीव्र अभिलाषा। अभिलाषा अव्यक्त होने पर भी शब्दानुग्राही है। अतः ऐसे जीवों को भी लब्धि अक्षर माना गया है। यह छह प्रकार का बताया है–

(१) श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि अक्षर–शब्द, भाषा, ध्वनि तथा उसके आरोह-अवरोहादि से अभिप्राय समझ लेना।

(२) चक्षुरिन्द्रियलब्धि अक्षर–पुस्तक आदि पढ़कर, संकेत देखकर, हाव-भाव अथवा इंगित देखकर अभिप्राय समझ लेना।

(३) घ्राणेन्द्रिय लब्धि अक्षर–गन्ध तथा गंध में परिवर्तन द्वारा अभिप्राय समझ लेना।

(४) रसनेन्द्रिय लब्धि अक्षर–स्वाद तथा स्वाद परिवर्तन द्वारा अभिप्राय समझ लेना।

(५) स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि अक्षर–स्पर्श तथा स्पर्श परिवर्तन द्वारा अभिप्राय समझ लेना।

(६) नोइन्द्रिय लब्धि अक्षर–भावना अथवा चिन्तन द्वारा अभिप्राय समझ लेना।

मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान दोनों ही पाँच इन्द्रियों तथा मन के निमित्तों से उत्पन्न होती हैं। ये क्रमशः होते हैं। मतिज्ञान कारण है और श्रुतज्ञान कार्य। मतिज्ञान स्वभावजन्य व सामान्य है और श्रुतज्ञान चेष्टाजनित व विशेष है। मतिज्ञान अनभिव्यक्त है और श्रुतज्ञान अभिव्यक्त होता है।

Elaboration—That which does not decay or deplete is called *akshar*. *Jnana* is the eternal and inherent activity of a being. When the existence of *jnana* comes to an end, the being ceases to exist. As it is the non-decaying attribute of a soul, *jnana* is also known as *akshar*. In other words it is a synonym of *jnana*. The form it takes for expressing thoughts is also known as *akshar* (a letter or an alphabet). The three categories of *akshar shrut* have been made on this basis only.

(1) *Sanjna akshar*—That which is given the name *(sanjna)* of *akshar* is called *sanjna akshar*. In other words the particular shape or form with which a particular letter or sound is recognized is called *sanjna akshar*. This includes various characters, or alphabets, or symbols with which various sounds are recognized. For example a, b, c, d, e, f, etc.

(2) *Vyanjana akshar*—The meaningful acoustic expression of *akshar* is *vyanjana akshar*. When we pronounce an *akshar* or a group of *akshars*, words and sentences are formed. The organized form of these words and sentences express our thoughts. This expression can be compiled in various forms like article, play, poetry, book etc. In brief, scripts are *sanjna akshar* and books are vyanjana *akshar*.

(3) *Labdhi akshar*—The thought form of *akshar* is *labdhi akshar*. After hearing a sound or seeing a form, to experience and understand its meaning is known as thought form or *jnana* form of *akshar*. In other words, after hearing a word or a sound, the knowledge produced with the help of sense organs and mind through the process of analysis is called *labdhi akshar*.

Broadly looking it appears that *labdhi akshar* is confined to sentient beings only. But in fact, it is not that thoughts and feelings are absent where sense organs are absent. Under developed or non-sentient beings also undergo *kshayopasham*. Therefore they also acquire *bhava shrut* although it is inexpressible. Such beings also have feelings like hunger, fear, sex, fondness, attachment, etc. A feeling or desire, even if it is inexpressible is related to words. Therefore it is believed that such beings also have *labdhi akshar*. This is of six types—

1. *Shrotrendriya labdhi akshar*—to grasp the meaning or purpose through word, language, sound and variations in its intensity.

2. *Chaksurindriya labdhi akshar*—to grasp the meaning or purpose by reading a text and seeing signs, expressions and gestures.

3. *Ghranendriya labdhi akshar*—to grasp the meaning or purpose by smell and its variations.

4 *Jihvendriya labdhi akshar*—to grasp the meaning or purpose by taste and its variations.

5. *Sparshanendriya labdhi akshar*—to grasp the meaning or purpose smell and its variations.

6. *No-indriya labdhi akshar*—to grasp the meaning or purpose by feeling, thoughts or contemplation.

Mati-jnana and shrut-jnana both are produced with the help of five sense organs and mind. These are acquired gradually. *Mati-jnana* is cause and *shrut-jnana* its effect or activity. *Mati-jnana* is natural or spontaneous and general, whereas *shrut-jnana* is acquired with effort and is specific. *Mati-jnana* is inexpressible and *shrut-jnana* is expressible.

अनक्षरश्रुत

ANAKSHAR SHRUT

७४ : से किं तं अणक्खर-सुअं ? अणक्खर-सुअं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–

(१) ऊससियं नीससियं, निच्छूढं खासियं च छीयं च।

निस्सिंघिय-मणुसारं, अणक्खरं छेलियाईअं॥

से तं अणक्खरसुअं।

अर्थ–प्रश्न–यह अनक्षरश्रुत क्या होता है?

उत्तर–अनक्षरश्रुत अनेक प्रकार का होता है जैसे–उच्छ्वास, निश्वास, थूकना, खाँसना, छींकना, नाक साफ करना, सानुनासिक उच्चारण आदि सभी अनक्षरश्रुत हैं।

74. Question—What is this *anakshar shrut*?

Answer—*Anakshar shrut* is of many types—exhalation, inhalation, spitting, coughing, sneezing, blowing nose, nasal sound, etc.

विवेचन–इंगित मात्र के लिए उत्पन्न की हुई वे ध्वनियाँ जो अक्षर अथवा शब्द रूप की अभिव्यक्ति लिए नहीं हो, वे अनक्षरश्रुत कहलाती हैं। जो ध्वनियाँ निष्प्रयोजन होती हैं या की जाती हैं वे इसमें सम्मिलित नहीं हैं। किसी प्रयोजन से दूसरों को चेतावनी देने के लिए, हित-अहित जताने के लिए अथवा अन्य किसी उद्देश्य से जो भी शब्द अथवा संकेत किए जाते हैं वे सब अनक्षरश्रुत में सम्मिलित हैं।

Elaboration—The sounds produced just to indicate some thing or as a gesture and not used to express any letter or word are called *anakshar shrut*. The sounds that have no meaning or are produced without any specific purpose are not included in this. The sounds created for some purpose, to warn others, to indicate benefit or harm, or for any other use are included in *anakshar shrut*.

संज्ञी-असंज्ञीश्रुत

SANJNI AND ASANJNI SHRUT

७५ : से किं तं सण्णिसुअं?

सण्णिसुअं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—कालिओवएसेण हेऊवएसेणं दिट्ठिवाओवएसेणं।

से किं तं कालिओवएसेणं?

(१) कालिओवएसेणं—जस्स णं अत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिन्ता, वीमंसा, से णं सण्णीति लब्भइ।

जस्स णं नत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिन्ता, वीमंसा, से णं असण्णीति लब्भइ, से त्तं कालिओवएसेणं।

(२) से किं तं हेऊवएसेणं?

हेऊवएसेणं—जस्स णं अत्थि अभिसंधारणपुव्विआ करणसत्ती, से णं सण्णीत्ति लब्भइ।

जस्स णं नत्थि अभिसंधारणपुव्विआ करणसत्ती, से णं असण्णीत्ति लब्भइ। से त्तं हेऊवएसेणं।

(३) से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं?

दिट्ठिवाओवएसेणं सण्णिसुअस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ। असण्णिसुअस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ। से त्तं दिट्ठिवाओवएसेणं, से त्तं सण्णिसुअं, से त्तं असण्णिसुअं।

अर्थ—प्रश्न—संज्ञीश्रुत कितने प्रकार का है?

उत्तर—संज्ञीश्रुत तीन प्रकार का बताया है—(१) कालिकी उपदेश से, (२) हेतु उपदेश से, और (३) दृष्टिवाद उपदेश से।

प्रश्न—कालिकी उपदेश से किस प्रकार का है?

उत्तर—जिसे ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता तथा विमर्श होते हैं उस प्राणी को संज्ञी कहते हैं। जिसे ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता तथा विमर्श नहीं होते उस प्राणी को असंज्ञी कहते हैं। उनसे सम्बधित ज्ञान कालिकी उपदेश से संज्ञीश्रुत अथवा असंज्ञीश्रुत कहलाता है।

प्रश्न–हेतु उपदेश में संज्ञीश्रुत किस प्रकार का है?

उत्तर–जिसमें बुद्धि द्वारा आलोचनापूर्वक क्रिया करने की शक्ति है उस प्राणी को संज्ञी कहते हैं। जिसमें बुद्धि द्वारा आलोचनापूर्वक क्रिया करने की शक्ति नहीं है उस प्राणी को असंज्ञी कहते हैं। तत्संबंधी ज्ञान हेतु-उपदेश से संज्ञीश्रुत अथवा असंज्ञीश्रुत कहलाता है।

प्रश्न–दृष्टिवाद उपदेश से संज्ञीश्रुत किस प्रकार का है?

उत्तर–जिसके संज्ञीश्रुत का क्षयोपशम हुआ हो उस जीव को संज्ञी कहते हैं। जिसके असंज्ञीश्रुत का क्षयोपशम हुआ हो उस जीव को असंज्ञी कहते हैं। तत्संबंधी ज्ञान दृष्टिवाद-उपदेश से संज्ञीश्रुत अथवा असंज्ञीश्रुत कहलाता है।

इस प्रकार संज्ञी तथा असंज्ञीश्रुत का वर्णन पूर्ण हुआ।

74. Question—What is this *sanjni shrut*?

Answer—*Sanjni shrut* is said to be of three types—1) with reference to *kaliki upadesh,* 2) with reference to *hetu upadesh,* and 3) with reference to *drishtivad upadesh*

Question—What is this with reference to *kaliki upadesh*?

Answer—Those who have *iha, apoh, margana, gaveshana, chinta and vimarsh* are called *sanjni* (sentient) beings. Those who do not have *iha, apoh, margana, gaveshana, chinta* and *vimarsh* are called *asanjni* (non-sentient) beings. The knowledge of these is called *sanjni shrut* or *asanjni shrut* with reference to *kaliki upadesh.*

Question—What is this with reference to *hetu upadesh*?

Answer—That which has the capacity to act according to analysis through wisdom is called *sanjni* being. That which does not have the capacity to act according to analysis through wisdom is called *asanjni* (non-sentient) being. The knowledge of these is called *sanjni shrut* or *asanjni shrut* with reference to *hetu upadesh.*

Question—What is this with reference to *drishtivad upadesh*?

Answer—That who has had *kshayopasham* of *sanjni shrut* is called *sanjni* (sentient) being. That who has had *kshayopasham*

of *asanjni shrut* is called *asanjni* (non-sentient) (sentient) being. The knowledge of these is called *sanjni shrut* or *asanjni shrut* respectively with reference to *drishtivad upadesh.*

This concludes the description of *sanjni* and *asanjni shrut*.

विवेचन—संज्ञी तथा असंज्ञी प्राणी के तीन विकल्प है। तीनों विकल्पों से संबंधित श्रुत ही संज्ञीश्रुत तथा असंज्ञीश्रुत कहलाता है। ये तीन विकल्प इस प्रकार हैं–

(१) **कालिकी उपदेश (दीर्घकालिकी उपदेश)**—कालिकी अथवा दीर्घकालिकी दृष्टिकोण से संज्ञी प्राणी वह है जो सूचना अथवा ज्ञान के अवग्रहण अथवा सम्पर्क के पश्चात क्रमबद्ध रूप में ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता तथा विमर्श क्रियाओं के द्वारा ही उस ज्ञान को आत्मसात् करता है। संक्षेप में जिस प्राणी में इस प्रकार किसी वस्तु या विषय को ग्रहण करने की शक्ति है वह संज्ञी प्राणी होता है। इस श्रेणी में मनःपर्याप्ति सम्पन्न गर्भज, औपपातिक तथा नारकी आते हैं। इनका श्रुत संज्ञीश्रुत होता है।

जिन प्राणियों में यह शक्ति नहीं होती वे असंज्ञी कहे जाते हैं। इस श्रेणी में सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय जीव आते हैं। मनःपर्याप्ति से सम्पन्न जीवों में मनोलब्धि यथेष्ट होती है अतः वे सूचना अथवा ज्ञान को स्पष्ट रूप में ग्रहण करते हैं। जैसे-जैसे स्तर गिरता है वैसे-वैसे मनोलब्धि अल्प होती जाती है और अर्थ ग्रहण भी तदनुरूप अस्पष्ट होता जाता है। निम्नतम स्तर पर एकेन्द्रिय जीव होते हैं जिन्हें अस्पष्टतम अर्थ की प्राप्ति होती है। इनका श्रुत असंज्ञीश्रुत होता है।

(२) **हेतु उपदेश**—हेतु उपदेश दृष्टिकोण से संज्ञी प्राणी वह है जो हेतु समझकर उसके अनुसार क्रिया में प्रवृत्त अथवा निवृत्त होता है। यह इष्ट से संयोग करता है और अनिष्ट से वियोग। इसके उदाहरण हैं मक्खी, मच्छर आदि प्राणी जो दिन या रात में, धूप या छाया में, आहार के मिलने न मिलने पर, सुख या कष्ट होने न होने पर आवागमन करते हैं। उक्त अपेक्षा से ये सभी संज्ञी जीव की श्रेणी में आते हैं। इनका श्रुत संज्ञीश्रुत होता है।

जिन जीवों की इष्ट-अनिष्ट के हेतु से प्रवृत्ति-निवृत्ति नहीं होती वे सभी असंज्ञी जीव होते हैं। इस श्रेणी में वनस्पति आदि पाँच स्थावर जीव आते हैं। इनका श्रुत असंज्ञीश्रुत होता है।

(३) **दृष्टिवादोपदेश**—दृष्टि का अर्थ है दर्शन। जिस जीव में सम्यक्दृष्टि अथवा सम्यक् दर्शन हो वह संज्ञी होता है। अन्य शब्दों में–जो क्षयोपशम ज्ञान से युक्त है अथवा जो आत्मा सम्बन्धी हित अहित को यथार्थ रूप से जानता समझता है वह संज्ञी होता है। ऐसा संज्ञी जीव ही आत्मा के लिए अहितकर राग-द्वेषादि भावों से विरत होने का प्रयत्न कर मोक्ष रूपी श्रेय की प्राप्ति की ओर बढ़ता है।

जो आत्मा सम्बन्धी हित अहित को यथार्थ रूप में नहीं जानता समझता वह असंज्ञी होता है। ऐसा असंज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि होता है तथा आत्मा के लिए अहितकर भावों को ही हितकर समझ

उनसे विरत होने का प्रयत्न नहीं करता अपितु उनमें रत होने का प्रयत्न करते रहकर मोक्ष रूपी श्रेय से दूर जाता रहता है।

इन सभी विकल्पों को सम्मिलित रूप में देखने पर ज्ञात होता है कि दृष्टिवादोपदेश में केवल वे जीव समाविष्ट हैं जिन्होंने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है। दीर्घकालिक उपदेश में वे जीव समाविष्ट हैं जिनमें सम्यक्त्व की ओर बढ़ने की सामर्थ्य विद्यमान है। जो केवल मिथ्यादृष्टि ही हैं वे हेतुवादोपदेश में समाविष्ट हैं। अर्थात् स्थावर प्राणियों को छोड़ सभी जीव संज्ञी हैं। इस प्रकार से संसार के जितने भी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व है उन सभी में श्रुत विद्यमान हैं चाहे वे असंज्ञी ही क्यों न हों।

Elaboration—There are three alternatives of *sanjni* (sentient) and *asanjni* (non-sentient) beings. The *shrut* related to these three alternatives is called *sanjni shrut* and *asanjni shrut*. The three alternatives are as follows—

(1) *Kaliki upadesh (Deergh-kaliki upadesh)*—*Kaliki* means time related. From long term view point a *sanjni* (sentient) being is that which after coming in contact with the information or knowledge gradually absorbs it through the sequence of *iha, apoh, margana, gaveshana, chinta and vimarsh*. In brief a being that has the capacity to absorb a thing or a subject in this way is called a *sanjni* (sentient) being. The placental beings with fully developed mind, the *aupapatic* beings (gods), and the hell beings come in this class. Their knowledge is called *sanjni shrut*.

The beings that do not have this capacity are called *asanjni* (non-sentient) beings. *Sammoorchim* five sensed beings, and four, three, and two sensed beings come in this class. The beings with *manah-paryapti* (fully developed mind) have enough *mano labdhi* (mental capacity) to absorb information and knowledge with clarity. With the decline in level this clarity gradually reduces. At the lowest level are the one sensed beings who have the minimum clarity. Their knowledge is called *asanjni shrut*.

(2) Hetu upadesh—With this view point a *sanjni* (sentient) being is that who understands the cause and accordingly decides to indulge or not in any activity. It goes towards benefits and away from harm. These beings include house fly, mosquitoes, etc. the movements of whom are dependent on factors like day and night, sun or shade, availability and non-availability of food, and pleasure and pain. From

this angle they all fall under the category of *sanjni* (sentient) beings. Their knowledge is *sanjni shrut*.

All those beings whose indulgence and non indulgence is not dependent on benefits and harms are *asanjni* (non-sentient) beings. Their knowledge is called *asanjni shrut*.

(3) Drishtivad upadesh—*Drishti* means perception. A being which has right perception is called a *sanjni* (sentient) being. In other words—who has the knowledge of *kshayopasham*; or who properly knows about what is good or bad for the soul, is a *sanjni* (sentient) being. Only such *sanjni* (sentient) being tries to refrain from feelings of attachment and aversion that are harmful for the soul and proceeds to acquire the benefit in the form of liberation.

That which does not properly know and understand good and bad, in context of soul is *asanjni* (non-sentient) being. Such *asanjni* (non-sentient) being is *mithyadrishti* (having false perception or belief). He considers beneficial what is actually harmful for the soul and instead of refraining, continues to indulge in that. Thereby he continues to move away from the path of liberation.

When we look at all these alternatives together we find that in *drishtivad upadesh*, only those beings are included who have acquired *samyaktva*. In *kaliki* upadesh those beings are included who have the potential to head towards *samyaktva*. Those who are just *mithyadrishti* are included in *hetu upadesh*. This means that besides the immobile beings all other beings are *sanjni* (sentient). Thus *shrut* or knowledge exists in all *prani* (two, three, four sensed beings), *bhoot* (organisms), *jiva* (five sensed beings), and *sattva* (entities) irrespective of their being *asanjni* (non-sentient).

(अ) सम्यक् श्रुत

(a) SAMYAK SHRUT

७६ : से किं तं सम्मसुअं?

सम्मसुअं जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णनाण-दंसणधरेहिं, तेलुक्क-निरिक्खिअ-महिअ-पूइएहिं, तीय-पडुप्पण्ण-मणागयजाणएहिं, सव्वण्णूहिं, सव्वदरिसीहिं, पणीअं दुवालसंगं गणि-पिडगं, तं जहा—

(१) आयारो, (२) सूयगडो, (३) ठाणं, (४) समवाओ, (५) विवाहपण्णत्ती, (६) नायाधम्मकहाओ, (७) उवासगदसाओ, (८) अंतगडदसाओ, (९) अणुत्तरोववाइयदसाओ (१०) पण्हावागरणाइं, (११) विवागसुअं, (१२) दिट्ठिवाओ, इच्चेअं दुवालसंगं गणिपिडगं-चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुअं, अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुअं, तेण परं भिण्णेसु भयणा। से त्तं सम्मसुअं।

अर्थ—प्रश्न—सम्यक् श्रुत किस प्रकार का होता है?

उत्तर—जो उत्पन्न ज्ञान और दर्शन के धारक, तीन लोक के जीवों द्वारा समादृत तथा भावपूर्वक नमस्कृत, अतीत-वर्तमान-अनागत को जानने वाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अर्हत् भगवन्तों द्वारा प्रणीत द्वादशांगरूप गणिपिटक हैं उसे सम्यक्श्रुत कहते हैं। जैसे—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अन्तकृत्दशांग, अनुत्तरौपपातिक दशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाक श्रुत और दृष्टिवाद। यह द्वादशांग गणिपिटक चौदह पूर्वधारी का सम्यक् श्रुत होता है। सम्पूर्ण दश पूर्वधरों का भी सम्यक् श्रुत होता है। उससे कम धारण करने वालों में भजना है अर्थात् उनका सम्यक् श्रुत हो भी सकता है और नहीं भी। इस प्रकार सम्यक् श्रुत का वर्णन पूर्ण हुआ।

76. Question—What is this *samyak shrut*?

Answer—The box of knowledge comprising of the twelve *Angas;* propagated by *Arhat Bhagavans,* the possessors of the directly acquired knowledge and perception, profoundly revered and devoutly saluted by the beings of three worlds, the all seeing and all knowing omniscients who know past, present, and future; is called *samyak shrut*. The *Angas* are—*Acharang, Sutrakritang, Sthanang, Samvayang, Vyakhya Prajnapti, Jnatadharmakathang, Upasakdashang, Antkritdashang, Anuttaraupapatik dashang, Prashna Vyakaran, Vipak Shrut, and Drishtivad.* These twelve *Angas* are the *samyak shrut* of the knowers of the fourteen *purvas.* These also are the *samyak shrut* of all the knowers of the ten *purvas.* There is an ambiguity about those who know less than this. Their *shrut* may and may not be the *samyak shrut*.

This concludes the description of *samyak shrut*.

विवेचन—सम्यक् श्रुत का अर्थ है यथार्थ सत्य का निष्कलुष तथा प्रत्यक्ष ज्ञान। ऐसे ज्ञान के प्रणेता के लिए यहाँ सात विशेषणों का उपयोग किया है—

(१) अर्हंत–जिन्होंने राग-द्वेष, काम, क्रोध आदि आत्मिक दोषों की तथा घनघाति कर्मों की सत्ता को निर्मूल कर आत्मा को निष्कलुष कर दिया है और पुनर्जन्म के निमित्त को मिटा दिया है वे अर्हंत हैं।

(२) भगवन्त–जिन महान आत्मा में सम्पूर्ण ऐश्वर्य, निःसीम शक्ति, त्रिलोकव्यापी यश, परम तेजस्विता, विशुद्ध चैतन्य धर्म, निराग्रह करुणा के चिरन्तन प्रवाह की और प्रेरित अथक परिश्रम आदि सर्व कल्याणकारी महागुण विद्यमान हों वे भगवन्त हैं।

(३) उत्पन्न ज्ञान-दर्शन-धारक–जिनमें ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ हो। ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन के धारक। ज्ञान और दर्शन किसी अन्य स्रोत से भी प्राप्त हो सकता है–जैसे अध्ययन, श्रवण, अभ्यास आदि। किन्तु ऐसा ज्ञान परोक्ष होता है, स्वानुभूति प्रत्यक्ष नहीं।

(४) तीन लोकों में समादृत तथा नमस्कृत–जो अपने निष्कलुष प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रकाश से त्रिलोक को आलोकित करने के कारण आदरपूर्वक देखे जाते हैं तथा अपनी इस निराग्रह अनुकम्पा के कारण समस्त लोक के वन्दनीय तथा पूजनीय हैं।

(५) त्रिकालज्ञ–जो भूत, भविष्य, वर्तमान को किसी साधन अथवा निमित्त से नहीं किन्तु आत्म–प्रत्यक्ष रूप में जानने-देखने की क्षमता रखते हैं।

(६) सर्वज्ञ–जो प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष जानते हैं। जिनका ज्ञान सर्वव्यापी है।

(७) सर्वदर्शी–जो प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष देखने की क्षमता रखते हैं। जिनकी दृष्टि और दृष्टिकोण सर्व व्यापी है।

इन सात विशेषणों से सम्पन्न महापुरुष ही सम्यक् श्रुत के प्रणेता होते हैं। इनके आप्त वचनों को गणधरों ने बारह पेटियों (पिटक) में संजो लिया था। अतः इन्हें गणिपिटक नाम से जाना जाता है। सम्यक् श्रुत को पुरुष रूप में देखें तो ये बारह पिटक उसके अंग रूप हैं। इसी कारण इन्हें द्वादशांग कहा जाता है।

जो महापुरुष इस सम्पूर्ण सम्यक् श्रुत का धारण कर लेते हैं–उनके वचन भी सम्यक्श्रुत होते हैं। इस श्रेणी में ग्यारह अंग तथा बारहवें अंग के चौदह पूर्व सम्मिलित हैं। ऐसी मान्यता है कि ग्यारह अंग तथा सम्पूर्ण दस पूर्वों के धारक महापुरुषों के वचन भी सम्यक् श्रुत होते हैं। दस से कम पूर्वों के जानकार के वचन सम्यक् श्रुत हो भी सकते हैं और नहीं भी। इसका कारण यह माना जाता है कि दस से चौदह पूर्वों के जानकार निश्चित रूप में सम्यक् दृष्टि होते हैं। इससे कम के जानकार आवश्यक रूप में सम्यक् दृष्टि नहीं होते। अर्थात् मिथ्या दृष्टि जीव भी दस पूर्वों से कुछ कम का अध्ययन कर सकते हैं।

Elaboration—*Samyak shrut* means the pure and direct knowledge of the true reality. Seven adjectives have been used here for the propagators of such knowledge—

1. **Arhat**—Those who have made their soul absolutely pure by rooting out the influence of tough vitiating karmas as well as the spiritual vices like attachment, aversion, lust, and anger. And consequently wiped out the cause of rebirth.

2. **Bhagavant**—Those great souls that are endowed with great altruistic virtues like ultimate grandeur, unlimited power, all enveloping fame, extreme radiance, transparently pure spirituality, and untiring endeavour directed at incessant flow of spontaneous compassion.

3. **Utpanna Jnana-darshan dharak**—Those who have been enlightened and endowed with self realized direct perception and knowledge. Knowledge and perception can be acquired indirectly with the help of studies, listening, practice, and other means. This is not self realized direct knowledge but indirect knowledge.

4. **Samadrit and namaskrit**—Those who are revered because they spread the light of their untainted direct knowledge throughout the three worlds and are saluted with devotion for this spontaneous compassion.

5. **Trikalajna**—Those who have the capacity to know past, present, and future directly and without any outside means or method.

6. **Sarvajna**—Those who directly know every substance from every angle and whose knowledge is all pervading.

7. **Sarvadarshi**—Those who directly perceive every substance from every angle and whose view and viewpoint are all pervading.

Only those great men who are endowed with these seven attributes are the propagators of *samyak shrut*. Their sermons were secured within twelve *ganipitaks* (boxes of ganadhars, a metaphor for canons). When we think of *samyak shrut* being in the form of human body these twelve boxes form the twelve main parts of that body. That is why these are also called the twelve *Angas* (parts).

The words of those great men who absorb this *samyak shrut*, also become *samyak shrut*. In this category come the eleven *Angas* and fourteen *purvas* of the twelfth *Anga*. There is a belief that the words of those great men who absorb the eleven *Angas* and complete ten *purvas* of the twelfth *Anga*, are also *samyak shrut*. The words of

those who know a little less than ten *purvas* may or may not be *samyak shrut*. The reason for this is said to be that the knowers of ten to fourteen *purvas* are necessarily *samyakdrishti.* Those who know less than this are not necessarily *samyakdrishti.* This means that even the *mithyadrishti* can study up to a little less than ten *purvas.*

मिथ्याश्रुत वर्णन

MITHYA SHRUT

७७ : *से किं तं मिच्छासुअं?*

मिच्छासुअं, जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं, सच्छंदबुद्धि-मइविगप्पिअं, तं जहा–

(१) भारहं, (२) रामायणं, (३) भीमासुरक्खं, (४) कोडिल्लयं, (५) सगडभद्दिआओ, (६) खोडग (घोडय) मुहं, (७) कप्पासिअं, (८) नागसुहुमं, (९) कणगसत्तरी, (१०) वइसेसिअं, (११) बुद्धवयणं, (१२) तेरासिअं, (१३) काविलिअं, (१४) लोगाययं, (१५) सट्ठितंतं, (१६) माढरं (१७) पुराणं (१८) वागरणं, (१९) भागवं, (२०) पायंजली, (२१) पुस्सदेवयं, (२२) लेहं, (२३) गणिअं, (२४) सउणिरुअं, (२५) नाडयाइं।

अहवा बावत्तरि कलाओ, चत्तारि अ वेआ संगोवंगा।

एआइं मिच्छदिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहिआइं मिच्छा-सुअं एयाइं चेव सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिग्गहिआइं सम्मसुअं।

अहवा मिच्छादिट्ठिस्स वि एयाइं चेव सम्मसुअं, कम्हा? सम्मत्तहेउत्तणओ, जम्हा ते मिच्छदिट्ठिआ तेहिं चेव समएहिं चोइआ समाणा केइ सपक्खदिट्ठीओ चयंति।

से तं मिच्छा-सुअं।

अर्थ–प्रश्न–मिथ्याश्रुत क्या है?

उत्तर–जो अज्ञानी व मिथ्यादृष्टि व्यक्तियों द्वारा बुद्धि व मति से विकल्पित हैं वे मिथ्याश्रुत कहलाते हैं। जैसे–(१) भारत, (२) रामायण, (३) भीमासुरोक्त, (४) कौटिल्य (५) शकटभद्रिका, (६) घोटकमुख, (७) कार्पासिक, (८) नाग-सूक्ष्म, (९) कनकसप्तति (१०) वैशेषिक, (११) बुद्धवचन, (१२) त्रैराशिक, (१३) कापिलीय, (१४) लोकायत (१५) षष्टितंत्र, (१६) माठर, (१७) पुराण, (१८) व्याकरण, (१९) भागवत

(२०) पातंजलि, (२१) पुष्यदैवत, (२२) लेख, (२३) गणित, (२४) शकुनिरुत तथा (२५) नाटक। अथवा बहत्तर कलाएँ तथा अंगोपांग सहित वेद।

ये सभी मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व से ग्रहण किये गये मिथ्याश्रुत हैं और यही सम्यग्दृष्टि के सम्यक् रूप से ग्रहण किये गये सम्यक्श्रुत होते हैं। अथवा मिथ्यादृष्टि के भी यही सम्यक्श्रुत हैं क्योंकि ये सम्यक्त्व के हेतु हैं जिससे मिथ्यादृष्टि उन ग्रन्थों से प्रेरित किये जाने से अपने स्वयं का आग्रह अर्थात् मिथ्यादृष्टि को छोड़ देते हैं।

यह मिथ्याश्रुत का वर्णन हुआ।

77. Question—What is this *mithya shrut*?

Answer—The scriptures which are conceived by ignorant and *mithyadrishti* individuals through their intellect and view are called *mithya shrut*. For example—*1. Bharat, 2. Ramayan, 3. Bhimasurokta, 4. Kautilya, 5. Shakatabhadirka, 6. Ghotakamukh, 7. Karpasik, 8. Naag-sukshma, 9. Kanakasaptati, 10. Vaisheshik, 11. Biddhavachan, 12. Trairashik, 13. Kapiliya, 14. Lokayat, 15. Shashtitantra, 16. Mathar, 17. Purana, 18. Vyakaran, 19. Bhagavat, 20. Patanjali, 21. Pushyadaivat, 22. Lekh, 23. Ganit, 24. Shakunirut, and 25. Natak.* Also the seventy two arts and crafts and the Vedas with their *angopangas* (derivative literature based on the Vedas).

All these are the *mithya shrut* (scriptures) conceived through the false perception of *mithyadrishti*. These same become the *samyak shrut* when conceived through the right perception of *samyakdrishti*. Also these same are the *samyak shrut* for the *mithyadrishti* because these become the inspiring cause for *samyaktva* and influence him to abandon his dogmas of *mithyadrishti*.

This concludes the description of *mithya shrut*.

विवेचन—मिथ्याश्रुत वह है जो मिथ्यादृष्टि द्वारा प्रतिपादित हो। मिथ्यादृष्टि उसे कहते हैं जिसकी विचारधारा मिथ्यात्व से प्रेरित हो। मिथ्यात्व दस प्रकार का बताया गया है—

(१) अधम्मे धम्मसण्णा—अधर्म को धर्म समझना। जैसे—देवी-देवताओं के नाम पर पशु-बलि जैसे हिंसात्मक कार्य करना और उसे धर्म मानना।

(२) धम्मे अधम्मसण्णा—धर्म को अधर्म समझना। जैसे—आत्म-शुद्धि के मार्ग को अधर्म समझना।

(३) उम्मग्गे मग्गसण्णा—उन्मार्ग अथवा दुःख के मार्ग को सन्मार्ग अथवा सुख का मार्ग समझना।

(४) मग्गे उमग्गसण्णा—सन्मार्ग को उन्मार्ग समझना। जैसे—सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र जो मोक्ष मार्ग है उसे दुःख का मार्ग समझना।

(५) अजीवेसु जीवसण्णा—अजीव को जीव मानना। जैसे—संसार में जो कुछ भी है वह जीव ही है, अजीव पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं है ऐसा भ्रम पालना।

(६) जीवेसु अजीवसण्णा—जीवों को अजीव समझना। जैसे—संसार में केवल मनुष्य तथा पशु ही जीवधारी हैं अन्य किसी में जीव अस्तित्व ही नहीं है।

(७) असाहुसु साहुसण्णा—असाधु को साधु समझना। जो व्यक्ति धन-वैभव, स्त्री-पुत्र आदि किसी से भी विरक्त नहीं है—ऐसे व्यक्ति को साधु मानना। जिसमें साधु के गुण नहीं हों केवल वेश साधु का हो उसे साधु मानना।

(८) साहुसु असाहुसण्णा—साधु को असाधु मानना। जिसमें साधुत्व है उसे वेश अथवा मतभेद के कारण असाधु समझना।

(९) अमुत्तेसु मुत्तसण्णा—अमुक्त को मुक्त समझना। जो आत्मा को कर्ममल से रहित कर जन्म-मृत्यु के बंधन से नहीं छूटे हैं उन्हें मुक्त मानना।

(१०) मुत्तेसु अमुत्तसण्णा—मुक्त को अमुक्त मानना। मनुष्य कभी मुक्त नहीं होता, आत्मा कभी परमात्मा नहीं बन सकता, आत्मा कभी कर्म के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। यह मानकर जो मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं उन्हें भी अमुक्त मानना।

इन सभी को सरल सामान्य भाषा में कहें तो गुणावगुणों के सम्यक् निर्णय के बिना सत्य को मिथ्या और मिथ्या को सत्य मानना मिथ्यात्व है। क्योंकि ज्ञान आत्म-सामर्थ्य सापेक्ष है। अतः सामर्थ्य के विकास के साथ व्यक्ति मिथ्या को त्यागकर सत्य की ओर बढ़ता है। किन्तु मिथ्यात्वी अपने दुराग्रह के कारण अपना विकास मार्ग स्वयं बन्द कर देता है।

मिथ्याश्रुतों के उदाहरण के पश्चात् एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह बताया गया है कि मिथ्याश्रुत, मिथ्यादृष्टि के कारण हैं अपने आपमें नहीं। अर्थात् ज्ञान अपने आपमें मिथ्या नहीं है। मिथ्यादृष्टि उसे अपने मिथ्यात्व से कलुषित कर अहित की दिशा में ले जाता है। इस कारण वह मिथ्याश्रुत बन जाता है। वही ज्ञान सम्यग्दृष्टि से युक्त व्यक्ति के लिए सम्यग्ज्ञान बन जाता है। क्योंकि वह ज्ञान को अपनी सम्यग्दृष्टि के कारण परम श्रेय की दिशा में ले जाता है।

Elaboration—The scriptures propagated by *mithyadrishti* individuals are called *mithya shrut. Mithyadrishti* is one whose thoughts are inspired by *mithyatva* (false perception or belief). *Mithyatva* is said to be of ten types as follows—

1. *Adhamme dhammasanna*—To accept false religion as right religion. For example, to indulge in animal sacrifice in name of gods and goddesses and consider it to be a religious act.

2. *Dhamme adhammasanna*—To consider right religion to be false religion. For example, to consider the path of purity of soul as non-religious.

3. *Umagge maggasanna*—To consider the wrong path (path of sorrows) to be the right path (the path of happiness).

4. *Magge umaggasanna*—To consider the right path to be the wrong path. For example, to consider right perception, knowledge, and conduct, which leads to liberation, to be the path of sorrow.

5. *Ajivesu jivasanna*—To consider non-living as living. For example, to believe that all activity in this world is the activity of beings and there is no existence of anything non-living.

6. *Jivesu ajivasanna*—To consider living as non-living. For example, to believe that the only living beings in this world are human beings and animals and there is no existence of any other living beings.

7. *Asahusu sahusanna*—To consider non-ascetic as ascetic. To accept as an ascetic a person who has renounced nothing including wealth and grandeur, wife and son, etc. To accept as an ascetic a person who has no virtues of an ascetic and is just dressed as one.

8. *Sahusu asahusanna*—To consider ascetic as non-ascetic. To believe a true ascetic having all virtues, to be non-ascetic just because of opposing views or his dress.

9. *Amuttesu muttasanna*—To consider non-liberated to be liberated. To accept as liberated those who have not come out of the trap of rebirth by cleansing the soul of the dirt of karmas.

10. *Muttesu amuttasanna*—To consider liberated to be non-liberated. To accept as non-liberated, those who have attained *moksha* with the belief that man is never liberated, a simple soul

(*atma*) cannot become the Ultimate-soul (*Paramatma*), the soul can never be free of the trap of karmas.

In simple terms this means—to accept true as false and vice versa without properly judging the vices and virtues or the supporting and contradicting evidences, is called *mithyatva.* As knowledge depends on capacity, with the development of the capacity a person rejects falsity and progresses towards truth. But a *mithyatvi* because of his dogma chokes his own path of progress.

After giving the list of *mithya shruts* a very important fact has been mentioned. The scriptures are not false in themselves, it is because of the *mithyadrishti* (wrong interpretation) that they are false. In other words, knowledge in itself is not false; it is the *mithyadrishti* who spoils it with his falsity and steers it in the direction of harm. For this reason it becomes *mithya shrut*. The same knowledge becomes right knowledge for a *samyakdrishti* person because he steers it towards the ultimate benefit that is liberation.

सादि, सान्त, अनादि तथा अनन्त श्रुत
SAADI, SAANT, ANAADI AND ANANT SHRUT

७८ : से किं ते साइअं-सपज्जवसिअं? अणाइअं-अपज्जवसिअं च?

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्ठयाए साइअं सपज्जवसिअं, अव्वुच्छित्तिनयट्ठयाए अणाइअं अपज्जवसिअं। तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ।

तत्थ–(१) दव्वओ णं सम्मसुअं एगं पुरिसं पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं।

(२) खेत्तओ णं पंच भरहाइं, पंचेरवयाइं, पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, पंच महाविदेहाइं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं।

(३) कालओ णं उस्सप्पिणिं ओसप्पिणिं च पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, नोउस्सप्पिणिं नोओसप्पिणिं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं।

(४) भावओ णं जे जया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, तया (ते) भावे पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं। खाओवसमिअं पुण भावं पडुच्च अणाइअं अपज्जवसिअं।

अहवा भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसिअं च, अभवसिद्धियस्स सुयं अणाइयं अपज्जवसिअं (च)

सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणिअं पज्जवक्खरं निफज्जइ।

सव्वजीवाणं पि अ णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ, जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा, तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा।

'सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं।'

से त्ति साइअं सपज्जवसिअं, से त्तं अणाइयं अपज्जवसिअं।

अर्थ–प्रश्न–यह सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित श्रुत क्या है?

उत्तर–यह द्वादशांग गणिपिटक पर्यायनय की अपेक्षा से सादि सपर्यवसित है और द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अनादि अपर्यवसित है। वह श्रुतज्ञान संक्षेप में चार प्रकार का प्रतिपादित किया गया है–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से तथा भाव से। उन चारों में–

(१) द्रव्य की अपेक्षा से, एक पुरुष सम्बन्धी सम्यक्श्रुत सादि सपर्यवसित है और अनेक पुरुषों सम्बन्धी अनादि अपर्यवसित है।

(२) क्षेत्र की अपेक्षा से, सम्यक्श्रुत पाँच भरत और पाँच ऐरवत में सादि सपर्यवसित हैं और महाविदेह क्षेत्र में अनादि अपर्यवसित है।

(३) काल की अपेक्षा से, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के संदर्भ में सादि सपर्यवसित है और न उत्सर्पिणी और न अवसर्पिणी के संदर्भ में अनादि अपर्यवसित है।

(४) भाव की अपेक्षा से, सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित भाव जन सामान्य रूप से कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, दर्शित किये जाते हैं, निर्देशित किये जाते हैं, तथा उपदर्शित किये जाते हैं तब उन भावों के संदर्भ में सम्यक्श्रुत सादि सपर्यवसित होते हैं। किन्तु क्षयोपशम भावों के संदर्भ में अनादि अपर्यवसित होते हैं। अथवा–भवसिद्धिक जीव का श्रुत सादि सपर्यवसित है और अभवसिद्धिक जीव का श्रुत अनादि अपर्यवसित है।

सम्पूर्ण आकाश प्रदेशाग्र को सब आकाश प्रदेशों से अनन्तगुणा करने से पर्याय अक्षर निष्पन्न होता है। सभी जीवों का अक्षर (श्रुतज्ञान) का अनन्तवाँ भाग नित्य उद्घाटित आवरणरहित रहता है। यदि वह भी आवरण को प्राप्त हो जावे तो उसमें जीव अजीव

बन जायेगा। मेघों का समूह अत्यधिक सघन होने पर भी चन्द्र और सूर्य की प्रभा सर्वथा लुप्त नहीं होती।

इस प्रकार यह सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित का वर्णन पूर्ण हुआ।

78. Question—What is this *saadi saparvavasit* and *anadi aparyavasit shrut*?

Answer—This twelve *Anga ganipitak* is *saadi saparyavasit* (with a beginning and an end) from the *pa aya naya* (view point of variations). It is *anaadi aparya ısit* (without a beginning and an end) from the *dravyarthik aya* (view point of substance). This *shrut-jnana*, in brief, ; said to be of four types—with reference to the parameters ·f (1) substance, (2) area, (3) time, and (4) mode. In these four—

(1) With reference to substance, the *samya' shrut* related to one person is *saadi saparyavasit* and that ·elated to many persons is *anaadi aparyavasit*.

(2) With reference to area, in five *Bharat* :d five *Airavat* areas the *samyak shrut* is *saadi saparyavasit* and in the *Mahavideh* area it is *anaadi aparyavasit*.

(3) With reference to time, in context of progressive and regressive cycles of time the *samyak shrut* is *saadi saparyavasit* and without the context of time cycles it is *anaadi aparyavasit*.

(4) With reference to mode (thoughts, precepts), in context of the precepts of the omniscient the *samyak shrut* is *saadi saparyavasit* because these precepts are stated, propagated, elaborated, explained, clarified, and simplified for the benefit of the common man. However, in context of the principles of *kshayopasham* it is *anaadi aparyavasit*. In other words the *shrut* of *bhav-siddhik* being is *saadi saparyavasit* and that of *abhav-siddhik* being is *anaadi aparyavasit*.

The infinite multiplication of the total periphery of the space with total number of space points gives the value of *paryaya akshar* (the total number of existing modes). An infinitesimal

fraction of the *akshar* (*shrut-jnana*) is ever open or unveiled. If this also gets veiled the being will turn into non-being or life will turn into matter. No matter how dense is the cover of clouds the radiance of the sun and the moon does not completely vanish.

This concludes the description of *saadi saparyavasit* and *anaadi aparyavasit*.

विवेचन—गणिपिटक अर्थात् अर्हत् द्वारा प्रतिपादित धर्मग्रन्थ अथवा तीर्थंकर के वचन व्यवच्छित्तिनय अथवा पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से सादि-सान्त है अर्थात् पर्यायों की दृष्टि से उनका आदि और अन्त दोनों हैं। परन्तु अव्यवच्छित्तिनय अथवा द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अनादि-अनन्त है अर्थात् अपने मूल ज्ञान रूप में वह अनादि अनन्त है।

इस दृष्टिकोण के आधार पर इसके चार विकल्प बताये हैं—

(१) द्रव्यतः—एक जीव की अपेक्षा से सम्यक्श्रुत सादि-सान्त है। जीव को जब सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है तब उस जीव के संदर्भ में सम्यक्श्रुत की आदि होती है। जब वह पहले अथवा तीसरे गुणस्थान में प्रवेश करता है तब पुनः मिथ्यात्व का उदय होता है। प्रमाद, मनोमालिन्य, तीव्र वेदना अथवा विस्मृति के कारण वह श्रुत लुप्त हो जाता है। अन्य परिस्थिति में विकास प्राप्त कर जब केवलज्ञान का उदय होता है तब भी श्रुत लुप्त हो जाता है। यह सम्यक्श्रुत का अन्त होता है।

अनेक जीवों की अपेक्षा से सम्यक्श्रुत आदि अनन्त है। कहीं न कहीं कोई न कोई सम्यक्श्रुत को धारण करने वाला सदा विद्यमान रहता है। ऐसी कोई परिस्थिति न कभी थी, न है, न होगी जब सम्यक्श्रुत को धारण करने वाला कोई भी जीव इस सृष्टि में न हो।

(२) क्षेत्रतः—पाँच भरत और पाँच ऐरावत इन दस क्षेत्रों की अपेक्षा से सम्यक्श्रुत सादि-सान्त है। अवसर्पिणी काल के सुक्खम-दुक्खम आरे के अंत में और उत्सर्पिणी काल के दुक्खम-सुक्खम आरे के आरंभ में तीर्थंकर भगवान सर्वप्रथम धर्म संघ की स्थापना करने के लिए सम्यक्श्रुत की प्ररूपणा करते हैं। यह श्रुत की आदि है। दुक्खम-दुक्खम आरे में श्रुत का व्यवच्छेद हो जाता है। यह श्रुत का अन्त है। पाँच महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से सम्यक्श्रुत अनादि-अनन्त है क्योंकि इन क्षेत्रों में वह सदा विद्यमान रहता है।

(३) कालतः—उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी कालक्रम जहाँ प्रभावी है वहाँ सम्यक्श्रुत सादि-सान्त है। पाँच भरत व पाँच ऐरावत क्षेत्रों में काल का यह क्रम प्रभावी है। जहाँ उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी कालक्रम प्रभावी नहीं है, वहाँ ऊपर बताये कालक्रम के कारण सम्यक्श्रुत सदा विद्यमान रहता है, अर्थात् अनादि-अनन्त है। महाविदेह क्षेत्रों में यह कालक्रम प्रभावी नहीं है।

(४) भावतः–तीर्थंकर सम्यक्श्रुत में जो भाव सामान्य रूप से, विभिन्न भेदों व दृष्टान्तों सहित प्ररूपित करते हैं उनकी अपेक्षा से श्रुत सादि-सान्त है क्योंकि वह सम्यक्त्व-प्राप्ति पर आरम्भ होता है और मिथ्यात्व अथवा कैवल्य-प्राप्ति पर समाप्त हो जाता है। क्षायोपशमिक भावों की अपेक्षा में वह अनादि-अनन्त है, क्योंकि जिन जीवों में क्षयोपशम की प्रक्रिया आरम्भ हो गई उन्हें सम्यक्श्रुत सदा उपलब्ध है। अतः अनादि-अनन्त है और जिन जीवों में क्षयोपशम की प्रक्रिया आरम्भ नहीं हुई उन्हें मिथ्याश्रुत सदा उपलब्ध है।

अन्य शब्दों में भव्य प्राणी का श्रुत सादि-सान्त है तथा अभव्य का श्रुत अनादि-अनन्त।

इसे चार भागों से समझा जा सकता है–

(१) सादि-सान्त–सम्यक्त्व होने पर अंग सूत्रों का अध्ययन किया जाता है और मिथ्यात्व के उदय पर अथवा केवलज्ञान होने पर वह प्राप्त श्रुत लुप्त हो जाता है। यह भव्य जीवों की अपेक्षा से है।

(२) सादि-अनन्त–यह अस्तित्वहीन अथवा शून्य है, क्योंकि सम्यक्श्रुत अथवा मिथ्याश्रुत दोनों ही आदि सहित तो हैं किन्तु अनन्त नहीं हैं। सम्यक्त्व के उदय पर मिथ्याश्रुत का लोप होता है और मिथ्यात्व के उदय पर सम्यक्श्रुत का। कैवल्य होने पर दोनों का लोप हो जाता है।

(३) अनादि-सान्त–भव्य जीवों का मिथ्याश्रुत अनादि काल से चला आ रहा है और सम्यक्त्व-प्राप्ति पर उसका लोप हो जाता है। यह भी भव्य जीवों के सम्बन्ध में है।

(४) अनादि-अनन्त–अभव्य जीवों का मिथ्याश्रुत अनादिकाल से चला आ रहा है। उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। अतः वह मिथ्याश्रुत अनन्त काल तक बना रहेगा।

Elaboration—Ganipitak or the scriptures propagated by the *Arhat* or the words are *saadi saparyavasit* from the *vyavacchiti naya* or *paryayarthik naya* (view point of variations). Which means that with reference to variations it has both beginning as well as end. But from *avyavacchiti naya* or *dravyarthik naya* (view point of substance) it is *anaadi aparyavasit*. Which means that in its fundamental existence as *jnana* it is without any beginning or an end.

From this point of view it has four categories—

(1) With reference to substance—The *samyak shrut* related to one person is *saadi saparyavasit*. When a being acquires *samyaktva*, it is the beginning of *samyak shrut* for him. When he reaches the first or the third *gunasthan*, once again *mithyatva* surfaces. That *shrut* is lost due to lethargy, perversions, acute pain or loss of memory. In other direction, when the individual keeps on progressing in the right

direction, *Kewal-jnana* is acquired. Here also the *shrut* is lost. This is the end of *samyak shrut* for him.

The *samyak shrut* related to many persons is *anaadi aparyavasit.* At some place or the other there always is a person who has *samyak shrut*. There neither was, or is, nor will be a situation when there was, is, or will be not a single being having *samyak shrut*.

(2) With reference to area—In five Bharat and five Airavat, these ten areas the *samyak shrut* is with a beginning and an end (*saadi saparyavasit*). Around the end of the *sukkham-dukkham* era of the regressive cycle of time and around the beginning of the *dukkham-sukkham* era of the progressive cycle of time the *Tirthankar*, to establish the religious organization, first of all propagates the *samyak shrut*. This is the beginning of the *samyak shrut*. In the *dukkham-dukkham* era the *shrut* becomes extinct. This is the end of the *samyak shrut*. In the five Mahavideh areas it is without a beginning or an end (*anaadi aparyavasit*) because it always exists.

(3) With reference to time—Where the progressive and regressive cycles of time are effective the *samyak shrut* is with a beginning and an end. In five Bharat and five Airavat these cycles of time are effective. Where these cycles of time are not effective, due to uniform conditions in context of time cycles the *samyak shrut* always exists; or it is without a beginning or an end. In the Mahavideh area the time cycles are not effective.

(4) With reference to mode (thoughts, precepts)—In context of the precepts of the omniscient, propagated in simple terms with numerous categories and examples, the *samyak shrut* is with a beginning and an end. This is because it starts with the acquisition of *samyaktva* and ends with *mithyatva* as well as omniscience. However, in context of the principles of *kshayopasham* it is without a beginning or an end. This is because, to the beings, in which the process of *kshayopasham* has begun, the *samyak shrut* is always available. And to the beings in which the process of *kshayopasham* has not begun, the *mithya shrut* is always available.

In other words the *shrut* of *bhav-siddhik* (destined to be liberated) being is with a beginning and an end and that of *abhav-siddhik* (not destined to be liberated) being is without a beginning or an end.

This can be summed up in four categories—

1. *Saadi-saant* (with a beginning and an end)—When *samyaktva* is attained the *Angas* are studied. Either on regressing to *mithytva* or on attaining omniscience the acquired *shrut* (knowledge) vanishes. This is in context of the beings destined to liberation.

2. *Saadi-anant* (with a beginning and without an end)—This is invalid here because *samyak shrut* and *mithya shrut* both have beginning as well as end. With the rise of *samyaktva mithya shrut* vanishes, with the rise of *mithyatva samyak shrut* vanishes, and with attaining of omniscience both vanish.

3. *Anadi-saant* (without a beginning and with an end)—The *mithya shrut* of the beings destined to liberation is in existence since infinite time and it vanishes with the rise of *samyaktva*. This is with reference to the *bhavya* beings.

4. *Anadi-anant* (without a beginning or an end)—The *mithya shrut* of the beings not destined to liberation is in existence since infinite time. Such beings never acquire *samyaktva* Therefore it will remain in existence always.

पर्यायाक्षर
PARYAYAKSHAR

लोकाकाश और अलोकाकाश दोनों में जितने भी आकाश प्रदेश हैं उनको उन्हीं से अनन्त बार गुणा करें और उसमें प्रत्येक आकाश प्रदेश में रहे जो अनन्त अगुरु लघु पर्याय हैं उन्हें जोड़ें तब जो योगफल आता है उसे **पर्यायाक्षर** कहते हैं। अथवा जितने पर्याय संसार में विद्यमान हैं। केवलज्ञानी इन सभी पर्यायों को जानते हैं।

ज्ञान की अन्यतम स्थिति को समझने के लिए संख्याओं का सहारा लेना पड़ता है। ६५,५३६ को **पण्णट्ठी** कहते हैं ($२^{१६}$)। पण्णट्ठी को पण्णट्ठी से गुणा करने पर जो संख्या आती है उसे **वादाल** कहते हैं–४,२९,४९,६७,२९६ अथवा $२^{३२}$। वादाल को वादाल से गुणा करने से जो संख्या आती है उसे **एकट्ठी** कहते हैं–१,८४,४६,७४,४०,७३,७०,९५,५१,६१६ अथवा $२^{६४}$। केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों में एक कम एकट्ठी का भाग देने से जो संख्या आती है उतने अविभाग प्रतिच्छेदों के समूह को अक्षर कहते हैं। इस अक्षर प्रमाण में अनन्त का भाग देने से जितने अविभाग प्रतिच्छेद उतने पर्यायज्ञान में पाये जाते हैं।

सभी जीवों में इतनी सूक्ष्म पर्याय ज्ञान की क्षमता खुली रहती है जिसे श्रुतज्ञान का सूक्ष्मतम अंश कहा जा सकता है। यदि वह भी अनन्त कर्म वर्गणाओं से ढक जावे तब जीव अजीव में परिणत हो जायेगा। परन्तु ऐसा होता नहीं है। जैसे सघनतम काली घटा में आच्छादित हो जाने पर भी चन्द्र-सूर्य की आभा का सर्वथा लोप नहीं होता। उसी प्रकार अनन्त ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय कर्म परमाणुओं से प्रत्येक आत्म-प्रदेश ढका होने पर भी चेतना का सर्वथा अभाव नहीं होता। सूक्ष्म निगोद में रहे हुए जीव में भी श्रुत कुछ न कुछ मात्रा में रहता ही है।

The square of the total number of space points in the inhabited and uninhabited space when added to the infinite gross and subtle modes (variables) existing within each and every space point gives the number that is called *Paryayakshar*. It means all the modes (alternatives and variables) existing in the universe. *Kewal-jnani* knows all these.

To understand the ultimate state of knowledge it becomes necessary to take help of numbers. The number 65,536 or 2^{16} is called *pannatthi*. The square of *pannatthi* is called *vadal* (4,29,49,67,296 or 2^{32}). The square of *vadal* is called *ekatthi* (1,84,46,74,40,73,70,95,51,616 or 2^{64}). Suppose *Kewal-jnana* is made up of a very large number of indivisible units or prime numbers. When this number is divided by one less than *ekatthi*, the resulting number of such indivisible units is called *akshar*. An infinitesimal fraction of *akshar* is equal to the smallest unit of *paryaya-jnana*.

All beings always have the capacity to know this tiny unit of *paryaya-jnana*. This can also be termed as the smallest part of *shrut-jnana*. If that also is obscured by infinite karma particles, a being turns into a non-being or matter. But this does not happen. The densest clouds cannot completely obscure the radiance of the sun or the moon, in the same way in spite of its every section being veiled by infinite karma particles, soul is never completely devoid of *chetna* (the unique pulsating spiritual attribute of soul that sets it apart from matter). A being in the state of minute *nigod* (dormant being) also has some *shrut*, no matter how small.

गमिक, अगमिक, अंगप्रविष्ट तथा अंगबाह्य वर्णन
GAMIK, AGAMIK, ANGAPRAVISHT AND ANGABAHYA

७९ : *से किं तं गमिअं?*

गमिअं दिट्ठिवाओ।

से किं तं अगमिअं?

अगमिअं-कालिअसुअं। से त्तं गमिअं से त्तं अगमिअं।

अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—अंगपविट्ठं, अंगबाहिरं च।

से किं तं अंगबाहिरं?

अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—आवस्सयं च आवस्सयवइरित्तं च।

से किं तं आवस्सयं?

आवस्सयं छव्विहं पण्णत्तं तं जहा—(१) सामाइयं, (२) चउवीसत्थवो, (३) वंदणयं, (४) पडिक्कमणं, (५) काउस्सग्गो, (६) पच्चक्खाणं।

से त्तं आवस्सयं।

अर्थ—प्रश्न—गमिक-श्रुत क्या है?

उत्तर—दृष्टिवाद गमिक-श्रुत है।

प्रश्न—अगमिक-श्रुत क्या है?

उत्तर—कालिकश्रुत अगमिक-श्रुत है। यह गमिक और अगमिक-श्रुत का स्वरूप है।

अथवा संक्षेप में ये दो प्रकार के बताए हैं—(१) अंगप्रविष्ट, और (२) अंगबाह्य।

प्रश्न—यह अंगबाह्य-श्रुत कितने प्रकार के हैं?

उत्तर–अंगबाह्य दो प्रकार के बताये हैं–(१) आवश्यक, और (२) आवश्यक के अतिरिक्त।

प्रश्न–यह आवश्यक-श्रुत कितने हैं?

उत्तर–आवश्यक-श्रुत ६ प्रकार के हैं–(१) सामायिक, (२) चतुर्विंशतस्तव, (३) वन्दना, (४) प्रतिक्रमण, (५) कायोत्सर्ग, और (६) प्रत्याख्यान।

यह आवश्यक का वर्णन है।

79. Question—What is this *gamik shrut*?

Answer—*Drishtivad* is *gamik shrut*.

Question—What is this *agamik shrut*?

Answer—*Kalik shrut* is *agamik shrut*. This concludes the description of *gamik* and *agamik shrut*.

Also, they are, in brief, said to be of two types—
(1) *Angapravisht,* and (2) *Angabahya.*

Question—What is this *Angabahya shrut*?

Answer—*Angabahya shrut* is said to be of two types—
(1) *Avashyak,* and (2) other than *Avashyak.*

Question—What is this *Avashyak shrut*?

Answer—*Avashyak shrut* is said to be of six types—(1) *Samayik,* (2) *Chaturvinshatstav,* (3) *Vandana,* (4) *Pratikraman,* (5) *Kayotsarg,* and (6) *Pratyakhyan.*

This concludes the description of *Avashyak shrut.*

विवेचन–गमिक-श्रुत–जिस श्रुत के आरम्भ, मध्य और अन्त में थोड़े अल्पमात्र परिवर्तन के साथ बार-बार उन्हीं शब्दों का उच्चारण होता है उसे गमिक-श्रुत कहते हैं। उदाहरणार्थ उत्तराध्ययनसूत्र के दसवें अध्ययन में "समयं गोयम ! मा पमायए" यह पद प्रत्येक गाथा के चौथे चरण में दिया गया है। दृष्टिवाद इसी प्रकार का श्रुत है।

अगमिक-श्रुत–जिसके पाठों में समानता न हो अथवा बार-बार पुनरुक्ति न हो वह अगमिक-श्रुत कहलाता है। आचारांग आदि सभी कालिक श्रुत अगमिक हैं।

अंगप्रविष्ट–सर्व लक्षणों से युक्त पुरुष के १२ अंग होते हैं–जैसे–दो पैर, दो जाँघें, दो उरू, दो पार्श्व, दो भुजाएँ, एक ग्रीवा और एक मस्तक। उसी प्रकार श्रुत पुरुष के भी १२ अंग होते हैं। शरीर के मुख्य अवयव अंग कहलाते हैं इस कारण श्रुत पुरुष के मुख्य अवयव होने से, ये

१२ अंग कहलाते हैं। जिन शास्त्रों की रचना तीर्थंकरों के उपदेशानुसार गणधर स्वयं करते हैं वे अंग सूत्र कहे जाते हैं।

अंगबाह्य–अंग शास्त्रों का आधार लेकर गणधरों के अतिरिक्त स्थविरों द्वारा प्रणीत शास्त्र अंगबाह्य होते हैं।

आवश्यक–आवश्यक सूत्र में आवश्यक रूप से किये जाने वाले क्रिया-कलाप का वर्णन है। इसके छह अध्ययन हैं जिनमें सभी करणीय क्रियाओं का समावेश हो जाता है। चौंतीस अस्वाध्यायों की सूची में इसका नाम नहीं है तथा इसका पारायण विधिपूर्वक प्रातः और सायं दोनों काल में अवश्य करणीय है। इन तीन महत्ताओं के कारण यह अंगबाह्य सूत्रों में प्रथम माना गया है। इसके छह अध्ययन हैं–(१) सामायिक, (२) जिन स्तवन (चउवीसत्थव), (३) वन्दना, (४) प्रतिक्रमण, (५) कायोत्सर्ग, तथा (६) प्रत्याख्यान।

Elaboration—*Gamik shrut*—In this category of scriptures there are some specific words or sentences that are often repeated with slight variations at its beginning, in the middle, and in the end. For example, in the tenth chapter of *Uttaradhyayan Sutra,—"Samayam Goyam! Ma Pamayae."*—is used in the fourth line of every stanza. *Drishtivad* is in this style.

Agamik shrut—In this category of scriptures there is no similarity in parts of the text and no repetitions as well. *Acharang* and other *kalik sutras* are in this style.

Angapravisht—A complete man has twelve parts in his body—two legs, two thighs, two breasts, two flanks, two arms, one neck and one head. In the same way the scripture-god has 12 parts. As the main parts of the body are called *angas*, so are called the main parts of the scripture-god. The *Angas* comprise of the canons written by the *Ganadhars* on the basis of the word of the *Tirthankars*.

Angabahya—The scriptures written with the help of the *Angas*, by scholars other than *Ganadhars* are called *Angabahya*.

Avashyak—This work describes the compulsory or essential duties or activities. It has six chapters covering all that must be done. It is not included in the list of 34 proscribed studies. The rituals and activities mentioned in this must be attended to with prescribed procedures every morning and evening. Because of these three values it comes first in the list of *Angabahya* scriptures. It has six chapters—(1) *Samayik,* (2) *Jin Stavan* (*Chauvisatthav*), (3) *Vandana,* (4) *Pratikraman,* (5) *Kayotsarg,* and (6) *Pratyakhyan.*

कालिक-उत्कालिक श्रुत परिचय

KALIK AND UTKALIK SHRUT

८० : *से किं तं आवस्सय-वइरित्तं?*

आवस्सयवइरित्त दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—कालिअं च उक्कालियं च।

से किं तं उक्कालिअं?

उक्कालिअं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—(१) दसवेआलिअं, (२) कप्पिआकप्पिअं, (३) चुल्लकप्पसुअं, (४) महाकप्पसुअं, (५) उववाइअं, (६) रायपसेणिअं, (७) जीवाभिगमो, (८) पन्नवणा, (९) महापन्नवणा, (१०) पमायप्पमायं, (११) नन्दी, (१२) अणुओगदाराइं, (१३) देविंदत्थओ, (१४) तंदुलवेआलिअं, (१५) चंदाविज्झायं, (१६) सूरपण्णत्ती, (१७) पोरिसिमण्डलं, (१८) मंडलपवेसो, (१९) विज्जाचरण-विणिच्छओ, (२०) गणिविज्जा, (२१) झाणविभत्ती, (२२) मरणविभत्ती, (२३) आयविसोही, (२४) वीयरागसुअं, (२५) संलेहणासुअं, (२६) विहारकप्पो, (२७) चरणविही, (२८) आउरपच्चक्खाणं, (२९) महापच्चक्खाणं, एवमाइ।

से त्तं उक्कालिअं।

अर्थ—प्रश्न—आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत कितने प्रकार के हैं?

उत्तर—आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत दो प्रकार के हैं—(१) कालिक, और (२) उत्कालिक।

प्रश्न—उत्कालिक श्रुत कितने हैं?

उत्तर—उत्कालिक अनेक प्रकार के बताये हैं—जैसे—(१) दशवैकालिक, (२) कल्पाकल्प, (३) चुल्लकल्पश्रुत, (४) महाकल्पश्रुत, (५) औपपातिक, (६) राजप्रश्नीय, (७) जीवाभिगम, (८) प्रज्ञापना, (९) महाप्रज्ञापना, (१०) प्रमादाप्रमाद, (११) नन्दी, (१२) अनुयोगद्वार, (१३) देवेन्द्रस्तव, (१४) तन्दुलवैचारिक, (१५) चन्द्रविद्या, (१६) सूर्यप्रज्ञप्ति, (१७) पौरुषीमण्डल, (१८) मण्डलप्रदेश, (१९) विद्याचरण विनिश्चय, (२०) गणिविद्या, (२१) ध्यानविभक्ति, (२२) मरणविभक्ति, (२३) आत्मविशुद्धि, (२४) वीतरागश्रुत, (२५) संलेखनाश्रुत, (२६) विहारकल्प, (२७) चरणविधि, (२८) आतुरप्रत्याख्यान, और (२९) महाप्रत्याख्यान इत्यादि।

यह सब उत्कालिक श्रुत का वर्णन है।

80. Question—What is this 'other than *Avashyak*'?

Answer—Other than *Avashyak* is said to be of two types—(1) *Kalik*, and (2) *Utkalik*.

Question—What is this *Utkalik shrut*?

Answer—*Utkalik shrut* is said to be of many types—*1. Dashvaikalik, 2. Kalpakalp, 3. Chullakalpashrut, 4. Mahakalpashrut, 5. Aupapatik, 6. Rajprashniya, 7. Jivabhigam, 8. Prajnapana, 9. Mahaprajnapana, 10. Pramadapramad, 11. Nandi, 12. Anuyogadvar, 13. Devendrastav, 14. Tandulavaicharik, 15. Chandravidya, 16. Suryaprajnapti, 17. Paurushimandal, 18. Mandalapradesh, 19. Vidyacharan Vinishchaya, 20. Ganividya, 21. Dhyanavibhakti, 22. Maranavibhakti, 23. Atmavishuddhi, 24. Vitaragashrut, 25. Samlekhanashrut, 26. Viharakalp, 27. Charanavidhi, 28. Aturpratyakhyan, 29. Mahapratyakhyan,* and others.

This concludes the description of *Utkalik shrut*.

विवेचन–कालिक–जो श्रुत दिन तथा रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहरों में पढ़े जाते हैं अर्थात् जिनका अध्ययन काल (समय) निश्चित है वे कालिक श्रुत होते हैं।

उत्कालिक–जो श्रुत अस्वाध्याय के समय को छोड़ शेष किसी भी समय पढ़े जाते हैं वे उत्कालिक श्रुत होते हैं।

उत्कालिक सूत्रों का संक्षिप्त परिचय–

दशवैकालिक और कल्पाकल्प–ये दोनों सूत्र स्थविर आदि कल्पों की आचार मर्यादा का प्रतिपादन करते हैं।

महाप्रज्ञापनासूत्र में प्रज्ञापनासूत्र की तुलना में जीवादि पदार्थों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

प्रमादाप्रमाद सूत्र में मद्य, विषय, कषाय, निद्रा तथा विकथा आदि प्रमाद के विषयों का वर्णन है। अपने संयमाचरण रूप कर्तव्य एवं साधना में सतर्क रहना अप्रमाद है और इसके विपरीत आचरण प्रमाद। प्रमाद संसार-भ्रमण का कारण है और अप्रमाद मोक्ष का।

सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र में सूर्य के स्वरूप गति का विस्तार से वर्णन है।

पौरुषीमण्डल सूत्र में–अहोरात्र अथवा दिन और रात के विभाजक कालमान का वर्णन है। जैसे–मुहूर्त, प्रहर आदि।

मण्डलप्रदेश सूत्र में सूर्य के एक मण्डल से दूसरे मण्डल में प्रवेश करने सम्बन्धी विवरण है।

विद्याचरण विनिश्चय सूत्र में विद्या (ज्ञान) और चारित्र का सविस्तार प्रतिपादन है।

गणिविद्या सूत्र में गणी (नायक) के कर्तव्य, गुण तथा इतिवृत्त का उल्लेख है। गच्छ व गण के नायक को गणी कहते हैं।

ध्यानविभक्ति सूत्र में आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल इन चारों ध्यानों का विशेष विवरण है।

मरणविभक्ति सूत्र में अकाम मरण, सकाममरण आदि मरण के विभिन्न विकल्पों का वर्णन है।

आत्मविशुद्धि सूत्र में आत्मा के विशुद्धिकरण के विषय को विस्तार से प्रतिपादित किया है।

वीतरागश्रुत में वीतराग के स्वरूप का वर्णन है।

संलेखनाश्रुत में द्रव्य संलेखना, भाव संलेखना आदि संलेखना सम्बन्धी विषयों का वर्णन है।

विहारकल्प सूत्र में स्थविरकल्प का विस्तार से वर्णन किया है।

चरणविधि सूत्र में चारित्र के भेद-प्रभेदों का उल्लेख है।

आतुरप्रत्याख्यान सूत्र में रुग्णावस्था में प्रत्याख्यान आदि क्रियाएँ करने का विधान दिया है।

महाप्रत्याख्यान सूत्र में जिनकल्प, स्थविरकल्प तथा एकाकी विहारकल्प में प्रत्याख्यान का विधान है।

इन सभी उत्कालिक सूत्रों में अधिकतर उनके नाम के अनुसार ही विषय है। इनमें से कुछ सूत्र वर्तमान में अनुपलब्ध हैं। जो श्रुत द्वादशांग गणिपिटक के अनुसार हैं वे पूर्णतया प्रामाणिक माने जाते हैं।

Elaboration—Kalik—The *shrut* that are read during the first and last quarters of the day and the night. In other words *Kalik shrut* are those which are studied during some specified hours of the day and the night.

Utkalik—These can be read any time except for the hours during which studies are prohibited.

Brief introduction of *Utkalik sutras*—

1, 2. *Dashvaikalik* and *Kalpakalp*—These two works describe the codes of conduct as well as do's and don'ts related to various levels and conditions of ascetics.

8, 9. *Prajnapana* and *Mahaprajnapana*—Contain brief and extensive details respectively, about *jiva* and other substances (*dravya*).

10. *Pramadapramad*—This describes various aspects of *pramad* (stupor) including intoxication, carnal pleasures, passions, sleep, *vikatha* (opprobrium), etc. To be cautious and alert in one's duties and practices that are part of the discipline is called *apramad* or alertness; a contradictory conduct is *pramad*. The root cause of cycles of rebirth is *pramad*, and that of liberation is *apramad*.

16. *Suryaprajnapti*—Detailed description of the sun.

17. *Paurushimandal*—Describes in detail the divisions of time with reference to day and night. e.g. *muhurt, prahar,* etc.

18. *Mandalapradesh*—Details the movement of the sun from one sector to the other of the celestial sphere.

19. *Vidyacharan Vinischaya*—Extensive details about knowledge and conduct.

20. *Ganividya*—Provides detail about the duties, qualities, and history of *gani* (a leader of a smaller or larger group of ascetics and their followers. e.g. *gaccha, gana*, etc.).

21. *Dhyanavibhakti*—Extensive details about four *dhyans* (state of mind)—*artt* (gloom), *raudra* (extreme agitation), *dharma* (calm or religious), and *shukla* (pure).

22. *Maranavibhakti*—Describes different types of deaths (depending on the state of mind at the time of death) like *akarma* (without attachment), *sakarma* (with attachment), etc.

23. *Atmavishuddhi*—Gives extensive details about purification of soul.

24. *Vitaragashrut*—Details the form or state of the *Vitaraga* (the detached one).

25. *Samlekhanashrut*—Details various aspects of *samlekhana* (ultimate vow) like *dravya samlekhana, bhava samlekhana*, etc.

26. *Viharakalp*—Extensive details about the codes of ascetics.

27. *Charanavidhi*—Mentions the categories and sub-categories of conduct.

28. *Aturpratyakhyan*—Describes the process of performing critical review and other activities in ailing condition.

29. *Mahapratyakhyan*—Gives the process of *pratyakhyan* etc. for three higher levels of ascetics—*Jinakalpi, Sthavirkalpi, and Ekal viharkalpi.*

In all these *utkalik sutras,* mostly, the subject discussed matches the title of the work. Some of these are not available now. Those which are based on the twelve canons are believed to be absolutely authentic.

कालिक श्रुत परिचय
KALIK SHRUT

८१ : से किं तं कालियं?

कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–

(१) उत्तरज्झयणाइं, (२) दसाओ, (३) कप्पो, (४) ववहारो, (५) निसीहं, (६) महानिसीहं, (७) इसिभासिआइं, (८) जंबूदीवपन्नत्ती, (९) दीवसागरपन्नत्ती, (१०) चंदपन्नत्ती, (११) खुड्डिआविमाणविभत्ती, (१२) महल्लिआविमाणविभत्ती, (१३) अंगचूलिआ, (१४) वग्गचूलिआ, (१५) विवाहचूलिआ, (१६) अरुणोववाए, (१७) वरुणोववाए, (१८) गरुलोववाए, (१९) धरणोववाए, (२०) वेसमणोववाए, (२१) वेलंधरोववाए, (२२) देविंदोववाए, (२३) उट्ठाणसुए, (२४) समुट्ठाणसुए, (२५) नागपरिआवणिआओ, (२६) निरयावलियाओ, (२७) कप्पिआओ, (२८) कप्पवडिंसिआओ, (२९) पुप्फिआओ, (३०) पुप्फचूलिआओ (३१) वण्हीदसाओ, एवमाइयाइं।

चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं भगवओ अरहओ उसह सामिस्स आइतित्थयरस्स तहा संकिज्जाइं पइन्ना सहस्साइ मज्झिमगाणं जिणवराणं, चोद्दसपइन्नगसहस्साणि भगवओ वद्धमाणसामिस्स।

अहवा जस्स जत्तिआ सीसा उप्पत्तिआए, वेणइआए, कम्मियाए, पारिणामिआए चउव्विहाए बुद्धीए उववेआ, तस्स तत्तिआइं पइण्णगसहस्साइं। पत्तेअबुद्धा वि तत्तिआ चेव, से त्तं कालिअं। सेत्तं आवस्सयइरित्तं। से त्तं अणंगपविट्ठं।

अर्थ–प्रश्न–ये कालिकसूत्र कितने हैं?

उत्तर–कालिकसूत्र अनेक बताए हैं। जैसे–

(१) उत्तराध्ययन सूत्र, (२) दशाश्रुतस्कन्ध, (३) कल्प–बृहत्कल्प, (४) व्यवहार, (५) निशीथ, (६) महानिशीथ, (७) ऋषिभाषित, (८) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (९) द्वीपसागर-

प्रज्ञप्ति, (१०) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (११) क्षुद्रिकाविमानविभक्ति, (१२) महल्लिकाविमानविभक्ति, (१३) अंगचूलिका, (१४) वर्गचूलिका, (१५) विवाहचूलिका, (१६) अरुणोपपात, (१७) वरुणोपपात, (१८) गरुडोपपात, (१९) धरणोपपात, (२०) वैश्रमणोपपात, (२१) वेलन्धरोपपात, (२२) देवेन्द्रोपपात, (२३) उत्थानश्रुत, (२४) समुत्थानश्रुत, (२५) नागपरिज्ञापनिका, (२६) निरयावलिका, (२७) कल्पिका, (२८) कल्पावतंसिका, (२९) पुष्पिता, (३०) पुष्पचूलिका, और (३१) वृष्णिदशा अथवा अन्धकवृष्णिदशा, आदि।

चौरासी हजार प्रकीर्णक अर्हत् भगवान ऋषभदेव स्वामी आदि तीर्थंकर के हैं तथा संख्यात सहस्र प्रकीर्णक मध्यम तीर्थंकरों के हैं। भगवान वर्द्धमान स्वामी के चौदह हजार प्रकीर्णक हैं।

इनके अतिरिक्त जिस तीर्थंकर के जितने शिष्य औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा, और पारिणामिकी बुद्धि से युक्त हैं, उनके उतने ही हजार प्रकीर्णक होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येकबुद्ध के होते हैं। यह कालिकश्रुत हुआ। यह आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत का वर्णन हुआ। यह अनंग-प्रविष्ट श्रुत का वर्णन हुआ।

81. Question—What is this *kalik shrut*?

Answer—*Kalik shrut* is said to be of many types—

1. Uttaradhyayan, 2. Dashashrut Skandh, 3. Kalp—vrihatkalp, 4. Vyavahar, 5. Nisheeth, 6. Mahanisheeth, 7. Rishibhashit, 8. Jambudveep-prajnapti, 9. Dveep-sagar-prajnapti, 10. Chandra-prajnapti, 11. Kshudrikaviman-vibhakti, 12. Mahallikaviman-vibhakti, 13. Angachulika, 14. Vargachulika, 15. Vivahachulika, 16. Arunopapata, 17. Varunopapata, 18. Garudopapata, 19. Dharanopapata, 20. Vaishramanopapata, 21. Velandharopapata, 22. Devendropapata, 23. Utthanashrut, 24. Samutthanashrut, 25. Nagaparijnapanika, 26. Niryavalika, 27. Kalpika, 28. Kalpavatansika, 29. Pushpita, 30. Pushpachulika, and *31. Vrishnidasha or Andhakavrishnidasha,* and others.

There are eighty four thousand *Prakirnaks* of the first *Tirthankar Bhagavan* Rishabhdev and countable thousand *Prakirnaks* of later *Tirthankars*. There are fourteen thousand *Prakirnaks* of *Bhagavan* Vardhaman Swami.

Besides these, the number of disciples, with *Autpattiki, Vainayiki, Karmaja, and Parinamiki Buddhi*, a *Tirthankar* has,

there are equal number of thousand *Prakirnaks* to his credit. The same is true for a *Pratyekabuddha*.

This concludes the description of *Kalik shrut*. This concludes the description of *Avashyak vyatirikt shrut*. This concludes the description of *Anang-pravishta shrut*.

विवेचन–कालिक सूत्रों का संक्षिप्त परिचय–

उत्तराध्ययन सूत्र में ३६ अध्ययन हैं। भगवान महावीर के अंतिम उपदेश इसमें संकलित हैं। इसमें सैद्धान्तिक, नैतिक, सुभाषितात्मक तथा कथात्मक वर्णन सम्मिलित हैं। इसका हर अध्ययन अपने आप में महत्त्वपूर्ण है।

निशीथ सूत्र में पापों के प्रायश्चित्त का विधान विस्तार से वर्णित है। जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को सूर्य का प्रकाश दूर करता है उसी प्रकार अतिचार (संयम-विरुद्ध आचरण) के अन्धकार को प्रायश्चित्त दूर करता है। यही इस सूत्र का विषय है।

अंगचूलिका सूत्र–यह सूत्र आचारांग आदि अंगों की चूलिका है। चूलिका का अर्थ है कहे या अनकहे विषयों का संग्रह।

वर्गचूलिका सूत्र–यह अंग सूत्रों में रहे वर्गों की चूलिका है। जैसे अंतकृद्दशासूत्र के आठ वर्ग हैं उनकी चूलिका।

विवाहचूलिका–यह व्याख्याप्रज्ञप्ति अथवा भगवतीसूत्र की चूलिका है।

वरुणोपपात–इस सूत्र का पाठ किए जाने पर वरुणदेव उपस्थित होकर सुनते हैं तथा पाठकर्ता मुनि को वरदान माँगने को कहते हैं। मुनि के अनिच्छा प्रकट करने पर वे उस निस्पृह व संतोषी मुनि को वन्दन करके चले जाते हैं। इस सूत्र का विषय यही है।

उत्थानश्रुत–इसमें उच्चाटन (मंत्र द्वारा अशान्ति फैलाना) का वर्णन है।

समुत्थानश्रुत–यह उच्चाटन श्रुत का विलोम है। इसके प्रभाव से शान्ति स्थापित होती है।

नागपरिज्ञापनिका–इसमें नागकुमारों का वर्णन है।

कल्पिका-कल्पावतंसिका–इनमें सौधर्म आदि कल्पों में विशेष तप के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले देव-देवियों का वर्णन है।

पुष्पिता-पुष्पचूला–इनमें विमानवासी देवों के वर्तमान तथा पूर्वभवों का जीवनवृत्त है।

वृष्णिदशा–इसमें अन्धकवृष्णि कुल में उत्पन्न हुए दस महान् व्यक्तियों से सम्बन्धित धर्मचर्या, गति, संथारा तथा सिद्धत्व प्राप्त करने का उल्लेख है। इसके दस अध्ययन हैं।

प्रकीर्णक–अर्हत् द्वारा उपदिष्ट श्रुत के आधार पर श्रमण जिन ग्रन्थों की रचना करते हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं। भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक इस परम्परा में असंख्य

श्रमण हुए हैं। उन्होंने अर्हत् वचन के आधार पर, अपने अनुभवों, बुद्धि और वचन-कौशल से सर्वजनहिताय असंख्य ग्रन्थों की रचना की है। ये सभी प्रकीर्णक कहे जाते हैं।

Elaboration—Brief introduction of *kalik sutras*—

1. *Uttaradhyayan*—It has thirty six chapters compiling the last sermons of *Bhagavan* Mahavir. This contains philosophical, ethical, aphoristic, and narrative (stories) material. Every chapter in this work is individually important.

5. *Nisheeth*—It contains procedures of atonement in details. As the darkness of night is dispelled by day light, in the same way the darkness of transgression of codes or discipline is removed by the light of atonement. This is the main theme of this *sutra*.

13. *Angachulika*—This *Sutra* is the *chulika* of *Acharang sutra* and other *Anga sutras. Chulika* means the compilation of topics included as well as missed in the main work. It is something like appendix and/or addendum.

14. *Vargachulika*—This is the *chulika* of *vargs* (sections) of *Anga sutras.* For example, the *chulika* of eight sections of *Antakritdasha Sutra.*

15. *Vivahachulika*—This is the *chulika* of *Vyakhya Prajnapti* or *Bhagavati Sutra.*

17. *Varunopapata*—When this sutra is ritually recited, god Varun is invoked to arrive and listen. After that he offers boons to the reciting ascetic. When the ascetic expresses about the absence of any desire for the boons, the god offers homage to that contented and detached ascetic, and leaves. This is the theme of this work.

23. *Utthanashrut*—This deals with *ucchatan* (to spread disturbances by casting a spell through mantra chanting).

24. *Samutthanashrut*—This is the opposite of the *Utthanashrut.* This is meant to spread peace.

25. *Nagaparijnapanika*—This describes the *Nagakumars* or the serpent gods.

27, 28. *Kalpika* and *Kalpavatansika*—These describes the gods and goddesses born, as a consequence of observing special austerities, in the *Saudharma* and other *kalpas* (celestial abodes of gods).

29, 30. *Pushpita* and *Pushpachulika*—This contains the stories of the present and the earlier births of gods having celestial abodes.

31. *Vrishnidasha* or *Andhakavrishnidasha*—This contains information about the spiritual pursuits, rebirths, ultimate vows, and liberation of the ten great men born in the *Vrishni* or *Andhakavrishni* family. It has ten chapters.

Prakirnaks—The scriptures written by *shramans* on the basis of the *shrut* propagated by *Arhats* are called *Prakirnaks*. Starting from the *shasan* (period of influence) of *Bhagavan Rishabhdev* up to that of *Bhagavan* Mahavir, there have been innumerable *shramans* in this tradition. They have written innumerable books based on the precepts of the *Arhat* and their own experiences and wisdom, using their expertise of language, for the benefit of all. All these works are called *Prakirnaks*.

अंग-प्रविष्ट श्रुत परिचय
ANGA-PRAVISHTA SHRUT

८२ : से किं तं अंगपविट्ठं?

अंगपविट्ठं दुवालसविहं पण्णत्तं, तं जहा–

(१) आयारो, (२) सूयगडो, (३) ठाणं, (४) समवायो, (५) विवाहपन्नत्ती, (६) नायाधम्मकहाओ, (७) उवासगदसाओ, (८) अंतगडदसाओ, (९) अणुत्तरोववाइअदसाओ, (१०) पण्हावागरणाइं, (११) विवागसुअं, (१२) दिट्ठिवाओ।

अर्थ–प्रश्न–अंगप्रविष्ट श्रुत कितने हैं?

उत्तर–अंगप्रविष्ट श्रुत बारह बताये हैं जो इस प्रकार हैं–

(१) आचार, (२) सूत्रकृत्, (३) स्थान, (४) समवाय, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति, (६) ज्ञाताधर्मकथा, (७) उपासकदशा, (८) अन्तकृद्दशा, (९) अनुत्तरौपपातिक, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाकश्रुत, और (१२) दृष्टिवाद।

82. Question—What is this *Anga-pravishta Shrut*?

Answer—*Anga-pravishta Shrut* is said to be of twelve types—

1. Achar, 2. Sutrakrit, 3. Sthana, 4. Samavaya, 5. Vyakhyaprajnapti, 6. Jnatadharmakatha, 7. Upasakadasha, 8. Antakriddasha, 9. Anuttaraupapatik, 10. Prashnavyakaran, 11. Vipak shrut, and 12. Drishtivad.

(१) आचारांगसूत्र परिचय
1. ACHARANG SUTRA

८३. से किं तं आयारे?

आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयार-गोअर-विणय-वेणइअ-सिक्खा-भासा-अभासा-चरण-करण-जाया-माया-वित्तीओ आघविज्जंति। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—(१) नाणायारे, (२) दंसणायारे, (३) चरित्तायारे, (४) तपायारे, (५) वीरियायारे।

आयारे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुअक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीइ उद्देसणकाला, पंचासीइ समुद्देसणकाला, अट्ठारस पयसहस्साणि पयग्गेणं, संखिजा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ, जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एणं चरण-करण-परूवणा आघविज्जइ। से त्तं आयारे।

अर्थ—प्रश्न—आचारांग में क्या है?

उत्तर—आचारांग में श्रमण निर्ग्रन्थों के आचार, गोचर, विनय, विनय-फल, शिक्षा, भाषा, अभाषा, चरण, करण, यात्रा, मात्रा, वृत्तियाँ इत्यादि विषय कहे गये हैं। यह आचार संक्षेप में पाँच प्रकार का बताया गया है, जो इस प्रकार है—(१) ज्ञानाचार, (२) दर्शनाचार, (३) चारित्राचार, (४) तपाचार, और (५) वीर्याचार।

आचारांग में परिमित वाचनाएँ हैं। इसमें संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात छंद, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

यह आचारांग अंगों की दृष्टि से प्रथम अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध, पच्चीस अध्ययन, पिच्यासी उद्देशनकाल, और पिच्यासी समुद्देशनकाल हैं। इसमें पद परिमाण से अठारह हजार पद, संख्यात अक्षर तथा अनन्त गम और अनन्त पर्यायें हैं। इसमें परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावर जीवों का वर्णन है। शाश्वत (धर्मास्तिकाय आदि) और कृत (निर्मित) तथा स्वाभाविक पदार्थों के स्वरूप का इसमें वर्णन है। निर्युक्ति आदि अनेक प्रकार से

जिन-प्रज्ञप्त भाव कहे गये हैं, प्रज्ञापित किये गये हैं, प्ररूपित किये गये हैं, दर्शित किये गये हैं, निदर्शित किये गये हैं और उपदर्शित किये गये हैं।

आचारांग में चरण-करण की ऐसी प्ररूपणा की गई है कि इसको ग्रहण करने वाला ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है।

यह आचारांग सूत्र का वर्णन है।

83. Question—What is this *Acharang Sutra?*

Answer—The subjects discussed in Acharang Sutra are—the codes of *achar* (conduct), *gochar* (food intake), *vinaya* (modesty of behavior), *vinaya-fal* (fruits of modesty), education, language, negations about language, *charan* (practices),*karan* (means), *yatra* (travel), *matra* (quantities), *vritti* (attitude), etc. This *achar;* in brief, is said to be of five types—*1. Jnanachar, 2. Darshanachar, 3. Charitrachar, 4. Tapachar,* and *5. Viryachar.*

Acharang has limited readings (compilations, editions). It has countable *Anuyogadvar,* countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), and countable *pratipattis.*

This *Acharang* is first among the *Angas.* It has two *shrutskandha* (parts), 25 chapters, 85 *uddeshan kaal,* and 85 *samuddeshan kaal.* Measured in *pad* (sentence units) it has eighteen thousand *pad.* It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite variations. It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. It contains description of forms of *shashvat* (eternal or fundamental), created and natural substances. In many styles like *niryukti,* the tenets of *Jina* have been stated, propagated *(prajnapit),* detailed *(prarupit),* explained (with the help of metaphors) *(darshit),* clarified (with the help of examples) *(nidarshit),* and simplified (with the help of discourse style) *(upadarshit).*

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert.

This concludes the description of *Acharang Sutra.*

विवेचन—आचार का अर्थ है आचरण। पूर्व आप्त पुरुषों द्वारा ज्ञानादि का आसेवन अर्थात् जिस विधि का आचरण किया गया वह आचार है। जिसमें इस विषय का प्रतिपादन हो उस शास्त्र को भी आचार कहते हैं। श्रमण परम्परा में इसका अर्थ हुआ जिसमें श्रमण निर्ग्रन्थों के आचार का सर्वांगीण वर्णन किया गया हो उस आचार प्रधान सूत्र को आचारांगसूत्र कहते हैं।

इसके अन्तर्गत पाँच विषय इस प्रकार हैं—

(I) **ज्ञानाचार**—नये ज्ञान की प्राप्ति तथा प्राप्त ज्ञान की रक्षा के लिए जो आचरण आवश्यक है उसे ज्ञानाचार कहते हैं। इसकी सम्यक् आराधना के आठ प्रकार बताये हैं—

(१) **काल**—आगमों में जिस समय जिस सूत्र को पढ़ने का विधान है उसी समय उस सूत्र का अध्ययन करना।

(२) **विनय**—अध्ययन काल में तथा अन्यथा भी ज्ञान तथा ज्ञानदाता गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखना।

(३) **बहुमान**—ज्ञान व ज्ञानदाता के प्रति गहरी आस्था व बहुमान रखना।

(४) **उपधान**—आगम में जिस सूत्र को पढ़ने के लिए जिस तप का विधान किया गया है, अध्ययन करते समय उसी तप का आचरण करना। तप के बिना अध्ययन फलदायी नहीं होता।

(५) **अनिह्नवण**—ज्ञान और ज्ञानदाता के नाम को गुप्त रखने की चेष्टा नहीं करना।

(६) **व्यंजन**—सूत्र का यथाशक्ति शुद्ध उच्चारण करना। शुद्ध उच्चारण निर्जरा का हेतु होता है, और अशुद्ध उच्चारण अतिचार का।

(७) **अर्थ**—बिना स्वेच्छा से जोड़े-घटाए सूत्रों का प्रामाणिकता से अर्थ करना।

(८) **तदुभय**—आगमों का अध्ययन और अध्यापन विधिपूर्वक तथा अतिचाररहित करना।

(II) **दर्शनाचार**—सम्यक् साधना के फलस्वरूप आध्यात्मिक विकास होता है। इस आध्यात्मिक विकास के परिणामस्वरूप ज्ञेयमात्र को तात्त्विक रूप जानने की, हेय को त्याग देने की और उपादेय को ग्रहण करने की आन्तरिक रुचि जन्म लेती है। इसे निश्चय सम्यक्त्व या विशुद्ध सम्यक्त्व कहते हैं। इस रुचि से धर्म तत्त्व के प्रति निष्ठा जागती है और धीरे-धीरे बलवती होती जाती है—इसे व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं। सम्यक्त्व को स्वच्छ, दृढ़ व उद्दीप्त करने का नाम दर्शनाचार है। इसके आठ अंग हैं—

(१) **निःशंकित**—अर्हत् वचन, केवलिभाषित धर्म, धर्म-संघ, तथा मोक्ष-प्राप्ति के उपायों के प्रति कोई शंका नहीं रखना तथा आत्म तत्त्व पर निराग्रह श्रद्धा रखना।

(२) **निःकांक्षित**—सच्चे देव, गुरु, धर्म और शास्त्र को छोड़ किसी अन्य कुदेव, कुगुरु, शास्त्राभास और धर्माभास की आकांक्षा नहीं करना।

(३) **निर्विचिकित्सा**—"मैं जो आचरण करता हूँ उस धर्म का फल मिलेगा या नहीं?" फल के प्रति इस प्रकार किंचित् मात्र सन्देह न करना।

(४) **अमूढ़दृष्टि**—विभिन्न दर्शनों की तर्क व युक्तियों से, मिथ्यादृष्टि की ऋद्धि आडम्बर, चमत्कार, विद्वत्ता, भय, अथवा प्रलोभन से भ्रमित हो उनकी ओर आकर्षित न होना। स्त्री, पुत्र, धन आदि के प्रति आसक्त हो मूढ़ न बनना।

(५) **उववूंहण**—जो संघ सेवा करते हैं, साहित्यसेवी हैं, तप-संयम की आराधना करते हैं, जिनकी प्रवृत्ति जनसेवा, जीव-सेवा तथा धर्म-क्रिया में बढ़ रही है उनका उत्साह बढ़ाना तथा उस ओर प्रयत्न करना।

(६) **स्थिरीकरण**—धर्म से गिरते हुए सहधर्मी व्यक्तियों को धर्म में स्थिर करना।

(७) **वात्सल्य**—सहधर्मी जनों पर वात्सल्य भाव रखना, उन्हें देखकर प्रसन्न होना और उनका आदर-सम्मान करना।

(८) **प्रभावना**—जिन क्रियाओं में धर्म-शासन की उन्नति हो तथा जन सामान्य धर्म से प्रभावित हो उन क्रियाओं में संलग्न होना और जिन क्रियाओं से धर्म की हीनता तथा निन्दा हो वे न करना।

(III) चारित्राचार—जिससे संचित कर्म या कर्मों की सत्ता का क्षय हो उसे चारित्र कहते हैं। अणुव्रत देश-चारित्र हैं तथा महाव्रत सार्वभौम-चारित्र। चारित्राचार से आत्मा ऊर्ध्वगामी होती है। चारित्राचार दो भागों में विभाजित है–(अ) प्रवृत्ति, और (ब) निवृत्ति। मोक्षाभिमुख प्रशस्त प्रवृत्ति को समिति कहते हैं और निकृष्ट वर्जित आचार से निवृत्ति को गुप्ति।

(अ) समिति पाँच प्रकार की है–

(१) **ईर्या समिति**—षट्कायिक जीवों की रक्षा करते हुए यत्न सहित गमनागमन।

(२) **भाषा समिति**—सत्य एवं मर्यादा की रक्षा करते हुए यत्नपूर्वक बोलना।

(३) **एषणा समिति**—अहिंसा (जीवदया), अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की रक्षा करते हुए यतना से आजीविका करना या निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना।

(४) **आदान भण्डमात्र निक्षेप समिति**—उठाने रखने वाली वस्तु को अहिंसा (जीवदया), अपरिग्रह व्रत की रक्षा करते हुए यतना से उठाना-रखना।

(५) **उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्मजल्ल-मल निक्षेप समिति**—मल-मूत्र, श्लेष्म, थूक आदि जो शरीर के उत्सर्जन हों, अनावश्यक हों, रोगवर्द्धक हों, फैंकने योग्य हों, उन्हें

यतना से ऐसे स्थान पर तथा इस प्रकार परिष्ठापन करना अथवा डालना जिसमें किसी आने-जाने वाले को असुविधा या हानि न पहुँचे।

गुप्ति–हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन व परिग्रह इन पापकर्मों के सेवन से मन, वचन एवं शरीर को संयत रखना गुप्ति कहलाता है।

(IV) तपाचार–इच्छाओं पर अंकुश लगाना तप है। विषय-कषाय आदि दुर्विकारों से मन को हटाने के लिए और राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने के लिए उपायों से शरीर, इन्द्रिय और मन को तपाया जाता है, वे सभी उपाय तप हैं। इनके दो भेद हैं–(अ) बाह्य तप, और (ब) आभ्यन्तर तप।

(अ) **बाह्य तप**–जो तप प्रकट रूप से किया जाये तथा जिसका मुख्य उद्देश्य आभ्यन्तर तप की पुष्टि करना हो वह बाह्य तप है। इसके छह प्रकार बताये हैं–

(१) **अनशन**–भोजन आदि का त्याग। इस त्याग का उद्देश्य होता है–संयम की पुष्टि, राग का उच्छेद, कर्म का विनाश, और धर्मध्यान की वृद्धि।

(२) **ऊनोदरी**–भूख से कम भोजन करना।

(३) **वृत्ति परिसंख्यान**–चित्त-वृत्ति पर विजय पाने तथा आसक्ति कम करने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव रूप अभिग्रह धारण करना अथवा सीमा के नियम ग्रहण करना। जैसे–एक दिन में एक ही घर से भिक्षा ग्रहण करूँगा, एक दिन में चार द्रव्य ही ग्रहण करूँगा आदि।

(४) **रस परित्याग**–रुचिकर तथा शरीर की पुष्टि करने वाले रसों का परित्याग करना अथवा रसहीन या अस्वाद वस्तुओं को ग्रहण करना।

(५) **इन्द्रिय प्रतिसंलीनता अथवा विविक्त शय्यासन**–निर्बाध ब्रह्मचर्य का पालन तथा ध्यान में एकाग्रता वृद्धि के उद्देश्य से इन्द्रियों को सुखकर आसन व शय्या का त्याग करना। एक प्रकार से इन्द्रियों का संकोच।

(६) **कायक्लेश**–शीत व उष्ण परीषह सहन करना, आतापना लेना आदि विविध प्रकारेण शरीर वृत्ति का संयम।

(ब) **आभ्यन्तर तप**–जिसमें मानसिक क्रिया की प्रधानता हो और जो बाह्य साधनों के अभाव में सब पर प्रकट न हो ऐसा तप आभ्यन्तर तप होता है। ये भी ६ प्रकार के बताये हैं–

(१) **प्रायश्चित्त**–प्रमादवश हुए पापों के प्रति पश्चात्ताप करते हुए पापों से निवृत्ति करना।

(२) **विनय**–पूज्य जनों तथा उच्च चारित्र धारक महापुरुषों का विनय बहुमान करना।

(३) **वैयावृत्य**–स्थविर, रोगी, तपस्वी, नवदीक्षित एवं पूज्य जनों की यथाशक्ति सेवा करना।

(४) **स्वाध्याय**–शास्त्र वाचना, पृच्छना आदि पाँच प्रकार का स्वाध्याय करना।

(५) **ध्यान**–शुभ ध्यान–धर्म एवं शुक्ल ध्यान में लीन रहना।

(६) **व्युत्सर्ग**–बाह्य व आभ्यन्तर परिग्रह का यथाशक्ति त्याग करना अथवा ममता का त्याग और समता की वृद्धि करना।

(V) वीर्याचार–वीर्य का अर्थ है शक्ति। अपने बल एवं शक्ति को उपरोक्त ३६ प्रकार के शुभ अनुष्ठानों में पूरी एकनिष्ठता से प्रयुक्त करना तथा मोक्षमार्ग में प्रयत्नशील रहना ही वीर्याचार है।

Elaboration—*Achar* means conduct or behavior. The procedure of acquiring knowledge, that was followed by the great sages of the past is *achar*. The book in which this subject has been discussed is also called *achar*. In the *Shraman* tradition it means—the conduct based scripture in which mainly the subject of codes of conduct of *shraman nirgranth* (Jain ascetic) has been discussed in complete detail is known as *Acharang Sutra*.

The five subjects included in this are as follows—

I. Jnanachar (knowledge-conduct or conduct of cognition)—The conduct necessary for acquisition of new knowledge and protection of already acquired knowledge is *Jnanachar*. There are eight types of practices designed to accomplish this—

1. **Kaal**—To study a particular *Agam* at a specific time of the day as prescribed in *Agams*.
2. **Vinaya**—To have respect and devotion for knowledge and teacher while studying and otherwise also.
3. **Bahuman**—To have deep faith and esteem for knowledge and teacher.
4. **Updhaan**—During the study of a particular *sutra*, to observe the specific austerities as prescribed in *Agams*. Without accompanying austerities no study is fruitful.
5. **Aninhavan**—Not to try to conceal the names of knowledge and teacher.

6. **Vyanjan**—To pronounce the sutra properly to the best of one's ability. Immaculate pronunciation leads to *nirjara* (shedding of karma particles) and faulty pronunciation amounts to transgression of codes.

7. **Arth**—To give an authentic translation of sutras without annexing or removing anything with ones own discretion.

8. **Tadubhaya**—To study and teach *Agams* following the prescribed procedure and without any violation of the codes.

II. Darshanachar—Right practices lead to spiritual development. With this spiritual development comes the penchant for knowing all that is knowable, rejecting what is base, and accepting what is righteous. This is called *nishchaya samyaktva* (perfect righteousness) or *vishuddha samyaktva* (pure righteousness). With this inclination comes gradually strengthening faith in fundamentals of religion. This is called *vyavahar samyaktva* (applied righteousness). The activities of purifying, strengthening, and enhancing *samyaktva* is called *darshanachar*. It has eight parts—

1. **Nihshankit**—To have no doubts in the words of the *Arhat*, religion propagated by the *Kewali*, *Dharma sangh* (religious organization), and the means to attain liberation. To have faith in the fundamental that is soul, without any reservations.

2. **Nihkankshit**—Other than the true deity, guru, religion, and scriptures, never to strive for having sham deity, guru, religion, and scriptures.

3. **Nirvichiktsa**—Never to have even slightest doubt about the fruits of religion, like—"Will the religious conduct I am following, bear fruits or not?"

4. **Amoodh-drishti**—Not to be misled by the logic and arguments of other schools of philosophy, the grandeur, ostentations, miracles, scholarship, fear, or enticement of charlatans and get attracted towards them. Not to become dimwitted under allurements like wife, son, and wealth.

5. **Uvabrimhan**—To actively encourage those who indulge in service of the religious organization, literary activities, practices of discipline and austerities, and whose interest in activities of public service, animal welfare, and religion is growing.

6. **Sthirikaran**—To stabilize the straying co-religionists back into religious discipline.

7. **Vatsalya**—To nurture a feeling of affection for co-religionists, to be pleased by seeing them, and to respect and honour them.

8. **Prabhavana**—To indulge in activities that help spread and progress of the religious order and impress and influence the masses to follow the true religious path. Also to desist from indulging in activities that bring infamy and invite criticism of the religion.

III. Charitrachar—That which helps shedding of the accumulated karma particles or the reign of karmas is called *charitra* (conduct). *Anuvrat* (minor vows) is *desh charitra* (partial observation of codes of conduct) and *Mahavrat* (great vows) is *sarvabhaum charitra* (perfect or complete following of codes of conduct). The following of code of conducts helps the upward movement of the soul. *Charitrachar* has two divisions—(a) *Pravritti* (indulgence), and (b) *Nivritti* (abstinence). The pious indulgence directed at liberation is called *samiti* and abstinence from base and prohibited activities is called *gupti.*

(a) *Samiti* (self regulation) is of five types—

1. **Irya samiti**—Careful movement, protecting all the six classes of beings.

2. **Bhasha samiti**—Careful speech fostering truth and discipline.

3. **Eshana samiti**—Careful provision of food or faultless collection of alms fostering *ahimsa* (compassion for beings), *asteya* (non-stealing or non-grabbing), *brahmacharya* (continence), and *aparigrah* (non-possession).

4. **Adan bhandamatra nikshep samiti**—Careful shifting or placing of movable things observing the vows of *ahimsa* and *aparigrah*.

5. **Uchhar-prasravan-shleshmajalla-mal nikshep samiti**—Careful dispensing of the waste and toxic products of the body including stool, urine, and cough, at a place and in a way that no inconvenience or harm is caused to any being.

(b) **Gupti**—To restrain body, speech, and mind from indulging in sinful activities like *himsa* (violence), *asatya* (falsity), *maithun* (sex), and *parigrah* (possessions), is called *gupti*.

IV. Tapachar—To apply restraint over desires is called *tap*. In order to shift ones mind from vices like carnal pleasures and passions, and to win over attachment and aversion, various means and methods are used to temper body, sense organs, and mind. All these means and methods are called tap. It has two divisions—(a) *Vahya tap* (outer or physical austerities), and (b) *Abhyantar tap* (inner or mental austerities).

(a) **Vahya tap** (outer or physical austerities)—The austere practices that are done visibly or outwardly and their basic purpose is to bolster the inner austerities are called *vahya tap*. It is said to be of six types—

1. **Anshan** (fasting)—To abstain from intake of food, etc. The purpose of abstention is enhancing discipline, reduction of attachment, destruction of karmas, and increase in spiritual practices.

2. **Unodari**—To eat less than the appetite.

3. **Vritti parisamkhyan**—To take vows to limit parameters of matter, space (area), time, and modes (thoughts, desires, etc.) with the purpose to master desires and reduce cravings. For example—"In one day I will collect alms from one house only." or "In a day I will eat only four substances."

4. **Rasa parityag**—To refrain from eating tasty and nutritional things. In other words to eat only dry and bland food.

5. **Indriya pratisanleenata or vivikta shayyasan**—To observe absolute continence and to refrain from using comfortable bed and seat for the purpose of increasing concentration in meditation.

6. **Kayaklesh**—To tolerate afflictions of cold and hot climate. To inflict the body with unusual heat. To discipline the body by various methods and means.

(b) **Abhyantar tap** (inner or mental austerities)—That which is primarily related to mental activities and in absence of outward manifestation which is not revealed to everybody, is called *abhyantar tap*. This is also of six types—

1. **Prayashchitt**—To atone for the sins done due to ignorance or under illusion, and to abstain from committing sins again.

2. **Vinaya**—To humbly respect seniors, great men with lofty spiritual conduct, and other respectable persons.

3. **Vaiyavritya** (ministration)—To serve *sthavirs* (senior ascetics staying at one place), ailing, those observing austerities, newly initiated, and seniors, to the best of one's abilities.

4. **Svadhyaya**—To indulge in all the five facets of studies, including reciting scriptures and asking questions.

5. **Dhyan**—To be engrossed in pious meditation—spiritual and pure.

6. **Vyutsarga**—To get free of mental and physical possessions to the best of one's abilities. In other words to reduce fondness and increase equanimity.

V. **Viryachar**—Virya means power or energy. To apply all one's power and energy with complete and unitary concentration to the above mentioned 36 types of pious activities and indulge in continued efforts in the direction of liberation is called *viryachar*.

आचारांग के चर्चित विषय
THE SUBJECTS IN ACHARANG

आचारांग में चर्चित कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों का संक्षिप्त परिचय–

चरणसत्तरि–५ महाव्रत, १० प्रकार के श्रमण धर्म, १७ विधि संयम, १० प्रकार का वैयावृत्य, ९ प्रकार की ब्रह्मचर्यगुप्ति, रत्नत्रय, १२ प्रकार के तप, ४ कषाय निग्रह ये सत्तर चरण अथवा चरणसत्तरि है।

करणसत्तरि–४ प्रकार की पिण्डविशुद्धि, ५ समिति, १२ भावनाएँ, १२ भिक्षु प्रतिमाएँ, ५ इन्द्रिय-निरोध, २५ प्रकार की प्रतिलेखना, ३ गुप्तियाँ, और ४ प्रकार के अभिग्रह ये सत्तरकरण अथवा करणसत्तरि है।

गोचर–भिक्षा ग्रहण करने की शास्त्र सम्मत विधि।

विनय–ज्ञानी व चारित्रवान का आदर-सम्मान।

वैनयिक–शिष्यों का स्वरूप और उनके कर्त्तव्य का वर्णन।

शिक्षा–ग्रहण शिक्षा और आसेवन शिक्षा दोनों का पालन करना।

भाषा–साधुवृत्ति में बोलने योग्य दो भाषाएँ–सत्य एवं व्यवहार।

अभाषा–साधुवृत्ति में वर्जित भाषाएँ–असत्य एवं मिश्र।

यात्रा–आवश्यकीय संयम, तप, ध्यान, समाधि एवं स्वाध्याय में प्रवृत्ति करना।

मात्रा–संयम-पालन हेतु शरीर-निर्वाह के लिए परिमित आहार ग्रहण करना।

वृत्ति–विविध प्रकार अभिग्रह धारण कर संयम की पुष्टि करना।

आचारांग की विशेषताएँ

वाचना–आरम्भ से अन्त तक जितनी बार शिष्य को नया पाठ दिया जाता है और लिखा जाता है वह वाचना कहलाता है। आचारांग में संख्यात वाचनाएँ हैं।

अनुयोगद्वार–अनुयोग का अर्थ है प्रवचन। सूत्र अल्पाक्षर युक्त होता है और अर्थ बहुअक्षर युक्त तथा विशाल। जो सूत्र और अर्थ के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का माध्यम है वह है अनुयोगद्वार। सूत्र का मर्म पूर्णतया भलीभाँति समझने के लिए चार अनुयोगद्वार बताए हैं–उपक्रम, निक्षेप, अनुगम तथा नय। आचारांग में ऐसे संख्यात सूत्र या पद हैं।

वेढ़ा अथवा वेष्टक–किसी एक विषय को प्रतिपादित करने वाले वाक्य को अथवा किसी छन्द विशेष को वेष्टक कहते हैं। आचारांग में संख्यात वेष्टक हैं।

श्लोक–आचारांग में अनुष्टुप आदि श्लोक संख्यात हैं।

निर्युक्ति–निश्चयपूर्वक अर्थात् स्पष्ट रूप में अर्थ को प्रतिपादन करने वाली युक्ति को निर्युक्ति कहते हैं। आचारांग में संख्यात निर्युक्तियाँ हैं।

प्रतिपत्ति–जिसमें द्रव्यादि पदार्थों विषयक मान्यता अथवा प्रतिमा आदि अभिग्रह विशेष का उल्लेख हो वह प्रतिपत्ति है। आचारांग में संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

उद्देशन काल–गुरु की आज्ञा तथा व्यवस्थानुसार अंगसूत्र आदि शास्त्र विशेष का पठन-पाठन करना। आचारांग में इसका विधान है।

समुद्देशन काल–गुरु की आज्ञा तथा व्यवस्थानुसार किसी शास्त्र में से पाठ विशेष अथवा विषय विशेष अथवा अंश विशेष का पठन-पाठन करना। आचारांग में इसका विधान है।

पद–पद चार प्रकार के होते हैं–अर्थपद, विभक्त्यपद, गाथापद, और समासान्तपद। आचारांगसूत्र में अठारह हजार अर्थपद हैं।

अक्षर–आचारांगसूत्र में संख्यात अक्षर हैं।

गम–अर्थ निकालने के मार्ग जो अभिधान व अभिधेय के वश से होते हैं गम कहलाते हैं (शब्द से अर्थबोध पाना गम है)। आचारांग में अनन्त गम हैं।

त्रस–आचारांग में परिमित त्रसों का वर्णन है।

स्थावर–आचारांग में अनन्त स्थावरों का वर्णन है।

पर्याय–आचारांग में स्व-पर भेद से अनन्त पर्यायों का वर्णन है।

शाश्वत, प्रयोगज तथा विश्रसा–धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य नित्य शाश्वत हैं। घट-पट आदि प्रयोगज कृत्रिम है, तथा संध्याकालीन लालिमा आदि विश्रसा स्वाभाविक है।

आघविज्जंति आदि का अर्थ इस प्रकार है–

आघविज्जंति–सामान्य एवं विशेष रूप में कथन करना।

पण्णविज्जंति–नाम आदि का भेद प्रदर्शित करके कथन करना।

परूविज्जंति–किसी विषय का विस्तार करना।

दंसिज्जंति–उपमा-उपमेय द्वारा भाव दर्शाना।

निदंसिज्जंति–हेतु-दृष्टान्त आदि द्वारा वस्तु स्वरूप बताना।

उवदंसिज्जंति–उपदेश प्रधान सुगम शैली से कथन करना ताकि सभी को बुद्धिग्राह्य बन सके।

आचारांग में ये छहों प्रकार की शैली द्वारा तत्त्व का स्वरूप वर्णन किया गया है।

आचारांग की अधिकांश रचना गद्यात्मक है। केवल कुछ स्थानों पर पद्यों का समावेश है। इसके सातवें अध्ययन का नाम महापरिज्ञा है किन्तु वह अनुपलब्ध है। नवाँ अध्ययन, जिसका

नाम उपधान है, भगवान महावीर के आदिवासी क्षेत्रों में किये चातुर्मासों के मार्मिक विवरणों से समन्वित है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध में १६ अध्ययन हैं जिनमें निर्ग्रन्थ के निर्दोष आचरण का विभाग से वर्णन है। भगवान महावीर का जीवनवृत्त भी सविस्तार दिया गया है। इसकी भाषा प्रथम श्रुतस्कन्ध से सरल है।

ऐसी मान्यता है कि आचारांग के पठन से अज्ञान दूर होता है। इसके अनुसार आचरण से आत्मा ज्ञान-विज्ञान रूप हो जाता है और मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर हो जाता है।

Information in brief about some topics discussed in Acharang Sutra—

Charan-sattari (seventy ascetic practices)—Five *mahavrat* (great vows), ten types of religious duties of a *shraman*, seventeen types of disciplines, ten types of *vaiyavritya* (ministration), nine types of *brahmacharya gupti* (discipline of continence), *ratnatraya* (three spiritual gems—right perception or faith, right knowledge, and right conduct), twelve types of austerities, and four *kashaya nigrah* (subduing the passions), these are seventy *charan* (ascetic practices) or *charan-sattari.*

Karan-sattari (ascetic activities)—Four types of *pind vishuddhi* (purifying matter like food etc.), five *samiti* (self regulation), twelve *bhavana* (attitudes, feelings), twelve *bhikshu pratima* (stages of ascetic practices), five *indriya nirodh* (control of sense organs), twenty five *pratilekhana* (examining or checking of equipment and process), three *gupti* (restraint), and four types of *abhigrah* (resolutions), these are seventy *karan* or *karan-sattari.*

Gochar (alms collection)—The procedure of alms collecting as prescribed in scriptures.

Vinaya—Giving respect and honour to scholars and those observing perfect conduct.

Vainayik—Discussion about definition and duties of disciples or students.

Shiksha—Perfection and use of *grahan shiksha* (theoretical) and *asevan shiksha* (practical education).

Bhasha—The two types of speech prescribed for ascetics—absolute truth and worldly truth.

Abhasha—The two types of speech proscribed for ascetics—lie and mixed.

Yatra—Indulgence in *avashyakiya* (essential disciplines), *tap* (austerities), *dhyan* (meditation), *samadhi* (deep meditation), and *svadhyaya* (studies, or self-study).

Matra—Restricted food intake just enough to maintain the body and facilitate observation of discipline.

Vritti—Bolstering discipline by practicing a variety of *abhigrah* (resolutions).

Specialties of Acharang Sutra

Vachana—The number of new lessons given to or written for a student from start to finish is called *vachana.* In *Acharang Sutra* there are countable *vachanas.*

Anuyogadvar—*Anuyoga* means lecture or discourse. *Sutra* (aphorism) has less or limited number of words and *artha* (meaning) has large and unlimited number of words. That which is the medium of establishing relationship between *sutra* and *artha* is called *anuyogadvar.* To understand the complete and proper meaning of *sutra* four *anuyogadvar* have been mentioned—*upkram, nikshep, anugam,* and *naya.* In *Acharang Sutra* there are countable such *sutras* and sentences.

Vedha or *Veshtak*—A sentence or verse conveying one particular subject is called *veshtak.* In *Acharang Sutra* there are countable such *veshtaks.*

Shlok—Couplets and other verse styles. In *Acharang Sutra* there are countable such *shloks.*

Niryukti—The dialectic or logical reasoning used to expostulate the meaning clearly and authentically is called *niryukti.* In *Acharang Sutra* there are countable such *niryuktis.*

Pratipatti—The part of text where there are mentions of beliefs about things like *dravya* (substances) or specific *pratima* and *abhigrah* is called *pratipatti.* In *Acharang Sutra* there are countable such *pratipattis.*

Uddeshan kaal—To read and recite a specific canon or scripture according to the established norms under the guru's instructions. In *Acharang Sutra* there are laid down procedures for this.

Samuddeshan kaal—To read and recite a specific lesson or topic or portion from a specific canon or scripture according to the established norms under the guru's instructions. In *Acharang Sutra* there are laid down procedures for this.

Pad—A sentence which is a part of a paragraph or a verse. There are four types of *pad—arthapad* (meaning), *vibhaktyapad* (parsing), *gathapad* (part of a verse), and *samasantapad* (rhymed). In *Acharang Sutra* there are eighteen thousand *pad*.

Akshar (alphabet)—In *Acharang Sutra* there are countable number of *akshar*.

Gum—The path of deriving the meaning that is dependent on *abhidhan* (nomenclature) and *abhidheya* (predicate). In *Acharang Sutra* there are infinite *gums*.

Tras (mobile beings)—In *Acharang Sutra* there are descriptions of limited number of *tras*.

Sthavar—In *Acharang Sutra* there are descriptions of infinite number of *sthavar* (immobile beings).

Paryaya—In *Acharang Sutra* there are descriptions of infinite number of *paryaya* (variations) with reference to the self and the other.

Shashvat, prayogaj and *vishrasa*—The substances like *dharmastikaya* (medium of motion or mobility) are *shashvat* (eternal or perpetual), things like pot and plank are *prayogaj* (made), and situations like crimson of the dusk are *vishrasa* (natural).

The meanings of terms *aaghvijjanti*, etc. are—

Aaghvijjanti—To state ordinarily and specifically.

Pannavijjanti—To state by revealing differences in names, etc.

Paroovijjanti—To elaborate a subject.

Dansijjanti—To express an idea with the help of metaphors and analogies.

Nidansijjanti—To explain a thing with the help of cause and example.

Uvadansijjanti—To state in an easy discourse style so that it is easily understood by all.

In *Acharang Sutra* all these six styles of expression have been used to describe the fundamentals.

Acharang Sutra is mainly in prose. Only at few places verses have been used. The name of its seventh chapter, which is extinct, is *Maha Parijna*. The ninth chapter titled *Upadhan* contains the touching details of the monsoon stays *Bhagavan* Mahavir spent in remote areas inhabited by aborigines. In the second *shrutskandh* (part) there are sixteen chapters containing the properly classified and detailed description of faultless conduct of an ascetic. The story of life of *Bhagavan* Mahavir in greater details has also been included. The language of this part is easier as compared with the first *shrutskandha* (part).

It is believed that reading *Acharang Sutra* removes ignorance. By following the codes of conduct mentioned in *Acharang Sutra*, the soul becomes the embodiment of knowledge and progresses towards the path of liberation.

(२) सूत्रकृतांग सूत्र परिचय
2. SUTRAKRITANG SUTRA

८४ : से किं तं सूअगडे?

सूअगडे णं लोए सूइज्जइ, अलोए सूइज्जइ, लोआलोए सूइज्जइ जीवा सूइज्जंति अजीवा सूइज्जंति, ससमए सूइज्जइ, परसमए सूइज्जइ, ससमय-परसमए सूइज्जइ।

सूअगडे णं असीअस्स किरियावाइसयस्स, चउरासीईए अकिरिआवाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणि-अवाईणं, बत्तीसाए वेणइअवाईणं, तिण्हं तेसट्ठाणं पासंडिअसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ।

सूअगडे णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणु-ओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए बिइए अंगे, दो सुअक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसणकाला, तित्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साणि पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणए आघविज्जइ।

से त्तं सूयगडे।

अर्थ—प्रश्न—उस सूत्रकृतांग में क्या है?

उत्तर—सूत्रकृतांग में लोक सूचित किया है, अलोक सूचित किया है, लोकालोक सूचित किया है, जीव सूचित किया है, अजीव सूचित किया है और जीवाजीव सूचित किया है। साथ ही स्व-मत, पर-मत तथा स्व-पर-मत भी सूचित किया है।

सूत्रकृतांग में १८० क्रियावादियों, ८४ अक्रियावादियों, ६७ अज्ञानवादियों और ३२ विनयवादियों को मिलाकर ३६३ पाखण्डियों को व्यूहबद्ध कर स्वसिद्धान्त की स्थापना की गई है।

सूत्रकृतांग में परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात छंद, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

यह अंग अर्थ की दृष्टि से द्वितीय अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध और २३ अध्ययन हैं तथा ३३ उद्देशन काल व ३३ समुद्देशन काल हैं। इसका पद परिमाण ३६ हजार है। इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध व हेतु आदि द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है, तथा उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इसमें तल्लीन होने पर उस अर्थ का ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है। इस प्रकार की चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह सूत्रकृतांग का वर्णन है।

84. Question—What is this *Sutrakritang*?

Answer—*Sutrakritang* informs about *lok* (inhabited space), *alok* (un-inhabited space or the space beyond), and *lokalok* (inhabited and un-inhabited space) and *jiva* (being), *ajiva* (non-

being or matter) and *jivaajiva* (being and matter). With this is given *sva-mat* (own view or Jain view), *par-mat* (other's view) and *sva-par-mat* (own and other's views).

In *Sutrakritang* the Jain principles have been established by systematically refuting the combined precepts of 363 charlatans including 180 *Kriyavadis*, 84 *Akriyavadis*, 67 *Ajnanavadis*, and 32 *Vinayavadis*.

Sutrakritang has limited readings (lessons, compilations, editions). It has countable *Anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), and countable *pratipattis*.

This *Sutrakritang* is second among the *Angas*. It has two *shrutskandha* (parts), 23 chapters, 33 *uddeshan kaal*, and 33 *samuddeshan kaal*. Measured in pad (sentence units) it has thirty six thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the *Jina* have been stated (*akhyayita*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Sutrakritang Sutra*

विवेचन—सूत्रकृत शब्द के विभिन्न अर्थ इस प्रकार हैं—जो सभी जीव आदि पदार्थों का बोध कराता है वह सूत्रकृत है। जो मोह निद्रा में सोए अथवा पथभ्रष्ट हुए जीवों को सन्मार्ग का संकेत दे वह सूत्रकृत है। जो अनेक विषयों को, मत-मतान्तरों को, मान्यताओं को उसी प्रकार सूत्रबद्ध करे जैसे धागे में मोती, वह सूत्रकृतांग है।

सूत्रकृतांग में लोक, अलोक व लोकालोक का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। कोई द्रव्य न अपना स्वरूप त्यागता है और न दूसरे के स्वरूप को ग्रहण करता। द्रव्य के इस द्रव्यत्व को परिभाषित किया गया है तथा यह बताया गया है कि शुद्ध जीव शुद्धात्मा अथवा परमात्मा है, शुद्ध अजीव जड़ पदार्थ है तथा संसारी जीव शरीरधारी कहलाता है जो आत्मा और जड़ के संयोग से शरीर धारण किये हुए हैं।

सूत्रकृतांग में स्वदर्शन, अन्य दर्शन तथा उभय (स्व-पर) दर्शनों का सिद्धान्त स्वरूप बताया गया है। अन्य दर्शनों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है--

(अ) क्रियावादी--जो नव तत्त्वों की अवधारणा को निराधार व मिथ्या मानते हैं तथा धर्म के वास्तविक स्वरूप के प्रति उदासीन व अनभिज्ञ होने के कारण केवल बाहरी आडम्बर व क्रियाकाण्ड के पक्षपाती हों उन्हें क्रियावादी कहते हैं। कर्त्ता ईश्वर में आस्था रखने के कारण इन्हें प्रायः आस्तिक माना जाता है। ये १२० प्रकार के बताये हैं।

(ब) अक्रियावादी--जो नव तत्त्व अथवा चारित्ररूप क्रिया का निषेध करते हैं वे अक्रियावादी कहलाते हैं। इनकी गणना प्रायः नास्तिकों में की जाती है। ये २४ प्रकार के बताए हैं। स्थानांगसूत्र के आठवें स्थान में आठ प्रकार के अक्रियावादियों का उल्लेख है। वे इस प्रकार हैं--

(१) एकवादी--जो किसी एक वस्तु में ही आस्था रखते हैं। अन्य सबको नकारते हैं वे सभी एकवादी अथवा अद्वैतवादी होते हैं। कुछ विचारक यह मानते हैं कि संसार में सभी कुछ जड़ पर आधारित है। कुछ एक मात्र शब्द को ही सर्वोपरि मानते हैं तो कुछ एक मात्र ब्रह्म को।

(२) अनेकवादी--जितने अवयव हैं वे सभी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। जितने गुण हैं उतने ही उनके स्वतन्त्र धारक हैं। ऐसे वस्तुगत अनन्त पर्याय होने से वस्तु को भी अनन्त मानने वाले अनेकवादी कहलाते हैं।

(३) मितवादी--जो लोक को सात द्वीप-समुद्र तक ही सीमित मानते हैं। जो आत्मा को सूक्ष्म अथवा अंगुष्ट प्रमाण भी मानते हैं, शरीरव्यापी या लोकव्यापी नहीं। जो दृश्यमान जीवों को ही आत्मा मानते हैं सूक्ष्म या अदृष्ट को नहीं। आत्मा के सम्बन्ध में ऐसे सभी सीमित दृष्टिकोण वाले मितवादी कहलाते हैं।

(४) निर्मितवादी--जो यह मानते हैं कि यह विश्व किसी न किसी के द्वारा निर्मित है वे सभी निर्मितवादी हैं। इनमें वे सभी सम्मिलित हैं जो किसी अदृष्ट शक्ति को कर्त्ता रूप में मानते हैं अथवा उसके किसी आकार विशेष जैसे--ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी आदि को कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता के रूपों में मानते हैं।

(५) सातावादी--कुछ लोग यह मानते हैं कि सुख का बीज सुख है और दुःख का बीज दुःख जैसे सफेद धागे से बुना वस्त्र भी सफेद होता है वैसे ही सुख के उपभोग से भविष्य में सुख प्राप्त होगा। तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि शरीर और मन को कष्टप्रद होने के कारण दुःख के मूल

कारण हैं। ऐसे शरीर तथा मन को साता अथवा सुख पहुँचाने से ही अन्ततः जीव के लिए सुख-प्राप्ति को मानने वाले सातावादी कहलाते हैं।

(६) समुच्छेदवादी—जो आत्मा आदि सभी पदार्थों को क्षणिक मानते हैं और नाश के बाद उनका अस्तित्व नहीं मानते वे समुच्छेदवादी कहलाते हैं।

(७) नित्यवादी—इस सिद्धान्त को मानने वाले यह विश्वास रखते हैं कि प्रत्येक वस्तु केवल एक रूप में अवस्थित है। पदार्थ में उत्पाद-व्यय अथवा विनाश व ह्रास नहीं होता। वे किसी भी पदार्थ को किसी संयोग व क्रिया का परिणाम नहीं मानते बल्कि कूटस्थ नित्य अर्थात् आधारभूत रूप से अपरिवर्तनशील मानते हैं। उनके अनुसार सत् और असत् दोनों की ही उत्पत्ति और विनाश नहीं होते। जो पुद्गल जैसा है वैसा चिरकाल से चला आ रहा है और चिरकाल तक वैसा ही रहेगा।

(८) न संति परलोकवादी—पुनर्जन्म, परलोक, मोक्ष आदि को नकारने वाले सभी विचारक इस श्रेणी में आते हैं। ये आत्मा के अस्तित्व को नकारते हैं और आत्मा के अभाव में पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म, शुभ-अशुभ, इहलोक-परलोक, सादि सभी का अभाव हो जाता है। कुछ ऐसे भी हैं जो आत्मा को तो मानते हैं किन्तु उसके विकास या शुद्धि को नहीं मानते। इसी संसार व जन्म में ही सुख-दुःख जो भी संयोगवश मिलता है वही सब कुछ है, इसके आगे कुछ नहीं।

(स) अज्ञानवादी—अज्ञानवादी वे हैं जो अज्ञान को ही दुःख मुक्ति का उपाय मानते हैं। इनकी मान्यता है कि अज्ञानी का पाप भी पाप नहीं है। जैसे अज्ञान के कारण बालक के अपराध क्षम्य होते हैं वैसे ही अज्ञानी के सभी अपराध ईश्वर द्वारा क्षम्य हैं। ज्ञानपूर्वक किये अपराध का दण्ड मिलता है—अतः अज्ञान ही श्रेय है। ये ६७ प्रकार के बताये हैं।

(द) विनयवादी—इनकी मान्यता है कि पशु-पक्षी, फूल-पत्ते, ज्ञानी-अज्ञानी, छोटा-बड़ा सभी पूज्य हैं—वन्दनीय हैं। अपने आपको क्षुद्र से भी क्षुद्र समझकर सबके प्रति विनय रखने से ही मुक्ति मिलती है। ये ३२ प्रकार के बताये हैं।

सूत्रकृतांग के दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध में तेईस अध्ययन और तेतीस उद्देशक हैं तथा दूसरे श्रुतस्कन्ध में सात अध्ययन तथा सात उद्देशक हैं। पहला श्रुतस्कन्ध पद्यमय है, केवल सोलहवें अध्ययन में गद्य है। दूसरे श्रुतस्कन्ध में गद्य और पद्य दोनों हैं।

सूत्रकृतांग में वाचनाएँ, अनुयोगद्वार, प्रतिपत्ति, वेष्टक, श्लोक, निर्युक्तियाँ और अन्तर सभी संख्यात हैं। परिमित त्रस और अनन्त स्थावरों का वर्णन है। इसकी पद संख्या ३६ हजार है।

सूत्रकृतांग में भिक्षाचरी की सावधानी, परीषह में तितिक्षा—सहनशीलता, नारकों के दुःख, उत्तम साधुओं के लक्षण आदि विषयों तथा श्रमण, ब्राह्मण, भिक्षु, निर्ग्रन्थ आदि शब्दों की परिभाषा युक्ति, दृष्टान्त तथा उदाहरणों की सहायता से भली प्रकार समझाई गई है। इसके अतिरिक्त पाप-पुण्य का विवेक, आर्द्रककुमार के साथ गोशालक के संवाद, शाक्य भिक्षु तथा तापसों के वाद-विवाद, नालन्दा में हुए गौतम गणधर और उदकपेढाल-पुत्र का संवाद आदि रोचक तथा बोधप्रिय कथानक भी हैं।

इस सूत्र में जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य मतों व वादों का भी विस्तृत विवरण है और अन्य मतों की युक्तिसंगत चर्चा के साथ स्वमत की स्थापना की गई है। इसी कारण आत्म-साधना और सम्यक्त्व को दृढ़ करने के लिए यह विशेष उपयोगी है।

सूत्रकृतांग पर भद्रबाहु की निर्युक्ति, जिनदास महत्तरकृत चूर्णि और शीलांकाचार्यकृत वृहद्वृत्ति भी उपलब्ध हैं।

Elaboration—The numerous meanings of the terms *Sutrakrit* are—that which explains all beings and things is *Sutrakrit*; that which shows the right path to the beings who have been caught into the trap of attachment or have drifted away from the right path is *Sutrakrit*; that which systematically compiles numerous subjects, sects and their branches, and beliefs, as pearls in a string, is *Sutrakrit*.

The forms of *lok* (inhabited space), *alok* (un-inhabited space or the space beyond), and *lokalok* (inhabited and un-inhabited space) have been defined in *Sutrakritang Sutra*. No *dravya* (substance) changes its fundamental form, neither does it take the form of any other *dravya* (substance). This *dravyatva* (the fundamental attribute of being substance) of *dravya* has been defined. It has been shown that pure being is *Shuddhatma* (pure soul) or *Paramatma* (Ultimate- or Super-soul); pure non-being is matter; and the worldly being is that which has a body which comes into existence due to the combination of soul and matter.

Sutrakritang Sutra discusses principles of *sva-darshan* (own philosophy or Jain philosophy), *par-darshan* (other philosophy) and *sva-par-darshan* or *ubhaya-darshan* (comparative philosophical view). The brief introduction of other philosophical schools is as follows—

(a) **Kriyavadi**—They consider the concept of nine fundamentals as baseless and false. As they are ignorant of and apathetic to the true form of religion, they favour the indulgence in superficial ostentations and rituals. As they believe in the supremacy of a creator God they are also known as *astik* (theists). They are said to be of 120 different types.

(b) **Akriyavadi**—They oppose the nine fundamentals and proscribe the following of codes of conduct. They are generally

counted among the agnostics. They are said to be of 24 types. In the eighth *sthana* (chapter) of Sthanang Sutra eight types of *akriyavadis* have been listed. They are—

1. **Ekavadi**—They have faith in one thing only. Those who deny every other thing than that one are all *ekavadis* (monists) or *advaitavadi* (non-dualists). Some thinkers postulate that everything in this world is based on matter, some others believe that *shabd* (sound) is supreme, and still others that *Brahma* (the creator God) is supreme.

2. **Anekavadi**—They believe that all the constituent parts of a thing have their own independent *entitative* existence. All the available attributes in nature have their individual subjects. As their are infinite variations of a thing they believe in multiplicity of every single thing.

3. **Mitavadi**—They believe that the universe is confined to the seven continents and seas. They consider soul to be a minute entity, at the most, of the size of a human thumb, and not enveloping the body or all enveloping. They consider only the normally visible beings as living beings and not the minute or invisible organisms. All these who have such truncated views about soul are called *mitavadi.*

4. **Nirmitavadi**—They believe that this world is a creation of some one power or the other. This class includes all those who believe in some invisible divine power or its conceptual form like Brahma, Vishnu, Mahesh, Devi, etc. as creator, sustainer, and destroyer.

5. **Satavadi**—Some people believe that the source of happiness is happiness itself and the same about sorrow. As a cloth woven with white thread is white, in the same way enjoying pleasure will bring pleasure in future as well. Austerities, discipline, continence, etc. give pain to body and mind, therefore they are the root cause of sorrow. Such believers in comforts and pleasures to the body and mind to be the sources of the ultimate happiness for a being are called *satavadi.*

6. **Samucchedavadi**—They believe in the ephemeral nature of everything including soul and also that with death or destruction comes the final termination of their existence.

7. **Nityavadi**—They believe that everything has only one single and stable form of existence. There is no growth or decay and no

depletion or destruction. They do not consider the existence of a thing to be the consequence of some combination or coincidence. They believe in its basic eternality or fundamental stability. According to them existent and non-existent are not destroyed and created. Every particle of matter is as it was in the remote past and will remain as it is till eternity.

8. Na santi parlokvadi—All the thinkers who deny rebirth, the other world, liberation, etc. come in this category. They deny the existence of soul; and in absence of soul merit and sin, religion and non-religion, good and bad, and this life and the next all become non-existent. There are some who, though believe in existence of soul do not believe in spiritual development or purity of soul. Whatever happiness or sorrow one gets coincidentally in this world and during this life is all, there is nothing beyond that.

(c) Ajnanavadi—They consider ignorance as the panacea for all sorrows. They believe that the sin of an ignorant is no sin. As a child's sins are pardonable because of his ignorance, in the same way the god pardons the ignorant for all his sins. A crime committed with knowledge deserves punishment, therefore ignorance is desirable and best. These are said to be of 67 types.

(d) Vinayavadi—They believe that animals and birds, flowers and leaves, sage and ignorant, small and large, all are worth respect and worship. To consider oneself to be humbler than the humblest and to respect every one is the means to liberation. They are said to be of 32 types.

Sutrakritang Sutra has two *shrutskandhs* (parts). The first *shrutskandh* (part) has twenty three chapters and thirty three *uddeshaks* and second *shrutskandh* (part) has seven chapters and seven *uddeshaks*. The first *shrutskandh* is in verse, only sixteenth chapter has some prose. In the second *shrutskandh* there is both prose as well as poetry.

Sutrakritang Sutra has countable *vachana* (lessons, readings, compilations, editions), *Anuyogadvar*, verses, couplets, *niryukti* (parsing), and *pratipattis*. It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. It has a total number of 36 thousand *pads* (sentence units).

In *Sutrakritang Sutra* the precautions in alms seeking, tolerance in face of afflictions, the torture of hell beings, attributes of good ascetics, and other such topics have been discussed. Also given are the definitions of *shraman,* Brahman, *bhikshu, nirgranth,* and other such related terms, properly explained with the help of reasons, incidents, and examples. Besides this, judgment of merit and sin; the discussion between Ardrak Kumar and Goshalak; debate between Shakya *bhikshu* and hermits; the dialogue between Gautam Ganadhar and Udakapedhal at Nalanda and other such interesting and educating tales are also included.

In this *sutra,* besides Jain philosophy, detailed description of other sects and schools have been given. With a logical analysis of principles of other schools the Jain principles have been established. That is the reason that it is very useful in bolstering the spiritual practices and *samyaktva.*

The important available commentaries on *Sutrakritang Sutra* are by Bhadrabahu (*niryukti*), Jindas Mahattar (*churni*), and Sheelankachrya (*Vrihad Vritti*).

(३) स्थानांगसूत्र परिचय
3. STHANANG SUTRA

८५ : से किं तं ठाणे?

ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, ससमये ठाविज्जइ, परसमये ठाविज्जइ, ससमय-परसमए ठाविज्जइ, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोआलोए ठाविज्जइ।

ठाणे णं टंका, कूडा, सेला, सिहरिणो, पब्भारा, कुंडाइं, गुहाओ, आगरा, दहा, नईओ, आघविज्जंति।

ठाणे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे, एगे सुअक्खंधे, दस अज्झयणा, एगवीसं उद्देसणकाला, एक्कवीसं समुद्देसणकाला, बावत्तरिपयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-

निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण-परूवणा आघविज्जइ।

से त्तं ठाणे।

अर्थ—प्रश्न—स्थानांगसूत्र में क्या है?

उत्तर—स्थानांग में अथवा स्थानांग की प्ररूपणा द्वारा जीवों की स्थापना की जाती है, अजीवों की स्थापना की जाती है, जीवाऽजीवों की स्थापना की जाती है, स्व-समय अर्थात् जैन सिद्धान्त की स्थापना की जाती है, पर-समय अर्थात् जैनेतर सिद्धान्तों की स्थापना की जाती है, स्व-समय-पर-समय अर्थात् दोनों सिद्धान्तों की स्थापना की जाती है, तथा लोक, अलोक व लोकाऽलोक की स्थापना की जाती है।

स्थानांग में टंक (छिन्ने तट वाले पर्वत), कूट, शैल, शिखर, प्राग्भार (पर्वत का उभार), कुण्ड, गुफा, आकर, द्रह, (तालाब) नदी आदि का वर्णन है।

स्थानांगसूत्र में परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार संख्यात वेढ, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंगों की गणना से यह तीसरा अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन, २१ उद्देशन काल, २१ समुद्देशन काल, ७२ हजार पदाग्रानुसार पद, संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध व निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है, तथा उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इसमें एकात्म तन्मय हो ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है। ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह स्थानांगसूत्र का वर्णन है।

85. Question—What is this *Sthanang Sutra*?

Answer—In *Sthanang Sutra* or with the help of the propagations in *Sthanang Sutra* the subject of *jiva* (being) is validated, the subject of *ajiva* (non-being or matter) is validated, the subject of *jivaajiva* (being and matter) is validated, *sva-mat* or Jain principles are validated, *par-mat* or principles of other schools are validated, *sva-par-mat* or principles of both these

are validated, and the subjects of *lok* (inhabited space), *alok* (un-inhabited space or the space beyond), and *lokalok* (inhabited and un-inhabited space) are validated.

In *Sthanang Sutra* there are descriptions of multi-peak mountains, summits, hills, pinnacles, flats, ponds, caves, caverns, lakes, rivers, etc.

Sthanang Sutra has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *Anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), countable *sangrahanis,* and countable *pratipattis.*

This *Sthanang Sutra* is third among the *Angas.* It has one *shrutskandha* (part), 10 chapters, 21 *uddeshan kaal,* and 21 *samuddeshan kaal.* Measured in *pad* (sentence units) it has seventy two thousand *pad.* It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the Jina have been stated (*akhyayita*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Sthanang Sutra.*

विवेचन—दस अध्ययनों में विभाजित इस अंगसूत्र की रचना अनूठी है। अध्ययन को स्थान नाम दिया है तथा स्थान की संख्या से साम्य रखने वाली संख्यारूपी वस्तु समूहों का वर्णन प्रत्येक स्थान में किया गया है। इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

स्थान-१—आत्मा एक है अतः इस अध्ययन में आत्मा तथा अन्य एक संख्यक पदार्थों का वर्णन है।

स्थान-२–द्विसंख्यक पदार्थों का वर्णन, जैसे–जीव-अजीव, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म, आत्मा-परमात्मा आदि।

स्थान-३–त्रियोजक तत्त्वों का वर्णन, जैसे–रत्नत्रय (ज्ञान, दर्शन, चारित्र), तीन प्रकार के पुरुष (उत्तम, मध्यम, जघन्य), तीन प्रकार के धर्म (श्रुत धर्म, चारित्र धर्म, अस्तिकाय धर्म आदि)।

स्थान-४–चार संख्यक पदार्थों का वर्णन, जैसे–चातुर्याम धर्म, चार प्रकार पुरुष आदि सात सौ चतुर्भंगियाँ हैं।

स्थान-५–पाँच संख्यक पदार्थों का वर्णन, जैसे–पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच गति, पाँच इन्द्रिय आदि।

स्थान-६–छः संख्यक पदार्थों का वर्णन, जैसे–छह काय, छह लेश्याएँ, गणि के छह गुण, षड्द्रव्य, छह आरे आदि।

स्थान-७–सात संख्यक पदार्थों का वर्णन, जैसे–सर्वज्ञ के सात लक्षण, अल्पज्ञों के सात लक्षण, सात स्वर, सात प्रकार का विनय आदि।

स्थान-८–आठ संख्यक पदार्थों का वर्णन, जैसे–आठ विभक्तियाँ, आठ पालनीय शिक्षाएँ आदि।

स्थान-९–नौ संख्यक पदार्थों का वर्णन, जैसे–ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ें, भगवान महावीर के शासन के ९ तीर्थंकर-नाम-कर्मधारी आदि।

स्थान-१०–दस संख्यक पदार्थों का वर्णन, जैसे–दस चित्त समाधि, दस स्वप्न-फल, दस प्रकार के सत्य, दस प्रकार के असत्य, दस प्रकार की मिश्र भाषा आदि।

स्थानांगसूत्र में अनेक विषयों सम्बन्धी सामग्री का व्यवस्थित संकलन होने के कारण इसे एक वहुउपयोगी कोष भी माना जाता है।

Elaboration—Divided in ten chapters, this *shrut* has been written in a unique style. In this, the nomenclature - chapter has been replaced by *sthana* (place or position). Every *sthana* carries the number that is exclusively associated with the group names listed in that chapter in terms of constituent number of units of that specific group. Brief description of these is as follows —

Sthana-1—Soul is one, therefore this chapter lists and describes things that have such unitary existence.

Sthana-2—This chapter lists and describes things that exist in groups of two or popularly expressed in twos. e.g. *jiva-ajiva* (soul-

matter), *punya-paap* (merit-sin), *dharma-adharma* (religion-non-religion), *atma-paramatma*, etc.

Sthana-3—This chapter lists and describes things that exist in groups of three or popularly expressed in threes. e.g. *ratnatraya* (three spiritual gems) - *jnana-darshan-charitra* (knowledge-perception-conduct); three types of men - good, medium, bad; three types of *dharma* (duties) - *shrutdharma-charitradharma-astikayadharma* (scriptural duties-conduct related duties-duties as an independent entity); etc.

Sthana-4—This chapter lists and describes things that exist in groups of four or popularly expressed in fours. e.g. *chaturyam* dharma (the religion with four basic vows), four types of man, etc. There are seven hundred such quadruplets.

Sthana-5—This chapter lists and describes things that exist in groups of five or popularly expressed in fives. e.g. five great vows, five *samitis,* five *gatis,* five sense organs, etc.

Sthana-6—This chapter lists and describes things that exist in groups of six or popularly expressed in sixes. e.g. beings with six types of bodies, six *leshyas* (mental states represented by six hues of colours), six virtues of a *gani* (group leader), six fundamental substances, six eras of a cycle of time, etc.

Sthana-7—This chapter lists and describes things that exist in groups of seven or popularly expressed in sevens. e.g. seven signs of an omniscient, seven signs of an ignorant, seven musical nodes, seven types of *vinaya* (modesty), etc.

Sthana-8—This chapter lists and describes things that exist in groups of eight or popularly expressed in eights. e.g. eight vibhaktis (inflections in Sanskrit grammar), eight observable instructions, etc.

Sthana-9—This chapter lists and describes things that exist in groups of two or popularly expressed in twos. e.g. nine fencings for continence, nine individuals of *Bhagavan* Mahavir's era who earned the *Tirthankar-nam-karma* (the karma that will lead to the status of *Tirthankar*), etc.

Sthana-10—This chapter lists and describes things that exist in groups of two or popularly expressed in twos. e.g. ten *chitta samadhi*

(the state of deep meditation), ten interpretations of dreams, ten types of truth, ten types of lies, ten types of mixed speech, etc.

As *Sthanang Sutra* compiles well classified information about numerous subjects it has been accepted as a very useful encyclopedia.

(४) समवायांगसूत्र परिचय
4. SAMVAYANG SUTRA

८६ : से किं तं समवाए?

समवाए णं जीवा समासिज्जंति, अजीवा समासिज्जंति, जीवाजीवा समासिज्जंति, ससमए समासिज्जइ, परसमए समासिज्जइ, ससमय-परसमए समासिज्जइ, लोए समासिज्जइ, अलोए समासिज्जइ, लोआलोए समासिज्जइ।

समवाए णं एगाइआणं एगुत्तरिआणं ठाण-सय-विवड्ढिआणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ, दुवालसविहस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समासिज्जइ।

समवायस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे, एगे सुअक्खंधे, एगे अज्झयणे, एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले, एगे चोआलसयसहस्से पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ।

से तं समवाए।

अर्थ–प्रश्न–समवायांगसूत्र में क्या है?

उत्तर–समवायांगसूत्र में जीव का समाश्रयण (सम्यक् रूप से प्ररूपणा) किया गया है, अजीव का समाश्रयण किया गया है, जीवाजीव का समाश्रयण किया गया है, स्वदर्शन का समाश्रयण किया गया है, परदर्शन का समाश्रयण किया गया है, स्वदर्शन-परदर्शन का समाश्रयण किया गया है, लोक का समाश्रयण किया गया है, अलोक का समाश्रयण किया गया है तथा लोकालोक का समाश्रयण किया गया है।

समवायांग में एक से बढ़ते-बढ़ते सौ स्थान तक भावों की प्ररूपणा की गई है और द्वादशांग गणिपिटक के संक्षिप्त परिचय का समाश्रयण किया गया है।

समवायांग में परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंग की अपेक्षा से यह चौथा अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, एक अध्ययन, एक उद्देशन काल और एक समुद्देशन काल है। इसका पद परिमाण एक लाख चवालीस हजार है। इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस, अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध व निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है तथा उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इससे एकात्म भाव युक्त होकर ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह समवायांगसूत्र का वर्णन है।

86. Question—What is this *Samvayang Sutra*?

Answer—In *Samvayang Sutra samashrayan* (right substantiation) of *jiva* (being) has been done; *samashrayan* (right substantiation) of *ajiva* (non-being or matter) has been done; *samashrayan* (right substantiation) of *jivaajiva* (being and matter) has been done; *samashrayan* (right substantiation) of *sva-mat* or Jain principles has been done; *samashrayan* (right substantiation) of *par-mat* or principles of other schools has been done; *samashrayan* (right substantiation) of *sva-par-mat* or principles of both these has been done; *samashrayan* (right substantiation) of lok (inhabited space) has been done; *samashrayan* (right substantiation) of *alok* (un-inhabited space or the space beyond) has been done; *samashrayan* (right substantiation) of *lokalok* (inhabited and un-inhabited space) has been done.

In *Samvayang Sutra bhavas* (attitudes, feelings, or thoughts) have been substantiated in ascending order from one to hundred. Also *samashrayan* of a brief introduction of twelve canons has been done.

Samvayang Sutra has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *Anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), countable *sangrahanis*, and countable *pratipattis*.

This *Samvayang Sutra* is fourth among the *Angas*. It has one *shrutskandha* (part), 1 chapter, 1 *uddeshan kaal*, and 1 samuddeshan kaal. Measured in *pad* (sentence units) it has one lac fourty four thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the Jina have been stated (*akhyayita*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Samvayang Sutra*.

विवेचन–जिसमें जीवादि पदार्थों का सम्यक् व निश्चित रूप में प्रतिपादन किया गया हो उसे समवाय कहते हैं। समाश्रय का अर्थ हैं सम्यग्ज्ञान द्वारा ग्राह्य रूप को या पदार्थ को स्वीकार करना।

समवायांगसूत्र में भी स्थानांगसूत्र की शैली में संख्या के क्रम से वस्तुओं की व्यवस्थित परिभाषाएँ हैं। सौ तक परिभाषित करने के बाद दो सौ, तीन सौ, इस क्रम से हजार तक विषयों का वर्णन किया है और संख्या बढ़ते-बढ़ते कोटि तक चली गई है।

अंत में द्वादशांग गणिपिटक का संक्षिप्त परिचय और त्रेसठ शलाका पुरुषों के नाम, माता-पिता, जन्म, नगर, दीक्षा-स्थान आदि का वर्णन किया गया है।

Elaboration—*Samvaya* is proper and authentic substantiation of things like *jiva* (being). *Samashraya* means to accept things or forms perceived through *samyak jnana* (right knowledge).

In *Samvayang Sutra* also, like *Sthanang Sutra,* there are proper definitions of things in the same number-dependent style. After arriving at 100 it proceeds in hundreds—200, 300, 400, and so on up to 1,000—then in thousands and so on up to a crore or ten million.

At the end is given brief description of the twelve *Angas* along with the bio-data, like names, names of parents, dates of birth, etc., of the sixty three *shalaka purush* (epochal personages).

(५) व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र परिचय
5. VYAKHYAPRAJNAPTI SUTRA

८७ : से किं तं विवाहे?

विवाहे णं जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआहिज्जंति, ससमए विआहिज्जंति, परसमए विआहिज्जंति ससमय-परसमए विआहिज्जंति, लोए विआहिज्जंति, अलोए विआहिज्जंति लोयालोए विआहिज्जंति।

विवाहस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुअक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसए, दस उद्देसगसहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइं, छत्तीसं वागरणसहस्साइं, दो लक्खा अट्ठासीई पयसहस्साइं पयग्गेणं संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ जिण-पण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ।

से त्तं विवाहे।

अर्थ--प्रश्न--व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में क्या वर्णन है?

उत्तर--व्याख्याप्रज्ञप्ति में जीवों की व्याख्या है, अजीवों की व्याख्या है, जीवाजीवों की व्याख्या है, स्वपक्ष की व्याख्या है, परपक्ष की व्याख्या है, स्वपक्ष-परपक्ष की व्याख्या है, लोक की व्याख्या है, अलोक की व्याख्या है तथा लोकालोक की व्याख्या है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति में परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ, तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंग क्रम की गणना से यह पाँचवाँ अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, एक सौ से अधिक अध्ययन, दस हजार उद्देशन काल, दस हजार समुद्देशन काल और छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर हैं। इसका पद परिमाण दो लाख अट्ठासी हजार पदाग्र हैं। इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्याय हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध, व निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपण है, दर्शन है, निदर्शन है तथा उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इसमें तल्लीन हो ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है। ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र का वर्णन है।

87. Question—What is this *Vyakhyaprajnapti*?

Answer—In *Vyakhyaprajnapti* the *jiva* (being) has been defined, the *ajiva* (non-being or matter) has been defined, the *jivaajiva* (being and matter) has been defined, *sva-mat* or Jain principles have been defined, *par-mat* or principles of other schools have been defined, *sva-par-mat* or principles of both these have been defined, lok (inhabited space) has been defined, *alok* (un-inhabited space or the space beyond) has been defined, and *lokalok* (inhabited and un-inhabited space) has been defined.

Vyakhyaprajnapti has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *Anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), countable *sangrahanis*, and countable *pratipattis*.

This *Vyakhyaprajnapti* is fifth among the *Angas*. It has one *shrutskandha* (part), more than 100 chapters, 10,000 *uddeshan kaal*, 10,000 *samuddeshan kaal* and 36,000 question answers. Measured in *pad* (sentence units) it has two hundred eighty eight thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the Jina have been stated (*akhyayita*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of

examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Vyakhyaprajnapti*.

विवेचन–व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र का प्रसिद्ध नाम भगवतीसूत्र है। इसमें ४१ शतक हैं। १ से ८, १२ से १४ तथा १८ से २० इन चौदह शतकों में दस-दस उद्देशक हैं, १५वें शतक में उद्देशक नहीं है, और शेष शतकों में न्यूनाधिक उद्देशक हैं। सूत्रों की संख्या ८६७ है।

भगवतीसूत्र की विवेचन शैली प्रश्नोत्तरप्रधान है। अधिकतर संवाद भगवान महावीर और गणधर गौतम स्वामी के बीच हैं किन्तु अन्य अनेक संवाद कतिपय श्रावक-श्राविकाओं, साधुओं द्वारा परिव्राजक, संन्यासियों, देवताओं, इन्द्रों, श्रावकों आदि के बीच भी हैं।

वर्तमान में उपलब्ध अन्य सभी सूत्रों से भगवतीसूत्र विशालकाय तथा बहुविध विषयों का दुरूह आगम है। इसमें पण्णवणा, जीवाभिगम, औपपातिक, राजप्रश्नीय, आवश्यक, नन्दी और जम्बद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्रों के उल्लेख तथा उद्धरण मिलते हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका संकलन बहुत बाद में हुआ है।

इसमें सैद्धान्तिक, ऐतिहासिक, द्रव्यानुयोग, चरण-करणानुयोग जैसे विषयों के विस्तार के अतिरिक्त अनेक ऐसे विषय भी चर्चित हैं जिन्हें समझना सामान्यतया दुरूह है।

Elaboration—The popular name of *Vyakhyaprajnapti* is *Bhagavati Sutra*. It has 41 *shataks* (100 verses). In the fourteen *shataks* numbering 1 to 8, 12 to 14, and 18 to 20 there are 10 *uddeshaks* each. In the 15th *shatak* there is no *uddeshak*. In the remaining *shataks* the number of *uddeshaks* is inconsistent. The total number of *sutras* is 867.

The elaborations in *Bhagavati Sutra* are in question-answer style. Majority of dialogues are between *Bhagavan* Mahavir and *Ganadhar* Gautam, however, there are many other dialogues between *shravaks, shravikas,* ascetics, *parivrajaks, sanyasis,* gods, *Indras,* etc.

Among the extant sutras, *Bhagavati Sutra* is the most voluminous. It includes a variety of subjects and is difficult to understand. It contains references of and excerpts from numerous scriptures including *Pannavana, Jivabhigam, Aupapatik,*

Rajprashniya, Avashyak, Nandi, and *Jambudveepprajnapti.* This indicates that it is a compilation of a comparatively later period.

Besides discussions on philosophy, history, metaphysics, discipline and conduct, it also contains a variety of other subjects that are generally found abstract and difficult to understand.

(६) ज्ञाताधर्मकथासूत्र परिचय
6. JNATADHARMAKATHA SUTRA

८८ : से किं तं नायाधम्मकहाओ?

नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराइं, उज्जाणाइं चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइय–परलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिआया, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायाइओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ अ आघविज्जंति।

दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्म-कहाए पंच-पंच अक्खाइआसयाइं, एगमेगाए अक्खाइआए पंच-पंचउवक्खाइआसयाइं, एगमेगाए उवक्खाइआए पंच-पंच अक्खाइया-उवक्खाइआसयाइं, एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ कहाणगकोडीओ हवंति त्ति समक्खायं।

नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निजुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे, दो सुअक्खंधा, एगुणवीसं अज्झयणा, एगुणवीसं उद्देसणकाला, एगुणवीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ, जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ।

से त्तं नायाधम्मकहाओ।

अर्थ—प्रश्न—यह ज्ञाताधर्मकथा क्या है?

उत्तर—ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में नगरों, उद्यानों, चैत्यों, वनखण्डों, समवसरणों, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक-परलोक की ऋद्धि विशेष, भोग परित्याग, दीक्षा, पर्याय, श्रुत अध्ययन, तप-उपधान, संलेखना, भक्त प्रत्याख्यान, पादोपगमन, देवलोकगमन, अच्छे कुल में जन्म, पुनः बोधि लाभ और अन्तःक्रिया आदि विषयों का वर्णन है।

धर्मकथांग में दस वर्ग हैं जिनमें एक-एक धर्मकथा में पाँच-पाँच सौ आख्यायिकाएँ हैं, एक-एक आख्यायिका में पाँच-पाँच सौ उप-आख्यायिकाएँ हैं और एक-एक उपाख्यायिका के पाँच-पाँच सौ आख्यायिका-उपआख्यायिकाएँ हैं। इस प्रकार पूर्वापर सब मिलकर साढ़े तीन करोड़ कथानक हैं। ऐसा कहा गया है।

ज्ञाताधर्मकथा में परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ, संख्यात श्लोक, संख्यात, निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंगार्थ की अपेक्षा में यह छठा अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध, १९ अध्ययन, १९ उद्देशन काल, तथा १९ समुद्देशन काल हैं। इसका पद परिमाण संख्यात सहस्र पदाग्र हैं। इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध व निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है तथा उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इससे एकात्म हो जाने पर ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह ज्ञाताधर्मकथासूत्र का वर्णन है।

88. Question—What is this *Jnatadharmakatha Sutra*?

Answer—In *Jnatadharmakatha Sutra* topics like cities, gardens, chaityas, forests, samavasarans, kings, parents, religious leaders, religious tales, special powers acquired during this birth and others, renouncing mundane indulgences, initiation, modes or variations, study of *shrut*, observation of austerities, ultimate vow, bhakt pratyakhyan, *paadopagaman*, reincarnation as god, rebirth in a good clan, regaining of enlightenment, and last rites, etc. have been discussed.

In Dharmakathang there are 10 vargs having one story and five hundred akhyayikas (side stories) each. Each of these akhyayikas have five hundred sub-akhyayikas and each of these

sub-akhyayikas have five hundred akhyayika-sub-akhyayikas. This way, adding up all these the total number of stories in this work is said to be 3.5 crore (35 million).

Jnatadharmakatha Sutra has limited vachana (readings, lessons, compilations, editions). It has countable Anuyogadvar, countable verses, countable couplets, countable niryukti (parsing), countable sangrahanis, and countable pratipattis.

This *Jnatadharmakatha Sutra* is sixth among the Angas. It has two shrutskandha (parts), 19 chapters, 19 uddeshan kaal, 19 samuddeshan kaal. Measured in pad (sentence units) it has countable thousand pad. It has countable alphabets, infinite gam (meanings) and infinite paryaya (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of shashvat (eternal or fundamental), krit (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the Jina have been stated (akhyayita), propagated (prajnapit), detailed (prarupit), explained (with the help of metaphors) (darshit), clarified (with the help of examples) (nidarshit), and simplified (with the help of discourse style) (upadarshit).

It has been presented in such charan-karan style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Jnatadharmakatha Sutra*.

विवेचन—ज्ञाताधर्मकथा का भावार्थ है—जो ज्ञात है अथवा जो ज्ञाता द्वारा दिया गया है उसे उदाहरण रूप में प्रस्तुत कर धर्म की प्ररूपणा करना। इसमें इतिहास, दृष्टान्त, उदाहरण ये सभी सम्मिलित हैं अतः इसे इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं—जो इतिहास, उदाहरण, धर्मकथाओं व दृष्टान्तों से भरा हो और जिसे पढ़ने या सुनने से अध्येता व श्रोता का जीवन धर्म की ओर प्रेरित हो सके वह ज्ञाताधर्मकथा है।

इसके पहले श्रुतस्कन्ध में १९ अध्ययन हैं। दूसरे श्रुतस्कन्ध में १० वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में कई अध्ययन हैं। प्रत्येक अध्ययन में एक कथा है और कथा के अन्त में उस कथा का दृष्टान्त में निहित शिक्षाओं का उल्लेख है। कथाओं में पात्रों के जीवन, उनके आवास, उनकी संस्कृति

आदि का मनोरम वर्णन है। प्राणी किस प्रकार कुमार्गगामी बनते हैं और किस प्रकार पुनः सुमार्ग की प्रेरणा पा धर्म आराधना में संलग्न हो आत्मिक विकास की ओर अग्रसर हो जाते हैं—ये सभी बातें रोचक शैली में वर्णित हैं।

ज्ञाताधर्मकथा में भगवान महावीरकालीन, अरिष्टनेमिकालीन तथा पार्श्वनाथकालीन कथानक हैं। भगवान मल्लीनाथ की जीवन गाथा तथा द्रौपदी के पूर्वजन्म की गाथा भी सम्मिलित है। दूसरे श्रुतस्कन्ध में भगवान पार्श्वनाथ के शासन की कतिपय श्रमणियों के देवगति प्राप्त करने के विवरण दिये गए हैं। यह समस्त सामग्री इसे जितना रोचक बनाती है उतना ही प्रेरणास्पद भी।

Elaboration—The simple meaning of *Jnatadharmakatha* is—to present with the help of examples that which is known or that which has been given by the knower for the specific purpose of propagation of religion. This includes history, incidents, examples and other narrative styles. Therefore this can also be defined as—that which includes history, examples, religious stories, and incidents, and the reading or listening of which inspires one towards religion is called *Jnatadharmakatha*.

Its first part has 19 chapters. The second has 10 sections and every section has numerous chapters. Every chapter has one story and at the end of the story is given the lessons contained in the story. There is interesting description of the lives of the characters in the story, their residences, their culture and other details. How a being drifts towards immorality and how, having been inspired towards morality, indulges in spiritual practices and progresses on the path of spiritual development. All these things have been discussed in eloquent style.

In *Jnatadharmakatha Sutra* are included stories from the period of *Bhagavan* Mahavir, Arishtanemi, and Parshvanath. The story of the life of *Bhagavan* Mallinath and that of the earlier births of Draupadi have also been given. In the second shrutskandha are given the details about some shramanis of *Bhagavan* Parshvanath's order reincarnating as goddesses. All this makes it interesting as well as inspiring reading.

(७) उपासकदशांग सूत्र परिचय
7. UPASAKADASHANG SUTRA

८९ : से किं तं उवासगदसाओ ?

उवासगदसासु णं समणोवासयाणं नगराइं, उज्जाणाणि, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइअ-परलोइआ इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परियागा, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववास-पडिवज्जणया, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अन्तकिरिआओ अ आघविज्जंति।

उवासगदसासु परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे सुअक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ जिण-पण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विन्नाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ।

से त्तं उवासगदसाओ।

अर्थ—प्रश्न—उपासकदशा सूत्र में क्या है?

उत्तर—उपासकदशा में श्रमणोपासकों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक-परलोक की ऋद्धि विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, तप-उपधान, शील-व्रत, गुण-व्रत, विरमण-व्रत, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास धारण, प्रतिमा, उपसर्ग, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादोपगमन, देवलोक-गमन, श्रेष्ठ कुल में उत्पत्ति, पुनःबोधि प्राप्ति, तथा अन्तःक्रिया आदि विषयों का वर्णन है।

उपासकदशा की परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढा, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंगार्थ की अपेक्षा से यह सातवाँ अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दस अध्ययन, दस उद्देशन काल और दस समुद्देशन काल हैं। इसका पद परिमाण संख्यात सहस्र पदाग्र है।

इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्रज्ञान है, प्ररूपण है, दर्शन है, निदर्शन है और उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इसमें एकात्म रूप होकर ज्ञाता और विज्ञाता बन जाता है ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा की गई है।

यह उपासक दशांगसूत्र का वर्णन है।

89. Question—What is this *Upasakadashang Sutra*?

Answer—In *Upasakadashang Sutra* topics like cities, gardens, *chaityas*, forests, *samavasarans*, kings, parents, religious leaders, religious tales, special powers acquired during this birth and others, renouncing mundane indulgences, initiation, modes or variations, study of *shrut*, observation of austerities, vows of modesty and virtues, vows of limitations, vows of critical review, partial-ascetic vows with fasting, accepting *pratima*, afflictions, ultimate vow, *bhakt pratyakhyan*, *paadopagaman*, reincarnation as god, rebirth in a good clan, regaining of enlightenment, and last rites, etc. related to *shramanopasaks* (the worshippers of ascetics; another term for *shravaks*) have been discussed.

Upasakadashang Sutra has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), countable *sangrahanis*, and countable *pratipattis*.

This *Upasakadashang Sutra* is seventh among the *Angas*. It has one *shrutskandha* (part), 10 chapters, 10 *uddeshan kaal*, 10 *samuddeshan kaal*. Measured in *pad* (sentence units) it has countable thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the *Jina* have been stated (*akhyayit*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the

help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Upasakadashang Sutra*.

विवेचन—उपासकदशांग सूत्र में श्रमण भगवान महावीर के दस विशिष्ट श्रावकों के जीवन वृत्तान्त हैं। इसके दस अध्ययनों में प्रत्येक में एक-एक श्रावक के लौकिक तथा लोकोत्तर वैभव का वर्णन है। साथ ही श्रावक के अणुव्रत और शिक्षाव्रतों का स्वरूप भी बताया है।

इसमें भगवान महावीर के वे विशिष्ट श्रावक ही सम्मिलित हैं जिनके जीवन व साधना में अनोखा साम्य भाव है। सभी श्रावक अतुल वैभव-सम्पन्न थे तथा राजा व प्रजा के प्रिय थे। सभी के पास पाँच सौ हल में जोती जा सके इतनी भूमि थी। गौवंश के अतिरिक्त अन्य कोई पशुधन नहीं था। ये दसों ही भगवान महावीर के प्रथम उपदेश से प्रभावित हो बारह व्रतधारी श्रावक बने थे। व्रत धारण के पश्चात् पन्द्रहवें वर्ष में गृहस्थाश्रम की गतिविधियों से मुक्त हो पौषधशाला में आराधनारत हो गए थे। कुछ मास बीतने पर ११ प्रतिमाएँ धारण कर उनकी आराधना में संलग्न हो गए थे। इन सभी ने एक-एक मास की संलेखना कर देह त्यागी और सभी प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुए। ये सभी चार पल्योपम की आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे और सिद्ध बनेंगे।

Elaboration—*Upasakadashang Sutra* contains the life stories of ten special *shravak* disciples of *Bhagavan* Mahavir. Each of its ten chapters has the details of the mundane and divine grandeur of one of these *shravaks*. Also included are the discussions about the *anuvrats* and *shikshavrats* (supporting vows of spiritual discipline).

This work is confined to only those *shravaks* of *Bhagavan* Mahavir who had uncanny similarities both in terms of their lives as well as spiritual practices. They all were enormously wealthy and much liked by the kings as well as masses. They all had large tracts of land that could be tilled only with the help of five hundred ploughs. The only cattle or animals they owned belonged to the bovine family. All these ten individuals were impressed by the first discourse of *Bhagavan* Mahavir and became *shravaks* with 12 vows. Fifteen years after this, they retired from household responsibilities and commenced their spiritual practices in *paushadhashala* (a dwelling

specially used during partial ascetic vows in comparative isolation). A few months later they accepted the 11 *pratimas* (stages of renunciation meant for a *shravak*) and continued higher spiritual practices. They all passed away after an ultimate vow of one month duration and reincarnated in the first dimension of gods. After completing a life-span of 4 *palyopams* they all will reincarnate in Mahavideh area and get liberated.

(८) अन्तकृद्दशांग सूत्र परिचय

8. ANTAKRIDDASHANG SUTRA

९० : *से किं तं अंतगडदसाओ ?*

अंतगडदसासु णं अंतगडाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइआइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मा-पियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइअ-परलोइआ इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं अंतकिरिआओ आघविज्जंति।

अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे, एगे सुअक्खंधे अट्ठ वग्गा, अट्ठ उद्देसणकाला, अट्ठ समुद्देसणकाला संखेज्जा पयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विन्नाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ।

से त्तं अंतगडदसाओ।

अर्थ–प्रश्न–अंतकृद्दशा सूत्र में क्या है?

उत्तर–अन्तकृद्दशा में अन्तकृतों (पुनर्जन्म के कारण भूत कर्मरूप बीज का अन्त करने वाले) के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक व परलोक की ऋद्धि विशेष भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, पर्याय, श्रुत-अध्ययन, तप-उपधान, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादोपगमन तथा अन्तःक्रिया आदि विषयों का वर्णन है।

अन्तकृद्दशा में परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढा, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंगार्थ से वह आठवाँ अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, आठ उद्देशन काल और आठ समुद्देशन काल हैं। इसका पद परिमाण संख्यात सहस्र पदाग्र है। इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत-निबद्ध व निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है तथा उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इससे एकात्मभाव होकर ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह अन्तकृद्दशा सूत्र का वर्णन है।

90. Question—What is this *Antakriddashang Sutra*?

Answer—In *Antakriddashang Sutra* topics like cities, gardens, *chaityas*, forests, *samavasarans*, kings, parents, religious leaders, religious tales, special powers acquired during this birth and others, renouncing mundane indulgences, initiation, modes or variations, study of *shrut*, observation of austerities, ultimate vow, *bhakt pratyakhyan*, *paadopagaman*, and last rites, etc. related to the *antakrits* (those who have destroyed the seed-like karmas that are the cause of rebirths) have been discussed.

Antakriddashang Sutra has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), countable *sangrahanis*, and countable *pratipattis*.

This *Antakriddashang Sutra* is eighth among the *Angas*. It has one *shrutskandha* (part), 8 *vargas* (sections), 8 *uddeshan kaal*, 8 *samuddeshan kaal*. Measured in *pad* (sentence units) it has countable thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal

or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the *Jina* have been stated (*akhyayit*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Antakriddashang Sutra*.

विवेचन—अन्तकृद्दशा सूत्र में इसके नाम के अनुरूप ऐसी महान् आत्माओं के जीवन का इतिवृत्त संकलित है जिन्होंने संयम-तप की कठोर आराधना करते हुए जीवन के अन्तिम क्षणों तक सभी कर्मों का क्षय कर दिया और केवलज्ञान प्राप्त होते ही सिद्ध गति प्राप्त कर ली। ऐसी आत्माएँ उसी भव में चौदहवें गुणस्थान पर पहुँच तत्काल निर्वाण प्राप्त कर लेती हैं। उपदेश नहीं दे पातीं। इस कारण उन्हें अन्तकृत् केवली भी कहते हैं।

इसके प्रथम पाँच वर्गों में भगवान अरिष्टनेमि के शासनकाल के अन्तकृत केवलियों के वर्णन हैं तथा परवर्ती तीन वर्गों में भगवान महावीर के शासनकाल के अन्तकृत केवली वर्णित हैं। सम्पूर्ण सूत्र में ९० महान् आत्माओं के जीवनवृत्त हैं।

Elaboration—As the name indicates, *Antakriddashang Sutra* has compilation of the stories of life of those great souls who indulged in harsh practices of discipline and austerities and, by the last moments of their life, destroyed all the karmas to get liberated immediately after acquiring *Kewal-jnana*. Such souls reach the fourteenth *Gunasthan* during the same life and at once attain nirvana. They do not give any discourse, that is why they are also called *antakrit Kewali*.

The first five *vargas* of this work are devoted to the *antakrit Kewalis* belonging to the period of influence of *Bhagavan* Arishtanemi. The last three *vargas* are devoted to the *antakrit Kewalis* belonging to the period of influence of *Bhagavan* Mahavir. The stories of life of 90 such great souls are included in this work.

(९) अनुत्तरौपपातिकदशा सूत्र परिचय
9. ANUTTARAUPAPATIKDASHA SUTRA

९१ : से किं तं अणुत्तरोववाइअदसाओ ?

अणुत्तरोववाइअदसासु णं अणुत्तरोववाइआणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइआइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिआ, धम्मकहाओ, इहलोइअ-परलोइआ इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुअपरिग्गहा तवोवहाणाइं, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाइयत्ते उववत्ती, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति।

अणुत्तरोववाइअ दसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे, एगे सुअक्खंधे तिण्णि वग्गा, तिण्णि उद्देसणकाला, तिण्णि समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विन्नाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ।

से त्तं अणुत्तरोववाइअदसाओ।

अर्थ—प्रश्न—अनुत्तरौपपातिक दशा में क्या है ?

उत्तर—अनुत्तरौपपातिकदशा सूत्र में अनुत्तरौपपातिकों (दीक्षा लेकर सम्पूर्ण कर्मक्षय के अभाव में अनुत्तर विमानों में जन्म लेने वाली आत्माओं) के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक व परलोक की ऋद्धि विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, पर्याय, श्रुत-अध्ययन, तप-उपधान, प्रतिमा, उपसर्ग, संलेखना भक्त-प्रत्याख्यान, पादोपगमन, अनुत्तर विमान में जन्म, पुनः श्रेष्ठ कुल में जन्म, पुन बोधि-लाभ तथा अन्तःक्रिया आदि विषयों का वर्णन है।

अनुत्तरौपपातिक दशा में परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढा संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंगों की दृष्टि से यह नवाँ अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, तीन वर्ग, तीन उद्देशन काल तथा तीन समुद्देशन काल हैं। इसका पद परिमाण संख्यात सहस्र पदाग्र है। इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध व निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है, और उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इससे एकात्म हो ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है। ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह अनुत्तरौपपातिकदशा सूत्र का वर्णन है।

91. Question—What is this *Anuttaraupapatik-dasha Sutra*?

Answer—In *Anuttaraupapatik-dasha Sutra* topics like cities, gardens, *chaityas*, forests, *samavasarans*, kings, parents, religious leaders, religious tales, special powers acquired during this birth and others, renouncing mundane indulgences, initiation, modes or variations, study of *shrut*, observation of austerities, ultimate vow, *bhakt pratyakhyan*, *paadopagaman*, reincarnation in *anuttar* celestial vehicles, again rebirth in good family, again getting enlightened, and last rites, etc. related to the *Anuttaraupapatiks* (those who could not completely destroy karmas after getting initiated and as a consequence reincarnated in the *anuttar* celestial vehicles) have been discussed.

Anuttaraupapatik-dasha Sutra has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), countable *sangrahanis*, and countable *pratipattis*.

This *Anuttaraupapatik-dasha Sutra* is ninth among the *Angas*. It has one *shrutskandha* (part), 3 *vargas* (sections), 3 *uddeshan kaal*, 3 *samuddeshan kaal*. Measured in *pad* (sentence units) it has countable thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help

of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the *Jina* have been stated (*akhyayit*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Anuttaraupapatik-dasha Sutra*.

विवेचन—अनुत्तर का अर्थ है जिसका उत्तर न हो, उस जैसा दूसरा न हो अर्थात् सर्वश्रेष्ठ। देवलोकों में २२ से २६वें देवलोक तक में रहे विमानों को अनुत्तर विमान कहते हैं। जो इन विमानों में उत्पन्न होते हैं उन देवताओं को अनुत्तरौपपातिक देव कहते हैं। इस सूत्र में ऐसी ३३ महान् आत्माओं के जीवनवृत्त हैं जो इन विमानों में उत्पन्न हुए।

अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र के ३ वर्ग हैं। पहले में १० अध्ययन हैं, दूसरे में १३ और तीसरे में १०। इनमें वर्णित ३३ महान् आत्माओं में से २३ तो महाराज श्रेणिक के पुत्र थे। इन सभी महापुरुषों ने अपने जीवनकाल में उत्कृष्ट आत्म-साधना की जिसके प्रभाव से केवल एक बार मनुष्य-जन्म प्राप्त कर मोक्ष जाने का मार्ग प्रशस्त कर लिया। इनके मार्मिक जीवनवृत्त के अतिरिक्त इसमें अनेक प्रभावी साधना पद्धतियों के वर्णन हैं—श्रुत अध्ययन, तपश्चर्या, प्रतिमा धारण, उपसर्ग-सहन, अंतिम संलेखना आदि। इसमें सभी उदाहरण प्रेरणादायक शैली में निबद्ध हैं।

Elaboration—*Anuttar* means unique, that which is one of its kind, or the best. In the dimensions of gods the celestial vehicles belonging to 22nd to 26th dimensions are called *anuttar* celestial vehicles. Those who are born in these vehicles are called the *Anuttaraupapatik* gods. In this *sutra* are included 33 such souls that reincarnated in these vehicles.

Anuttaraupapatik-dasha Sutra has three sections. First section has 10 chapters, second has 13, and third also has 10. Of the 33 souls described in this, 23 were the sons of king Shrenik. All these great men indulged in lofty spiritual practices during their life time. As a result of this, they earned the karmas that will lead them to liberation just after one incarnation as human beings. Besides the inspiring stories of their lives, included in this work are procedures of

many effective spiritual practices like—study of *shrut*, austerities, accepting *pratima*, tolerating afflictions, ultimate vow, etc. All the examples in this work are written in an inspiring style.

(१०) प्रश्नव्याकरणसूत्र परिचय
10. PRASHNAVYAKARAN SUTRA

९२ : *से किं तं पण्हावागरणाइं ?*

पण्हावागरणेसु णं अट्ठुत्तरं पसिण-सयं, अट्ठुत्तरं पसिणापसिण-सयं, तं जहा– अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं, अद्दागपसिणाइं, अन्ने वि विचित्ता विज्जाइसया, नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति।

पण्हावागरणाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुअक्खंधे, पणयालीसं अज्झयणा, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ, जिण-पन्नत्ता भावा आघविज्जंति पन्नविज्जंति, परूविज्जंति दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विन्नाया एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ।

से त्तं पण्हावागरणाइं।

अर्थ–प्रश्न–प्रश्नव्याकरण सूत्र में क्या है?

उत्तर–प्रश्नव्याकरणसूत्र में १०८ प्रश्न (–पूछने पर जिनके द्वारा शुभाशुभ संबंधी समाधान मिले), १०८ अप्रश्न (–जिनके द्वारा शुभाशुभ संबंधी उत्तर बिना पूछे ही मिले), १०८ प्रश्नाप्रश्न (जिनके द्वारा शुभाशुभ संबंधी उत्तर पूछने पर भी मिले और बिना पूछे भी स्वतः मिले), जैसे–अंगुष्ठ प्रश्न, आदर्श प्रश्न आदि हैं। इसमें अन्य विचित्र विद्यातिशयों का वर्णन भी है। नाग कुमारों और सुपर्ण कुमारों के साथ मुनियों के दिव्य संवाद भी दिए गए हैं।

प्रश्नव्याकरणसूत्र में परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढा, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंगों की गणना से यह दसवाँ अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, ४५ अध्ययन, ४५ उद्देशन काल व ४५ समुद्देशन काल हैं। इसका पद परिमाण संख्यात सहस्र पदाग्र है। इसमें

संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध व निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है और उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इससे एकात्मभाव होने पर ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह प्रश्नव्याकरणसूत्र का वर्णन है।

92. Question—What is this *Prashnavyakaran Sutra*?

Answer—In *Prashnavyakaran Sutra* there are 108 *prashnas* (which when asked give indications about good or bad with reference to the question); 108 *aprashnas* (which give indications about good or bad even without asking a question); and 108 *prashnaprashnas* (which give indications about good or bad on asking as well as not asking a question). For example *angushta prashna* (the thumb question), *adarsh prashna* (the ideal question), etc. It also contains details about other strange miraculous capacities. The divine dialogue of *naag kumars* and *suparna kumars* with ascetics has been included as well.

Prashnavyakaran Sutra has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), countable *sangrahanis*, and countable *pratipattis*.

This *Prashnavyakaran Sutra* is tenth among the *Angas*. It has one *shrutskandha* (part), 45 chapters, 45 *uddeshan kaal*, 45 *samuddeshan kaal*. Measured in *pad* (sentence units) it has countable thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the *Jina* have been stated (*akhyayit*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Prashnavyakaran Sutra.*

विवेचन–प्रश्नव्याकरण का अर्थ है प्रश्न और उत्तर। इस सूत्र में प्रश्नोत्तर शैली में विभिन्न पदार्थों व विषयों का वर्णन है। यह आगम सूत्र मुख्यतः देवाधिष्ठित मंत्रों एवं विद्याओं के विषय में है। विद्या अथवा मंत्र विधिपूर्वक सिद्ध कर लेने पर शुभ व अशुभ की सूचना मिलती है। इसमें १०८ प्रश्न ऐसे हैं जिनके पूछने पर यह सूचना मिलती है। १०८ ऐसे हैं जिन्हें बिना पूछे ही स्वतः सूचना मिल जाती है तथा १०८ ऐसे भी जिन्हें पूछने पर तथा बिना पूछे भी अपने आप सूचना मिलती है।

इसके साथ ही इसमें अनेक प्रकार के विचित्र प्रश्न तथा अतिशय विद्याओं के वर्णन तथा श्रमण निर्ग्रन्थों के साथ नाग कुमारों तथा सुपर्ण कुमारों के दिव्य संवादों का भी वर्णन है।

स्थानांगसूत्र में प्रश्नव्याकरणसूत्र के दस अध्ययनों के जो नाम दिए हैं, उनका नन्दीसूत्र से साम्य नहीं है। वर्तमान में इसमें दो श्रुतस्कन्ध उपलब्ध हैं। प्रथम में हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का विशेष वर्णन है तथा दूसरे में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह की अनूठी विवेचना है।

ऐसा लगता है कि इस मंत्र तथा विद्याओं के विशेष ग्रन्थ के अतिशय विद्या वाले अंगों का लोप हो गया है। वर्तमान में वह उपलब्ध नहीं है।

दिगम्बर मान्यता

इस सूत्र के संबंध में दिगम्बर मान्यता के अनुसार इसमें लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, जय-पराजय, हत, नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, नाम, द्रव्य, आयु और संख्या के विषय में चर्चा है। इसके साथ ही तत्त्वों का निरूपण करने वाली चार धर्मकथाएँ भी विस्तार से इसमें दी गई हैं। ये हैं–

(१) **आक्षेपणी कथा**–जो अनेक प्रकार की एकान्त दृष्टियों का निराकरण तथा शुद्धि करके छह द्रव्यों और नौ पदार्थों का प्ररूपण करती है।

(२) **विक्षेपणी कथा**–इसमें पहले पर-पक्ष के द्वारा स्व-पक्ष में दोष बताए जाते हैं फिर पर-पक्ष की आधारभूत अनेक प्रकार की एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्व-पक्ष की स्थापना की जाती है और छह द्रव्य तथा नौ पदार्थों का प्ररूपण किया जाता है।

(३) **संवेगनी कथा**–जिसमें पुण्य के फल का विस्तार से वर्णन हो।

(४) **निर्वेदनी कथा**–पापों के परिणामस्वरूप नरक, तिर्यंच आदि गतियों में जन्म-मरण और व्याधि, वेदना, दारिद्र्य आदि की प्राप्ति का मार्मिक शैली में वर्णन कर वैराग्य की ओर प्रेरित करने वाली कथा।

इन चार धर्मकथाओं के साथ ही यह भी बताया गया है कि जो जिन-शासन के प्रति अनुराग रखता हो, पुण्य-पाप को समझता हो, स्व-पक्ष के रहस्य को जानता हो और तप-शील से युक्त एवं भोगों में विरक्त हो उसे ही विक्षेपणी कथा कहनी चाहिए। क्योंकि स्व-पक्ष को न समझने वाले वक्ता के द्वारा पर-पक्ष का प्रतिपादन करने वाली कथाएँ सुनकर श्रोता मिथ्यात्व की ओर प्रेरित हो सकते हैं।

Elaboration—*Prashnavyakaran* means questions and answers. In this *sutra* various things have been discussed in the question-answer style. This *Agam sutra* is mainly about the mantras and miraculous capacities connected with various gods. When these mantras and special capacities are perfected by following proper procedure, information regarding good or bad is acquired. In this work there are 108 such *prashnas* which when asked yield this information; 108 which yield this information even without asking; and 108 which yield this information on asking as well as not asking.

Besides these, it also contains details about many strange questions, other strange miraculous capacities and the divine dialogue of *naag kumars* and *suparna kumars* with ascetics.

The names of the chapters of *Prashnavyakaran Sutra*, listed in *Sthanang Sutra* vary from those given in *Nandi Sutra*. At present two *shrutskandhas* of *Prashnavyakaran Sutra* are available. In the first there is a unique discussion about violence, falsity, stealing, lust, and crave for possessions and in the second there is a similar discussion about *ahimsa*, truth, non-stealing, continence, and non-possession.

It appears that from this special work on the subject of mantras and miraculous powers, the portions dealing with the miraculous capacities have become extinct. All that is not available now.

The Digambar view

According to the *Digambar* belief, this work contains discussions on subjects like—profit and loss, happiness and sorrow, life and death, victory and defeat, dead, destroyed, *mushti*, worry, name, substance, age, numbers, etc. With this are given four long stories that explicate the fundamentals. They are—

1. *Akshepini katha*—This refutes many dogmatic views and with new interpretation validates the six fundamental substances (*dravya*) and nine fundamental things (*padarth*).

2. *Vikshepani katha*—This first mentions the refutations of the right view by the dogmatic. After this it systematically counters those by giving new interpretations to the basic dogmatic arguments and validates the right view propagating the six fundamental substances (*dravya*) and nine fundamental things (*padarth*).

3. *Samvegani katha*—This describes in details the fruits of *punya* (merit).

4. *Nirvedani katha*—This describes the incarnations in hell, as animals, etc. as a consequence of sinful activities, and the ailments, tortures, poverty etc. related to them. All this is expressed in a touching style with the purpose of inspiring the reader in the direction of detachment.

With these stories is included a warning that the *Vikshepani katha* should be told only by him who has devotion for Jain order, who understands, merit and sin, who knows the secrets of the Jain view, who practices discipline and austerities, and who is apathetic towards mundane indulgences. This is because the listeners may drift towards *mithyatva* when they listen to these tales, which first affirm the dogmatic views, from a speaker who does not properly understand the Jain view.

(११) विपाक श्रुत परिचय
11. VIPAK SHRUT

९३ : *से किं तं विवागसुअं ?*

विवागसुए णं सुकड-दुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जइ। तत्थ णं दस दुहविवागा, दस सुहविवागा।

से किं तं दुहविवागा ? दुहविवागेसु णं दुह-विवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडाइं, चेइआइं, रायाणो, अम्मा-पियरो, धम्मायरिआ, धम्मकहाओ, इहलोइय-परलोइआ इड्ढिविसेसा, निरयगमणाइं, संसारभव-पवंचा, दुहपरंपराओ, दुकुलपच्चायाईओ, दुल्लहबोहियत्तं आघविज्जइ, से तं दुहविवागा।

अर्थ—प्रश्न—विपाक श्रुत में क्या है ?

उत्तर—विपाकसूत्र में सुकृत व दुष्कृत कर्मों के फलविपाक कहे गए हैं। इसमें दस दुःखविपाक हैं और दस सुखविपाक।

प्रश्न–दुःखविपाक क्या है?

उत्तर–दुःखविपाक श्रुत में दुःखविपाकियों (दुःख रूप विपाक-परिणाम को भोगने वाला प्राणी) के नगर, उद्यान, वनखण्ड, चैत्य, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक व परलोक संबंधी ऋद्धि विशेष, नरक में उत्पत्ति, पुनः संसार में जन्म-मरण का विस्तार, दुःख परम्परा, निकृष्ट कुल में जन्म और बोधि-प्राप्ति की दुर्लभता आदि विषयों का वर्णन है। यह दुःखविपाक का वर्णन है।

93. Question—What is this *Vipak Shrut*?

Answer—In *Vipak Shrut* are detailed *vipak*s (the consequences) of the karmas acquired through good and bad deeds. In this there are ten *duhkha vipak*s and ten *sukha vipak*s.

Qucstion—What is this *Duhkha Vipak*?

Answer—In *Duhkha Vipak Shrut* topics like cities, gardens, *chaitya*s, forests, *samavasaran*s, kings, parents, religious leaders, religious tales, special powers acquired during this birth and others, reincarnation in hell, again rebirth and expansion of cycles of rebirth, chain of sorrows, birth in lowly family, absence of possibility of enlightenment, etc. related to the *duhkha vipaki*s (the beings who suffer sorrows as a consequence) have been discussed.

विवेचन–११वें अंग विपाकश्रुत में शुभ-अशुभ कर्मों के फल (विपाक) उदाहरणों के साथ बताए गए हैं। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं–दुःखविपाक व सुखविपाक। प्रथम श्रुतस्कन्ध दुःखविपाक में दस अध्ययन हैं। इनमें अन्याय, अनीति, माँसादि भक्षण, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, चोरी आदि दुष्कृत्यों के दुष्फलों का दृष्टान्त सहित वर्णन किया गया है। सभी दृष्टान्त कथाएँ मार्मिक शैली में हैं और दुष्कृत्यों के फल अगले जन्मों में भोगने पड़ते हैं इसका रोमांचक चित्रण है।

Elaboration—In the eleventh *Anga*, *Vipak Shrut*, the fruits of good and bad deeds have been explained with the help of examples. It has two *shrutskandhas*—*Duhkha Vipak* and *Sukha Vipak*. In the first part, *Duhkha Vipak*, there are ten chapters. In these chapters the grim consequences of evil deeds like injustice, immorality, consuming meat and other such bad food, debauchery, going to prostitutes, stealing, etc. have been described with examples. All these examples and stories are in gripping style. The descriptions of consequent sufferings in the future births are horrifyingly vivid.

९४ : से किं तं सुहविवागा ?

सुहविवागेसु णं सुहविवागाणं नगराइं, वणसंडाइं, चेइआइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिआ, धम्मकहाओ, इहलोइअ-पारलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुहपरंपराओ, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा अंतकिरिआओ, आघविज्जंति।

अर्थ–प्रश्न–यह सुखविपाक क्या है ?

उत्तर–सुखविपाक में सुखविपाकियों (सुखरूपी विपाक को भोगने वाला प्राणी) के नगर, उद्यान, वनखण्ड, चैत्य समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक-परलोक की ऋद्धि विशेष, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या, पर्याय, श्रुत अध्ययन, तप-उपधान, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादोपपगमन, देवलोक-गमन, सुखों की परम्परा, पुनः बोधिलाभ, अन्तःक्रिया आदि विषयों का वर्णन है।

94. Question—What is this *Sukha Vipak*?

Answer—In *Sukha Vipak* topics like cities, gardens, *chaityas*, forests, *samavasarans*, kings, parents, religious leaders, religious tales, special powers acquired during this birth and others, renouncing mundane indulgences, initiation, modes or variations, study of *shrut*, observation of austerities, ultimate vow, *bhakt pratyakhyan*, *paadopagaman*, reincarnation as gods, chain of happiness, again getting enlightened, and last rites, etc. related to the *sukha vipakis* (the beings who enjoy pleasures as a consequence) have been discussed.

विवेचन–विपाकश्रुत के दूसरे श्रुतस्कन्ध–सुखविपाक के भी दस अध्ययन हैं। इनमें उन पुण्यशाली आत्माओं का जीवन वृत्त है जिन्होंने पूर्वभव में सुपात्रदान देकर मनुष्य-भव की आयु का बंध किया था। अपने पुण्य के फलस्वरूप उन्हें अतुल वैभव प्राप्त हुआ। इन्होंने अपने मनुष्य-भव को भी धर्मध्यान में तथा त्यागपूर्वक बिताकर पुनः पुण्य अर्जित कर देवलोक की आयुष्य का बंधन किया तथा भविष्य में निर्वाण पद प्राप्त करेंगे।

Elaboration—In the second part, *Sukha Vipak*, also there are ten chapters. In these chapters are given the stories of life of those pious beings who gave charity to the deserving during their earlier birth and as a consequence were born as human beings. Due to their meritorious deeds they were endowed with immense wealth and grandeur. Even as human beings they spent their life in spiritual

pursuits with detachment, and earned the meritorious karmas that lead to an incarnation as gods. They will get liberated in future.

९५ : *विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ।*

से णं अंगट्ठयाए इक्कारसमे अंगे, दो सुअक्खंधा, वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला, संखिज्जाइं, पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विन्नाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ।

से त्तं विवागसुयं।

अर्थ–विपाकश्रुत में परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोग द्वार, संख्यात वेढा, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं।

अंग सूत्रों की अपेक्षा यह ग्यारहवाँ अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध, बीस अध्ययन, बीस उद्देशन काल, और बीस समुद्देशन काल हैं। पद परिमाण में यह संख्यात सहस्र पदाग्र है। इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित द्वारा सिद्ध जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है और उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इससे एकात्म हो ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह विपाकश्रुत का वर्णन है।

95. *Vipak Shrut* has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *niryukti* (parsing), countable *sangrahanis*, and countable *pratipattis*.

This *Vipak Shrut* is eleventh among the *Angas*. It has two *shrutskandha* (parts), 20 chapters, 20 *uddeshan kaal*, 20 *samuddeshan kaal*. Measured in *pad* (sentence units) it has countable thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has

descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or experimented) and natural evidences, the tenets of the *Jina* have been stated (*akhyayit*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Vipak Shrut*.

(१२) दृष्टिवाद श्रुत परिचय
12. DRISHTIVAD SHRUT

९६ : *से किं तं दिट्ठिवाए ?*

दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणा आघविज्जइ से समासओ पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा–(१) परिकम्मे, (२) सुत्ताइं, (३) पुव्वगए, (४) अणुओगे, (५) चूलिआ।

अर्थ–प्रश्न–इस दृष्टिवाद में क्या है?

उत्तर–दृष्टिवाद में सर्व-भाव प्ररूपणा उल्लिखित है। यह संक्षेप में पाँच प्रकार की है–(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) अनुयोग, और (५) चूलिका।

96. Question—What is this *Drishtivad*?

Answer—In *Drishtivad* there is validation of subjects form all modes (angles). In brief it is of five types—(1) *Parikarma*, (2) *Sutra*, (3) *Purvagat*, (4) *Anuyog, and* (5) *Chulika*.

विवेचन–मूल प्राकृत शब्द दिट्ठिवाय की संस्कृत छाया होती है, दृष्टिवाद अथवा दृष्टिपात। यहाँ दोनों अर्थ ही संगत बैठते हैं। दृष्टि शब्द अपने आप में अनेकार्थक है–नेत्रों की शक्ति, ज्ञान शक्ति, समझ, अभिमत, दर्शन, नय (अर्थ ग्रहण करने के विभिन्न दृष्टिकोण)। पात का अर्थ है डालना तथा वाद का अर्थ है कहना या अभिव्यक्त करना अथवा मत विशेष। अतः यह मूलत दर्शन विषयक विश्वकोश है।

विश्व में जितने भी दर्शन हैं, ज्ञान का जितना भी भण्डार है, नयों की जितनी भी संभावित प्रणालियाँ हैं, उन सभी का समावेश दृष्टिवाद में हो जाता है। यह विशाल विश्वज्ञान कोष अध्ययन क्रम से पाँच भागों में संकलित किया गया है।

जैन परम्परा में यह आगम सभी आगमों में सबसे महान् माना जाता है किन्तु इसका व्यवच्छेद लगभग १,५०० वर्ष पूर्व हो चुका था। इस ग्रन्थ की विशालता तथा विषयों की गहनता इतनी अधिक थी कि इसमें निहित ज्ञान को आत्मसात् करने तथा उसे स्मृति में बनाए रखने के लिए कठोर साधना की आवश्यकता होती थी। इसी कारण काल-प्रभाव से इसका लुप्त होना अवश्यम्भावी है। जैन मान्यता के अनुसार दृष्टिवाद की प्ररूपणा तीर्थंकर द्वारा की जाती है और प्रत्येक तीर्थंकर के शासनकाल में समयावधि के साथ इसका लोप हो जाता है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित दृष्टिवाद का भी उनके निर्वाण के ३०० वर्ष पश्चात् लोप होना आरम्भ हो गया था और लगभग १,००० वर्ष पश्चात् पूर्णतया लोप हो गया था।

श्रुति परम्परा से उसके विषय में जो अंश मात्र जानकारी उपलब्ध है उसी की चर्चा यहाँ की गई है।

Elaboration—The Sanskrit transcription of the original Prakrit word—*ditthivaya*—is *drishtivad* or *drishtipat*. Here both these appear to be appropriate. *Drishti* itself has numerous meanings—the capacity of eyes to see, the capacity of mind to know, opinion, perception, naya (various view points used to know and understand meaning), and others. *Pat* means to throw and *vad* means to tell, to express and also a school of thought (...*ism*). Thus, this work is basically an encyclopedia of philosophy.

Drishtivad encapsulates all philosophies, the complete storehouse of knowledge, and all possible methods of applying *naya* (view points). This immense encyclopedia of knowledge has been compiled in five volumes.

In Jain tradition this *Agam* is believed to be the greatest among *Agams*, but it became extinct 1,500 years back. The volume of this work and the profoundness of the knowledge it contained was so great that understanding it and memorizing it was a task next to impossible. That is the reason that with passage of time its decline and extinction became inevitable. According to the Jain belief *Drishtivad* is propagated by a *Tirthankar* and during the period of influence of every *Tirthankar* it gradually depletes with passage of time. The gradual depletion of *Drishtivad* propagated by *Bhagavan* Mahavir started 300 years after his nirvana and the great work became totally extinct a thousand years after his nirvana.

Whatever little traditional information is available about it, has been mentioned here.

(I) परिकर्म

I. PARIKARMA

९७ : से किं तं परिकम्मे ?

परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा-(१) सिद्धसेणिआपरिकम्मे, (२) मणुस्ससेणिआपरिकम्मे, (३) पुट्ठसेणिआपरिकम्मे, (४) ओगाढसेणिआपरिकम्मे, (५) उवसंपज्जणसेणिआपरिकम्मे, (६) विप्पजहणसेणिआपरिकम्मे, (७) चुआचुअसेणिआपरिकम्मे।

अर्थ–प्रश्न–यह परिकर्म क्या है?

उत्तर–परिकर्म सात प्रकार का है–(१) सिद्ध-श्रेणिका परिकर्म, (२) मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म, (३) पुष्ट-श्रेणिका परिकर्म, (४) अवगाढ-श्रेणिका परिकर्म, (५) विप्रजहत्-श्रेणिका परिकर्म, (६) उप-सम्पादन-श्रेणिका परिकर्म, और (७) च्युताच्युत-श्रेणिका परिकर्म।

97. Question—What is this *Parikarma*?

Answer—*Parikarma* is said to be of seven types—(1) *Siddha Shrenika Parikarma*, (2) *Manushya Shrenika Parikarma*, (3) *Pushta Shrenika Parikarma*, (4) *Avagadh Shrenika Parikarma*, (5) *Viprajahat Shrenika Parikarma*, (6) *Up-sampadan Shrenika Parikarma*, and (7) *Chyutachyut Shrenika Parikarma*.

विवेचन–गणितशास्त्र में संकलना आदि १६ प्रकार के परिकर्मों का विधान है। जिनका अध्ययन करने से गणितशास्त्र को व्यापकता से तथा शीघ्र समझने की योग्यता आ जाती है। उसी प्रकार दृष्टिवाद में भी इन सात परिकर्मों का विधान है। इनका भलीभाँति अध्ययन करने से दृष्टिवाद में समाए सभी विषयों को समझ पाना सरल हो जाता है। अन्य शब्दों में दृष्टिवाद का प्रवेश द्वार परिकर्म है।

Elaboration—In the subject of mathematics 16 types of *parikarmas* (processes like adding) are mentioned. By studying these one acquires the capacity to study mathematics fast and in detail. In the same way these seven *parikarmas* have been provided in *Drishtivad*. A proper study of these makes it easy to understand all the subjects contained within *Drishtivad*. In other words *parikarma* is the gateway to *Drishtivad*.

(१) सिद्ध-श्रेणिका परिकर्म

(1) SIDDHA SHRENIKA PARIKARMA

९८ : से किं तं सिद्धसेणिआपरिकम्मे ?

सिद्धसेणिआपरिकम्मे चउद्दसविहे पन्नत्ते तं जहा–(१) माउगापयाइं (२) एगट्ठिअपयाइं, (३) अट्ठपयाइं, (४) पाढोआगासपयाइं,[1] (५) केउभूअं, (६) रासिबद्धं, (७) एगगुणं, (८) दुगुणं, (९) तिगुणं, (१०) केउभूअं, (११) पडिग्गहो, (१२) संसारपडिग्गहो, (१३) नंदावत्तं, (१४) सिद्धावत्तं।

से तं सिद्धसेणिआपरिकम्मे।

अर्थ–प्रश्न–सिद्ध-श्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है ?

उत्तर–सिद्ध-श्रेणिका परिकर्म १४ प्रकार का है–(१) मातृकापद, (२) एकार्थकपद, (३) अर्थपद, (४) पृथगाकाशपद, (५) केतुभूत, (६) राशिबद्ध, (७) एकगुण, (८) द्विगुण, (९) त्रिगुण, (१०) केतुभूत, (११) प्रतिग्रह, (१२) संसार प्रतिग्रह, (१३) नन्दावर्त, तथा (१४) सिद्धावर्त।

यह सिद्ध-श्रेणिका परिकर्म का वर्णन है।

98. Question—What is this *Siddha Shrenika Parikarma*?

Answer—*Siddha Shrenika Parikarma* is said to be of fourteen types—*1. Matrika pad, 2. Ekarthak pad, 3. Arth pad, 4. Prithakagash pad, 5. Ketubhoot, 6. Rashibaddha, 7. Ek Guna, 8. Dviguna, 9. Triguna, 10. Ketubhoot, 11. Pratigrah, 12. Samsar Pratigrah, 13. Nandavart, and 14. Siddhavart.*

This concludes the description of *Siddha Shrenika Parikarma.*

विवेचन–यहाँ सिद्ध-श्रेणिका परिकर्म के चौदह भेदों का केवल नामोल्लेख किया गया है, अन्य सूचना उपलब्ध नहीं है। इस कारण इन नामों के आधार पर विषयों का अनुमान ही लगाया जा सकता है। इस परिकर्म के नाम से यह लगता है कि इसमें विद्यासिद्धि आदि का वर्णन रहा होगा। मातृकापद, एकार्थपद तथा अर्थपद का सम्बन्ध मंत्र विद्या के अतिरिक्त व्याकरण तथा शब्दकोश से भी रहा होगा। इसी प्रकार राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण आदि का सम्बन्ध गणित विद्या से रहा होगा।

---

१. मुनिश्री जम्बूविजय जी द्वारा संशोधित नन्दीसूत्र में (४) पाढो, (५) आमासपयाइं। यह दो भेद मानकर १०वाँ केउभूयं पाठ नहीं दिया है। कुछ प्रतियों में पाढो आमासपयाइं पाठ है।

Elaboration—Here only the fourteen names of types of *Siddha Shrenika Parikarma* have been mentioned. No other information is available. Therefore, on the basis of these names one can only imagine about the subject discussed under each of them. The name of this *parikarma* suggest that this must be about perfecting special powers. *Matrika pad*, *Ekarthak pad*, and *Arth pad*, could be connected with mantras, grammar, and dictionary. Similarly, *Rashibaddha, Ek Guna, Dviguna, and Triguna* must be related to mathematics.

(२) मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म
(2) MANUSHYA SHRENIKA PARIKARMA

९९ : *से किं तं मणुस्ससेणिआपरिकम्मे ?*

मणुस्ससेणिआपरिकम्मे चउद्दसविहे पण्णत्ते तं जहा-(१) माउयापयाइं, (२) एगट्ठिअपयाइं, (३) अट्ठपयाइं, (४) पाढोआगा (मा) सपयाइं, (५) केउभूअं, (६) रासिबद्धं, (७) एगगुणं, (८) दुगुणं, (९) तिगुणं, (१०) केउभूअं, (११) पडिग्गहो, (१२) संसारपडिग्गहो, (१३) नंदावत्तं, (१४) मण्णुस्सावत्तं।

से तं मणुस्ससेणिआपरिकम्मे।

अर्थ–प्रश्न–मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है?

उत्तर–मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का है–(१) मातृकापद, (२) एकार्थकपद, (३) अर्थपद, (४) पृथगाकाशपद, (५) केतुभूत, (६) राशिबद्ध, (७) एकगुण, (८) द्विगुण, (९) त्रिगुण, (१०) केतुभूत, (११) प्रतिग्रह, (१२) संसार प्रतिग्रह, (१३) नन्दावर्त, तथा (१४) सिद्धावर्त।

यह मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म का वर्णन है।

99. Question—What is this *Manushya Shrenika Parikarma*?

Answer—*Manushya Shrenika Parikarma* is said to be of fourteen types—*1. Matrika pad, 2. Ekarthak pad, 3. Arth pad, 4. Prithakagash pad, 5. Ketubhoot, 6. Rashibaddha, 7. Ek Guna, 8. Dviguna, 9. Triguna, 10. Ketubhoot, 11. Pratigrah, 12. Samsar Pratigrah, 13. Nandavart, and 14. Siddhavart.*

This concludes the description of *Manushya Shrenika Parikarma.*

विवेचन—मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है कि इसमें मनुष्य सम्बन्धी विकल्पों का श्रेणीबद्ध विवेचन होगा, जैसे—भव्य, अभव्य, परित्त संसारी, अनन्त संसारी, चरम शरीरी, अचरम शरीरी, चारों गतियों से आने वाली मनुष्य श्रेणी, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि, आराधक, विराधक, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, गर्भज, सम्मूर्छिम, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, संयत, असंयत, संयतासंयत, मनुष्य-श्रेणिका, उपशम-श्रेणिका तथा क्षपक-श्रेणिका।

Elaboration—About *Manushya Shrenika Parikarma* it can be surmised that it must have contained a stage-wise discussion about various angles of human life. For example—*Bhavya, Abhavya, Paritta Samsari, Anant Samsari, Charam Shariri, Acharam Shariri,* the various levels of human beings reincarnating from various dimensions, *Samyagdrishti, Mithyadrishti, Mishradrishti, Aradhak, Viradhak, Stri, Purush, Napumsak, Garbhaj, Sammurchhim, Paryaptak, Aparyaptak, Samyat, Asamyat, Samyatasamyat, Manushya Shrenika, Upasham Shrenika, and Kshapak Shrenika.* (As this is just a hypothetical list, these terms have not been explained in details for lack of space.)

(३) पृष्ट-श्रेणिका परिकर्म
(3) PRISHTA SHRENIKA PARIKARMA

१०० : *से किं तं पुट्ठसेणिआपरिकम्मे ?*

पुट्ठसेणिआपरिकम्मे, इक्कारसविहे पण्णत्ते तं जहा—(१) पाढोआगासपयाइं, (२) केउभूयं, (३) रासिबद्धं, (४) एगगुणं, (५) दुगुणं, (६) तिगुणं, (७) केउभूयं, (८) पडिग्गहो, (९) संसारपडिग्गहो, (१०) नंदावत्तं, (११) पुट्ठावत्तं।

से तं पुट्ठसेणिआपरिकम्मे।

अर्थ—प्रश्न—पृष्ट-श्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है?

उत्तर—पृष्ट-श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है—(१) पृथगाकाशपद, (२) केतुभूत, (३) राशिबद्ध, (४) एकगुण, (५) द्विगुण, (६) त्रिगुण, (७) केतुभूत, (८) प्रतिग्रह, (९) संसार प्रतिग्रह, (१०) नन्दावर्त, तथा (११ पृष्टावर्त।

यह पृष्ट-श्रेणिका परिकर्म का वर्णन है।

100. Question—What is this *Prishta Shrenika Parikarma*?

Answer—*Prishta Shrenika Parikarma* is said to be of eleven types—*1. Prithakagash pad, 2. Ketubhoot, 3. Rashibaddha, 4. Ek Guna, 5. Dviguna, 6. Triguna, 7. Ketubhoot, 8. Pratigrah, 9. Samsar Pratigrah, 10. Nandavart, and 11. Prishtavart.*

This concludes the description of *Prishta Shrenika Parikarma*.

विवेचन—मूल प्राकृत शब्द पुट्ठ की संस्कृत छाया पृष्ट भी होती है और स्पृष्ट भी। अतः इसमें संभवतः लौकिक तथा लोकोत्तरिक विभिन्न विषयों की प्रश्नावलियाँ संकलित हों। स्पृष्ट अर्थ भी अपने में हर संभव विषय समेटे है। क्योंकि संसार में प्रत्येक वस्तु किसी न किसी प्रकार से एक-दूसरे पर आधारित स्पर्श करती हुई होती है, जैसे–सिद्ध एक-दूसरे से स्पृष्ट है; निगोदीय शरीर में अनन्त जीव एक-दूसरे से स्पृष्ट होते हैं; धर्म, अधर्म और आकाश के प्रदेश परस्पर स्पृष्ट हैं; आदि।

Elaboration—The Sanskrit transcription of the original Prakrit word—*puttha*—is *prishta* as well as *sprishta*. Therefore, this probably contains questions on various topics of worldly and other worldly affairs. The alternative word *sprishta* (touching or in contact) also envelopes almost every topic because almost everything in this universe touches some other thing. For example—*Siddhas* touch each other, in the gross *nigod* body there are infinite beings touching each other, states of motion and inertia and the space points are touching each other, and so on.

(४) अवगाढ-श्रेणिका परिकर्म
(4) AVAGADH SHRENIKA PARIKARMA

१०१ : *से किं तं ओगाढसेणिआपरिकम्मे ?*

ओगाढसेणिआपरिकम्मे एक्कारसविहे पन्नत्ते, तं जहा–(१) पाढोआगासपयाइं, (२) केउभूअं, (३) रासिबिद्धं, (४) एगगुणं, (५) दुगुणं, (६) तिगुणं, (७) केउभूअं, (८) पडिग्गहो, (९) संसार-पडिग्गहो, (१०) नंदावत्तं, (११) ओगाढावत्तं।

से त्तं ओगाढसेणिआ परिकम्मे।

अर्थ—प्रश्न—अवगाढ-श्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है?

उत्तर–अवगाढ-श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है–(१) पृथगाकाशपद, (२) केतुभूत, (३) राशिबद्ध, (४) एकगुण, (५) द्विगुण, (६) त्रिगुण, (७) केतुभूत, (८) प्रतिग्रह, (९) संसार प्रतिग्रह, (१०) नन्दावर्त, तथा (११) अवगाढावर्त।

यह अवगाढ-श्रेणिका परिकर्म का वर्णन है।

101. Question—What is this *Avagadh Shrenika Parikarma*?

Answer—*Avagadh Shrenika Parikarma* is said to be of eleven types—*1. Prithakagash pad, 2. Ketubhoot, 3. Rashibaddha, 4. Ek Guna, 5. Dviguna, 6. Triguna, 7. Ketubhoot, 8. Pratigrah, 9. Samsar Pratigrah, 10. Nandavart, and 11. Avagadhavart.*

This concludes the description of *Avagadh Shrenika Parikarma*.

विवेचन—अवगाहना का अर्थ है स्थान ग्रहण करना। आकाश सभी द्रव्यों को अपने प्रदेशों में स्थान देता है। इस शीर्षक से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अवगाढ श्रेणिका परिकर्म में विभिन्न द्रव्यों का वे जिन प्रदेशों में अवगाढ (संस्थित) है उसके संदर्भ में विस्तृत वर्णन होगा।

Elaboration—*Avagahana* means to occupy space. *Akash* (space) allows occupancy to all substances in its sections or space points. The title, *Avagadh Shrenika Parikarma*, indicates that this section must be dealing with the detailed description of various substances with reference to the space sections they occupy or are intimately connected with.

(५) उपसम्पादन-श्रेणिका परिकर्म
(5) UP-SAMPADAN SHRENIKA PARIKARMA

१०२ : *से किं तं उवसंपज्जणसेणिआपरिकम्मे ?*

उवसंपज्जणसेणिआपरिकम्मे एक्कारसविहे पन्नत्ते, तं जहा–(१) पाढोआगासपयाइं, (२) केउभूयं, (३) रासिबद्धं, (४) एगगुणं, (५) दुगुणं, (६) तिगुणं, (७) केउभूयं, (८) पडिग्गहो, (९) संसारपडिग्गहो, (१०) नंदावत्तं, (११) उवसंपज्जणावत्तं।

से तं उपसंपज्जणावत्तं, से तं उपसंपज्जणसेणिआपरिकम्मे।

अर्थ–प्रश्न–उपसम्पादन-श्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है?

उत्तर–उपसम्पादन-श्रेणिका परिकर्म ११ प्रकार का है–

(१) पृथगाकाशपद, (२) केतुभूत, (३) राशिबद्ध, (४) एकगुण, (५) द्विगुण, (६) त्रिगुण, (७) केतुभूत, (८) प्रतिग्रह, (९) संसार प्रतिग्रह, (१०) नन्दावर्त, तथा (११) उपसंपदावर्त।

यह उपसम्पादन-श्रेणिका परिकर्म का वर्णन है।

102. Question—What is this *Up-sampadan Shrenika Parikarma*?

Answer—*Up-sampadan Shrenika Parikarma* is said to be of eleven types—*1. Prithakagash pad, 2. Ketubhoot, 3. Rashibaddha, 4. Ek Guna, 5. Dviguna, 6. Triguna, 7. Ketubhoot, 8. Pratigrah, 9. Samsar Pratigrah, 10. Nandavart, and 11. Upasampadanavart.*

This concludes the description of *Up-sampadan Shrenika Parikarma*.

विवेचन—उपसम्पादन का अर्थ है ग्रहण करना अथवा अंगीकार करना। अर्थानुसार यह अनुमान किया जा सकता है कि इसमें अंगीकार करने की क्रिया तथा अंगीकार करने योग्य वस्तुओं व विषयों का वर्णन होगा। इसी संदर्भ में ग्राहकताओं, ग्राह्य की क्षमताओं तथा अनुपात आदि का विस्तार भी होना चाहिए। जैसे संजमं उवसंपज्जामि–संयक को ग्रहण करता हूँ। साधना में उपादेय तत्त्वों का वर्णन इसमें हो सकता है।

Elaboration—*Up-sampadan* means to receive or to accept. For example—*sanjamam uvasampajjami* or "I accept discipline." On the basis of the title it can be deduced that this section must be dealing with the act of accepting as well as the things and subjects worth accepting. In this context their must also be a detailed discussion about the capacities and proportions of the subjects and objects. It may also contain details about the things helpful in spiritual practices.

(६) विप्रजहत्-श्रेणिका परिकर्म
(6) VIPRAJAHAT SHRENIKA PARIKARMA

१०३ : *से किं तं विप्पजहणसेणिआपरिकम्मे ?*

विप्पजहणसेणिआपरिकम्मे एक्कारसविहे पन्नत्ते, तं जहा–(१) पाढोआगासपयाइं, (२) केउभूअं, (३) रासिबद्धं, (४) एगगुणं, (५) दुगुणं, (६) तिगुणं, (७) केउभूअं,

(८) पडिग्गहो, (९) संसारपडिग्गहो, (१०) नन्दावत्तं, (११) विप्पजहणसेणिआ-परिकम्मे।

अर्थ–प्रश्न–विप्रजहत्-श्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है?

उत्तर–विप्रजहत्-श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है–

(१) पृथगाकाशपद, (२) केतुभूत, (३) राशिबद्ध, (४) एकगुण, (५) द्विगुण, (६) त्रिगुण, (७) केतुभूत, (८) प्रतिग्रह, (९) संसार प्रतिग्रह, (१०) नन्दावर्त, तथा (११) विप्रजहदावर्त।

यह विप्रजहत्-श्रेणिका परिकर्म का वर्णन है।

103. Question—What is this *Viprajahat Shrenika Parikarma*?

Answer—*Viprajahat Shrenika Parikarma* is said to be of eleven types—*1. Prithakagash pad, 2. Ketubhoot, 3. Rashibaddha, 4. Ek Guna, 5. Dviguna, 6. Triguna, 7. Ketubhoot, 8. Pratigrah, 9. Samsar Pratigrah, 10. Nandavart, and 11. Viprajahadavart.*

This concludes the description of *Viprajahat Shrenika Parikarma*.

विवेचन–विप्रजहत् का अर्थ है त्याज्य अथवा जिसे छोड़ देना है। अर्थानुसार यह अनुमान किया जा सकता है कि इसमें सभी त्यागने योग्य वस्तुओं तथा विषयों का विस्तार में वर्णन रहा होगा। संयोग श्रेयस्कर भी होता है और हानिकारक भी। जिसका संयोग हानिकारक हो उससे वियोग करना श्रेयस्कर होता है। यह वियोग का शास्त्र है। अतः इसमें विभिन्न दृष्टिकोणों से उन सभी बातों की चर्चा होगी जो किसी न किसी परिस्थिति में कभी न कभी के लिए त्याज्य है अतः इसमें अध्यात्म, आरोग्य व नीति विषयक त्याज्य तत्त्वों का वर्णन हो सकता है।

Elaboration—*Viprajahat* means worth rejecting or that which has to be left away. On the basis of the title it may be deduced that this must contain detailed discussion about all the things that are worth rejecting. Contact may be beneficial as well as harmful. It is better to loose a contact that is harmful. This section deals with separation or loosing contact. Therefore it must contain discussions about all those things, from numerous angles, that are worth rejecting at some point of time under some conditions for some one.

This indicates that this must contain details about things to be abandoned in spiritual, health, and moral context.

(७) च्युताच्युत-श्रेणिका परिकर्म
(7) CHYUTACHYUT SHRENIKA PARIKARMA

१०४ : *से किं तं चुआचुअसेणिआपरिकम्मे ?*

चुआचुअसेणिआपरिकम्मे, एक्कारसविहे पन्नत्ते, तं जहा-(१) पाढोआगासपयाइं, (२) केउभूअं, (३) रासिबद्धं, (४) एगगुणं, (५) दुगुणं, (६) तिगुणं, (७) केउभूअं, (८) पडिग्गहो, (९) संसारपडिग्गहो, (१०) नंदावत्तं, (११) चुआचुआवत्तं।

से तं चुआचुअसेणिआपरिकम्मे।

छ चउक्क नइआइं, सत्त तेरासियाइं, से तं परिकम्मे।

अर्थ-प्रश्न-च्युताच्युत-श्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है?

उत्तर-च्युताच्युत-श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है-(१) पृथगाकाशपद, (२) केतुभूत, (३) राशिबद्ध, (४) एकगुण, (५) द्विगुण, (६) त्रिगुण, (७) केतुभूत, (८) प्रतिग्रह, (९) संसार प्रतिग्रह, (१०) नन्दावर्त, तथा (११) च्युताच्युतावर्त।

यह च्युताच्युत-श्रेणिका परिकर्म का वर्णन है।

आदि के छह परिकर्म चार नयों पर आश्रित हैं और सातवाँ त्रैराशिक पर।

यह परिकर्म का वर्णन है।

104. Question—What is this *Chyutachyut Shrenika Parikarma*?

Answer—*Chyutachyut Shrenika Parikarma* is said to be of eleven types—*1. Prithakagash pad, 2. Ketubhoot, 3. Rashibaddha, 4. Ek Guna, 5. Dviguna, 6. Triguna, 7. Ketubhoot, 8. Pratigrah, 9. Samsar Pratigrah, 10. Nandavart, and 11. Chyutachyutavart.*

This concludes the description of *Chyutachyut Shrenika Parikarma.*

The first six *parikarmas* are based on four *nayas* and the seventh on *Trairashik naya*.

This concludes the description of *parikarma*.

विवेचन—ऐसा लगता है कि इस सूत्र में त्रैराशिक मत का विवरण रहा होगा। जिस प्रकार जैन विचारधारा में तीन दृष्टिकोण हैं-संयत, असंयत, संयतासंयत, जीव, अजीव, जीवाजीव, आदि उसी प्रकार संभव है त्रैराशिक मत में च्युत, अच्युत, च्युताच्युत शब्द प्रचलित रहे हों। परिकर्म के उपसंहार वाक्यों में भी यही इंगित मिलता है-"आदि के छह परिकर्म चार नयों के आश्रित हैं और सातवाँ त्रैराशिक पर।" इसका यह संकेत भी है प्रथम छह परिकर्म स्व-पक्ष का वर्णन करते हैं और सातवाँ अन्य पक्ष (त्रैराशिक मत) का।

Elaboration—It appears that this section must have contained details about the *Trairashik* school. There are three viewpoints popular in Jain school—*Samyat, asamyat, and samyatasamyat; jiva, ajiva, and jivajiva;* etc. In the same way it is possible that in the *Trairashik* school the terms—*chyut, achyut, and chyutachyut* may have been popular. The concluding sentence of the *parikarma* section also indicates this—"The first six *parikarma*s are based on four *naya*s and the seventh on *Trairashik naya*." It may also be inferred that the first six *parikarma*s present Jain viewpoint and the seventh that of others (like *Trairashik*).

(II) सूत्र
(II) SUTRA

१०५ : *से किं तं सुत्ताइं ?*

सुत्ताइं बावीसं पन्नत्ताइं, तं जहा-(१) उज्जुसुयं, (२) परिणयापरिणयं, (३) बहुभंगिअं, (४) विजयचरिअं, (५) अणंतरं, (६) परंपरं, (७) आसाणं, (८) संजूणं (९) संभिण्णं, (१०) अहव्वायं, (११) सोवत्थिआवत्तं, (१२) नंदावत्तं, (१३) बहुलं, (१४) पुट्ठापुट्ठं, (१५) विआवत्तं, (१६) एवंभूअं, (१७) दुयावत्तं, (१८) वत्तमाणपयं, (१९) समभिरूढं, (२०) सव्वओभद्दं, (२१) पस्सासं, (२२) दुप्पडिग्गहं।

इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नच्छेअ नइआणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नच्छेअ नइआणि आजीविअसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं तिग-णइयाणि तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइयाणि ससमयसुत्त-परिवाडीए। एवामेव सपुव्वावरेण अट्ठासीई सुत्ताइं भवंतीतिमक्खायं, से तं सुत्ताइं।

अर्थ-प्रश्न-यह सूत्र कितने प्रकार का है?

उत्तर-सूत्र २२ प्रकार के बताये हैं-(१) ऋजुसूत्र, (२) परिणतापरिणत, (३) बहुभंगिक, (४) विजयचरित, (५) अनन्तर, (६) परम्पर, (७) आसान, (८) संयूथ, (९) सम्भिन्न, (१०) यथावाद, (११) स्वस्तिकावर्त, (१२) नन्दावर्त, (१३) बहुल, (१४) पृष्टापृष्ट, (१५) व्यावर्त, (१६) एवंभूत, (१७) द्विकावर्त, (१२) वर्तमानपद, (१९) समभिरूढ़, (२०) सर्वतोभद्र, (२१) प्रशिष्य, तथा (२२) दुष्प्रतिग्रह।

छिन्नच्छेद नय वाले ये २२ सूत्र स्व-पक्ष की सूत्र परिपाटी के अनुसार हैं। ये ही २२ सूत्र आजीवक गोशालक के दर्शन की सूत्र परिपाटी के अनुसार अछिन्नच्छेद नय वाले हैं। ये ही २२ सूत्र त्रैराशिक सूत्र परिपाटी के अनुसार तीन नय वाले हैं। और ये ही २२ सूत्र स्व-पक्ष की सूत्र परिपाटी के अनुसार चतुष्क-चार नय वाले हैं। इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर अट्ठासी सूत्र होते हैं ऐसा कहा गया है। यह सूत्र का वर्णन है।

105. Question—What is this *Sutra*?

Answer—*Sutra* is said to be of twenty two types—*1. Rijusutra, 2. Parinataparinat, 3. Bahubhangik, 4. Vijayacharit, 5. Anantar, 6. Parampar, 7. Asan, 8. Samyuth, 9. Sambhinna, 10. Yathavad, 11. Svastikavart, 12. Nandavart, 13. Bahul, 14. Prishtaprishta, 15. Vyavart, 16. Evambhoot, 17. Dvikavart, 18. Vartamanapad, 19. Samabhiroodh, 20. Sarvatobhadra, 21. Prashishya, and 22. Dushpratigraha.*

These twenty two *sutras* are of *Chhinnachheda naya* according to the Jain tradition. The same twenty two *sutras* are of *Achhinnachheda naya* according to the school of Ajivak Goshalak. And once again the same twenty two *sutras* are of three *nayas* according to the *Trairashik* tradition. These same 22 *Sutras* are also of four *nayas* according to the Jain tradition. Thus it is said that including all, the total number of *sutras* is 88.

This concludes the description of *Sutra*.

विवेचन-छिन्नच्छेद नय उसे कहते हैं जहाँ दो पद अर्थ के लिए एक-दूसरे की अपेक्षा नहीं रखते, उनका अर्थ स्वतन्त्र होता है। जैसे-धम्मो मंगलमुक्किट्ठं (धर्म सर्वोत्कृष्ट मंगल है) यह पद किसी अन्य पद पर निर्भर नहीं करता-इसका अर्थ स्वतंत्र है। धम्मो मंगलमुक्किट्ठं-अहिंसा संजमो तवो (वह धर्म सर्वोत्कृष्ट मंगल है जिसमें अहिंसा, संयम और तप है) यहाँ दोनों पद अर्थ के लिए एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं-अतः यह अच्छिन्नच्छेद नय है।

ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि ये २२ सूत्र अनेकार्थक हैं तथा इनमें सर्वद्रव्य, सर्वपर्याय, सर्वनय और सर्वभंग के नियम बताये गये हैं। इसी कारण ये भिन्न-भिन्न नयों की अपेक्षा स्व-पक्ष के साथ ही अबन्धक, त्रैराशिक तथा नियतिवाद का भी प्रतिपादन करते हैं।

Elaboration—*Chhinnachheda naya* is that where two parts of a statement are not dependent on each other for their meaning, they have independent meaning. For example—*"Dhammo mangal mukkittham"* (*Dharma* is the best among all auspicious things). This is an independent statement as far as the meaning is concerned. *"Dhammo mangal mukkittham, ahimsa sanjamo tavo"* (That *dharma* is the best among all auspicious things which includes *ahimsa*, discipline, and austerities.) Here the two parts of the statement are dependent on each other for the meaning it conveys; this is an example of *Achhinnachheda naya*.

This can be inferred that these 22 *Sutras* have numerous meanings and they conceal within them rules about all substances, all modes, all viewpoints, and all categories. That is the reason that with reference to different *nayas* they represent different schools of thought, including the Jain as well as others like *Abandhak*, *Trairashik*, and *Niyativad*.

(III) पूर्वगत
(III) PURVAGAT

१०६ : *से किं तं पुव्वगए ?*

पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–(१) उप्पायपुव्वं, (२) अग्गाणीयं, (३) वीरिअं, (४) अत्थिनत्थिप्पवायं, (५) नाणप्पवायं, (६) सच्चप्पवायं, (७) आयप्पवायं, (८) कम्मप्पवायं, (९) पच्चक्खाणप्पवायं, (१०) विज्जाणुप्पवायं, (११) अवंझं, (१२) पाणाऊ, (१३) किरियाविसालं, (१४) लोकबिंदुसारं।

(१) उप्पाय-पुव्वस्स णं दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता.

(२) अग्गाणीय-पुव्वस्स णं चोद्दस वत्थू, दुवालस चूलियावत्थू पण्णत्ता.

(३) वीरिय-पुव्वस्स णं अट्ठ वत्थू, अट्ठ चूलियावत्थू पण्णत्ता,

(४) अत्थिनत्थिप्पवाय-पुव्वस्स णं अट्ठारस वत्थू, दस चूलियावत्थू पण्णत्ता,

(५) नाणप्पवायपुव्वस्स णं बारस वत्थू पण्णत्ता,

(६) *सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दोण्णि वत्थू पण्णत्ता,*

(७) *आयप्पवायपुव्वस्स णं सोलस वत्थू पण्णत्ता,*

(८) *कम्मप्पवायपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता,*

(९) *पच्चक्खाणपुव्वस्स णं वीसं वत्थू पण्णत्ता,*

(१०) *विज्जाणुप्पवायपुव्वस्स णं पन्नरस वत्थू पण्णत्ता,*

(११) *अवंज्झपुव्वस्स णं बारस वत्थू पण्णत्ता,*

(१२) *पाणाउपुव्वस्स णं तेरस वत्थू पण्णत्ता,*

(१३) *किरिआविसालपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता,*

(१४) *लोकबिंदुसारपुव्वस्स णं पणवीसं वत्थू पण्णत्ता,*

दस चोदस अट्ठ अट्ठारस बारस दुवे अ वत्थूणि।
सोलस तीसा वीसा पन्नरस अणुप्पवायम्मि॥१॥
बारस इक्कारसमे, बारसमे तेरसेव वत्थूणि।
तीसा पुण तेरसमे, चोद्दसमे पण्णवीस्रो॥२॥
चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चुल्लवत्थूणि।
आइल्लाण चउण्हं, सेसाणं चूलिया नत्थि॥३॥
से त्तं पुव्वगए।

अर्थ—प्रश्न—पूर्वगत कितने प्रकार का है?

उत्तर—पूर्वगत १४ प्रकार का है—(१) उत्पादपूर्व, (२) अग्रायणीपूर्व, (३) वीर्यप्रवादपूर्व, (४) अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्व, (५) ज्ञानप्रवादपूर्व, (६) सत्यप्रवादपूर्व, (७) आत्मप्रवादपूर्व, (८) कर्मप्रवादपूर्व, (९) प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, (१०) विद्यानुप्रवादपूर्व, (११) अबन्ध्यपूर्व, (१२) प्राणायुपूर्व, (१३) क्रियाविशालपूर्व, (१४) लोकबिन्दुसारपूर्व।

(१) उत्पादपूर्व के दस वस्तु और चार चूलिका वस्तु हैं।

(२) अग्रायणीयपूर्व के चौदह वस्तु और बारह चूलिका वस्तु हैं।

(३) वीर्यप्रवादपूर्व के आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु हैं।

(४) अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्व के अठारह वस्तु और दस चूलिका वस्तु हैं।

(५) ज्ञानप्रवादपूर्व के बारह वस्तु हैं।

(६) सत्यप्रवादपूर्व के दो वस्तु हैं।

(७) आत्मप्रवादपूर्व के सोलह वस्तु हैं।

(८) कर्मप्रवादपूर्व के तीस वस्तु हैं।

(९) प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व के वीस वस्तु हैं।

(१०) विद्यानुप्रवादपूर्व के पन्द्रह वस्तु हैं।

(११) अबन्ध्यपूर्व के बारह वस्तु हैं।

(१२) प्राणायुपूर्व के तेरह वस्तु हैं।

(१३) क्रियाविशालपूर्व के तीस वस्तु हैं।

(१४) लोकबिन्दुसारपूर्व के पच्चीस वस्तु हैं।

(संक्षेप में) पहले में १०, दूसरे में १४, तीसरे में ८, चौथे में १८, पाँचवें में १२, छठे में २, सातवें में १६, आठवें में ३०, नवें में २०, दसवें में १५, ग्यारहवें में १२, वारहवें में १३, तेरहवें में ३० और चौदहवें में २५ वस्तु हैं।

आदि के चार पूर्वों में क्रमशः पहले में ४, दूसरे में १२, तीसरे में ८, और चौथे में १० चूलिकाएँ हैं शेष में चूलिकाएँ नहीं हैं।

यह पूर्वगत का वर्णन है।

106. Question—What is this *Purvagat*?

Answer—*Purvagat* is said to be of fourteen types—*1. Utpad Purva, 2. Agrayani Purva, 3. Viryapravad Purva, 4. Astinastipravad Purva, 5. Jnanapravad Purva, 6. Satyapravad Purva, 7. Atmapravad Purva, 8. Karmapravad Purva, 9. Pratykhyanpravad Purva, 10. Vidyanupravad Purva, 11. Abandhya Purva, 12. Pranayu Purva, 13. Kriyavishal Purva, 14. Lokabindusar Purva.*

1. *Utpad Purva* has ten *vastu* and four *chulika vastu*.
2. *Agrayani Purva* has fourteen *vastu* and twelve *chulika vastu*.
3. *Viryapravad Purva* has eight *vastu* and eight *chulika vastu*.
4. *Asti-nastipravad Purva* has eighteen *vastu* and ten *chulika vastu*.

5. *Jnanapravad Purva* has twelve *vastu.*

6. *Satyapravad Purva* has two *vastu.*

7. *Atmapravad Purva* has sixteen *vastu.*

8. *Karmapravad Purva* has thirty *vastu.*

9. *Pratykhyanpravad Purva* has twenty *vastu.*

10. *Vidyanupravad Purva* has fifteen *vastu.*

11. *Abandhya Purva* has twelve *vastu.*

12. *Pranayu Purva* has thirteen *vastu.*

13. *Kriyavishal Purva* has thirty *vastu.*

14. *Lokabindusar Purva* has twenty five *vastu.*

(In brief) The first has 10, second 14, third 8, fourth 18, fifth 12, sixth 2, seventh 16, eighth 30, ninth 20, tenth 15, eleventh 12, twelfth 13, thirteenth 30, and fourteenth 25 *vastu.*

The first four *Purvas* have 4, 12, 8, and 10 *chulika* and the rest do not have any *chulika.*

This concludes the description of *Purvagat.*

विवेचन–जैन परम्परा में यह मान्यता है कि जब तीर्थंकर अपनी प्रथम देशना में अपने समय के शीर्षस्थ ज्ञानी व मेधावी गणधरों को सम्बोधित करते हैं तब उनके द्वारा मातृकापद के उच्चारण मात्र से गणधरों की अन्त:प्रज्ञा में समस्त श्रुतज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् वे इस ज्ञान के आधार पर अपनी शिष्य परम्परा के लिए अंग शास्त्रों की रचना करते हैं। यह ज्ञान उन्हें द्वादशांग की रचना से पूर्व ही प्राप्त हो चुका होता है। अतः इसे पूर्वगत कहते हैं। गणधरों के लिए यह पूर्व हैं, किन्तु उनकी शिष्य परम्परा के लिए इस गहन ज्ञान को समस्त अंग शास्त्रों का तलस्पर्शी ज्ञान हो जाने के बाद दिये जाने का विधान है। एक मान्यता यह भी है कि पूर्वगत ज्ञान शब्दातीत है और केवल अनुभवगम्य होने के कारण इसे प्राप्त करने का मार्ग केवल उत्कृष्ट साधना है।

पूर्वगत के उपरोक्त नामोल्लेख के आधार पर चूर्णिकार तथा वृत्तिकार ने उनमें जिन विषयों का ज्ञान होना संभावित है उनकी अनुमानित सूची दी है–

(१) उत्पादपूर्व–समस्त द्रव्यों तथा पर्यायों की उत्पत्ति।

(२) अग्रायणीपूर्व–सभी द्रव्यों, पर्यायों और जीवों के परिमाण।

(३) वीर्यप्रवादपूर्व–सकर्म या निष्कर्म जीवों तथा अजीवों की अन्तर्निहित शक्ति या क्षमता।

(४) अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्व–द्रव्यों व पर्यायों का अस्तित्व, अनस्तित्व (नास्तित्व) तथा सापेक्ष अस्तित्व-अनस्तित्व।

(५) ज्ञानप्रवादपूर्व–ज्ञान के पाँच प्रकार तथा विविध भेद।

(६) सत्यप्रवादपूर्व–सत्य व उसके विविध भेद।

(७) आत्मप्रवादपूर्व–आत्मा आदि का वर्णन।

(८) कर्मप्रवादपूर्व–कर्मों की मूल तथा उत्तर प्रकृतियाँ, तथा उनके बन्ध, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश आदि विषय।

(९) प्रत्याख्यानपूर्व–प्रत्याख्यान तथा उनके भेद-प्रभेद।

(१०) विद्यानुप्रवादपूर्व–अतिशय विद्याएँ तथा उनकी साधना विधियाँ।

(११) अवन्ध्यपूर्व–शुभ-अशुभ कर्मों के शुभ-अशुभ फल।

(१२) प्राणायुपूर्व–आयु तथा प्राण।

(१३) क्रियाविशालपूर्व–जीव तथा अजीव की क्रियाएँ तथा तद्जनित आश्रव।

(१४) लोकबिन्दुसारपूर्व–समस्त लोक के समस्त ज्ञान, लब्धि, शक्ति, ऋद्धि आदि का बिन्दु रूप सार।

Elaboration—It is a Jain belief that when in his first religious discourse a *Tirthankar* addresses the top ranking scholars of that period, a mere utterance of the *matrika pad* (a divine form of sound) evokes the complete *shrut-jnana* in the inner recesses of their mind. After this, on the basis of this knowledge they create the *Anga* scriptures for the benefit of their disciples. They get all this knowledge before they create the twelve *Anga*, therefore it is called *Purvagat* (included in the former). It is the earlier acquired knowledge for the *Ganadhars*, but to the lineage of their disciples this profound knowledge is prescribed to be given only after they have mastered all the *Angas*. Another belief is that the knowledge of the *Purvas* is beyond words. As it can be acquired only by direct experience, the only way to acquire it is very high level of spiritual practices.

Inferring on the basis of the above mentioned titles, the commentators (*churni* and *vritti*) have provided a list of the probable subjects therein—

1. *Utpad Purva*—The origin of all the substances and modes.
2. *Agrayani Purva*—The numbers, quantities, or volumes of all substances, modes, and beings.
3. *Viryapravad Purva*—The inherent power and capacity of active or inactive beings and non-beings.
4. *Asti-nastipravad Purva*—The existence, non-existence, and relative existence or non-existence of substances and modes.
5. *Jnanapravad Purva*—The five types of knowledge and their various divisions.
6. *Satyapravad Purva*—Truth and its types.
7. *Atmapravad Purva*—Soul and its attributes and activities.
8. *Karmapravad Purva*—Karmas, their basic and auxiliary properties along with other related topics such as fusion, duration, divisions, sections, etc.
9. *Pratyakhyanpravad Purva*—*Pratyakhyan* (to expel the acquired thoughts) and its categories and sub-categories.
10. *Vidyanupravad Purva*—Special skills and powers and methods of acquiring and perfecting them.
11. *Abandhya Purva*—The good and bad fruits of good and bad karmas.
12. *Pranayu Purva*—Age and life.
13. *Kriyavishal Purva*—The activities of beings and non-beings and the resultant inflow of karma.
14. *Lokabindusar Purva*—The drop-like gist of all knowledge, special skills, power, attainments, etc. available in the universe.

(IV) अणुयोग

(IV) ANUYOG

१०७ : से किं तं अणुओगे ?

अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–(१) मूलपढमाणुओगे, (२) गंडिआणुओगे य।

से किं तं मूलपढमाणुओगे ?

मूलपढमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवगमणाइं, आउं, चयणाइं, जम्मणाणि, अभिसेआ, रायवरसिरीओ, पव्वज्जाओ, तवा य उग्गा, केवलनाणुप्पाओ, तित्थपवत्तणाणि अ, सीसा, गणा, गणहरा, अज्जा, पवत्तिणीओ, संघस्स चउव्विहस्स जं च परिमाणं, जिण-मणपज्जव-ओहिनाणी, सम्मत्तसुअनाणिणो अ, वाई, अणुत्तरगई अ, उत्तरवेउव्विणो अ मुणिणो, जत्तिया सिद्धा, सिद्धिपहो देसिओ, जच्चिरं च कालं पाओवगया, जे जहिं जत्तिआइं भत्ताइं छेइत्ता अंतगडे, मुणिवरुत्तमे तिमिरओघविप्पमुक्के, मुक्खसुहमणुत्तरं च पत्ते। एवमन्ने अ एवमाइभावा मूलपढमाणुओगे कहिआ।

से त्तं मूलपढमाणुओगे।

अर्थ–प्रश्न–यह अनुयोग क्या है?

उत्तर–अनुयोग दो प्रकार का बताया है–(१) मूल प्रथमानुयोग, और (२) गण्डिकानुयोग।

प्रश्न–मूल प्रथमानुयोग में क्या है?

उत्तर–मूल प्रथमानुयोग में अर्हन्त भगवंतों के पूर्वभव, देवलोकगमन, देवलोक आयुष्य, च्यवन, जन्म, अभिषेक, राज्यलक्ष्मी, प्रव्रज्या, उग्र तपस्या, केवलज्ञान उत्पत्ति, तीर्थप्रवर्तन, शिष्यगण, गणधर, आर्यिकाएँ व प्रवर्तिनियाँ, चतुर्विध संघ का परिमाण, जिन (केवली), मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यक् श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तरगतिधारी, उत्तर वैक्रिय लब्धिधारी, जितने भी मुनि सिद्ध हुए, जैसे मोक्ष का पथ दिखाया, जितने समय तक अनशन किया, जिस स्थान पर जितने भक्तों (उपवासों) का छेदन किया, और अज्ञान अन्धकार के प्रवाह से मुक्त होकर जो महामुनि मोक्ष के प्रधान सुख को प्राप्त हुए उनका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अन्य भाव भी मूल प्रथमानुयोग में प्रतिपादित किये गये हैं।

यह मूल प्रथमानुयोग का वर्णन है।

107. Question—What is this *Anuyog*?

Answer—*Anuyog* is said to be of two types—1. *Mool Prathamanuyog*, and 2. *Gandikanuyog*.

Question—What is this *Mool Prathamanuyog*?

Answer—In *Mool Prathamanuyog* are included the various incidents from the lives of *Arhant Bhagavants*, such as—their earlier births, reincarnation as gods, life-span as gods, descent, birth, anointing, kingdom, initiation, harsh austerities,

attaining *Kewal-jnana*, establishment of *teerth*, disciples, groups of disciples, *Ganadhars*, *aryikas* (female ascetics) and *pravartinis* (leaders of female ascetics), four pronged religious organization and its expanse, *Jina* (*Kewali*), *Manah-paryav jnani*, *Avadhi-jnani*, *samyak shrut jnani*, *vadi*, *anuttaraupapatik*, *uttar vaikriya labdhidhari*, the ascetics who became *Siddhas*, the way they showed the path of liberation, the period of fasting, the places and periods of fasting, and the great ascetics who got liberated from the darkness of ignorance and acquired the ultimate bliss of liberation. Besides these there are some other topics also included in this *Mool Prathamanuyog*.

This concludes the description of *Mool Prathamanuyog*.

विवेचन—जो योग मूल तत्त्व के अनुरूप है अथवा प्ररूपित तत्त्व के अनुकूल है उसे अनुयोग कहते हैं। जो सिद्धान्त अथवा दर्शन के अर्थों के अनुरूप हो अथवा उन्हें स्पष्ट करने के लिए दृष्टान्त स्वरूप हों वैसे जीवन चरित्र जिसमें सम्मिलित हों उसे मूल प्रथमानुयोग कहते हैं।

मूल प्रथमानुयोग में तीर्थंकरों की आत्म-शुद्धि यात्रा का सम्पूर्ण वर्णन है। यह उनके उस पूर्वभव से आरम्भ होता है जिसमें दिशा परिवर्तन होकर, अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त करके आत्म-शुद्धि के मार्ग पर चल पड़े थे।

Elaboration—The yoga (combination) that is according to the fundamentals or the propagated truth is called *anuyog*. That which compiles biographies that conform to the philosophy or principles or are used as example to vivify these is named *Mool Prathamanuyog*.

Mool Prathamanuyog has complete details of the passage of *Tirthankars* towards purity of soul. It starts with the earlier birth in which the direction of their life changed, and acquiring *samyaktva* they proceeded on the path of purification of soul.

१०८ : *से किं तं गंडिआणुओगे ?*

गंडिआणुओगे—कुलगरगंडिआओ, तित्थयरगंडिआओ, चक्कवट्टिगंडिआओ, दसारगंडिआओ, बलदेवगंडिआओ, वासुदेवगंडिआओ, गणधरगंडिआओ, भद्दबाहुगंडिआओ, तवोकम्मगंडिआओ, हरिवंसगंडिआओ, उस्सप्पिणीगंडिआओ,

ओसप्पिणीगंडिआओ, चित्तंतरगंडिआओ, अमर-नर-तिरिअ-निरय-गइ-गमण-विविह-परियट्टणाणुओगेसु, एवमाइआओ गंडिआओ आघविज्जंति, पण्णविज्जंति।

से त्तं गंडिआणुओगे, से त्तं अणुओगे।

अर्थ—प्रश्न—गण्डिकानुयोग में क्या है?

उत्तर—गण्डिकानुयोग में कुलकरगण्डिका, तीर्थंकरगण्डिका, चक्रवर्तीगण्डिका, दशारगण्डिका, बलदेवगण्डिका, वासुदेवगण्डिका, गणधरगण्डिका, भद्रबाहुगण्डिका, तपोकर्मगण्डिका, हरिवंशगण्डिका, उत्सर्पिणीगण्डिका, अवसर्पिणीगण्डिका, चित्रान्तरगण्डिका, देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक आदि गतियों में गमन तथा संसार पर्यटन आदि गण्डिकाएँ कही गई हैं, प्रतिपादित की गई हैं।

यह गण्डिकानुयोग का वर्णन है। यह अनुयोग का वर्णन है।

108. Question—What is this *Gandikanuyog*?

Answer—In *Gandikanuyog* are discussed and propagated—*Kulkar Gandika, Tirthankar Gandika, Chakravarti Gandika, Dashar Gandika, Baldev Gandika, Vasudev Gandika, Ganadhar Gandika, Bhadrabahu Gandika, Tapokarma Gandika, Harivamsh Gandika, Utsarpini Gandika, Avasarpini Gandika, Chitrantar Gandika,* and births in genuses of gods, human beings, animals, hell beings, etc., cycles of rebirth and other such *gandikas*.

This concludes the description of *Gandikanuyog*, this concludes the description of *Anuyog*.

विवेचन—गण्डिका का अर्थ है गाँठ। जिसमें इतिहास गन्ने की गाँठों की तरह विषयानुसार, क्रमानुसार अथवा कालानुसार विभाजित हो वह गण्डिकानुयोग कहा गया है। जैसे—गन्ना अनेक गाँठों से विभाजित होता है वैसे ही कालक्रम तीर्थंकर काल से विभाजित करें तो बीच का समय अनेक महापुरुषों के इतिहास से सजा हुआ है। गण्डिकानुयोग में इन सभी के अनेक भवों—आगत व अनागत (भविष्य) की कथाएँ हैं।

Elaboration—*Gandika* means knot. That in which history is divided, like knots in sugar-cane or bamboo, subject-wise, sequence-wise, or period-wise, is named *Gandikanuyog*. As a sugar-cane is divided by knots, if we divide the span of time by periods of *Tirthankars* the intervening periods are filled with the history of

numerous great individuals. *Gandikanuyog* contains the stories of many past and future incarnations of all these.

(v) चूलिका
(V) CHULIKA

१०९ : *से किं तं चूलिआओ ?*

चूलिआओ–आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिआओ सेसाइं पुव्वाइं अचूलिआइं।

से त्तं चूलिआओ।

अर्थ–प्रश्न–चूलिका क्या है ?

उत्तर–आदि के चार पूर्वों में चूलिकाएँ हैं, शेष चूलिकारहित हैं।

यह चूलिका का वर्णन है।

109. Question—What is this *Chulika*?

Answer—The first four *Purvas* have *Chulikas* and the remaining are without them.

This concludes the description of *Chulika*.

विवेचन–चूलिका या चूला पर्वत के शिखर या चोटी को कहते हैं। यह सामान्यतया पर्वत के आधार भाग से अलग गिनने में आता है। उसी प्रकार किसी शास्त्र के आधार भाग से पृथक् जो अतिरिक्त सामग्री दी जाती है उसे चूलिका कहते हैं। अर्थात् ग्रंथ में चर्चित विषय सम्बन्धी सामग्री जो परिशिष्ट रूप में हो वह चूलिका कहलाती है।

Elaboration—*Chulika* or *chula* means the peak or pinnacle of a mountain. This is generally counted separately from the base and body of a mountain. In the same way the extra material, other than the basic text, included in a scripture is called *Chulika*. In other words the extra material related to the basic text and given as appendix and/or addendum is called *Chulika*.

दृष्टिवादांग का उपसंहार
CONCLUSION OF DRISHTIVADANG

११० : *दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।*

से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे, एगे सुअक्खंधे, चोद्दसपुव्वाइं, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडिआओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडिआओ, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निबद्ध-निकाइआ जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विन्नाया, एवं चरण-करण परूवणा आघविज्जंति।

से त्तं दिट्ठिवाए।

अर्थ–दृष्टिवाद की संख्यात वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ (छन्द), संख्यात श्लोक, संख्यात प्रतिपत्तियाँ, संख्यात निर्युक्तियाँ, और संख्यात संग्रहणियाँ हैं।

अंग सूत्रों के क्रम में यह बारहवाँ अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, चौदह पूर्व, संख्यात वस्तु, संख्यात प्राभृत, संख्यात प्राभृतप्राभृत, संख्यात प्राभृतिकाएँ, संख्यात प्राभृतिका-प्राभृतिकाएँ हैं। इसका पद परिमाण संख्यात सहस्र पदाग्र है। इसमें अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध, और निकाचित जिन-प्रणीत भावों का आख्यान है, प्ररूपणा है, दर्शन है, निदर्शन है और उपदर्शन है।

इसका अध्ययन करने वाला इसमें तन्मय होकर उन भावों का ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है ऐसी चरण-करण रूप प्ररूपणा इसमें की गई है।

यह दृष्टिवाद श्रुत का वर्णन है।

110. *Drishtivad* has limited *vachana* (readings, lessons, compilations, editions). It has countable *anuyogadvar*, countable verses, countable couplets, countable *pratipattis*, countable *niryukti* (parsing), and countable *sangrahanis*.

This *Drishtivad* is twelfth among the *Angas*. It has one *shrutskandha* (part), fourteen *purvas*, countable *vastus*, countable *prabhrit*, countable *prabhrit-prabhrit*, countable *prabhritikas*, and countable *prabhritika-prabhritikas*. Measured in *pad* (sentence units) it has countable thousand *pad*. It has countable alphabets, infinite *gum* (meanings) and infinite *paryaya* (variations). It has descriptions of limited number of mobile beings, and infinite immobile beings. Established with the help of *shashvat* (eternal or fundamental), *krit* (created or

experimented) and natural evidences, the tenets of the *Jina* have been stated (*akhyayit*), propagated (*prajnapit*), detailed (*prarupit*), explained (with the help of metaphors) (*darshit*), clarified (with the help of examples) (*nidarshit*), and simplified (with the help of discourse style) (*upadarshit*).

It has been presented in such *charan-karan* style that if a person is engrossed in its studies, he becomes a scholar and an expert of the subject.

This concludes the description of *Drishtivad*.

विवेचन—लगता है दृष्टिवाद केवल विशाल ग्रन्थ ही नहीं, अपितु, इसमें संकलित विषय भी बहुत थे और उनका अत्यधिक सूक्ष्मता से सविस्तार वर्णन किया गया था। इसी कारण इसके विभाजन अन्य श्रुतों की अपेक्षा अधिक सारयुक्त और अधिक संख्या वाला है।

इन विभाजनों की परिभाषा इस प्रकार है–

वस्तु–बड़े अध्ययन अधिकार, अथवा खण्ड, **प्राभृत**–मध्यम आकार वाले अध्ययन अथवा प्रकरण, **प्राभृत-प्राभृत**–छोटे अध्ययन अथवा अध्याय, **प्राभृतिका**–अध्याय के बड़े अंश, **प्राभृतिका-प्राभृतिका**–अध्याय के छोटे अंश, **संग्रहणी**–प्राभृत आदि में वर्णित विषय को एक-दो गाथाओं में बताया, **चूलिका वस्तु**–चूलिका के अध्ययन।

Elaboration—It appears that *Drishtivad* is not just a voluminous book. The subject compiled in it were numerous and they all were discussed minutely and in great detail. That is why the list of its divisions is much longer and more informative as compared with that of other *shruts*.

These divisions are defined as follows—

Vastu—larger sections or volumes, *Prabhrit*—medium sized sections or parts, *Prabhrit-prabhrit*—smaller sections or chapters, *Prabhritikas*—longer portions of a chapter, *Prabhritika-prabhritikas*—shorter portions of a chapter, *Sangrahani*—list of subjects given in a few verses, *Chulika vastu*—sections of a *chulika*.

द्वादशांग का संक्षिप्त सारांश
BRIEF GIST OF DVADASHANG

१११ : *इच्चेइयम्मि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता*

अजीवा, अणंता भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा पण्णत्ता।

भावमभावा हेऊमहेऊ कारणमकारणे चेव।
जीवाजीवा भविअ-अभविआ सिद्धा असिद्धा य॥

अर्थ—इस द्वादशांग गणिपिटक में अनन्त भाव, अनन्त अभाव, अनन्त हेतु, अनन्त अहेतु, अनन्त कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव, अनन्त अजीव, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध और अनन्त असिद्ध का विषय प्रतिपादन किया गया है।

संग्रहणी गाथा में भी यही सूची दी गई है।

111. The subjects dealt in this *Dvadashang Ganipitak* are—infinite *bhava* (modes), infinite *abhava* (non-modes or absence of modes), infinite *hetu* (causes), infinite a*hetu* (non-causes), infinite *karan* (basis), infinite *akaran* (non-basis or absence of basis), infinite beings, infinite (non-beings), infinite *bhavasiddhik* (destined to liberate), infinite *abhavasiddhik* (not destined to liberate), infinite *Siddhas* (liberated ones), and infinite *asiddha* (not liberated).

The *sangrahini* verse also contains the same list.

विवेचन—यह द्वादशांग में चर्चित विषयों की संक्षिप्त रूपरेखा है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप में सद्रूप होता है यह भाव है, इसका प्रतिपक्षी असद्रूप है अर्थात् अन्य रूप की अपेक्षा से वह असद्रूप है—यह उस अन्य रूप का अभाव है। जैसे जीव में जीवत्व का भाव है और अजीवत्व का अभाव। हेतु का अर्थ वे साधन हैं जो इच्छित अर्थ की जिज्ञासा में कारण स्वरूप हों। इसका प्रतिपक्ष अथवा अन्य रूपी अहेतु हैं। कारण वे हैं, जिनके आधार पर स्वगुणों का निर्माण होता है जैसे घट के कारण हैं मिट्टी (उपादानकारण), चाक, डण्डा, वस्त्र, कुम्हार आदि (निमित्तकारण)। इसका प्रतिपक्ष अथवा पर-गुणों के आधार अकारण हैं। जीव-अजीव, भव्य-अभव्य, सिद्ध-असिद्ध ये सभी पूर्व वर्णित हैं।

Elaboration—This the brief list of the subjects discussed in the twelve *Angas*. Every substance in its natural form is existent, this is *bhava*. Contrary to this is the absence or non-existence of a form other than its natural form or an un-natural form, this is *abhava*. For example a being has presence of the basic attribute of life and absence of the basic attribute of non-being. *Hetu* is the cause that

inspires curiosity about the desired subject. *Ahetu* is its opposite. *Karan* is the basis of acquiring fundamental attributes. For example sand is the *upadan karan* (fundamental basis) of pitcher, and wheel, stick, potter, etc., are its *nimitta karan* (instrumental basis). *Akaran* is its opposite. *Jiva-ajiva, Bhavya-abhavya,* and *Siddha-asiddha* have already been explained.

द्वादशांगश्रुत की विराधना का कुफल

BAD CONSEQUENCES OF GOING AGAINST THE DVADASHANG

११२ : इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसार-कंतारं अणुपरिअट्टिंसु।

इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरिअट्टंति।

इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरिअट्टिस्संति।

अर्थ–भूतकाल में इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा से (तीर्थंकर भगवान के आदेश की) विराधना करके अनन्त जीवों ने चार गतिरूपी संसार कान्तार में परिभ्रमण किया।

इसी प्रकार वर्तमान काल में इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा की विराधना करके अनन्त जीव चार गति रूप संसार कान्तार में परिभ्रमण करते हैं।

इसी प्रकार आगामी काल में इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा से विराधना करके अनन्त जीव चार गति रूपी संसार कान्तार में परिभ्रमण करेंगे।

112. In the past, going against the *Dvadashang* or the orders of *Tirthankar Bhagavan*, infinite beings have wandered around in the dense forest of cycles of rebirth in four *gatis* (genuses).

In the same way, during the present, going against the *Dvadashang* or the orders of *Tirthankar Bhagavan*, infinite beings wander around in the dense forest of cycles of rebirth in four *gatis* (genuses).

In the same way, in future, going against the *Dvadashang* or the orders of *Tirthankar Bhagavan*, infinite beings will wander

around in the dense forest of cycles of rebirth in four *gatis* (genuses).

विवेचन—द्वादशांग में संसारी जीवों के हित साधन के लिए जो कुछ सत्य बताया गया है उसे ही आज्ञा कहते हैं। आज्ञा के तीन प्रकार बताये हैं—सूत्राज्ञा, अर्थाज्ञा और उभयाज्ञा। इनकी विराधना के उदाहरण हैं—

(१) जमालि के समान जो अज्ञान एवं दुराग्रहपूर्वक अन्यथा सूत्र पढ़ता है वह सूत्राज्ञा का विराधक है।

(२) दुराग्रह के कारण जो द्वादशांग की अन्यथा प्ररूपणा करता है वह अर्थाज्ञा का विराधक होता है जैसे—गोष्ठामाहिल।

(३) जो श्रद्धाविहीन व्यक्ति द्वादशांग के शब्दों व अर्थों दोनों का उपहास करता है और उनसे विपरीत चलता है वह उभयाज्ञा विराधक है।

Elaboration—The truth revealed in the *Dvadashang* for the benefit of the worldly beings is called *ajna* (order). There are said to be three types of *ajna*—*sutrajna* (text), *arthajna* (meaning), and *ubhayajna* (both). The examples of going against these are—

1. He who, inspired by dogmas and out of ignorance, studies wrong texts, as Jamali did, is going against *sutrajna*.

2. He who, inspired by dogmas and out of ignorance, interprets the text wrongly, as Goshthamahil did, is going against *arthajna*.

3. He who, lacks faith and mocks both, text and meaning of the *Dvadashang* and behaves contrary to it, is going against *ubhayajna* (both).

द्वादशांग-आराधना का सुफल

GOOD CONSEQUENCES OF FOLLOWING THE DVADASHANG

११३ : *इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीइवइंसु।*

इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीइवयंति।

इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीइवइस्संति।

अर्थ–भूतकाल में इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा से तीर्थंकरों के आदेशों की आराधना करके अनन्त जीवों ने चार गतिरूपी संसार कान्तार को पार किया।

इसी प्रकार वर्तमान काल में इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा से आराधना करके अनन्त जीव चार गतिरूपी संसार कान्तार को पार करते हैं।

इसी प्रकार अनागत काल में इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा से आराधना करके अनन्त जीव चार गतिरूपी संसार कान्तार को पार करेंगे।

113. In the past, following the *Dvadashang* or the orders of *Tirthankar Bhagavan*, infinite beings have crossed the dense forest of cycles of rebirth in four *gatis* (genuses).

In the same way, during the present, following the *Dvadashang* or the orders of *Tirthankar Bhagavan*, infinite beings cross the dense forest of cycles of rebirth in four *gatis* (genuses).

In the same way, in future, following the *Dvadashang* or the orders of *Tirthankar Bhagavan*, infinite beings will cross the dense forest of cycles of rebirth in four *gatis* (genuses).

विवेचन–जिस प्रकार घना जंगल अनेक प्रकार के हिंस्र जन्तुओं, अन्य कठिन बाधाओं तथा अंधकार से परिपूर्ण होता है और उसे पार करने के लिए तेज प्रकाश-पुँज की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार जन्म-मरण व चार गतियों की बाधाओं व अंधकार से भरे इस संसाररूपी जंगल को पार करने के लिए श्रुतज्ञानरूपी प्रकाश-पुँज की आवश्यकता होती है। आत्म-कल्याण और पर-कल्याण के मार्ग पर श्रुतज्ञान ही परम सहायक व आलम्बन है। अतः मुमुक्षुओं को इसके सम्यक् अर्थ को ग्रहण कर आचरण में उतारना चाहिए। कर्मों के मल से मुक्ति का यही उपाय है और यही अन्ततः इस संसार सागर से पार उतरने का साधन है।

Elaboration—A dense forest is infested with many dangerous animals, other difficulties, and darkness and one needs a bright source of light in order to be able to cross it. In the same way, in order to cross the hurdles of cycles of rebirth in four *gatis* and the darkness of ignorance infesting this world, one needs the bright source of spiritual light that is *shrut-jnana*. On the path of development of the self and others the best guide and help is *shrut-jnana*. Therefore those desirous of liberation should understand the right meaning of this and apply the same in one's conduct. This is the only way to get

rid of the infection of karmas and finally, this is the only means to cross the ocean of mundane existence.

गणिपिटक की शाश्वतता
THE ETERNALITY OF GANIPITAK

११४ : *इच्चेइअं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ।*

भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ।

धुवे, निअए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे।

से जहानामए पंचत्थिकाए न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ। भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए अवट्ठिए, निच्चे। एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ। भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे।

से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ–

दव्वओ णं सुअनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ, पासइ,
खित्तओ णं सुअनाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ, पासइ,
कालओ णं सुअनाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ, पासइ,
भावओ णं सुअनाणी उवउत्ते सव्वे भावे जाणइ, पासइ।

अर्थ–जैसे ऐसा नहीं है कि पंचास्तिकाय कदाचित् नहीं थे,, कदाचित् नहीं हैं और कदाचित् नहीं होंगे। वे भूतकाल में थे, वर्तमान काल में हैं और भविष्य में रहेंगे। वे ध्रुव हैं, नियत हैं, शाश्वत हैं, अक्षय हैं, अव्यय हैं, अवस्थित हैं और नित्य हैं।

उसी प्रकार ऐसा नहीं है कि यह द्वादशांग गणिपिटक कदाचित् नहीं था, कदाचित् नहीं है और कदाचित् नहीं होगा। यह भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और भविष्य में रहेगा। यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।

वह द्वादशांग संक्षेप में चार प्रकार से प्रतिपादित किया है–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः और भावतः, जैसे–

द्रव्य से श्रुतज्ञानी–उपयोग द्वारा सब द्रव्यों को जानता और देखता है।

क्षेत्र से श्रुतज्ञानी–उपयोग द्वारा समस्त क्षेत्र को जानता और देखता है। काल से श्रुतज्ञानी-उपयोग द्वारा सर्वकाल को जानता और देखता है। भाव से श्रुतज्ञानी–उपयोग द्वारा सब भावों को जानता और देखता है।

114. It is not that the *panchastikaya* (five fundamental things) did not, do not, and will not exist. They did, do, and will exist in the past, present, and future. They are firm, defined, eternal, unending, not depleted, fixed, and ever existent.

In the same way, it is not that the *Dvadashang Ganipitak* did not, do not, and will not exist. They did, do, and will exist in the past, present, and future. They are fixed, defined, eternal, unending, not depleted, firm and ever existent.

In brief, this *Dvadashang* has been propagated four ways—with reference to substance, area, time and modes, as is said—

With reference to substance a *shrutjnani*, when intends, sees and knows all substances. With reference to area a *shrutjnani*, when intends, sees and knows all areas. With reference to time a *shrutjnani*, when intends, sees and knows all time. With reference to mode a *shrutjnani*, when intends, sees and knows all modes.

विवेचन–द्वादशांग की शाश्वतता को विभिन्न दृष्टिकोणों से स्थापित करने के लिए ध्रुवादि विशेषणों का उपयोग किया गया है। इनका विवरण उदाहरण, दृष्टान्त या उपमा आदि के द्वारा इस प्रकार है–

ध्रुव–मेरुपर्वत जैसे सर्वकालीन अचल व ध्रुव है उसी प्रकार द्वादशांग ध्रुव है।

नियत–जीवादि नव तत्त्व का प्रतिपादक होने से वह नियत है।

शाश्वत–सृष्टि का आधारभूत होने से पंचास्तिकाय जैसे सदा विद्यमान है तथा रहेंगे वैसे ही यह शाश्वत है।

अक्षय–जैसे गंगा आदि महानदियों का प्रवाह निरन्तर प्रवहमान होने पर भी अक्षय है वैसे ही वाचनारूपी श्रुत-प्रवाह निरन्तर गतिमान होने पर भी ये अक्षय है।

अव्यय–जैसे (मानुषोत्तर पर्वत से बाहर में) समुद्र की अथाह जलराशि में न्यूनाधिकता नहीं होती उसी प्रकार मोक्ष मार्ग की प्रेरक क्षमता की अथाह राशि होने के कारण ये अव्यय हैं।

अवस्थित-जैसे महाद्वीप अपने प्रमाण व स्थान में अवस्थित हैं उसी प्रकार ये भी अवस्थित हैं।

नित्य-जैसे आकाश आदि द्रव्य की प्रत्येक काल में सत्ता विद्यमान रहती है उसी प्रकार ये सर्वकाल भावी अर्थात् नित्य हैं।

Elaboration—To establish the eternality of *Dvadashang* from different angles adjectives like *dhruva* have been used. These terms are explained here with the help of examples or metaphors—

Dhruva (firm)—Always immovable like the Meru mountain.

Niyat (defined)—Being the source of validation of the well defined nine fundamentals like *jiva* (being), it is well defined.

Shashvat (eternal)—As the five fundamental substances are eternal because of their being the basis of this creation, so is this *Ganipitak*.

Akshaya (unending)—Like the unending flow of the perpetual rivers like the Ganges, the flow of the recitation of the Ganges of *shrut* is unending.

Avyaya (not depleted)—The immense volume of an ocean is never depleted. As the *Ganipitak* has an immense volume of the inspiration for the path of liberation it does not deplete.

Avasthit (fixed)—As a continent has fixed dimension and location, so is this *Ganipitak*.

Nitya (ever existent)—As the existence of fundamentals like space is ever existent, so is that of the *Ganipitak*.

श्रुतज्ञान के भेद और पठन-विधि

THE TYPES AND PROCEDURE OF STUDY OF SHRUT-JNANA

११५ : *अक्खर सन्नी सम्मं, साइअं खलु सपज्जवसिअं च।*
गमिअं अंगपविट्ठं, सत्तवि एए सपडिक्क्खा॥१॥
आगमसत्थग्गहणं, जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं।
बिंति सुअनाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा॥२॥
सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणेइ गिण्हइ अ ईहए वाऽवि।
तत्तो अपोहए वा, धारेइ करेइ वा सम्मं॥३॥

मूअं हुंकारं वा, बाढंकार पडिपुच्छ वीमंसा।
तत्तो पसंगपारायणं च परिणिट्ठा सत्तमए॥४॥
सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निजुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे॥५॥

से त्तं अंगपविट्ठं, से त्तं सुअनाणं, से त्तं परोक्खनाणं, से त्तं नन्दी।

सूत्र—अक्षर, संज्ञी, सम्यक्, सादि, सपर्यवसित, गमिक और अंग-प्रविष्ट (ये सात पक्ष); अनक्षर, असंज्ञी, मिथ्या, अनादि, अपर्यवसित, अगमिक, और अंगबाह्य (ये सात प्रतिपक्ष) इस प्रकार श्रुत के १४ भेद हैं।

बुद्धि के जो आठ स्वाभाविक गुण आगम शास्त्र के अध्ययन द्वारा श्रुतज्ञान का लाभ देते हैं उन्हें पूर्व शास्त्र के ज्ञाता एवं धैर्यवान आचार्य इस प्रकार कहते हैं–

१. सुश्रूषा, २. प्रतिपृच्छना, ३. श्रवण करना, ४. ग्रहण करना, ५. ईहा करना, ६. अपोह करना, ७. धारणा, तथा ८. सम्यक्तया आचरण करना।

सुनने के सात गुण ये हैं–मूक रहकर सुने, हुंकार आदि कहे, समर्थन व्यक्त करें, फिर प्रश्न करें, विचार करें, प्रसंग का पारायण करें, अर्थ का प्रतिपादन करें।

अनुयोग विधि इस प्रकार है–सर्वप्रथम सूत्र व अर्थ की वाचना करें, दूसरी वाचना में निर्युक्ति मिश्र की वाचना करें और फिर तीसरी वाचना में नय निक्षेपपूर्वक प्रतिपादन करें।

यह अंग-प्रविष्ट श्रुत का वर्णन पूर्ण हुआ। यह श्रुतज्ञान का वर्णन है। यह परोक्षज्ञान का वर्णन है। यह नन्दीसूत्र का वर्णन समाप्त है।

115. There are fourteen types of *shrut-jnana—Akshar, Sanjni, Samyak, Saadi, Saparyavasit, Gamik* and *Angapravisht* (seven positives); *Anakshar, Asanjni, Mithya, Anaadi, Aparyavasit, Agamik* and *Angabahya* (seven negatives).

The eight inherent qualities of wisdom that help gain scriptural knowledge through study of *Agams* are defined by the serene and scholarly sages of the past as follows—

1. Sushrusha, 2. Pratiprichhana, 3. Shravan, 4. Grahan, 5. Iha, 6. Apoha, 7. Dharana, and *8. Samyak Acharan.*

The seven qualities of listening are—be silent while listening, utter acknowledgment, express acceptance, raise questions, contemplate, absorb the lesson, define the meaning.

The procedure of *Anuyog* is—first of all recite the text and the meaning; after this, mix it with commentaries (*niryukti*); and thirdly validate it with the help of *naya* and *nikshep*.

This concludes the description of *Angapravisht shrut*. This concludes the description of *shrut-jnana*. This concludes the description of *paroksh-jnana*. This concludes *Nandi Sutra*.

विवेचन–उपसंहार करते हुए श्रुत के चौदह भेद बताने के पश्चात् श्रुतज्ञान को प्राप्त करने के लिए आवश्यक बुद्धि के आठ गुणों का वर्णन किया गया है। इसका इंगित यह है कि श्रुतज्ञान देने का अधिकारी तो गुरु है किन्तु पाने का अधिकारी कौन है यह देखे बिना श्रुतज्ञान देना अहितकर होता है। जिससे श्रुत की अवहेलना भी हो सकती है।

बुद्धि चेतना की क्रिया है, वह गुण तथा अवगुण दोनों को ग्रहण करती है। जो बुद्धि गुण ग्रहण करती है वही श्रुतज्ञान के योग्य और सक्षम है। पूर्वधर तथा धीर आचार्यों का कथन है कि बुद्धि के आठ गुणों सहित श्रुतज्ञान करने वाले गुरु के पास अध्ययन किया जाये तभी आगम शास्त्रों का ज्ञान हो सकता है।

बुद्धि के ये आठ गुण इस प्रकार हैं–

(१) **सुस्सूसई**–शुश्रूषा करना–सुनने की इच्छा सहित गुरु की उपासना करना। ज्ञान प्राप्त करने के लिए अथवा पाठ आरम्भ होने से पूर्व गुरु की भक्तिभाव से वन्दना-सेवा आदि करना और फिर सुनने की जिज्ञासा व्यक्त करना। जिज्ञासा के अभाव में ज्ञान प्राप्त होना असंभव है।

(२) **पडिपुच्छई**–प्रतिपृच्छना करना–पाठ आरम्भ होने पर अथवा सूत्र या अर्थ सुनने पर यदि शंका उत्पन्न हो तो विनयपूर्वक गुरु के समक्ष प्रश्न करना। शंका के समाधान के बिना अर्थ स्पष्ट नहीं होता और ज्ञान पुष्ट नहीं होता। प्रतिपृच्छा में जिज्ञासा की प्रधानता रहती है।

(३) **सुणेई**–गुरुजन प्रश्न का उत्तर देते हैं उसे एकाग्रपन से सुनना। यदि किसी शंका का समाधान न हो तो गुरुजनों से पुनः पूछकर उनका उत्तर ध्यानपूर्वक सुनना।

(४) **गिण्हई**–गुरुजनों द्वारा दिया गया समाधान तथा गुरु वाचना से प्राप्त पाठ को हृदय में धारण करना।

(५) **ईहा**–हृदयंगम किये हुए पाठ या उत्तर पर चिन्तन-मनन करना जिससे ज्ञान मन का विषय बन पाये।

(६) **अपोहा**–ज्ञान पर चिन्तन-मनन करके यह निश्चय करें कि गुरुजनों से प्राप्त ज्ञान यथार्थ है, सम्यक् है।

(७) **धारणा**–फिर स्थिर विश्वास होने पर उस ज्ञान का सार हृदय एवं बुद्धि में धारण करें।

(८) करेई वा सम्मं–ज्ञान का सार है चारित्र। सुना हुआ, मन में स्थिर किया हुआ ज्ञान सम्यक् आराधना द्वारा आचरण में उतरता है तब वह कर्मक्षय कर मुक्ति प्राप्त कराने में समर्थ होती है। बुद्धि का अन्तिम गुण है ज्ञान पर सम्यक्रूप में आचरण करें।

ज्ञान सुनने की विधि

गाथा ४ में गुरुजनों से ज्ञान श्रवण करने की विधि बताई है। गुरुओं के सामने दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक नम्र आसन से बैठें। गुरुजन जब ज्ञान या तत्त्व का प्रवचन करते हैं तब शिष्य सुना हुआ इस प्रकार उसका आदर करें।

(१) मूअं–गुरुजन जब ज्ञान सुना रहे तो शिष्य मौन रहकर दत्तचित्त होकर सुनें।

(२) हुंकारं–गुरु वचन सुनते हुए बीच-बीच में हुंकार या स्वीकार करते रहना चाहिए।

(३) बाढंकार–गुरु से ज्ञान सुनते हुए यथासमय उसका आदर करते हुए कहें–गुरुदेव ! आपने जो कहा वह सत्य है। तहत्ति (तथ्य) है।

(४) पडिपुच्छई–प्रवचन या तत्त्वज्ञान सुनने पर जब जहाँ समझ में नहीं आये तो आवश्यकतानुसार बीच-बीच में पूछते रहना चाहिए।

(५) मीमांसा–गुरु वचनों को सुनकर उन पर मनन करें। उनके भावार्थ पर विचारणा करते रहें।

(६) प्रसंग पारायण–गुरुजनों द्वारा उक्त विधिपूर्वक सुनने वाला शिष्य श्रुत का धारक या पारगामी बन जाता है।

(७) परिणिट्ठिआ–इसके पश्चात् वह गुरु वचनों को धारण कर उन पर मनन पर उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में समर्थ बन जाता है।

अतः शास्त्र जिज्ञासु उक्त विधिपूर्वक गुरुजनों से शास्त्र श्रवण करें।

सूत्रार्थ व्याख्यान विधि

गाथा ५–बहुश्रुत आचार्य, उपाध्याय आदि शिष्य को सूत्र की वाचना इस क्रम से करें।

सूत्रार्थ–सर्वप्रथम शिष्य को सूत्र का शुद्ध उच्चारण करना सिखाए। फिर उसका अर्थ समझावे।

निज्जुत्ति–उसके पश्चात् आगम के शब्दों की निर्युक्ति अर्थात् उनका भाव प्रकट करने वाली व्याख्या करें।

इसके पश्चात् उस सूत्र का विस्तृत अर्थ समझावे, उत्सर्ग-अपवाद निश्चय-व्यवहार, नय-निक्षेप-प्रमाण और अनुयोगद्वार आदि विधि से उसकी व्याख्या करें। इस प्रकार शास्त्र का सर्वांग विधि से ज्ञान प्रदान कर शिष्य को श्रुत का पारगामी बनावे।

इस प्रकार यह नन्दीसूत्र में अंग-प्रविष्ट श्रुतज्ञान का वर्णन और उसमें परोक्षज्ञान का वर्णन समाप्त हुआ।

Elaboration—Concluding the subject by listing the fourteen types of *shrut-jnana*, the author has described the eight qualities of wisdom that help acquiring *shrut-jnana*. The subtle indication here is that, as the qualification of a worthy guru lies in the knowledge he has, so does the qualification of a listener or a student in these eight qualities. Without ensuring this, imparting of *shrut-jnana* may prove to bc harmful. It could even be termed as the neglect of *shrut*.

Wisdom is the activity of *chetana* (the activity of soul evident in the activity of mind). It absorbs both vices as well as virtues. The wisdom that absorbs virtues is qualified and capable of getting *shrut-jnana*. The *Purvadhar* and able sages say that the knowledge of *Agams* can be acquired only when a student learns with the help of these eight qualities of wisdom near the guru.

The eight qualities are—

1. *Sushrusha*—To serve the guru with devotion and a desire to listen. To pay homage to the guru with devotion before the start of the lesson with an intention to acquire knowledge. After this, to express the desire to acquire knowledge. In absence of this desire to know it is not possible to acquire knowledge.

2. *Pratiprichhana*—Once the lesson has started and one has listened to the text and meaning, to humbly ask questions if there are any doubts. Without removing doubts neither the meaning is clear nor is the knowledge perfect. Curiosity is its vital ingrediant.

3. *Shravan*—When the guru answers the questions, one should listen attentively. If some doubts still remain, one should repeat this process of questioning and listening with attention.

4. *Grahan*—To commit to memory the knowledge acquired through the above process.

5. *Iha*—To mull over and contemplate the lessons committed to memory so that the acquired knowledge becomes the subject of mind. In other words a complete command is gained over what has been learnt.

6. *Apoha*—To confirm the veracity and authenticity of the knowledge so received through analysis.

7. *Dharana*—After authentication, commit the essence of the acquired knowledge to long term memory.

8. *Samyak Acharan*—The essence of knowledge is conduct. The listened and memorized knowledge is transformed into conduct through right practices. Only when this is done, it becomes capable of destroying the karmas and leading to liberation. The ultimate quality of wisdom is to translate knowledge into right conduct.

The procedure of listening

In the fourth verse is given the process of listening from the teachers. Sit before the guru on a proper seat and in a humble posture with joined palms. When the guru gives his discourse the student should humbly behave in the following manner—

1. *Mooam*—When the guru speaks, the student should silently listen with rapt attention.

2. *Hunkar*—In between the student should utter word of acknowledgment.

3. *Badhankar*—In between, at appropriate junctures the student should respectfully say—*Gurudev*, indeed, what you say is true and factual.

4. *Padipucchai*—In between, the student should ask questions to remove his doubts as and when any need arises.

5. *Mimansa*—He should think over the words the guru has uttered and the meaning they convey.

6. *Prasang Parayan*—Repeating this process the student absorbs *shrut* and gradually becomes an expert.

7. *Parinitthia*—Acquiring the knowledge from the guru this way, he continues to contemplate over it and acquires the capability of propagating the principles contained within it.

Therefore, those desirous of acquiring knowledge should listen to the scriptures from the guru following the said procedure.

The procedure of reciting the text and meaning

5th verse—The scholarly *acharyas* and *upadhyayas* should follow this sequence while reciting a *sutra* before disciples—

Sutrarth—First teach the student the correct pronunciation of the *sutra*. After that, explain him the meaning.

Nijjutti—After that he should parse and define the words of the *Agam* and explain their meaning.

After this he should explain the detailed meaning of the *sutra*. Elaborate it with the help of various processes of logic, view points, validations, and examples. This way he should give complete and in-depth knowledge to his student and make him an expert of *shrut*.

Thus ends the description of the *angapravisht shrut-jnana* and within that the description of *Paroksh-jnana*.

॥ नन्दी समत्ता ॥

॥ नन्दीसूत्र समाप्त ॥

॥ The End of Nandi Sutra ॥